डॉ० भवानी लाल भारतीय जी को
सादर, सप्रेम भेंट

प्रधानाचार्य
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर, हरिद्वार

ओ३म्

महाविद्यालय के सौ वर्ष

गुरु विरजानन्द स्मारक पुस्तकालय
परिग्रहण संख्या 3583
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

(1907 से 2007 ई०)

गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

ओ३म्

महाविद्यालय के सौ वर्ष

(1907 से 2007 ई०)

प्रधान संपादक

(पद्मश्री) डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

प्रबन्ध संपादक

डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री

डॉ० गणेशदत्त शर्मा

सहायक संपादक

डॉ० हरिगोपाल शास्त्री

प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री

डॉ० केशवप्रसाद उपाध्याय

डॉ० अजय कौशिक

डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)

ओ३म्

महाविद्यालय के सौ वर्ष

(1907 से 2007 ई०)

प्रथम संस्करण : 2007 ई०

मूल्य : रु० 200.00

कंपोजिंग
ओम् कम्प्यूटर्स
शान्ति-निकेतन,
ज्ञानपुर (भदोही)

प्रकाशक
गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

मुद्रक
सुरभि प्रिन्टर्स
इंडियन प्रेस कालोनी,
मलदहिया, वाराणसी

संपादकीय

महर्षि दयानन्द और स्वामी दर्शनानन्द- भारतवर्ष के संकट को दूर करने के लिए एक निर्भीक योद्धा और प्रहरी के रूप में एक महान् आत्मा श्री महर्षि दयानन्द जी का प्रादुर्भाव हुआ था । उन्होंने वैदिक-संस्कृति, वैदिक-सभ्यता, आर्ष-पद्धति और प्राचीन गुरुकुल प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया । उनका मत था कि राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने के लिए गुरुकुल प्रणाली सर्वोत्तम है । इसके द्वारा ही सदाचारी, त्यागी, तपस्वी और राष्ट्रभक्त वीर उत्पन्न किए जा सकते हैं । महर्षि की शिक्षा से प्रभावित होकर महान् तपस्वी स्वामी दर्शनानन्द जी ने गुरुकुल प्रणाली को पुनर्जीवित करने का व्रत लिया । उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना से पूर्व ही दो गुरुकुलों की स्थापना की थी, वे थे बदायूं और सिकन्दराबाद। इसके पश्चात् १९०२ में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना स्वामी श्रद्धानन्द जी ने की । इसके पश्चात् १५ मई १९०७ (वैशाख सुदी, अक्षय तृतीया संवत् १९६४) को स्वामी दर्शनानन्द जी ने तीसरे गुरुकुल के रूप में महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना की । स्वामी दर्शनानन्द जी ने अन्य दो गुरुकुल विरालसी और पोठोहार स्थापित किए थे ।

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि तीन चवन्नी और तीन विद्यार्थियों से प्रारम्भ हुआ यह गुरुकुल आज अपनी शताब्दी मना रहा है । इन सौ वर्षों में गुरुकुल ने अनेक उतार-चढ़ाव, उत्थान-पतन, देखे हैं । यह विचित्र संयोग है कि यह गुरुकुल जन्म से ही आकाशवृत्ति रहा है । जनता का सहयोग और परमात्मा की कृपा ही इसका एकमात्र आधारशिला रही है। असंख्य कठिनाई और विघ्नों को पार करते हुए यह आज एक स्थिर संस्था के रूप में प्रतिष्ठित है । स्वामी दर्शनानन्द जी की त्याग, तपस्या और उनका ईश्वर-विश्वास ही संस्था को अमृत के रूप में जीवनशक्ति प्रदान कर रहा है ।

संस्था के पांच आधार-स्तम्भ- इस संस्था के आधार-स्तम्भ रूप में पांच तपस्वी ऋषि रहे हैं । ये हैं- श्री स्वामी शुद्धबोध तीर्थ, श्री पंडित भीमसेन शर्मा, श्री पद्मसिंह शर्मा, आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ एवं पं० दिलीपदत्त उपाध्याय । इन तपःपूत महामना ऋषियों ने इस संस्था को पल्लवित-पुष्पित किया है और इसको भंवर से निकालकर किनारे लगाया है । इनकी तपस्या का ही फल है कि यह एक छोटा पौधा महावृक्ष के रूप में प्रतिष्ठित हो सका है । इन ऋषियों को सादर श्रद्धांजलि है ।

गुरुकुल की देन- गुरुकुल की देन का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इस संस्था ने सैकड़ों विद्वान्, लेखक, वक्ता, शास्त्रार्थ-महारथी राष्ट्रभक्त और समाजसेवी उत्पन्न किए हैं, जिन्होंने भारत ही नहीं, अपितु विश्व में ख्याति प्राप्त की है । इनमें कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं- श्री पं० उदयवीर शास्त्री, श्री डॉ० सूर्यकान्त, श्री रामावतार शास्त्री, डॉ० हरिदत्त शास्त्री, आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री, आचार्य डॉ० गौरीशंकर, श्री क्षेमचन्द्र सुमन, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री वेदप्रकाश शास्त्री, डॉ० गणेशदत्त शर्मा आदि ।

महाविद्यालय के सौ वर्ष (इतिहास)- गत वर्ष महोत्सव पर यह निर्णय लिया गया था कि अगला वर्ष शताब्दी वर्ष है और उस पर एक भव्य इतिहास-ग्रन्थ निकलना चाहिए। यह कार्य अत्यन्त कठिन और श्रमसाध्य था। वित्तीय साधनों का अभाव था। इसके लिए सम्पादक मंडल की नियुक्ति की गई। संपादक मंडल अपने परिश्रम से जो कुछ कर सका है, वह आपके सामने प्रस्तुत है। दो सौ से अधिक विद्वानों से संपर्क किया गया और अधिकांश ने हमारी प्रार्थना स्वीकार करते हुए लेख आदि भेजने की कृपा की है। हम उनके प्रति अपना आभार प्रकट करते। लेखों की संख्या अधिक हो गई थी और कुछ लेख बहुत लंबे थे, उनको छोटा किया गया है। सम्पादक मण्डल ने सभी लेखों का मूल्यांकन किया और उनमें आवश्यक संशोधन किये हैं। उनके सहयोग के लिए आभारी हूँ।

इस स्मारिका को छः खण्डों में विभाजित किया गया है। खण्ड- १ इतिहास खंड है। इसमें गुरुकुल के उद्भव और विकास का वर्णन है। भूमिदाता बाबू सीताराम जी का विवरण है यह इतिवृत्त है। इसमें आद्य पांच स्तम्भों का परिचय है। खण्ड- २ में स्वामी दर्शनानन्द जी के शास्त्रार्थ और उनकी आर्यसमाज को देन का विवरण है। खण्ड- ३ में गुरुकुल के आद्य आचार्यों, सहायक कार्यकर्ताओं, यशस्वी स्नातकों और उनकी देन का विस्तृत विवरण है। खण्ड-४ में आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान शिक्षाक्षेत्र, स्वतंत्रता-संग्राम, हिन्दी प्रचार और सामाजिक-उत्थान में गुरुकुलों के योगदान का वर्णन है। खण्ड- ५ में कतिपय विद्वानों के विशिष्ट लेख हैं। खण्ड- ६ में गुरुकुल की आंतरिक व्यवस्था का विवरण है। गुरुकुल के विभिन्न पदाधिकारी, भवन-निर्माण आदि तथा आय-व्यय का विवरण।

प्रयत्न किया गया है कि गुरुकुल महाविद्यालय से संबद्ध सभी तथ्यों का यथोचित समावेश हो सके। इसके लिए जितनी सामग्री जुटाना संभव था, जुटाई गई है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जिन महानुभावों ने सहयोग दिया है, उन सबको बहुत धन्यवाद है। उनके प्रति आभार-प्रदर्शन हमारा कर्तव्य है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में तथा मुद्रण आदि की व्यवस्था में डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी एवं श्री सुरेश चन्द्र पाठक का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ वे आशीर्वाद के पात्र हैं। सुरभि प्रिंटर्स वाराणसी ने ग्रन्थ के सुरुचिपूर्ण मुद्रण का जो कार्य संभाला है, उसके लिए उन्हें भी धन्यवाद है।

वसन्त पंचमी २०६३ वि०

- संपादक

दिनांक- २३.०१.२००७

अनुक्रमणिका

सन्देश

खण्ड- १ इतिहास खंड

क्रम सं०	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
१.	विशिष्ट सम्मतियां		३
२.	गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना		५
३.	बाबू सीताराम जी		११
४.	गुरुकुल महाविद्यालय के आरम्भिक मुख्य चार स्तम्भ		३५
५.	महाविद्यालय की उपयोगिता	पं० पद्मसिंह शर्मा	४५
६.	गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर : संक्षिप्त परिचय		४७
७.	गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर : कतिपय संस्मरण		४९
८.	गुरुकुल शिक्षा प्रणाली	श्री सुशील कुमार त्यागी 'अमित'	५१
९.	उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द जी महाविद्यालय पधारे	डॉ० प्रदीप कुमार जैन	५२
१०.	गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (कुछ संस्मरण)	पं० भूदेव शास्त्री	५४
११.	अमृतसर में स्वामी दयानन्द जी पर पत्थर फेंके गये	डॉ० भवानीलाल भारतीय	५६
१२.	ज्वालापुर महाविद्यालय की स्थापना क्यों ?	श्री विद्यासागर शास्त्री	५७
१३.	महाविद्यालय के कुछ संस्मरण	श्री विद्यासागर शास्त्री	६०

खण्ड - २ स्वामी दर्शनानन्द

क्रम सं०	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ सं०
१.	दर्शनानन्द गौरवम्	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	६५
२.	स्वामी दर्शनानन्द	आचार्य हरिसिंह त्यागी	६७
३.	शास्त्रार्थ-महारथी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	६८
४.	स्वामी दर्शनानन्द	श्री सुशील कुमार त्यागी 'अमित'	७०
५.	स्वामी दर्शनानन्द जी और उनके शास्त्रार्थ	डॉ० दिनेश चन्द्र शास्त्री	७१
६.	स्थावर में जीव हैं या नहीं ?	पं० पद्मसिंह शर्मा	८६
७.	स्वामी दर्शनानन्द : कुछ प्रेरक प्रसंग	महात्मा चैतन्य मुनि	८९
८.	श्री दर्शनानन्द-स्तवः	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	९१
९.	श्री स्वामी दर्शनानन्द	आचार्य हरिसिंह त्यागी	९२
१०.	शास्त्रार्थ-महारथी स्वामी दर्शनानन्द	श्री अमृतपाल शास्त्री	९३
११.	स्वामी दर्शनानन्द जी की आर्यसमाज को देन	श्री सत्यदेव गुप्त	९६

१२.	श्री दर्शनानन्द गुण-गरिमा	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	९८
१३.	परम श्रद्धेय स्वामी दर्शनानन्द जी	डॉ० देवशर्मा आर्य	१०१
१४.	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	श्री सुशील कुमार त्यागी 'अमित'	१०३
१५.	श्री स्वामी दर्शनानन्द जी	डॉ० देवशर्मा आर्य	१०६

खण्ड- ३ गुरुकुल के आधार-स्तम्भ एवं यशस्वी स्नातक

१.	गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम आचार्य श्री शुद्धबोधतीर्थ	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	१०९
२.	आचार्य शुद्धबोध तीर्थ जी	श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति	११२
३.	गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली	आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप'	११४
४.	आदर्श कुलपति आचार्य शुद्धबोधतीर्थ	डॉ० अजय कौशिक	११५
५.	समालोचक सम्राट् पं० पद्मसिंह शर्मा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	११७
६.	आचार्य नरदेव शास्त्री जी और उनका जेल का साथी	संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	१२०
७.	महाविद्यालय का विकास : एक विहंगम दृष्टि	डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री	१२३
८.	श्री पं० हरवंश सिंह 'वत्स'	डॉ० हरिगोपाल शास्त्री	१३१
९.	पं० उदयवीर शास्त्री		१३३
१०.	अपूर्व दार्शनिक पं० उदयवीर शास्त्री	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१३६
११.	आचार्य पं० सत्यव्रत शास्त्री : एक व्यक्ति, एक संस्था	डॉ० अश्विनी पराशर	१३८
१२.	आचार्य श्री पं० रामावतार शास्त्री के कुछ संस्मरण	डॉ० हरिश्चन्द्र आत्रेय	१४१
१३.	डॉ० हरिदत्त शास्त्री		१४३
१४.	डॉ० श्री हरिदत्त जी शास्त्री	डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री	१४६
१५.	आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री		१४८
१६.	डॉ० सूर्यकान्त		१५०
१७.	डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह शास्त्री		१५१
१८.	डॉ० गौरीशंकर आचार्य		१५३
१९.	श्री नारायण मुनिश्चतुर्वेद:		१५५
२०.	पद्मश्री आचार्य डॉ० कपिलदेव द्विवेदी : जैसा मैंने देखा जाना	डॉ० अवनीन्द्र कुमार	१५६
२१.	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी : एक परिचय	डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी	१५७
२२.	डॉ० श्रुतिकान्त		१६०
२३	गुरुकुल ज्वालापुर के आदर्श छात्र : आ० क्षेमचन्द्र 'सुमन'	श्री शिवकुमार गोयल	१६१
२४.	आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'	डॉ० इन्द्र सेंगर	१६५

२५.	आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'	डॉ० राष्ट्रबंधु	१७३
२६.	प्रतिभा के धनी डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन'	आचार्य पं० हरिसिंह त्यागी	१७४
२७.	श्री हरिसिंह त्यागी	श्री विजय त्यागी	१७६
२८.	आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री	श्री नरदेव आर्य	१७७
२९.	मेरे अभिन्न मित्र : श्री प्रकाशवीर शास्त्री	डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी	१८०
३०	पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री	डॉ० भवानीलाल भारतीय	१८१
३१.	प्रकाशवीर शास्त्री : एक अंतरंग परिचय	श्री विश्वनाथ	१८३
३२	भारतीयता के प्रबुद्ध प्रहरी : श्री प्रकाशवीर शास्त्री	श्री शिवकुमार गोयल	१८५
३३.	वाग्देवी के वरदपुत्र : पं० प्रकाशवीर शास्त्री	श्री रामनाथ सहगल	१८८
३४.	प्रकाशवीर शास्त्री : मेरे प्रेरणास्रोत	डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण	१९०
३५.	आर्यसमाज के महान् नेता, अद्वितीय राष्ट्रनायक पं० प्रकाशवीर शास्त्री		१९२
३६.	डॉ० गणेशदत्त शर्मा	डॉ० रामकिशोर शर्मा	१९४
३७.	अनुकरणीय व्यक्तित्व के धनी : डॉ० राजेन्द्र शुक्ल	डॉ० रघुवीर वेदालंकार	१९६
३८	श्री बलजित् शास्त्री	श्री आनन्द चौहान	१९७
३९.	आचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री	श्री सुशील कुमार त्यागी 'अमित'	२०२
४०.	विद्याभास्कर श्री महेन्द्र कुमार सिंघल	डॉ० गणेशदत्त शर्मा	२०४
४१.	प्रा० डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे : जीवनवृत्त		२०५
४२.	डॉ० कर्णसिंह		२०७
४३.	आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न	ब्रह्मचारी नन्दकिशोर	२०८
४४.	ब्रह्मचारी नन्दकिशोर 'विनीत'	आर्ष गुरुकुल होशंगाबाद	२०८
४५.	श्री अमृतपाल शास्त्री विद्याभास्कर : एक परिचय		२०९
४६.	डॉ० एन०सी० आत्रेय (जीवन परिचय)	श्री विवेक त्यागी	२१०
४७.	डॉ० हरिश्चन्द्र आत्रेय		२१२
४८.	श्री वैद्य किशनसिंह आयुर्वेदाचार्य	डॉ० देवशर्मा आर्य	२१३
४९.	महाविद्यालय के प्रसिद्ध वैद्य स्नातक		२१४
५०	डॉ० देवशर्मा आर्य		२१७
५१.	विद्याभास्कर पण्डित आत्मानन्द जी शास्त्री	पं० उमाकान्त उपाध्याय	२१८
५२.	चित्रवीथी		

खण्ड- ४ आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान

१.	कुछ महापुरुषों के उद्‌गार (संकलित)	डॉ० सविता द्विवेदी	२२१
२.	राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महाविद्यालय का योगदान		२२३
३.	हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह में महाविद्यालय का योगदान		२२५
४.	गुरुकुल महाविद्यालय का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान	श्री विद्यासागर शास्त्री	२२७
५.	शिक्षाक्षेत्र में महाविद्यालय का योगदान	डॉ० गणेशदत्त शर्मा	२२९
६.	शिक्षाक्षेत्र को महाविद्यालय का योगदान	डॉ० श्रुतिकान्त शास्त्री	२४४
७.	हैदराबाद आर्यसत्याग्रह में गुरुकुल म०वि० का योगदान	डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे	२४६
८.	आर्यसमाज द्वारा प्रवर्तित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली	डॉ० भवानीलाल भारतीय	२५०
९.	गुरुकुलों का शिक्षाक्षेत्र को योगदान	प्रो० रासासिंह रावत	२५३
१०.	गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिष्कृत रूप	डॉ० जयदत्त उप्रेती	२५७
११.	वर्तमान समय में गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता	डॉ० महावीर	२५९
१२.	गुरुकुलों का शिक्षाक्षेत्र को योगदान	आचार्य नन्दकिशोर विद्यावाचस्पति	२६१
१३.	गुरुकुल और विश्वविद्यालयीय शिक्षा	कुलदीप सिंह आर्य	२६३
१४.	श्री महात्मा नारायण स्वामी जी : व्यक्तित्व और कृतित्व	स्वामी वेदमुनि परिव्राजक	२६५
१५.	गुरुकुलों का सामाजिक नवनिर्माण में योगदान	डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री	२६९
१६.	गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान	वेदाचार्य डॉ० रघुवीर वेदालंकार	२७२
१७.	गुरुकुलों का शिक्षा के क्षेत्र को योगदान	श्री रामनाथ सहगल	२७४
१८.	गुरुकुलों का समाज को योगदान	पं० आत्मानन्द विद्याभास्कर	२७५

खण्ड- ५ विशिष्ट लेख

१.	हमारी संस्कृति की विशेषताएं	आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	२७९
२.	संस्कृत के पण्डित और अंग्रेजी के विद्वान्	आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	२८२
३.	गीता-माहात्म्यम्	आचार्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	२८६
४.	देव दयानन्द	पद्मश्री श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	२८८
५.	हिन्दी के युगद्रष्टा : स्वामी दयानन्द	पं० प्रकाशवीर शास्त्री	२८९
६.	आर्यसमाज का दायित्व	श्री प्रकाशवीर शास्त्री	२९२
७.	शिक्षा में हिन्दी के प्रस्तोता : स्वामी श्रद्धानन्द	पं० प्रकाशवीर शास्त्री	२९४
८.	मेरे सपनों का भारत	स्व० पं० प्रकाशवीर शास्त्री	२९७

९.	शिक्षा और संस्कृति	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	३०१
१०.	वेदों की उपयोगिता आधुनिक संदर्भ में	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	३०३
११.	वेदों में विज्ञान- गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त	पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	३०६
१२.	आयुर्वेद में अनुसंधान : एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ० महेन्द्र कुमार त्यागी	३०८
१३.	वैदिक दर्शन, एकेश्वरवाद	डॉ० जयदेव वेदालंकार	३१०
१४.	आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथी	डॉ० भवानीलाल भारतीय	३११
१५.	स्वामी दयानन्द का शिक्षादर्शन	डॉ० गणेशदत्त शर्मा	३१३
१६.	चित्रवीथी		

खण्ड- ६ गुरुकुल की आन्तरिक व्यवस्था

१.	महाविद्यालय सभा (ज्वालापुर) के प्रमुख पदाधिकारी	३१९
२.	म०वि० के भवन-निर्माण का संक्षिप्त परिचय	३२५
३.	म०वि० की गत पाँच वर्षों की उपलब्धियाँ (२००१-२००६) डॉ० केशव प्रसाद उपाध्याय	३२७
४.	आर्थिक रिपोर्ट (आय-व्यय)	३३२
५.	विद्यावाचस्पति (डी०लिट्०) प्राप्त व्यक्तियों की सूची	३४६
६.	विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त व्यक्तियों की सूची	३४७

खण्ड- ७ विज्ञापन

***

हे ऋषिवर !

मन समर्पित, तन समर्पित और यह जीवन समर्पित
चाहता हूँ ऐ ऋषिवर ! तुझको अभी कुछ और भी दूँ ।।

ऋषि तुम्हारा ऋण बहुत है, मैं अकिंचन
किन्तु इतना कर रहा फिर भी निवेदन
थाल में लाऊँ सजाकर भाल जब
स्वीकार कर लेना दयाकर यह समर्पण

गान अर्पित, प्राण अर्पित, रक्त का कण कण समर्पित ।।१।।

माँज दो तलवार को लाओ न देरी
बांध दो कसकर कमर पर ढाल मेरी
भाल पर मल दो चरण की धूलि थोड़ी
शीष पर आशीष की छाया घनेरी

स्वप्न अर्पित, प्रश्न अर्पित, आयु का क्षण-क्षण समर्पित ।।२।।

तोड़ता हूँ मोह का बन्धन क्षमा दो
गांव मेरे द्वार घर आंगन क्षमा दो
आज सीधे हाथ में तलवार दे दो
और बाएं हाथ में 'ओ३म्' ध्वज को थमा दो

ये सुमन लो, ये चमन लो नीड़ का तृण-तृण समर्पित ।।३।।

-आर्यवीर

सुदर्शन अग्रवाल
राज्यपाल, उत्तरांचल

राजभवन
देहरादून – 248003

14 फरवरी 2007

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) द्वारा अपना स्थापना शताब्दी वर्ष आगामी 06 अप्रैल से 09 अप्रैल, 2007 तक आयोजित किया जा रहा है।

उत्तराखण्ड का यह ऐसा गौरवशाली विश्वविद्यालय है, जहाँ देश के अनेक अग्रणी स्वतंत्रता सेनानी, प्रमुख शिक्षाविद, प्रख्यात राजनीतिज्ञ, लोकप्रिय समाजसेवी और प्रखर वक्ता अध्ययनरत रह चुके हैं।

मुझे आशा है कि इस पत्रिका में इन सभी विभूतियों के आदर्श जीवन दर्शन और अभूतपूर्व कृतित्व के बारे में महत्वपूर्ण एवं छात्र-उपयोगी ज्ञानवर्द्धक एवं सारगर्भित पाठ्य-सामग्री का समावेश किया जायेगा, जिससे छात्र एवं छात्राओं का सही मार्गदर्शन होगा और उनके विचारों एवं कार्य-संस्कृति में और अधिक परिपक्वता आयेगी।

इस शताब्दी स्मारिका के सफल प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

सुदर्शन अग्रवाल

(सुदर्शन अग्रवाल)

डॉ० योगानंद शास्त्री

Dr YOGANAND SHASTRI

स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण मंत्री

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार

MINISTER OF HEALTH & SOCIAL WELFARE

GOVT. OF NCT OF DELHI

D.O. No. MOHSW/07/497

Date. ..22.02.2007

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ है कि आपके द्वारा गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में दिनांक 06 अप्रैल से 09 अप्रैल, 2007 तक गुरुकुल महाविद्यालय शताब्दी वर्ष का भव्यतापूर्वक आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया जा रहा है, जिसमे महाविद्यालय का सौ वर्ष का इतिहास, इस संस्था के सौ वर्ष के क्रियाकलाप गुरुकुल की उपादेयता आदि विद्वानों के सारगर्भित लेख भी स्मारिका में प्रकाशित किए जा रहे हैं।

मैं स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(डॉ० योगानन्द शास्त्री)

दिल्ली सचिवालय, आई.पी. एस्टेट, नई दिल्ली- 110002 दूरभाष : 23392067, 23392123

ओ३म्

डॉ० अशोक कुमार चौहान
कुलाधिपति
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
संस्थापक अध्यक्ष,
एमिटी शिक्षण संस्थान

ए०के०सी० हाउस
ई-२७, डिफेन्स कॉलोनी
नई दिल्ली- 110024

दिनांक : १० मार्च २००७

संदेश

आज विश्व दिग्भ्रमित है । चारित्रिक पतन चरम सीमा पर है । समाज मानसिक विकृति से त्रस्त है । ऐसा लगता है मानवता विलुप्त हो रही है । हमारी गुरुकुल शिक्षा में इस विषम स्थिति को बदलने की अभूतपूर्व योग्यता और क्षमता है । मेरा दृढ़ विश्वास है कि एक दिन आएगा जब हमारे गुरुकुलों से ज्ञान, सभ्यता, संस्कृति से ओत-प्रोत योग्य, चरित्रवान ब्रह्मचारी पुनः समस्त विश्व का मार्गदर्शन करेंगे ।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का पूर्ण शताब्दी का गौरवपूर्ण इतिहास है । मेरा परम सौभाग्य है कि मैं इसी महाविद्यालय के विद्वान् स्नातक स्व० बलजित् शास्त्री का पुत्र हूँ । आज हम उन्हीं के दिखाए मार्ग, उच्च आदर्शों एवं संस्कारों के माध्यम से एमिटी शिक्षण संस्थानों में अध्ययनरत 45000 छात्र छात्राओं को इन्हीं संस्कारों से परिपूरित कर विश्व को बदलने की परिकल्पना को साकार करने के लिए कृत संकल्प हैं ।

गुरुकुल महाविद्यालय की गरिमामयी शताब्दी के अवसर पर आचार्य हरिगोपाल जी एवं महाविद्यालय से जुड़े सभी सहयोगियों को मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएं ।

(डॉ० अशोक कुमार चौहान)

॥ ओ३म् ॥

आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार

विद्यामार्तण्ड, एम०ए०, पी-एच०डी०

पूर्व उपकुलपति एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वेदमन्दिर

ज्वालापुर (हरिद्वार)

पिन- 249407

दिनांक : 25-2-2007

शुभकामना

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) स्थापना के सौ वर्ष पूर्ण कर शताब्दी समारोह मना रहा है। स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित यह महाविद्यालय देश-विदेश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। महाविद्यालय से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। महाविद्यालय ने सैकड़ों विद्वान्, लेखक, वक्ता, शास्त्रार्थ-महारथी, राष्ट्रभक्त और समाजसेवी स्नातक दिए हैं, जिनकी ख्याति भारत ही नहीं अपितु विश्व में है।

शताब्दी समारोह के सफल आयोजन तथा स्मारिका के प्रकाशन हेतु मेरी शुभकामनाएं हैं। मेरी ईश्वर से कामना है कि यह महाविद्यालय निरन्तर प्रगति और उन्नति करता रहे।

मंगलाकांक्षी

(रामनाथ वेदालंकार)

Prof. Rajendra Mishra
M.A., D.Phil (Alld.) D.Litt (Shimla)
Ex Vice-Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi - 221002 (U.P., INDIA)

Advisor,
Uttarakhand Sanskrit University
Haridwar

Date. ..14.03.2007

नान्दीवाक्

यह जानकर हार्दिक उल्लास हुआ कि गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर अपनी शतवार्षिकी मना रहा है। संस्कृत-विद्या के प्रचार-प्रसार के निमित्त इस विद्यासंस्था का अवदान निश्चय ही स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। जिन महाविभूतियों ने यहाँ शिक्षा पाई उनके नाम-श्रवण से ही तन-मन पवित्र हो जाता है।

मैं इस महनीय मंगलावसर पर हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करता हूँ तथा महाविद्यालय के सर्वतोमुख सारस्वत-विकास हेतु शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

सस्नेह,

(अभिराज राजेन्द्र मिश्र)
पूर्व कुलपति

डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी
Dr. L.M. Singhvi

Member, Permanent Court of Arbitration at the Hague
Formerly Member of Lok Sabha (1962-67) and Rajya Sabha (1998-2004)
Formerly India's High Commissioner in U.K., (1991-98)
Senior Advocate, Supreme Court of India
Formerly Chairman, High Level Committee on Indian Diaspora (2000-2004)

2 अगस्त 2006

शुभकामना

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से मेरी कई मधुर स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं । मुझे गुरुकुल महाविद्यालय ने मानद उपाधि प्रदान की - उस परिसर में दीक्षान्त भाषण के लिए आहूत एवं निमंत्रित किया । मेरे कई अभिन्न मित्र जो दिवंगत हो चुके हैं, महाविद्यालय के पूर्व स्नातक थे । जिस विद्यालय में प्रकाशवीर शास्त्री एवं शिवकुमार शास्त्री जैसे वरिष्ठ आर्यविद्वान् पढ़े लिखे, वह राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक है । महाविद्यालय भारतीय संस्कृति की स्रोतस्विनी बने, आर्य दृष्टि के आलोक से विश्व को जगमग करे, मेरी यही प्रार्थना है ।

सप्रेम,

आपका

(लक्ष्मीमल्ल सिंघवी)

पता- बी- 8, साउथ एक्सटेंशन, भाग-2, नई दिल्ली- 110049
B-8, South Extension Part-II, New Delhi- 110049 INDIA
Tel.: (00-91-11) 26261313, 26253030, Fax 26262265.

ओ३म्

फोन. 23365959, 23360150

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

15 हनुमान रोड, नई दिल्ली - 110001

स्व0 राजसिंह आर्य

प्रधान

दिनांक- 13.03.2007

संदेश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आर्यों की सर्वोच्च शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के सौ वर्ष पूर्ण हो गए हैं। गुरुकुल के गत सौ वर्ष के इतिहास में गुरुकुल ने अनेक विद्वान् बुद्धिजीवियों, महापुरुषों को शिक्षित कर आर्यसमाज तथा समाजसेवा के क्षेत्र में लगाया है। आज भी गुरुकुल में पढ़े महान् विभूतियां प्रचार-प्रसार में लगी हुई हैं। गुरुकुल के शताब्दी वर्ष पर एक सुन्दर स्मारिका का प्रकाशन भी आपके कुशल नेतृत्व में किया जा रहा है। इस स्मारिका में गुरुकुल द्वारा किए गए कार्यों का विस्तार से विवरण तो होगा ही, उसके साथ-साथ संन्यासी महात्माओं, वैदिक विद्वानों के लिखे सारगर्भित लेख तथा रचनाएं पाठकों को अध्ययन हेतु प्राप्त होंगे। शताब्दी समारोह के आयोजन तथा स्मारिका के प्रकाशन के लिए मैं गुरुकुल के अधिकारियों तथा व्यवस्थापकों तथा कार्यकर्ताओं को साधुवाद देता हूँ। सम्मेलन तथा स्मारिका के लिए मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएं व्यक्त करता हूँ।

धन्यवाद सहित।

सेवा में

डा. कपिल देव द्विवेदी

प्रधान सम्पादक

भवदीय

(स्व0 राजसिंह आर्य)

प्रधान

मो0 9350077856

ओ३म्

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं०)

15 हनुमान रोड, नई दिल्ली – 110001

विनय आर्य

महामंत्री

दिनांक- 27.2.2007

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) स्थापना के शतवर्ष पूर्ण कर रहा है। गुरुकुल महाविद्यालय का विगत सौ वर्ष का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण रहा है। इसके यशस्वी स्नातकों ने स्वामी दयानन्द के स्वप्न को पूर्ण करने के साथ ही अखण्ड स्वतंत्र भारत राष्ट्र के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। शिक्षा, राजनीति, समाजसेवा, व्यापार सभी क्षेत्रों में गुरुकुल के यशस्वी स्नातकों ने गुरुकुल के यश की ध्वजा को फहराया है।

आशा है शताब्दी समारोह के अवसर पर प्रकाशित की जा रही स्मारिका के लेखों के माध्यम से ब्रह्मचारियों, छात्रों तथा समाज को नयी दिशा प्राप्त होगी। इसके सम्पादक मण्डल को मेरी हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

भवदीय

(विनय आर्य)

ओ३म्

आर्य केन्द्रीय सभा, दिल्ली राज्य (पं०)

15 हनुमान रोड, नई दिल्ली - 110001

समस्त दिल्ली की 300 आर्यसमाजों व आर्य संस्थाओं का संगठन

दिनांक- 27.2.2007

संदेश

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूर्ण कर दिनांक ६ से ९ अप्रैल २००७ तक शताब्दी समारोह का आयोजन कर रहा है, यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है । स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित इस महाविद्यालय के स्नातकों का भारतीय संस्कृति, संस्कृत, धर्म और दर्शन के क्षेत्र में प्रशंसनीय योगदान रहा है । स्वामी दयानन्द के स्वप्न को साकार करने में इसके स्नातक सदैव तत्पर रहे हैं । इस महाविद्यालय की गणना देश के श्रेष्ठ गुरुकुलों में की जाती है ।

शताब्दी समारोह के सफल आयोजन हेतु तथा संग्रहणीय इतिहास ग्रन्थ के सफल प्रकाशन हेतु मेरी परमेश्वर से प्रार्थना है ।

भवदीय

(धर्मपाल आर्य)

प्रधान

शतवर्ष-समारोहो विजयते

- डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री

गुरोर्न ये प्रापुरहो शुभाशिषम् ,
रुदन्ति ते भग्नजनाः स्वजीवने ।
कुलोद्भवाः प्राप्य शुभाशिषं मुदा,
लसन्ति विद्याधनमेत्य सर्वदा ।।१।।

मन्ये सदा तामस-भावनायाः,
हानिं विधाय प्रतिभाबलेन ।
विशेष-रूपेण गुरोः प्रसादात्
द्याम्प्राप्तवन्तः शुभमानयास्ते ।।२।।

लघुर्भवत्येष जनः सदैव,
यस्यास्ति वित्तं न च धर्मशिक्षा ।
ज्वालावृतस्तस्य न जन्म मन्ये
लाभं न गृह्णाति गुरूपदेशैः ।।३।।

पुरातने नास्ति सदैव हेयता,
नवीनके स्यान्नहि सर्वथा वरम् ।
हसन्ति नित्यं ह्यविवेकशालिनम्
रिपौ जने यः कुरुते सदा क्षमाम् ।।४।।

द्वारस्थितो नैव कदापि भस्त्र्यः,
रतोऽस्ति भिक्षाटन -कर्मणि यः ।
शाखा निमज्जन्ति न चाल्पहीनाः,
तरन्ति धारामनुसृत्य नद्याम् ।।५।।

वर्षन्ति जलदास्तोयम् आषाढे सौख्यदा यदा ।
समाक्रोशस्तु भेकानां केकाश्चापि केकिनाम् ।।६।।

रोषं विहाय पौरुष्यं शान्तेन मनसा मुदा ।
होतव्यं श्रद्धया नित्यं जनैः कल्याणमिच्छुकैः ।।७।।

विद्यार्थिनस्तु शिक्षन्ते सद्वृत्तिं गुरुभिः सदा ।
जयन्ति शिक्षया नित्यम् अज्ञान-वैर-तामसम् ।।८।।

यत्र-यत्र श्रुतीनां स्यात् प्रचारो ज्ञानवर्धनः ।
तेजसा दर्शनानन्दः स्वामी तत्र स्वतः स्मृतः ।।९।।

***

पता- बी-२९ आनन्दनगर, रायबरेली

कुल-गीतिः

यदीयाङ्के प्रवृद्धास्तां नमामो मातृ-भूमे ! त्वाम् ।
यतीनां शुद्धबोधानां विभास्वत्-तीक्ष्णमेधानाम् ।
कराब्जोल्लालिते ! पूज्ये ! नमामो मातृ-भूमे ! त्वाम् ।।
क्वचित् पुष्पावकीर्णानां लतानां सौरभाकीर्णे !
विशीर्णे ! पत्र-संहत्या नमामो मातृ-भूमे ! त्वाम् ।।
अये ! निःशुल्कशिक्षायाः प्रसूते ! दिव्यसम्भूते ।
पताकां दूरदेशान्ते धुनानां तन्नमामस्त्वाम् ।।
सवर्णि-व्रात-संक्रीडामहो स्मृत्वा गत-व्रीडाम् ।
मदीड्ये ! सन्ततैर्वन्दे शिरोभिर्मातृ-भूमे ! त्वाम् ।।
सुभुक्तं तत् सुषुप्तं तत् सुगुप्तं तत्परीहासम् ।
पुनर्जन्मान्तरे लब्ध्वा कदा भूयोऽप्युपैमस्त्वाम् ।।
उपान्ते जाह्नवी-जायां वृतां नीलैर्महारामैः ।
हसन्तीं द्यां हरिं ध्यात्वा स्मरामो मातृ-भूमे ! त्वाम् ।।

* * *

मंगलाचरणम्

१. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो
वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।। यजु० २२.२२

२. स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।। अथर्व० १९.७१.१

३. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।। यजु० २५.२१

४. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे-दिवे ।। यजु० २५.१४

५. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।। यजु० २५.१९

६. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।। ऋग्० १०.१९१.२

७. रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ।। यजु० १८.४८

८. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।। अथर्व० ३.३०.१

९. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।। ऋग्० १०.१९१.४

१०. अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।। अथर्व० १९.१५.६

खंड १

इतिहास खंड

* गुरुकुल का उद्‌भव और विकास
* गुरुकुल के भूमिदाता, बाबू सीताराम जी
* आद्य चार स्तम्भ

विशिष्ट सम्मतियाँ

मैं महाविद्यालय ज्वालापुर की हृदय से उन्नति चाहता हूँ।

-महात्मा गांधी (अप्रैल १९२० ई०)

ज्वालापुर महाविद्यालय एक पवित्र एवं आदर्श स्थान है।

- जवाहर लाल नेहरू, प्रधानमंत्री, भारत सरकार (१३.४.६२ ई०)

श्री प्रकाशवीर शास्त्री का बहुत समय से आग्रह था कि मैं गुरुकुल महाविद्यालय जाऊँ। इच्छा रहते हुए भी मुझे इसका जल्दी अवसर नहीं मिला। इस बार अप्रैल १९६१ में इसके दीक्षान्त समारोह में सम्मिलित होने का अवसर मिला। मुझे और भी अधिक खुशी इसलिए होती है, क्योंकि मेरा सम्पर्क उस समय से रहा है, जब स्वर्गीय पंडित पद्मसिंह शर्मा यहाँ रहा करते थे। इसीलिए यहाँ आकर पुराने संस्मरण ताजा हो गए।

ऐसे स्थान हमारी प्राचीन संस्कृति के आदर्श बन सकें, आंखों के सामने प्रस्तुत कर देते हैं। आधुनिक शिक्षण पद्धति के साथ गुरुकुल प्रणाली का समन्वय यदि हम कर सकें तो मुझे इसमें संदेह नहीं कि इस प्रकार के समन्वय से हमारे देश को फायदा होगा। मैं इस महाविद्यालय की दिनोंदिन उन्नति चाहता हूँ और अध्यापकों तथा छात्रों को बधाई देता हूँ।

- डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, राष्ट्रपति भारतसरकार (२०.५.१९६१)

यह गुरुकुल ४२ वर्षों से लगातार सैकड़ों विद्यार्थियों को बिना किसी प्रकार के शुल्क के संस्कृत और हिन्दी की उच्चतम शिक्षा दे रहा है। इस संस्था से निकले हुए स्नातकों ने विशेष रूप से राष्ट्रीय सेवा और असहयोग आन्दोलनों में भाग लिया है, यह हर्ष की बात है। मैं इस शिक्षा संस्था की हृदय से उन्नति चाहता हूँ।

-गोविन्द वल्लभ पन्त, मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश सरकार (१३.४.१९५०)

यह गुरुकुल निःस्वार्थ सेवी विद्वानों और कर्मठ कार्यकर्ताओं द्वारा चलाया जा रहा है। यह उत्तम कार्य कर रहा है।

-क.मा. मुन्शी, राज्यपाल उत्तर प्रदेश सरकार (१७.४.१९५३)

श्री नरदेव जी की तपस्या और लगन का फल है कि इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी इतने लम्बे अर्से तक यह संस्था समाज की सेवा करती रही। संस्था पर और यहाँ के कार्यकर्ताओं और ब्रह्मचारियों पर कुलपति की और मेरी यह कामना है कि यह संस्था निरन्तर फलती फूलती रहे और यहाँ के निकले हुए छात्र समाज के सच्चे सेवक बनें।

- कालूलाल श्रीमाली, शिक्षामंत्री भारत सरकार (९.४.१९६०)

आज इस गुरुकुल में दीक्षान्त भाषण देने के लिए मुझे अवसर मिला, तब मुझे इस सुन्दर संस्था का कुछ परिचय हुआ। इस संस्था का हमेशा विकास होता रहे, यही मेरी परमात्मा से प्रार्थना है।

- मोरारजी देसाई, प्रधानमंत्री, भारत सरकार (११.४.१९६०)

---

1. इतिहास खंड ::]

उदात्त भावनाओं, संकल्प शक्ति, निष्ठा और कर्मठता के सन्देश का उद्‌भव इन्हीं विद्यामन्दिरों से होता है, इसी कारण ये पूजनीय हैं, दर्शनीय हैं ।

- चन्द्रशेखर, प्रधानमंत्री, भारत सरकार (१३.४.१९९१)

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मैं गुरुकुल ज्वालापुर के दीक्षान्त समारोह में सम्मिलित हो सका । यहाँ के कार्यकर्ताओं में त्याग और तपस्या की भावना है ।

- कालूलाल श्रीमाली, शिक्षामंत्री भारतसरकार (१९.४.१९६२)

आज गुरुकुल ज्वालापुर देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ । दीक्षान्त अभिभाषण भी देने का सौभाग्य मिला। मेरी शुभकामनाएं ।

- यशवंतराव चह्वाण, गृहमंत्री भारत सरकार (१४.४.१९६४)

बालक-बालिकाओं को संस्कृत के मूल्य से परिचित कराना चाहिए । शिक्षा का माध्यम यदि महाविद्यालय जैसी संस्थाओं में संस्कृत ही हो तो अत्युत्तम है । विज्ञान के नये-नये शब्दों का समावेश संस्कृत में उदारता से करना चाहिए ।

-श्री मा० डॉ० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख, शिक्षामंत्री, भारत सरकार (१५.४.१९५७)

आज जो कुछ भी देखा है, उससे बड़ी प्रेरणा मिली है । जिन कठिनाइयों का सामना इस संस्था ने किया है, वही इस बात का विश्वास दिलाता है कि इसकी भाग्यरेखा अमिट है ।

-तारकेश्वरी सिनहा, मंत्री भारतसरकार (११.४.१९६०)

यह गुरुकुल विश्वविद्यालय जल्दी बनना चाहिए ।

-जी०वी०जी० कृष्णमूर्ति, पूर्व निर्वाचन आयुक्त, भारत सरकार (२१.१.२००१)

महाविद्यालय के स्नातकों ने जो वेद प्रचार-प्रसार और आर्यसमाज दर्शन को जन-जन तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है । उसके लिए हम सब सदा ऋणी रहेंगे ।

- अमर ऐरी, प्रधान, आर्यसमाज ट्रस्टी, टोरंटो, कनाडा (२९.४.२००२)

बहुत दिनों के बाद आज गुरुकुल महाविद्यालय में आकर और अपने पुराने सम्मानित सहयोगी पं० नरदेव शास्त्रीजी से मिलकर परमानंद हुआ । इस सुन्दर और उपयोगी संस्था की इतनी समृद्धि और उन्नति देखकर बड़ा संतोष हुआ । पं० नरदेव शास्त्री जी का उत्साह वैसा ही है जैसा पहले था ।

-श्रीप्रकाश, राज्यपाल महाराष्ट्र प्रदेश (१८.९.१९६०)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना

इस गुरुकुल महाविद्यालय की विधिवत् स्थापना मुरादाबाद-निवासी श्रीमान् बाबू सीताराम जी, पुलिस सबइन्सपेक्टर के ज्वालापुर स्थित भवन में १५ मई सन् १९०७ ई० को स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा हुई। पञ्चाङ्ग के अनुसार यह शुभ दिन विक्रमी सम्वत् १९६४ को, वैशाख सुदी की अक्षय तृतीया, बुधवार को बैठता है।

बाबू सीताराम जी पुलिस विभाग में रहते हुए भी अपने समय के उत्तम विचार वाले व्यक्ति थे। वे नि:सन्तान थे, अत: अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति उन्होंने वसीयत करके महाविद्यालय को दान कर दी थी।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती : एक परिचय

आर्यसमाज की त्रिवेणी (दयानन्द, श्रद्धानन्द और दर्शनानन्द) में सरस्वती के समान पवित्र, वैदिक वाङ्मय के विशिष्ट विद्वान् , तार्किकशिरोमणि, प्रगल्भ लेखक स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती का जन्म माघ कृष्णा दशमी सम्वत् १९१८ विक्रमी (सन् १८६१) को लुधियाना जिलान्तर्गत जगरांवा नामक ग्राम में मौद्गल्य-गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण पं० रामप्रताप के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम हीरादेवी था। पहले इनका नाम नेतराम था।1 जो बाद में कृपाराम हो गया।

आषाढ़ कृष्णा १४ सम्वत् १९१९ वि० को इनका चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पिताश्री के सान्निध्य में ही सम्पन्न हुई। जिनसे उन्होंने फारसी के गुलिस्तां बोस्तां आदि ग्रन्थ तथा व्याकरण-ग्रन्थ सिद्धान्तकौमुदी का अध्ययन किया। इनका विवाह ११ वर्ष की अल्पायु में वैशाख कृष्णा पञ्चमी सं० १९२९ वि० को कुमारी पार्वती देवी के साथ सम्पन्न हुआ। उनसे इनके दो पुत्र पं० नृसिंह, पं० अमरनाथ हुए। अपने बाल्यकाल में ये अल्हड़ और खिलाड़ी प्रकृति के मनमौजी थे।

इनके पिता प्रसिद्ध व्यवसायी एवं ग्राम के धनाढ्य व्यक्ति थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि उनका पुत्र कृपाराम एक निपुण व्यापारी बनकर धनोपार्जन करे, किन्तु अलमस्त प्रकृति के कृपाराम ने पैतृक व्यापार-व्यवसाय के प्रति किञ्चिद् भी अभिरुचि प्रदर्शित नहीं की और स्वतंत्र-प्रकृति के विचारक होने के कारण वे सांसारिक विषयों के प्रति अनासक्त हो गये। इनकी अनासक्ति का एक मुख्य कारण महर्षि दयानन्द के व्याख्यान सुनना भी था। अत: फलत: घर त्याग कर संन्यास धारण कर लिया। यद्यपि कुछ परिस्थितियों वश इसी रूप में इन्हें घर लौटना पड़ा, किन्तु संसार-सरोवर में रहते हुए भी ये शतदलतुल्य, सदेह होते हुए भी विदेह होकर, प्रफुल्लित रहे।

प्रथम संन्यास और स्वामी दयानन्द से प्रभावित

कृपाराम विरक्त होकर बिना किसी को सूचित किये ही गृहत्यागी बन गये। इस बीच उन्होंने जम्मू, कश्मीर के दुर्गम स्थानों में भी भ्रमण किया। इस समय वे नवीन वेदान्त के विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे, किन्तु नवीन वेदान्त की आलोचना में स्वामी दयानन्द द्वारा प्रस्तुत युक्तियों को सुनकर इनका वेदान्त का नशा उतरने लगा और वे निरन्तर स्वामी जी के व्याख्यानों में उपस्थित रहने लगे। स्वयं उनके अनुसार उन्होंने स्वामी दयानन्द के ३७ व्याख्यान सुने और ३७ वर्षों तक आर्यसमाज की सेवा की।

स्वामी दयानन्द का प्रथम व्याख्यान उन्होंने कहाँ सुना इस विषय मे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। पं० श्रीराम शर्मा ने स्वामी दर्शनानन्द जी की बृहत् जीवनी दर्शनानन्द-दर्शन में उनके प्रथम गृहत्याग और संन्यास दीक्षा का समय १८७९ ई० के आस-पास बताया है। इसी समय उन्होंने पंजाब के विभिन्न नगरों में भ्रमण करते हुए सम्भवत: स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुने और हरिद्वार, कुल्लू, कश्मीर आदि का भ्रमण किया। इसी बीच उन्होंने जंग-ए-आजादी नामक एक उर्दू पुस्तक पद्य में लिखी।

---

1. इतिहास खंड :: 5

पुनः गृह आगमन

जिस समय इन्होंने "बंग ए आजादी" नामक पुस्तक लिखी (लगभग १८८० ई०) तभी एक बार ये दीनानगर (पञ्जाब) में एक ईसाई पादरी से बहस कर रहे थे, तभी उनके चाचा जयराम शर्मा ने वहाँ पहुँचकर इनसे घर चलने का आग्रह किया। बहुत आग्रह करने पर कुछ शर्तों के आधार पर ये घर लौटने को सहमत हुए। (१) गेरुए वस्त्र नहीं उतारूंगा, (२) घर में न रहकर बैठक में रहूँगा, (३) स्वामी दयानन्द के समस्त ग्रन्थ मंगाने होंगे। इनके चाचा ने ये सभी शर्तें स्वीकार की, परिणामस्वरूप वीतराग तपस्वी पुनः घर लौटने के लिए विवश हुए। इनकी स्वतंत्र एवं आत्मकेन्द्रित प्रकृति के कारण लोग इन्हें 'आजाद' एवं 'नित्यानन्द' नामों से भी पुकारने लगे थे।

काशी-निवास एवं प्रेस-स्थापना

कृपाराम के पितामह पं० दौलतराम अपने जीवन के अन्तिम काल में काशी में निवास करने लगे थे। जहाँ उन्होंने दान-पुण्य की व्यवस्था एवं विद्यार्थियों के लिए भोजन तथा छात्रवृत्ति आदि के लिए एक क्षेत्र (अन्न-क्षेत्र) चला रखा था। पितामह के दिवंगत होने पर कृपाराम को ही काशी की इस व्यवस्था के संचालन करने के लिए कहा गया। जिसे इन्होंने एक प्रेस की स्थापना तथा एक पत्र के प्रकाशन की शर्त के साथ स्वीकार कर लिया। फलतः चैत्र कृष्ण पूर्णिमा सम्वत् १९३५ वि० से ये काशी में रहने लगे और यहाँ इन्होंने 'तिमिरनाशक प्रेस' की स्थापना १० नवम्बर १८८९ ई० को की। इस प्रेस का पूर्व नाम 'दि इण्डियन ट्रेड एडवरटाइजर' था। इसमें उन्होंने तिमिर-नाशक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन ३० जून १८८९ ई० से आरम्भ किया। इसके अतिरिक्त विविध शास्त्र ग्रन्थों का मुद्रण एवं प्रकाशन करके उन्हें निर्धन छात्रों के लिए सुलभ बनाया।

स्वामी मनीषानन्द जी का शिष्यत्व

काशीनिवास काल में गुरु-प्राप्ति के सम्बन्ध में पं० कृपाराम के जीवन की एक रोचक घटना है। यद्यपि अभी तक विधिक (विधिवत् शास्त्रीय) ग्रन्थों का अध्ययन गुरुमुख से नहीं कर पाये थे, किन्तु उनकी तर्कशक्ति प्रबल थी। साथ ही गुरुमुख से विद्याध्ययन की आकांक्षा भी उनमें प्रबल थी। एक बार वे काशी के दिग्गज विद्वान् पं० हरिनाथ (स्वामी मनीषानन्द) के एक शिष्य से उत्तर-प्रत्युत्तर कर रहे थे कि तभी पं० हरिनाथ स्वयं उधर आ निकले और उन्होंने पं० कृपाराम की युक्तियों को मुग्ध भाव से सुना तो अनायास ही उनके मुँह से निकला "कृपाराम जी आपने कोई शास्त्र भी पढ़ा है?" इनके अपने को निरक्षर-भट्टाचार्य बताने पर उन्होंने कहा- "यदि विधिवत् अधीत-शास्त्र न होने पर आपकी तर्कना-शक्ति इतनी प्रबल है तो यदि आप शास्त्र पढ़ लें तो आपको शास्त्रार्थ-समर में कोई नहीं जीत सकेगा।" पं० कृपाराम द्वारा पढ़ने की जिज्ञासा करने पर इस प्रतिभाशाली शिष्य को पं० हरिनाथ (पं० मनीषानन्द जी) ने पढ़ाना आरम्भ किया और उनसे इन्होंने साढ़े चार दर्शनों (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, आधा वेदान्त) का अध्ययन किया।

संस्कृत पाठशाला की स्थापना एवं निर्धन छात्रों की सहायता— इन्होंने काशी में स्वयं भी शास्त्राध्ययन किया और आर्यसमाजी छात्रों की सुविधा के लिए काशी में एक संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना की, क्योंकि तात्कालिक स्थिति में कट्टरपंथी पण्डितों के कारण आर्यसमाजी छात्रों को अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ता था। इस पाठशाला में काशी के पं० लब्धप्रतिष्ठ पण्डित काशीनाथ शास्त्री अध्यापन कार्य करते थे। पं० आर्यमुनि जी, लाहौर, पं० सीताराम जी शास्त्री, कविराज, रावलपिण्डी, पं० पूर्णानन्द जी उपदेशक आर्य-प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब आदि उन दिनों काशी में ही अध्ययन करते थे।

इसके अतिरिक्त पं० कृपाराम जी ने कई आर्य-सामाजिक विद्यार्थियों के अन्न-वस्त्रादि का भी प्रबन्ध किया। निर्धन छात्रों को संस्कृत ग्रन्थों को अल्पमूल्य में उपलब्ध कराने का भी इन्होंने प्रयास किया। कई बार महंगी पुस्तकें भी छात्रों को बिना मूल्य के ही वितरित की।

विधिवत् संन्यास दीक्षा

इन्होंने सन् १९०१ ई० की वसन्त ऋतु में राजघाट गंगातट पर (जिला बुलन्दशहर) स्वामी अनुभवानन्द जी से विधिवत् संन्यास की दीक्षा ग्रहण की और 'पाणिपात्री दिगम्बर' बन गए तथा परमहंस परिव्राजक के रूप में तुरीय आश्रम में प्रविष्ट होकर कृपाराम से स्वामी दर्शनानन्द हो गए। अब इनका कार्यक्षेत्र अति विस्तृत हो गया और सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर वैदिक-वैजयन्ती फहराने लगे।

स्वतन्त्र विचारधारा के प्रतीक

स्वामी दर्शनानन्द जी सर्वतन्त्र-स्वतंत्र उपदेशक थे। सभाओं और समाज के अधिकारियों द्वारा निर्मित कृत्रिम नियमों और अनुशासन को वे बहुत कम महत्त्व देते थे। फलत: उत्तरप्रदेश की प्रतिनिधि सभा ने तो अपने अन्तर्गत समाजों को यह आदेश भी दे दिया था कि वे स्वामी जी के व्याख्यान न करायें, किन्तु इन्होंने इस सबकी परवाह किये बिना अपने कार्यक्षेत्र में निरन्तर वृद्धि की।

शास्त्रार्थ

१. स्वामी दर्शनानन्द जी अद्वितीय तार्किक थे, उनके सामने किसी भी प्रतिपक्षी का टिक पाना कठिन होता था। उस समय काशी के विद्वानों में महामहोपाध्याय पं० शिवकुमार शास्त्री सर्वोपरि माने जाते थे। एक बार सनातन धर्मसभा के उत्सव पर शास्त्री जी ने कहा- स्वामी दयानन्द ने 'देव' का अर्थ विद्वान् किया है, यह ठीक नहीं है। देवता और ही होते हैं। श्रोतृमण्डल में स्वामी दर्शनानन्द जी भी विद्यमान थे। इन्होंने तुरन्त शास्त्री जी को शास्त्रार्थ के लिए आमन्त्रित किया और तिथि निश्चित हो गयी। इसके बाद एक दिन रात्रि के समय देव शब्द के लिए स्वामी जी विविध ग्रन्थों से प्रमाण ढूंढ़ रहे थे कि अकस्मात् इनके गुरु पं० हरिनाथ जी उधर से आ निकले और उन्होंने इन्हें देव शब्द के विद्वान् अर्थ में लगभग १५० स्थलों को प्रमाण-सहित उद्धृत करा दिया। फलतः इनकी शास्त्रार्थ में विजय हुई। स्वामी दर्शनानन्द जी का यह प्रथम महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ था।

२. मौलवी अब्दुल फतह और मौलवी अब्दुल हमीद पानीपती से आगरा में इनका 'वेद और कुरान' में कौन सी पुस्तक इल्हामी है, इस विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। इसमें इन्होंने वेद को ही इल्मोहुनर की आला किताब करार कर विजय प्राप्त की। इस शास्त्रार्थ की मध्यस्थता एक यूरोपीयन सज्जन जेस फारनेन ने की थी।

३. सन् १९०४ में इनका एक शास्त्रार्थ प्रसिद्ध ईसाई पादरी ज्वालासिंह के साथ हुआ। इसमें भी स्वामी जी विजयी हुए।

४. स्वामी दयानन्द के शिष्य पं० भीमसेन शर्मा (इटावा वाले) के साथ भी इनका शास्त्रार्थ १९, २०, २१ फरवरी १९०१ को आगरा में हुआ। इस शास्त्रार्थ में महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पं० गङ्गादत्त जी शास्त्री तथा पं० भीमसेन शर्मा (आगरा) तथा पं० तुलसीराम भी उपस्थित थे। इसमें इटावा निवासी पं० भीमसेन जी को निरुत्तर होना पड़ा।

५. ताजपुर जिला बिजनौर के जमींदार के एक दीवान प्रसिद्ध नास्तिक थे। उनसे ईश्वर-सिद्धि पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामी जी को आमन्त्रित किया गया। इन्होंने उसकी १४ युक्तियों का खण्डन करके सृष्टिकर्ता ईश्वर के अस्तित्व की पुष्टि में सात प्रबल युक्तियाँ दीं, जिनका खण्डन पूर्वपक्षी भी नहीं कर सका। इनमें शास्त्रार्थ के लिए इतनी ललक रहती थी कि शास्त्रार्थ के लिए सूनी रातों मे मीलों की दूरी पैदल ही तय कर लेते थे।

६. २९-३० मार्च १९०१ को 'प्रायश्चित' विषय पर बिजनौर आर्यसमाज के तत्त्वावधान में स्वामी दर्शनानन्द तथा आगरा निवासी पं० भीमसेन का सनातनी पक्ष के समर्थक इटावा निवासी पं० भीमसेन तथा मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसाद

---

1. इतिहास खंड :: 7

मिश्र के साथ शास्त्रार्थ हुआ । यह लिखित और मौखिक दोनों ही रूपों में था ।

७. १९६२ वि० में इनका सनातनी पण्डित, व्याकरणकेसरी बिहारीलाल के साथ श्राद्ध विषय पर शास्त्रार्थ हुआ ।

८. देवरिया जिला गोरखपुर में १९०३ ई० में 'वेद अथवा कुरान ईश्वरोक्त' विषय पर एक बृहत् शास्त्रार्थ हुआ । जिसमें आर्यसमाज की ओर से स्वामी दर्शनानन्द, पं० रुद्रदत्त, पं० नन्दकिशोरदेवशर्मा, पं० मुरारीलाल शर्मा थे तथा मुसलमानों के ओर से मौलवी अमृतसरी सनाउल्लाह, मौलवी अब्दुलहक देहलवी, मौलवी अब्दुरहमान मेरठ निवासी, मौलवी अब्दुल हमीद, पानीपत तथा मौलवी सुजाअत अली बरेली और मौलवी अब्दुल अजीज रहीमाबाद उपस्थित थे ।

९. पेशावर में स्वामी जी का शास्त्रार्थ सनातन- धर्म के विद्वान् पं० जगतप्रसाद से हुआ । इसमें अन्तत: जगतप्रसाद को मैदान छोड़ना पड़ा ।

१०. स्वामी दर्शनानन्द जी का सर्वाधिक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ ८ अप्रैल १९१२ ई० को ज्वालापुर महाविद्यालय में आर्यसमाज के ही एक अन्य विद्वान् पं० गणपति शर्मा से 'स्थावर वृक्षों में जीव' विषय पर हुआ ।

११. जैन पण्डित गोपालदास बरैया के साथ जून १९१२ में प्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है' इस विषय पर हुआ। इसमें भी स्वामी जी की विजय हुई और जैनमत-समर्थक पं० दुर्गादत्त शास्त्री तथा पं० शम्भुदयाल जैनमत का परित्याग कर आर्यसमाज में सम्मिलित हो गये ।

स्वामी दर्शनानन्द : पत्रकार के रूप में

स्वामी जी ने हिन्दी भाषा एवं आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किए । पत्र निकालने की तो उन्हें मानों धुन थी । उनके द्वारा प्रकाशित मासिक एवं साप्ताहिक पत्रों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

३० जून १८८९ ई० में स्वामी जी ने काशी से तिमिरनाशक (साप्ताहिक), १८९४ ई० में वेद-प्रचारक (मासिक), भारत उद्धार (साप्ताहिक) जगरांवा से, १८९७ ई० में मुरादाबाद से वैदिक धर्म (उर्दू) (साप्ताहिक), १८९८ ई० में दिल्ली से वैदिकधर्म, अप्रैल १८९९ ई० में दिल्ली से ही वैदिक मैगजीन (मासिक), सन् १९०० ई० में आगरा से 'तालिबे इल्म' (साप्ताहिक), गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना के पश्चात् गुरुकुल समाचार, सिकन्दराबाद से और बदायूँ गुरुकुल से १९०३ ई० में आर्यसिद्धान्त (मासिक), और मुबाहिसा (साप्ताहिक), १९०८ ई० में हरिज्ञान-मन्दिर लाहौर से ऋषि दयानन्द (मासिक), १९०९ में रावलपिण्डी के निकट चोहाभक्ता में गुरुकुल पोठोहार से वैदिक फिलासफी (मासिक) आदि पत्रों का प्रकाशन किया ।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपने जीवनकाल में लगभग १२ पत्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन किया । अत: इससे उनकी पत्रकारिता के क्षेत्र में रुचि एवं कार्य का अनुमान लगाया जा सकता है ।

स्वामी दर्शनानन्द : साहित्यकार के रूप में

यह जानकर आश्चर्य होगा कि स्वामी दर्शनानन्द जी पत्रकार और उपदेशक होने के साथ-साथ कवि भी थे । उनका हृदय अत्यन्त कोमल एवं भव्य भावनाओं से भरपूर था। 'जंग-ए आजादी' उनकी प्रथम काव्यकृति है, जो उर्दू पद्य में प्रकाशित हुई । इसकी रचना उन्होंने उस समय की जब वे अपने घर का त्याग करके सन् १८७५ ई० में सन-७४ अवधूत दशा में विचरण कर रहे थे । इसमें उन्होंने अपना उपनाम 'आजाद नित्यानन्द' और 'कृपाराम' भी लिखा है । २८ पृष्ठों में प्रकाशित इस लघु ग्रन्थ में १३ पद्य हैं । बारह मासा, गजल, रेख़्ता, ख्याल, पद स्तोत्र, कुण्डलियाँ, मुसद्दस, हम्द, अशआर आदि हिन्दी,

वेदोद्धारक, युगप्रवर्तक, आर्यसुधारक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

(जन्म १८२४ ई.स., देहावसान १८८३ ई.स.)

महाविद्यालय के संस्थापक

स्व. बाबू सीताराम जी महाविद्यालय के भूमिदाता

संस्था का मुख्य कार्यालय भवन
महाविद्यालय की स्थापना के समय भूमिदाता बाबू सीताराम जी द्वारा प्रदत्त

उर्दू छन्दों में लिखी गई इस पुस्तक की भाषा कहीं हिन्दी कहीं उर्दू और कहीं फारसी अथवा पंजाबी है। इसमें कवि ने विभिन्न साम्प्रदायिक मत-मतान्तरों का खण्डन करते हुए आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज पर भी आलोचनात्मक पंक्तियाँ लिखी हैं-

कोई बने आर्या मजहब जगत को हैं भरमाते ।
सब सत्य का कर त्याग पथ हैं नए चलाते ।।
कोई बने ब्रह्मसमाज ब्रह्म से संगत बताते ।
निराकार में संगत-रूपी विक्षेप हैं लाते ।।[1]

स्वामी जी कवि ही नहीं, अपितु सफल कहानीकार एवं उपन्यासकार भी थे। इस प्रकार की आपकी रचनाओं में-

१. सत्यव्रती महानन्द (उपन्यास), २. धर्मवीर (उपन्यास), ३. क्षमा चन्द्रोदय (उपन्यास), ४. चाण्डाल चौकड़ी, प्रथम भाग (उपन्यास), ५. विचित्र ब्रह्मचारी (उपन्यास), ६. कथा पच्चीसी (कहानी- संकलन) हैं।

इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदान्तदर्शन एवं न्याय आदि पर अनेक भाष्य लिखे। उपनिषद्, मनुस्मृति तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर भी भाष्य एवं टीका-टिप्पणियाँ लिखीं। अपने जीवन काल में स्वामी दर्शनानन्द ने लगभग २५० छोटे-बड़े ट्रैक्ट भी लिखे। जो दर्शनानन्द-ग्रन्थ-संग्रह नाम से विभिन्न प्रकाशकों ने प्रकाशित किए। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध दो भागों में दर्शनानन्द-ग्रन्थ-संग्रह का प्रकाशन किया। इसके अतिरिक्त दिल्ली, बरेली, मथुरा, आगरा के प्रकाशकों ने भी इसका प्रकाशन किया। ये अधिकतर उर्दू भाषा में लिखे गये हैं, जिनका हिन्दी-रूपान्तर सर्वत्र उपलब्ध है।

साथ ही मूर्खता, नौजवानों उठो, उन्नीसवीं सदी का सच्चा बलिदान, अकायद इस्लाम पर अकली नजर (आठ भाग), हम निर्बल क्यों हैं? धर्मसभा से ६४ प्रश्न, नेचरमजों के स्वामी दयानन्द पर झूठे इल्जाम, अंग्रेजी तालीम याफ्ताओं में वैदिक धर्म के प्रचार का आसान तरीका, आर्य धर्म सभा, क्या संस्कृत मृत भाषा है? भारत का दुर्भाग्य, अकल अजीर्ण, निःशुल्क शिक्षा, आत्मिक बल, ईश्वर विचार, भोंदू बाद और पादरी साहब का शास्त्रार्थ, गुरुकुल, अकाल-मृत्युमीमांसा, श्राद्ध-व्यवस्था, आर्यसमाज और सनातन धर्मसभा के बीच प्रश्नोत्तर, हम रूहानी डाक्टर हैं, जीवात्मा द्रव्य है या गुण? धर्मशिक्षा, पाप और पुण्य, देह ब्रह्माण्ड का नक्शा है, स्वराज्य और शान्ति, पुनर्जन्मवाद, आदि स्वामी जी के मुख्य ट्रैक्ट हैं, जो भारतवर्ष में सभी धर्मों के मानने वालों में सम्मान प्राप्त हैं। इस्लाम धर्म समीक्षा, जैनमत समीक्षा एवं ईसाई मत समीक्षा के सन्दर्भ में भी इन्होंने लगभग ३५-४० ट्रैक्ट लिखे।

अतः स्पष्ट ही स्वामी जी ने अपने अल्प जीवनकाल में विपुल साहित्य का सृजन किया।

गुरुकुलों की स्थापना

स्वामी जी की अपने जीवनकाल में एक प्रमुख देन गुरुकुलों की स्थापना है। उन्होंने सर्वप्रथम सिकन्दराबाद में सन् १८९८ ई० में संन्यास-ग्रहण से पूर्वकाल में ही गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना की। इस गुरुकुल की स्थापना के लिए उन्हें पं० गंगासहाय जी से भूमि प्राप्त हुई। पं० मुरारीलाल शर्मा के रूप में गुरुकुल सिकन्दराबाद को एक महान् सहायक प्राप्त हुआ।

संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद स्वामी जी ने गुरुकुल बदायूँ की स्थापना २३ अप्रैल १९०३ ई० को की। इसमें इन्हें पं० रामगोपाल शर्मा का सहयोग प्राप्त हुआ। जिन्होंने भूमि-दान कर इस सुकार्य में सहयोग प्रदान किया। यहाँ से आर्यसिद्धान्त मासिक एवं 'मुबाहिसा' साप्ताहिक पत्रों का प्रकाशन भी किया गया। आर्यसिद्धान्त इस गुरुकुल का मुख्य पत्र था। इसके अगस्त १९०३ के अंक में देवरिया (गोरखपुर) शास्त्रार्थ का विवरण प्रकाशित हुआ है।

---

1. इतिहास खंड :: ५

गुरुकुल बदायूँ की स्थापना की दो वर्ष के बाद स्वामी जी ने सन् १९०५ ई० में मुजफ्फरनगर जिले के सिरालसी गाँव में एक अन्य गुरुकुल की स्थापना की।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना

स्वामी जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर है। इसकी स्थापना सिरालसी गुरुकुल की स्थापना से दो वर्ष पश्चात् १९०७ ई० में हुई। बाबू सीताराम जी की भूमि पर इस गुरुकुल की आधारशिला रखी गयी। इस गुरुकुल में आचार्य गंगादत्त शास्त्री, पं० भीमसेन शर्मा (आगरा), पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० दिलीपदत्त उपाध्याय, आचार्य नरदेव शास्त्री, आचार्य हरिदत्त शास्त्री जैसे संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने अध्यापन कार्य किया है।

इसके अतिरिक्त रावलपिण्डी के निकट चोहाभक्तां में गुरुकुल पोठोहार की स्थापना भी स्वामी जी ने ही की। इस प्रकार पश्चिमी पञ्जाब के मुस्लिम-बहुल क्षेत्र में आर्यविद्या का केन्द्र स्थापित किया। गुरुकुल-प्रणाली के प्रथम प्रवर्तक एवं प्रचारक के रूप में स्वामी दर्शनानन्द चिरस्मरणीय रहेंगे।

स्वामी दर्शनानन्द का महाप्रयाण

वैदिक धर्म-प्रचार-हेतु उत्तर भारत के विस्तृत भ्रमण, अनवरत ग्रन्थ-लेखन, शास्त्रार्थ आदि कार्यों ने स्वामी जी की वज्र काया को जीर्ण-शीर्ण बना दिया। स्वामी जी प्रायः अजमेर आकर आनासागर स्थित दयानन्द साधु-आश्रम में रहते थे। एक बार अस्वस्थ होने पर डॉ० भट्टाचार्य ने उनकी चिकित्सा आरम्भ की। उस समय शय्या पर ही उन्होंने 'स्याद्वाद-समीक्षा' जैन सिद्धान्त के खण्डन में एक आलोचनात्मक ट्रैक्ट लिखा।

स्वामी जी भोगवाद में दृढ़ विश्वास रखते थे, इसीलिए अस्वस्थ होने पर उन्होंने ओषधि लेने से इन्कार कर दिया। आचार्य गंगादत्त जी के अत्यधिक आग्रह के फलस्वरूप केवल सात दिन तक ओषधि लेना स्वीकार किया तथा आठवें दिन ओषधि बन्द कर दी।

पं० मुरारिलाल शर्मा के आग्रह पर स्वामी जी को सिकन्दराबाद लाया गया। वहाँ से उनके भक्त डॉ० कृष्णप्रसाद उन्हें हाथरस ले आये और अस्पताल में रखा। उन दिनों आर्यसमाज हाथरस का वार्षिकोत्सव था। उनको अस्वस्थ अवस्था में देखकर वहाँ आये हुए पं० तुलसीराम स्वामी तथा पं० घासीराम आदि विद्वानों को बहुत दुःख हुआ। किन्तु भोगवाद एवं प्रारब्ध में विश्वास रखने वाले स्वामी दर्शनानन्द जी ने ओषधि-सेवन से इन्कार कर दिया। मृत्यु-शय्या पर उन्हें यदि कोई चिन्ता थी तो वह ऋषि दयानन्द के मिशन को पूरा करने की थी।

उन्होंने अपने अन्तिम हृदयोद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए- "ऋषि दयानन्द के मैंने ३७ व्याख्यान सुने और ३७ वर्ष ही मैंने धर्म प्रचार का कार्य भी किया। फिर भी अफसोस यही है कि स्वामी जी के मिशन को पूरा नहीं कर सका।" और अन्त में कहा- अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।"

वे ११ मई १९१३ ई० को इस पार्थिव नश्वर शरीर का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गये।

उनकी मृत्यु से समाज में सर्वत्र शोक व्याप्त हो गया। यहाँ तक कि उनके देहावसान के अवसर पर उनके विरोधी व्यक्तियों एवं पत्रों ने भी शोक-संदेश प्रकाशित किए। रुड़की के पादरी तथा प्रसिद्ध ईसाई विद्वान् ज्वालासिंह ने भी उनके स्वर्गवासी होने पर शोकचिह्न के रूप में कई दिनों तक अपने हाथ में काली पट्टी बाँधी।

आर्यसमाज में ऐसा उद्‌भट विद्वान् , लेखक, शास्त्रपटु, निःस्वार्थ आर्य-सिद्धान्तों का सेवक, वैदिक धर्म के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाला, ऋषि दयानन्द का भक्त शायद ही कोई हुआ हो। उन्होंने आर्यसमाज के प्रचारार्थ विशाल

साहित्य का सृजन किया। उसमें भाषागत-सौन्दर्य भले ही न हो, किन्तु आर्यसमाज के हित की बातें कूट-कूट कर भरी हुई हैं। स्वामी जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक भारतीय का परम पवित्र कर्तव्य है। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी कि उनके विचारों एवं सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार करना। स्वामी जी के निधन पर पं० नरदेव शास्त्री जी ने कहा था कि स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्यजगत् में जितना प्रचार हुआ है, उसके आधे से अधिक प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। कितने प्रेस खोले, कितने समाचार-पत्र निकाले, कितने ट्रैक्ट लिखे, कितने व्याख्यान दिये, कितने शास्त्रार्थ किये, कितने सहस्र मीलों घूमें, इसका ठीक अन्दाजा लगाना कठिन है। स्वामी दर्शनानन्द क्या थे उत्साह, जागृति, स्फूर्ति की एक ज्वलन्त मूर्ति।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा रचित-विविध साहित्य परिचय

स्वामी दर्शनानन्द जी दार्शनिक तथा आर्यसमाज के प्रचारक ही नहीं थे, अच्छे साहित्यकार भी थे। उन्होंने विविध विधाओं का आश्रय लेकर विविध प्रकार के ग्रन्थों का निर्माण किया है। उनकी रचनाओं का कुछ परिचय नीचे दिया जा रहा है-

प्रकाशित शास्त्रीय ग्रन्थ

१. सामवेद- विक्टोरिया यन्त्रालय, काशी। २. अष्टाध्यायी, काशिका वृत्ति। ३. अष्टाध्यायी, महाभाष्य।

४. वैशेषिक उपस्कार भाष्य।

५. न्याय-वात्स्यायन भाष्य।

६. सांख्य दर्शन- विज्ञानभिक्षु कृत प्रवचन भाष्य और अनिरुद्ध वृत्ति।

७. कात्यायन श्रौतसूत्र, मूल मात्र।

८. पारस्कर गृह्यसूत्र, मूलमात्र।

९. ईशादिदशोपनिषत्संग्रह:- भारत जीवन यन्त्रालय काशी १८८९ ई०।

१० श्रीमद्भगवतगीता, मूल मात्र - विक्टोरिया मुद्रणालय काशी, १९४५ वि०।

११. तर्कसंग्रह,मूलमात्र (अन्नंभट्टकृत) विक्टोरिया मुद्रणालय काशी १९४५ वि०।

१२. तर्कसंग्रह, न्यायबोधिनी व्याख्या- भारत जीवन यन्त्रालय काशी, १९४५वि०।

१३. अन्नपूर्णाष्टक स्तोत्र, विक्टोरिया यन्त्रालय काशी, १९४५ वि०।

१४. शब्दरूपावली, अमर यन्त्रालय काशी १९४५ वि०।

१५. मीमांसादर्शनम् (मूलमात्र), तिमिरनाशक प्रेस काशी।

शास्त्रीय ग्रन्थों के भाष्य

१६. न्यायदर्शन (मूल उर्दू भाषा) अनु० पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित,
प्रकाशक आर्य ग्रन्थ रत्नाकर बरेली, सं० १९८० ई०।

१७. वैशेषिकदर्शन-भाष्य - प्रेम पुस्तकालय बरेली, वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद।

१८. सांख्यदर्शन- गुरुकुल पोठोहार (रावलपिण्डी), वै०पु० मुरादाबाद।

---

1. इतिहास खंड ::।।

१९. वेदान्तदर्शन पूर्वार्द्ध- अनु० पं० बिहारीलाल शास्त्री,

प्रकाशक- प्रेम पुस्तक भण्डार बरेली, सन् सं० १९५१ ई०।

उत्तरार्ध- अनु० पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित, आर्यकिशोर पुस्तकालय आगरा- १९९४ वि० ।

२०. उपनिषद्-प्रकाश- ईश से माण्डूक्य पर्यन्त १३ उपनिषदों का भाष्य-सम्पादक-

स्वामी वेदानन्द, राजपाल एण्ड सन्स अनु०- पं० गोकुलचन्द्र शर्मा दीक्षित । सम्पादक- आचार्य विश्वश्रवाः

अनु०- अवध- बिहारी लाल- प्रकाशक- श्यामलाल सत्यदेव आर्य बरेली १९३५ई० ।

२१. मनुस्मृति- सरल भाषा टीका, वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद ।

२२. श्रीमद्भगवद्गीता-सिद्धान्त- अनु० पं० गोकुलचन्द्र दीक्षित ।

संग्रह ग्रन्थ

२३. दर्शनानन्द-ग्रन्थ-संग्रह- पूर्वार्ध- प्रकाशक-राजपाल एण्ड संस दिल्ली, श्यामलाल सत्यदेव बरेली, १९९४वि०

अनु०- गोकुलचन्द्र दीक्षित, प्रकाशक- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, दर्शनानन्द ग्रन्थागार मथुरा

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली ।

उत्तरार्ध- सम्पादक- पं० भीमसेन शर्मा (आगरा) प्रकाशक- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, १९५१ई०

अनु० गोकुलचन्द्र दीक्षित, आर्यप्रकाश पुस्तकालय,आगरा,गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली।

२४. आर्यसिद्धान्त मुक्तावली (ट्रैक्ट संग्रह)-अल्प प्रसिद्ध अथवा अल्पज्ञात ग्रन्थ।

२५. जंग-ए-आजादी- बहारंग स्टीम प्रेस लाहौर द्वितीय संस्करण ।

२६. मूर्खता (ट्रैक्ट) - १८८७ ई० लगभग ।

२७. नौजवानों उठो (ट्रैक्ट)- १० जुलाई १८९२ ई० के दिन कानपुर आर्यसमाज उत्सव पर दिया व्याख्यान ।

२८. उन्नीसवीं सदी का सच्चा बलिदान- (तीन ट्रैक्ट) पं० लेखराम के बलिदान कथा के आधार पर लिखित ।

२९. अकायद इस्लाम पर अकली नजर (आठ भाग) वैदिक धर्म प्रेस, मुरादाबाद।

३०. हम निर्बल क्यों हैं (ट्रैक्ट) मुनीश्वर प्रेस जगरांवा, १९०० ई० ।

३१. क्या धर्मसभा आर्यसमाज से शास्त्रार्थ कर सकती है ? ट्रैक्ट- ५८ आगरा से प्रकाशित ।

३२. धर्मसभा से ६४ प्रश्न- ट्रैक्ट सं० ६७ - आगरा ।

३३. बेसमझों के स्वामी दयानन्द झूठे इल्जाम - ट्रैक्ट- ६२ - आगरा ।

३४. अंग्रेजी तालीम याफ्ताओं में वैदिक धर्म के प्रचार का आसान तरीका- ट्रैक्ट, विक्टोरिया प्रेस आगरा ।

३५. आर्य-धर्मसभा (ट्रैक्ट), अमान प्रेस, आगरा १९८९ वि० ।

३६. क्या संस्कृत मृतभाषा है ? - १९०४ ई० में प्रकाशित ।

३७. भारत का दुर्भाग्य- (ट्रैक्ट) आर्यसमाज संगठन की जर्जरता का परिचायक ।

३८. प्रकाश के नाम खुली चिट्ठी – महाशय कृष्ण द्वारा सम्पादित- प्रकाश-पत्र में ।

३९. अकल का अजीर्ण ।

४०. चुकुफ अज बरहेजद कुआमानिद मुसलमानी ।

४१. मुंशीराम जी को आखरी भेंट १९१० ई० के लगभग ।

४२. आर्यसमाज कमजोर क्यों है ? - ज्वालापुर महाविद्यालय ।

४३. समय का प्रवाह तथा सफलता- गुरुकुल पोठोहार- मे १९०९ ई० ।

४४. मुफ्त तालीम ।

४५. प्राचीन और नवीन शिक्षा प्रणाली की तुलना

४६. जगन्नाथ लीला ।

४७. जगन्नाथ का बेसुरा अलाप - मुंशी इन्द्रमणि के शिष्य के मत का खण्डन ।

४८. देवसमाज से प्रश्न ।

उपन्यास एवं संग्रह -

४९. सत्यव्रती महानन्द (उपन्यास)

५०. धर्मवीर (उपन्यास)

५१. क्षमाचन्द्रोदय (उपन्यास)

५२. चाण्डाल चौकड़ी प्रथम भाग (उपन्यास)

५३. विचित्र ब्रह्मचारी (उपन्यास)

- वै०पु० लाहौर १९२५ ई० तथा म०वि० ज्वालापुर ।

५४. कथा पच्चीसी (लघु कथा संग्रह) आर्यप्रकाश पुस्तकालय दिल्ली, १९७० ई० खण्डनात्मक साहित्य ।

५५. जैन भ्रान्ति निवारण- वैदिक यंत्रालय, अजमेर ।

(जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा के आर्यों का तत्त्वज्ञान शीर्षक ट्रैक्ट का खण्डन)

५६. जैनियों का जीव, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर ।

५७. जैनियों की मुक्ति - वेदप्रकाश मिशन, लाहौर ।

५८. स्याद्वाद समीक्षा- वेद प्रचारक मिशन, लाहौर ।

५९. जैन पण्डितों के प्रश्नोत्तरों की समीक्षा- जून १९१२ ई० ।

६०. जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा के भूमण्डल के समस्त आर्यसमाजी विद्वानों से दिनांक ११.७.१९१२ को किए गए २० प्रश्नों का उत्तर और जैन विद्वानों से हमारे प्रश्न । - ११ जुलाई १९१२, अजमेर ।

६१. ईश्वर कर्तृत्व समीक्षा- दयानन्द वेद प्रचारक मिशन, लाहौर ।

६२. जैन पण्डितों से प्रश्न- वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद ।

६३. भूमण्डल के समस्त आर्यों के सम्मुख कमण्डल समान सरावगियों के प्रति प्रश्नोत्तर ।

६४. आत्माराम जैनी की पोल ।

६५. जैनमत समीक्षा- वैदिक पुस्तकालय, लाहौर ।

६६. ईसाई मत के विद्वानों से प्रश्न- वै० पु० मुरादाबाद, वै०पु० लाहौर ।

६७. ईसाई मत खण्डन- गोविन्द राम हासानन्द, कलकत्ता।

६८. पादरी साहब और रामदास।

६९. ईसाई मत परीक्षा- वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद, वै०पु०, लाहौर।

७०. पादरियों को चुनौती- आर्य प्रतिनिधि सभा, पञ्जाब।

७१. मसीही मजहब के नियमों पर अकली नजर।

७२. भोंदू जाट और पादरी अकायद साहब का शास्त्रार्थ - वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद।

७३. ईसाई मत में मुक्ति असम्भव है - वै० पु०, मुरादाबाद।

७४. कुरान की छानबीन- प्रथम भाग-३२ पृ०-अनु०प्रेमशरण, प्रेम पुस्तकालय, आगरा

७५. अकायद इस्लाम पर अकली नजर (१ से ७)

७६. वैदिक धर्म और अहले इस्लाम के अकायद का मुकाबला।

७७. अहले इस्लाम के वेदों पर नाजायज हमले।

७८. कुरान की जान वेद का एक मन्त्र है।

७९. शैतान।

८०. मयारे सदाकत।

८१. जवाब रद्दे तनासुख।

८२. प्रश्नोत्तर अहले इस्लाम।

८३. नियोग और उसके दुश्मन।

८४. प्रश्नोत्तर मौलवी नवन्द अली।

८५. इस्लाम में नजात की वाकफियत।

८६. इस्लाम में नजात मुमतने उल्वाजूद।

स्वामी जी द्वारा रचित ट्रैक्टों के प्रकाशक-संस्करण आदि का विवरण-

१. आत्मिक बल- पुस्तक संख्या २८ प्रकाशक-वैदिक धर्म पुस्तकालय, वरन् प्रकाश प्रेस, बुलन्दशहर में मुद्रित, मुरादाबाद-जून १८९७ ई० प्रथम संस्करण।

२. ईश्वर विचार, प्रथम भाग- द्वि० संस्करण- १८९९ ई०।

३. मसीही मजहब के नियमों पर अकली नजर- प्र० संस्करण १८९९ ई०।

४. महा अंधेर रात्रि- प्रथम संस्करण।

५. मुक्ति व्यवस्था, ट्रैक्ट - ४, प्रथम संस्करण १८९९ ई०।

६. भोला मुसाफिर- प्रथम संस्करण, १८९९ ई०।

७. कर्म व्यवस्था - प्रथम संस्करण, १८९९ ई०।

८. श्राद्ध व्यवस्था- दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी द्वि० सं० १८९९ ई०।

९. वेदों का महत्त्व- प्रथम संस्करण- १८९९ ई० ।

१०. अविद्या के तीन अंग- प्रथम संस्करण - १८९९ ई० ।

११. रामायण सार- प्रकाशक-वरन् प्रकाश प्रेस, बुलन्दशहर, नजीरचन्द शर्मा वैदिक पुस्तकालय, लाहौर में मुद्रित।

१२. वर्ण व्यवस्था ।

१३. वेद किस पर नाजिल (प्रकट) हुए, ट्रैक्ट- २

१४. वेदों की आवश्यकता- ट्रैक्ट-१

१५. षड्दर्शनों की उत्पत्ति ।

१६. स्वामी दयानन्द का उद्देश्य ।

१७. प्रश्नोत्तरी (शंकराचार्य-रचित) ।

१८. कनफुकवे गुरु ।

१९. सच्चा बलिदान (उन्नीसवीं सदी का) ।

२०. ईश्वर विचार-३ भाग ।

२१. भौंदू जाट और पादरी साहब का शास्त्रार्थ - वैदिक धर्म प्रेस, सिकन्दराबाद, प्रथम संस्करण १८९९ ई० ।

२२. ईश्वर प्राप्ति- ३ भाग ।

२३. ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता ।

२४. ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र ।

२५. क्या वेदों को पढ़ने का अधिकार सबको नहीं ?

२६. सृष्टि प्रवाह से अनादि है ।

२७. स्थावर में जीव-विचार ।

२८. अविद्या के चार अंग ।

२९. गुरुशिक्षा ।

३०. आत्मशिक्षा ।

३१. आत्मबल ।

३२. धर्मशिक्षा ।

३३. गुरुकुल ।

३४. अकाल मृत्यु-मीमांसा ।

३५. शिक्षाप्रणाली ।

३६. श्राद्ध-व्यवस्था ।

३७. वेद का विषय ।

३८. महाअंधेर रात्रि ।

३९. भोगवाद, ट्रैक्ट- ८ ।

४०. कर्म व्यवस्था ।

४१. क्या हम जीवित हैं- ट्रैक्ट-४०

४२. वेद का विषय ।

४३. भोला यात्री ।

४४. आत्मशिक्षा, ट्रैक्ट- ४ दर्शनानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी महाविद्यालय, ज्वालापुर ।

४५. षट्शास्त्रों की उत्पत्ति का क्रम- ट्रैक्ट १० सोसाइटी महाविद्यालय, ज्वालापुर।

४६. आर्यसमाज क्या है ? शंकरदत्त शर्मा, वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद, प्रथम संस्करण - १९१६ ई० ।

४७. मांस-भक्षण-निषेध- वजीर चन्द शर्मा वै०पु०, लाहौर ।

४८. यज्ञ, स्वामी ब्रह्मानन्द महाविद्यालय, ज्वालापुर ।

४९. वैदिक धर्म सब मतों की उत्तमताओं का केन्द्र है । (ठेकेदार कुन्नीसिंह की सहायता से मुद्रित) ।

५०. समाज किस प्रकार चल सकता है ? (आर्यसमाज, जोधपुर सिटी) ।

५१ ईश्वर का भय (ठाकुरदत्त वाली की सहायता से मुद्रित) ।

५२. अधिक रोगी कौन है ?

५३. सईस का नाम रईस ।

५४. आर्यसमाज और सनातनधर्म-सभा के बीच प्रश्नोत्तर ।

५५. आस्तिक किसे कहते हैं ?

५६. प्रश्नोत्तर नवीन वेदान्ती ।

५७. नवीन वेदान्त की बुनियाद और उसकी रिव्यू संख्या ।

५८. शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द ।

५९. बाबा गुरुनानक साहब और स्वामी दयानन्द ।

६०. स्वामी दयानन्द और वृक्षों में जीव ।

६१. अक्ल के अन्धे और गांठ के पूरे ।

६२. मृतक श्राद्ध ।

६३. हम रूहानी डाक्टर हैं ?

६४. गो-हत्या कौन करता है ?

६५. जीवात्मा के अस्तित्व में प्रमाण ।

६६. जीवात्मा द्रव्य है या गुण ।

६७. प्रकृति का अनादित्व ।

६८. धर्मशिक्षा ।

६९. मुक्ति और पुनरावृत्ति ।

७०. पाप और पुण्य ।

७१. पात्र ।

७२. मनुष्य और पशुओं का जीवात्मा एक है या नहीं ?

७३. देह ब्रह्माण्ड का नक्शा है ।

७४. मिथ्या अभिमान और धर्म का नाश ।

७५. डाकू ।

७६. क्या शतपथ आदि में मिलावट नहीं ।

७७. आर्यपथिक ।

७८. नवयुवकों उठो ।

७९. धोखे से बचो ।

८०. नुस्खा तबाहिये हिन्द ।

८१. रिफार्मर ।

८२. तत्त्ववेत्ता ऋषि की कथा ।

८३. भारतवर्ष की उन्नति का सच्चा उपाय ।

८४. कर्मकाण्ड ।

८५. हम मृत्यु से क्यों डरते हैं ?

८६. पुनर्जन्मवाद ।

८७. अकाल मृत्यु ।

८८. स्वराज्य और शान्ति ।

८९. मूर्तिपूजा खण्डन- वैदिक पुस्तकालय, लाहौर ।

९०. मृतकश्राद्ध-खण्डन ।

९१. पितृश्राद्ध-विचार- वेदप्रकाश माला-५, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली ।

९२. सनातन धर्मियों का चर्खा ।

९३. धोखेबाजी से बचो ।

९४. मोहमुद्गर ।

९५. कौपीन-पञ्चक ।

९६. यति-पञ्चक ।

९७. आत्मपूजा ।

९८. निरञ्जनाष्टक ।

***

1. इतिहास खंड ::17

स्वामी दर्शनानन्द जी की वंशावली

स्थान- अगरांवा (लुधियाना) में मौद्गल्य सारस्वत ब्राह्मण-जोशी वंश

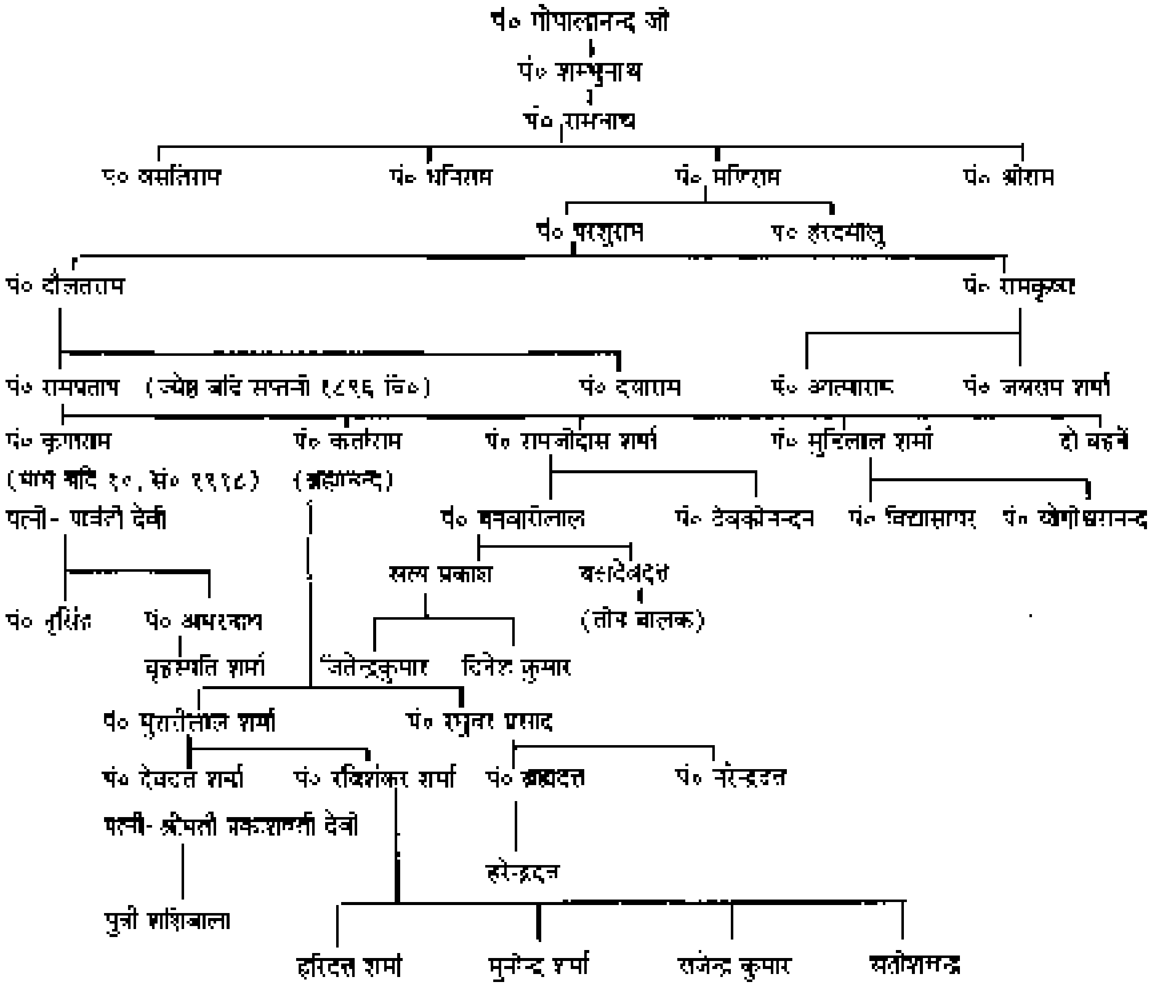

– सम्पादक

बाबू सीताराम जी

ज्वालापुर महाविद्यालयरूपी विराट् वृक्ष के अंकुर को रोपने के लिए उर्वर भूमि देने का श्रेय श्री बाबू सीताराम जी को ही है। उन्होंने भूमिदान करके स्वामी दर्शनानन्द जी के स्वप्न को साकार करने में जो योगदान दिया, जबतक यह महाविद्यालय रहेगा, अविस्मरणीय बना रहेगा।

एक परिचय

बाबू सीताराम जी का जन्म सन् १८५६ ई० के लगभग मुरादाबाद में कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम लाला जसवन्तराय था। इनकी पत्नी बड़ी ही धार्मिक स्वभाव की थी तथा बाबू जी के प्रत्येक धार्मिक कार्य में सहायक रहती थीं। उन्हें पान खाने का बड़ा शौक था। उनके कोई सन्तान नहीं थी। अतएव उनकी इच्छा किसी विद्यालय को चलाने के लिए अपनी सम्पत्ति देने की थी।

बाबू सीताराम जी अपने समय के प्रसिद्ध, होशियार एवं प्रभावशाली पुलिस सब इन्सपेक्टर (दरोगा) थे। उन्होंने ज्वालापुर थाने में किसी समय बहुत दिनों तक थानेदार के पद पर कार्य किया था। तभी ज्वालापुर में एक मकान बना लिया और यहीं रहने लगे। बाबू जी अपने कार्य में बड़े ही दक्ष थे। इनकी दक्षता का प्रमाण 'तफतीश' नामक एक पुस्तक जो पुलिस ट्रेनिंग में बहुत समय तक कोर्स में रही तथा संयुक्त प्रान्त के तत्कालीन प्रसिद्ध इन्सपेक्टर जनरल ब्राम्हले साहब द्वारा प्रशंसित थी।

रहने के मकान के अलावा एक बाग और बंगला भी इनकी सम्पत्ति में सम्मिलित था, जो इन्होंने एक अंग्रेज रेलवे इञ्जीनियर से खरीदा था। बाग और बंगले की जगह बहुत विस्तृत न होते हुए भी दर्शनीय थी। जिसमें आम, अमरूद, लौकाट, नासपाती, नींबू, नारंगी, अनार, शरीफा, लिहीं आदि फलदार वृक्षों के साथ-साथ मन को अनायास आकर्षित करने वाले बेला, चमेली, जुही, मौलसरी, चम्पा, सोनजुही आदि की क्यारियाँ एवं पश्चिमी सभ्यता के निर्गन्ध पुष्पों का भी अभाव न था। बाबू सीताराम फल- पुष्पों के स्वयं बड़े शौकीन थे। वे प्रतिदिन घण्टों बाग मे काम करते और अपना परिचय 'बाग का माली' कहकर दिया करते थे।

गुरुकुल के लिए भूमिदान

जब महात्मा मुंशीराम (संस्थापक- गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय), गुरुकुल के लिए जगह की तलाश में थे तो बाबू सीताराम जी ने अपना बाग और बंगला उन्हें देने का प्रस्ताव रखा था। उन्हे यह स्थान पसंद आया और उन्होंने इस आशा से यहाँ गुरुकुल खोलना स्वीकार कर लिया कि आस-पास की जमीन भी मिल जायेगी, क्योंकि मात्र-बाग और बंगला उनके लिए पर्याप्त न था। इस सम्बन्ध में महात्मा मुंशीराम ने अथक प्रयास किया और महीनों इधर-उधर चक्कर लगाये। किन्तु निराश होना पड़ा। उनको पास में और भूमि नहीं मिल सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय लोग गुरुकुल के नाम से चौंकते थे और किसी अनिष्ट की आशंका से भयभीत रहते थे। इसीलिए कोई भी उनके सहयोग के लिए सहमत नहीं था। अन्त में लाचार होकर उन्होंने इधर गुरुकुल खोलने का विचार ही त्याग दिया और गंगा के उस पार जंगल में कांगड़ी गाँव में गुरुकुल की स्थापना की।

उधर सिकन्दराबाद और बदायूँ मे गुरुकुल खोलकर स्वामी दर्शनानन्द जी की दृष्टि हरिद्वार पर पड़ी। सन् १९०७ ई० के प्रारम्भ में वे यहाँ आये और हरिद्वार स्टेशन के सामने एक बाग में किराये की जगह पर गुरुकुल बनाकर बैठ गये। उस समय वहाँ विद्यार्थियों की संख्या चार-पाँच से अधिक न थी। यह ज्वालापुर महाविद्यालयरूपी विराट् वृक्ष का अंकुर था। कई माह तक वे इस अंकुर को उसी बाग में पालते रहे और रोपने के लिए उचित स्थान की खोज में भी रहे।

स्वामी दर्शनानन्द जी से भेंट एवं गुरुकुल की स्थापना

इधर बाबू सीताराम जी बंगले और बाग को गुरुकुल के लिए दान का संकल्प कर चुके थे और किसी दान-पात्र की खोज में थे और स्वामी दर्शनानन्द जी की आवश्यकता थी, वे किसी ऐसे दान-दाता की खोज में थे जो गुरुकुल के लिए भूमिदान दे सके। दैवयोग से दोनों मिल गये और दोनों की आकांक्षाएं पूर्ण हुई। स्वामी दर्शनानन्द जी अपनी पौध को लेकर बाबू सीताराम जी के बाग में आ गये।

गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के बाद गुरुकुल के सम्बन्ध में पञ्चपुरी निवासियों की भ्रान्त धारणा दूर हो गयी थी। लोग समझने लगे थे कि गुरुकुल कोई दैवी आपत्ति या 'हौवा' नहीं है, अतः वायुमंडल अनुकूल हो चला था। बाबू सीताराम जी के उद्योग, प्रभाव एवं प्रयत्न से उनके बाग से मिले हुए दो तीन खेत और मिल गये। उनमें स्वामी दर्शनानन्द जी ने खपरैलों के मकानों का छात्रावास और एक यज्ञशाला का चबूतरा बनवाकर, आश्रम का रूप दे दिया। बाग के बड़े बंगले में पाठशाला लगने लगीं। बंगले के सामने ही थोड़े सी दूरी पर छप्पर डालकर रसोई घर बना लिया गया। यही उस समय का महाविद्यालय था, जिसके पास न कोई संचित निधि थी और न ही छात्रों से शुल्क लिया जाता था। अध्यापकों के वेतन का तो प्रश्न ही नहीं था।

महाविद्यालय का कांगड़ी गुरुकुल के साथ संघर्ष

ये सब प्रारम्भिक कठिनाइयाँ तो थी ही, साथ ही कांगड़ी गुरुकुल के साथ संघर्ष भी उपस्थित हो गया, क्योंकि आदर्श गुरुकुल के संस्थापक को महाविद्यालय की सत्ता कैसे सह्य होती। अतः विरोध स्वाभाविक था। धीरे-धीरे इस संघर्ष ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। पत्रों में परस्पर वाक्-बाण वर्षा होने लगी। एक दूसरे को परास्त करने में दोनों पक्षों ने कोई कसर नहीं उठा रखी। पूरे महारथी स्वामी दर्शनानन्द वाक् युद्ध में लेखनी की लड़ाई में किसी से पिछड़ने वाले नहीं थे। निःसन्देह मुकाबला हुआ, किन्तु परिणाम अनुकूल नहीं हुआ। उन दिनों महाविद्यालय के मुख्याध्यापक विद्वद्वर पण्डित शालग्राम जी शास्त्री साहित्याचार्य, कविराज थे। महाविद्यालय में उस समय धन के साथ-साथ भोजन-सामग्री का भी अभाव ही था, अतः वे महात्मा मुंशीराम जी के अनुरोध पर महाविद्यालय के कुछ विद्यार्थियों को लेकर कांगड़ी गुरुकुल चले गये। यह घटना कांगड़ी-गुरुकुल के चतुर्थ या पञ्चम वार्षिकोत्सव की है।

स्वामी जी का पलायन एवं बाबू सीताराम जी द्वारा गुरुकुल की देखभाल

पं० शालग्राम जी शास्त्री के जाने के बाद तो मानों चमन उजड़ गया। स्वामी दर्शनानन्द जी भी ऐसी स्थिति में हतोत्साहित होकर महाविद्यालय को इसी अस्त-व्यस्त अवस्था में छोड़कर पञ्जाब चले गये और इस उजड़े चमन की देख-भाल का दायित्व बाबू सीताराम जी पर आ पड़ा। उन्होंने ही बड़े ही मनोयोग से यह कार्य किया और पुनः प्राण-प्रतिष्ठा का भी निरन्तर प्रयत्न करते रहे। कभी स्वामी दर्शनानन्द जी से मिलते तो कभी अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों से। अभीतक महाविद्यालय की न तो रजिस्ट्री हुई थी और न ही किसी सभा का निर्माण हुआ था।

पं० भीमसेन तथा पं० गंगादत्त जी द्वारा गुरुकुल कांगड़ी का परित्याग

सन् १९०८ ई० के प्रारम्भ में अध्ययन-प्रणाली और प्रबन्ध-विषयक मतभेद के कारण आचार्य श्री गङ्गादत्त जी और पं० भीमसेन जी ने गुरुकुल छोड़ने का निश्चय कर लिया। महात्मा मुंशीराम जी ने इन्हें बहुत रोकना चाहा, किन्तु इन विद्वानों के स्वाभिमान ने उनके आग्रह को अस्वीकार कर दिया और यह कहकर वहाँ से प्रस्थान किया-

कुन्द्धोलूकनखप्रपात-विगलत्पक्षा अपि स्वाश्रयं,
ये नोज्झन्ति पुरीषपुष्टवपुषस्ते केचिदन्ये द्विजाः ।
ये तु स्वर्गतरङ्गिणी-बिसलता-लेशेन संवर्धिता,
गाङ्गं नीरमपि त्यजन्ति कलुषं ते राजहंसा वयम् ।।

गुरुकुल-कांगड़ी का परित्याग कर इनमें आचार्य जी ने श्री ऋषिकेश में निवास किया और पं० भीमसेन जी बाबू प्रतापसिंह जी के साथ भोगपुर में रहने लगे।

पं० भीमसेन जी से गुरुकुल महाविद्यालय आने का आग्रह

जब बाबू सीताराम जी को पता चला कि पं० भीमसेन और आचार्य गंगादत्त जी ने कांगड़ी गुरुकुल छोड़ दिया है तो उन्होंने पं० भीमसेन जी को भोगपुर से बुलवाकर उनके सामने महाविद्यालय को सम्भालने का प्रस्ताव रखा । पं० भीमसेन जी ने महाविद्यालय को अपना संरक्षण प्रदान किया और वे सभा बनाने तथा संस्था की रजिस्ट्री कराने के उद्योग में लग गये। इस समय उनके साथ उनके प्रिय शिष्य पं० दिलीपदत्त शर्मा भी थे । गुरु-शिष्य की इस जोड़ी ने धन-जन-शून्य, विध्वंसप्राय विद्यालय को अपने हाथ में ले लिया। इसी बीच दैवयोग से पं० भीमसेन जी बीमार हो गये और उन्हें महाविद्यालय छोड़ना पड़ा। तो अकेले पं० दिलीपदत्त जी ही यहाँ रहे । यह समय बड़े संकट का था, क्योंकि दुर्दैववशात् सभी विद्यार्थी और स्वयं पं० दिलीपदत्त जी भी इस समय बीमार हो गये । कोई सेवा करने वाला भी नहीं था, किन्तु पं० दिलीपदत्त जी ने हिम्मत न हारी और यहीं पड़े रहे । अच्छे होने पर पं० भीमसेन जी भी यहाँ पहुँचे और आचार्य पं० गंगादत्त जी को महाविद्यालय में लाने का प्रयास करने लगे ।

महाविद्यालय की रजिस्ट्री एवं सभा का निर्माण

पं० भीमसेन जी ने आचार्य पं० गंगादत्त जी से महाविद्यालय आने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने संस्था की रजिस्ट्री एवं सभा आदि के निर्माण से पूर्व आने से मना कर दिया । पं० भीमसेन जी इसके लिए पहले से ही प्रयत्नशील थे। आचार्य जी के आग्रह से उनके कार्य में अधिक गति आई और एक सभा का निर्माण किया गया, जिसका १८.४.१९०८ ई० को बाबू सीताराम जी के मकान पर प्रथम अधिवेशन हुआ । इस सभा में पं० भीमसेन, आचार्य पं० गंगादत्त, पं० रविशंकर, स्वामी सर्वदानन्द, महन्त शिवदयालु गिरि, बाबू प्रताप सिंह, चौ० महाराज सिंह तथा पं० तुलसीराम जी बापू इत्यादि महानुभाव थे । इस सभा ने एक कमेटी का निर्माण किया जिसका नाम 'महाविद्यालय सभा' रखा गया । इसमें चौ० महाराजसिंह (मानकपुर) प्रधान, महन्त शिवदयालुगिरि तथा चौ० अमीरसिंह, उप-प्रधान, पं० तुलसीराम बापू, मंत्री, और श्री दुर्गादत्त कोषाध्यक्ष पदों के लिए चुने गये ।

पं० भीमसेन जी ने सभा के नियम और उद्देश्य बनाकर सभा के सामने रखे और पास कराए । बहुमत से यह भी निश्चित हुआ कि महाविद्यालय सभा के अधिकारी और सभासद् आर्यसामाजिक और सनातनधर्मी दोनों हो सकते हैं । सभा की रजिस्ट्री कराने का भी प्रस्ताव पास किया गया और रजिस्ट्री भी हो गयी और अपने कथनानुसार आचार्य पं० गंगादत्त जी भी रजिस्ट्री होने के बाद ३१ मई १९०८ ई० को महाविद्यालय में आ गये ।

महाविद्यालय ज्वालापुर के संस्थापक बाबू सीताराम जी का वसीयतनामा

बाबू सीताराम जी निःसंतान थे, फिर भी उनकी सम्पत्ति के वास्तविक उत्तराधिकारी उनके भानजे श्री जगदम्बाप्रसाद जिनके पिता का नाम श्री हीरालाल कायस्थ तथा जो सिकन्दराबाद के रहने वाले थे तथा भतीजे रघुवीर नारायण मिसर जिनके पिता का नाम मन्नूलाल कायस्थ, निवासी मुरादाबाद थे । बाबू सीताराम जी की इच्छा यद्यपि अपनी सम्पत्ति किसी गुरुकुल

1. इतिहास खंड ::2।

या विद्यालय को दान देने की थी फिर भी इन्होंने अपने भानजे और भतीजों से इस विषय में चर्चा की और यह सम्पत्ति लेने के लिए कहा किन्तु उन्होंने अपनी त्यागमयी प्रवृत्ति एवं निर्लोभी स्वभाव का परिचय देते हुए उन्हें यह सम्पत्ति दान देने की ही सम्मति दी। अतः बाबू सीताराम जी ने अपनी सम्पत्ति महाविद्यालय को दान कर दी।

वसीयतनामा

"मन के सीताराम वल्द लाला जसवन्तराय कौम कायस्थ साकिन कदीम शहर मुरादाबाद हाल कस्बा ज्वालापुर जिला सहारनपुर का हूँ चूँकि मेरी उम्र ५६ वर्ष की हो गयी है और बा आरजे इस हाल वगैरा मुबतला रहकर दिन ब दिन नातवाँ हो जाता हूँ, जिन्दगी नापायेदार है। न मालूम कब अजल आ जावें, लिहाजा बसवात अक्ल नसेहत हवास खमसा वसीयत करता हूँ कि चूँकि मेरे कोई औलाद किसी किस्म की नहीं है, इसलिए मैंने गंगा किनारे आखरी हिस्सा उम्र बसर करने के लिए सन् १८९५ ई० में एक मकान पुख्ता ब लागत दस हजार रूपये में बनाया और सन् १९०० ई० में एक मकान पाठशाला अपने पास से बनीज पब्लिक चन्दा करके ब लागत साढ़े तीन हजार रूपये बनाकर जारी किया जिसमें हर कौम व हर फिरके के बच्चों को सरकारी निसाब से अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी में तालीम मिल रही है। १९०७ ई० में महजबन्दी ख्याल कि सारी उम्र फिजूल व फिजूल में गुजरी आखिर में जो कुछ काम नेकी का हो जावे तो बेहतर है, मैंने अपने बाग व बंगला व आराजीयात सहराई वाके कस्बे ज्वालापुर में बतुफैल स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती महाराज एक तालीमगाह को जिसमें कदीम जमाने के रिवाज से वेद-शास्त्रों की तालीम मुफ्त ब्रह्मचर्य व्रत रखते हुए दी जाती है, खोला और जो अब महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है और बाजाब्ता कमेटी महाविद्यालय कायम होकर अपनी जायदाद भी बनाम कमेटी मजकूर रजिस्ट्री करा दी। खुशकिस्मती से पं० गंगादत्त शास्त्री, पं० पद्मसिंह, पं० भीमसेन, पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ जैसे परम संस्कृत विद्वान् आलिम बा अमल ने इस तालीमगाह में महज परोपकार मुद्दे नजर रखकर अपने तमाम मुफाद को कुरबान कर इसके सुधार का बीड़ा उठाया-जिसकी बरकत से मेरी आराजी व बंगले वगैरह से अलावा फराखदिली पब्लिक की बदौलत बीघों आराजी का इजाफा होने के अलावा हजार रूपये की लागत के मकानात और बन गये और महाविद्यालय एक होनहार तालीमगाह तमाम मुल्क में मशहूर हो गया और हर सूबे के विद्यार्थी यहाँ आकर मुफ्त तालीम पाने लगे, अलावा इस बाग व आराजी के मेरा एक मकान पुख्ता महदूद मैल और ११ बीघे खाम आराजी वाके मौजे अहमदपुर कड़च मुत्तसिल रूपचन्द वाला तालाब है। जो तखमीनन कीमत पाँच सौ रूपये हैं और दो दस्तावेजात तमस्सुक रजिस्ट्री शुदा बुद्धू वगैरा कुम्हारान ज्वालापुर के हैं जिनका मतालबा सूद लगाकर चार हजार से मुतजाविज है और जिसमें बुद्धू वगैरा के दो मकानात पुख्ता वाके मुहल्ले पीपलों के मय २४ बीघे खाम आराजी सहराई मालगरुक हैं मेरी जाती जायदाद और है। इन सबको मैंने अपने जायज वारिस जगदम्बा प्रसाद वल्द मु० हीरालाल कायस्थ सिकन्दराबादी और भानजा और रघुबीर नारायण पिसर मु० मन्नूलाल कायस्थ बाशिन्दा मुरादाबाद जो व वजह सआदतमन्दी मेरे दीगर भतीजों में मुमताज हैं बहिस्सेरसदी अपने मकान को अपने बाद देने की आरजू जाहिर की मगर हर दोने बाद शुक्रये कबूलियत से मुनकिर होकर मुझे यही मशवरा दिया कि महाविद्यालय जैसे परोपकारी काम से बेहतर कोई भी मुस्तहक आपकी गुजाश्ता के पाने का नहीं है जिसको इमदाद देना बहैसियत आपके वारिस के हमारा फर्ज आला होगा। इस सूरत में मैं जरिये वसीयतनामा हाजा लिख देता हूँ कि मेरी यह जायदाद भी मुतल्लिक महाविद्यालय कमेटी हो, मगर कमेटी को कोई अख्तयार बै, बखशीश का न होगा मकान का किराया या अगर वह माकूल कीमत पर फरोख्त हो जावे तो उस रकम का सूद महाविद्यालय काम में ला सके। निसबत तमस्सुकात बुद्धू कुम्हार अव्वल तो मैं अपनी जिन्दगी ही में वसूल दखल कर सकूँगा। काश इससे कब्ल ही मेरी फौतीदगी वाके हो जावे तो कमेटी मजकूर मालकाना तौर पर कारवाई करके दाखल हासिल करे और मकानात व आराजियात मुस्तगरक शुदा हर दो तमस्सुकात बनीज मेरी आराजी वाके अहमदपुर कड़च को जिस तरह चाहे महाविद्यालय के मुफाद में काम में लावें - मेरी जौजे मुसम्मात देवा मेरे बाद मालिकाना मकान कुटिया वाके आराजी महाविद्यालय में रहेगी और तमाम व कमाल मेरे गुजाश्ता माल मनकुला की मालिक

रहेगी और उमीद है कि जो रकम नकद मैं उसके लिए छोड़ सकूँगा और मेरे मानजे व भतीजे की इमदाद उनके गुजर के लिए काफी होगी– काश इसमें किसी किस्म का फितूर वाकअ हो जाने की हालत में महाविद्यालय कमेटी अपना फर्ज अदा करे– मेरी तसनीफ एक किताब मौसूम व 'तफतीश' भी है जो फरोख्त होकर मुझे अच्छा फायदा पहुँचाती है, इसका हक तसनीफ भी मैं महाविद्यालय-कमेटी को वसीयत करता हूँ, बादवफात मेरी जो आके मेरी कुटिया में रहने का हक मेरे किसी ऐसे लवाहका या हम कौम का लायक है जो यहाँ रहकर खिदमत महाविद्यालय करे– अगर ऐसा कोई नहीं है तो कमेटी को अख्तियार है कि जिस तरह मुनासिब हो काम में लावे। सन् १९०० का बनाया हुआ मेरा स्कूल जो सन् १९०८ में कमेटी को सुपुर्द कर चुका हूँ मगर मैं ही अपने अहतमाम से उसको चला रहा हूँ। इसमें भी कमेटी से दरख्वास्त है कि कस्बे वालों की तालीम के मुफाद को मद्दे नजर रखते हुए इसका अहतमाम अपनी सुपुर्दगी में रखखें– आखिर में मेरी यह भी अर्ज है कि मेरा अन्त्येष्टी संस्कार वैदिक रीति से महाविद्यालय वाले कर दें और हत्तेउलवसे मेरे लायक लवाहकीन में से किसी को अन्तरंग सभा में शिरकत का मौका दें और देते रहें। अलमरकूम १६ फरवरी सन् १९१२ ई० को यह चन्द कलमें बतरीक वसीयतनामे मैंने लिख दिए कि सनद हो और वक्त पर काम आवे। अलमरकूम १६ फरवरी सन् १९१२ ई० को हदूद अरबा मकानमुख्ता वाके कस्बा ज्वालापुर मोहल्ला पुल जटवाड़ा। सीताराम बकलम खुद–

पूरब सड़क पुख्ता बाजार को।

उत्तर– मकान डाकखाना मिल्कियत जवाहरसिंह मिस्त्री।

पश्चिम सड़क आम।

दक्षिण – सड़क आम।

१. अलब्द सीताराम वल्द जसवन्तराय कायस्थ बकलम खुद।

२. गवाह चन्दनलाल पटवारी बकलम खुद।

३. गवाह आनन्दस्वरूप मुख्तार रुड़की बखते अंग्रेजी।

४. जीवनलाल कायस्थ-ज्वालापुर बकलम खुद।

५. गवाह पद्मसिंह शर्मा मन्त्री महाविद्यालय, बखते हिन्दी।

६. गवाह नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ बखते नागरी।

७. गवाह मुसद्दीलाल वल्द देवीसहाय रुड़की बखते हिन्दी।

८. गवाह बैनीराम वल्द भोलानाथ महाजन सकने ज्वालापुर।

९. दुर्गादत्त, पिसर मूलराज मिस्त्री ज्वालापुर बकलम खुद।

१०. गवाह रूपचन्द वल्द गंगाराम कौम ब्राह्मण साकिन कनखल।

११. अलब्द सीताराम बकलम खुद।

यह ता० १९.२.१९१२ को बरोज दुशम्बा दरम्यान बारह व एक बजे दफ्तर सब रजिस्ट्रार रुड़की में पेश किया।

बही न०३ सफा १ लगायत ३ में रजिस्ट्री की गई द० श्री बाबू श्री नारायण

गवाह पटवारी चन्दनलाल व पटवारी मुहड़फल सब रजिस्ट्रार

(मोहर दफ्तर रजिस्ट्रार)

बाबू सीताराम जी की उपर्युक्त वसीयत से कुछ तथ्य सामने आते हैं –

---

१. इतिहास खंड ::२३

१. बाबू सीताराम जी ने यह मकान सन् १८९५ ई० में दस हजार रुपये की लागत से बनाया।

२. इसके पाँच साल बाद १९०० ई० में एक मकान लगभग साढ़े तीन हजार की लागत से बनाया जिसमें पाठशाला चलती थी।

३. दान का संकल्प उन्होंने १९०७ ई० में ही कर लिया था। यह दान उन्होंने किसी व्यक्ति विशेष को न देकर महाविद्यालय सभा को दिया।

४. वसीयतनामे के समय पं० गंगादत्तशास्त्री, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० भीमसेन, पं० नरदेव शास्त्री आदि विद्वान् उपस्थित थे।

५. बाबू सीताराम जी के वसीयतनामे से पूर्व ही कुछ अन्य जमीन के साथ-साथ और मकान भी महाविद्यालय की सम्पत्ति हो गये थे।

६. महाविद्यालय का प्रारम्भिक उद्देश्य जाँति-पाँति के भेदभाव को भुलाकर हर एक सूबे के विद्यार्थी को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना था।

७. इस बाग और मकान के अलावा एक पक्का मकान तथा ११ बीघे जमीन जिसमें एक तालाब भी जो ज्वालापुर में थे, उन्होंने महाविद्यालय सभा को दिए थे। इसके अलावा ज्वालापुर में ही दो मकान पक्के और २४ बीघे जमीन भी इसी महादान में सम्मिलित थे।

८. इनकी सम्पत्ति के वास्तविक उत्तराधिकारी इनके भानजे जगदम्बाप्रसाद और भतीजे श्री रघुवीर नारायण मिसर थे। दान देने से पूर्व बाबू सीताराम जी ने पहले उनको देने की इच्छा प्रकट की थी। बाद में उनकी सम्मति से ही यह सम्पत्ति दान दी गयी। इस विषय में महाविद्यालय उनका ऋणी है।

९. इनकी पत्नी का नाम देवा था, जो अपने अन्तिम समय तक महाविद्यालय में रहीं।

१०. इसी वसीयतनामे में १९०० ई० में खोली हुई अपनी पाठशाला भी उन्होंने महाविद्यालय कमेटी को सौंप दी थी।

गुरु विरजानन्द दण्डी
3585

***

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

राजन्! सदा प्रिय वचन बोलने वाले मनुष्य तो सहज में ही मिल सकते हैं, किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचन के वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं।

महाविद्यालय के स्तम्भ

प्रथम आचार्य, आचार्य शुद्धबोध जी जिन्होंने 26 वर्षों तक
आचार्य पद पर निःशुल्क सेवा की।

महाविद्यालय के स्तम्भ

प्रारम्भिक कर्त्ताधर्ता, मन्त्री, कुलपति, मुख्याधिष्ठाता, आचार्य श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ

महात्मा हंसराजजी गुरुकुल के महान् सहयोगी

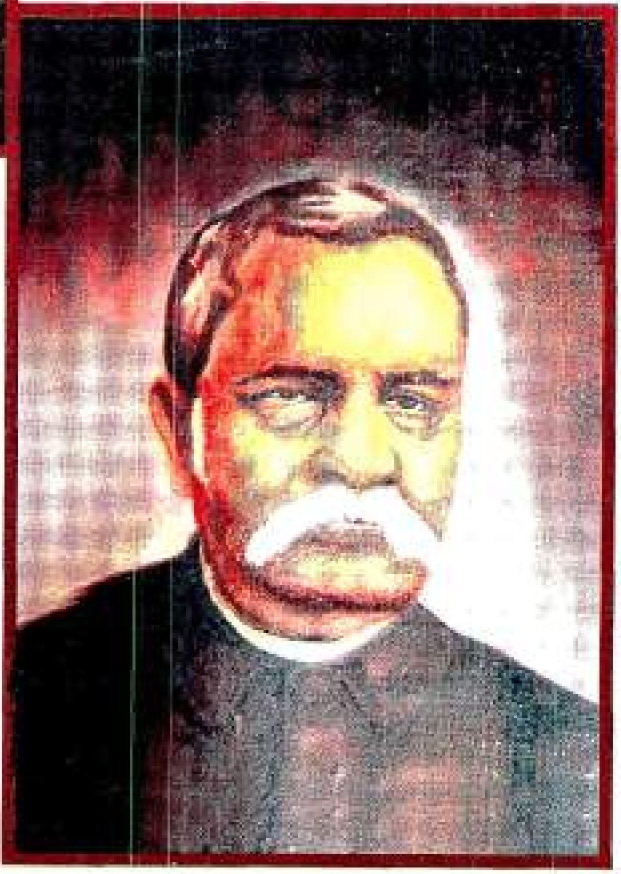

महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा गुरुकुल के परम हितैषी

प्रथम प्रधान चौ. महाराज सिंह जी

दानवीर सेठ जोरावर मल, सुजानगढ़ (राजस्थान)

गुरुकुल महाविद्यालय के आरम्भिक मुख्य चार स्तम्भ

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा १९०७ ई० में स्थापना के एक वर्ष बाद ही महान् संकट उपस्थित हुआ। बात यह हुई कि स्वामी जी का स्वभाव ऐसा था कि वे कहीं भी जमकर टिकते नहीं थे। यहाँ भी स्थापना करके वे एक वर्ष बाद ही गुरुकुल छोड़कर पंजाब चले गये। उनके चले जाने के पश्चात् बाबू सीताराम जी ने गुरुकुल को आगे चलाने के लिए बड़ा श्रम किया। आचार्य पं० गंगादत्त जी शास्त्री (स्वामी शुद्धबोध तीर्थ) और पं० भीमसेन शर्मा कांगड़ी गुरुकुल को छोड़कर जा चुके थे। बाबू जी को पता लगते ही उन्होंने इन दोनों विद्वानों को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में लाने का प्रयत्न किया और वे इस कार्य में सफल हो गये थे। सर्वप्रथम पं० भीमसेन शर्मा आये। उनके साथ उनके शिष्य श्री दिलीपदत्त उपाध्याय भी आये। बाद को आचार्य गंगादत्त जी शास्त्री एवं पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ आये। सबसे अन्त में पं० पद्मसिंह शर्मा जी आये। यदि इन चारों ने उस कठिन परिस्थिति में गुरुकुल महाविद्यालय को न संभाला होता तो स्थापना हो जाने पर भी उसमें स्थायित्व असम्भव-सा हो था। स्थायित्व लाने के लिए इन चारों व्यक्तियों ने बड़ी ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हम इन चारों का परिचय आगे दे रहे हैं -

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी

आचार्य जी का जन्म सन् १८५७ के लगभग बुलन्दशहर जिले के बैलोन (राजघाट-नरौरा) नामक स्थान पर हुआ। इनका यह नाम संन्यास ग्रहण के बाद हुआ। इनका पूर्व नाम गंगादत्त शास्त्री था। इनकी माता का नाम 'दयावती' तथा पिता का नाम पं० हेमराज था। इनके पिता प्रसिद्ध चिकित्सक थे। इनके बड़े भाई पं० कन्हैयालाल किसी मन्दिर में पुजारी थे। बैलोन में उन्हें लोग पुजारी जी के नाम से ही पुकारते थे।

आचार्य जी की प्रारम्भिक शिक्षा खुर्जा में हुई। वहाँ पर इन्होंने पं० किशोरीलाल ज्योतिषी से ज्योतिष विषय का अध्ययन किया। खुर्जा अध्ययन करते हुए ये प्रति सप्ताह घर आते थे, जिससे इनके बड़े भाई नाराज होते थे। एक दिन इन्होंने अपने भाई से कहा कि 'मुझे काशी भेज दो, वहीं पढ़ूँगा'। यह सुन कर उन्होंने कहा 'क्यों नहीं, वहाँ से तू महाभाष्य पढ़ कर आयेगा।' आचार्य जी को उनका यह वाक्य बहुत बुरा लगा और वे उल्टे पाँव लौट आये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए।

दूसरे दिन ये बिना किसी से कुछ कहे घर से चल पड़े। उस समय इनके पास केवल दो पैसे थे। फिर भी इन्होंने कोई परवाह नहीं की। यहाँ से चलकर अलीगढ़ पहुँचे। दो चार दिन वहाँ रहकर मेंढू होते हुए मथुरा आये। मथुरा में नाम पूछते-पूछते पं० उदय- प्रकाश जी के पास पहुँचे। पं० उदयप्रकाश जी स्वामी दयानन्द के सहाध्यायी थे। गंगादत्त जी कई दिन के भूखे थे। जब द्वार पर पहुँचे तो गुरु पत्नी ने देखा कि कोई षोडश वर्षीय कुमार खड़ा है तो उन्होंने प्रेमपूर्वक पूछा क्या चाहते हो और भोजन दिया। उदयप्रकाश जी से इन्होंने अष्टाध्यायी पढ़ी। इस प्रकार डेढ़ वर्ष व्यतीत कर कानपुर पहुँचे। पुनः वहाँ से काशी के लिए प्रस्थान किया।

काशी में सात वर्ष तक घोर परिश्रम करके इन्होंने कौमुदी, मनोरमा, शेखर, न्याय, वेदान्त, महाभाष्य आदि का गहन अध्ययन किया। इस बीच घर वालों को इनका पता चला तो उन्होंने वहाँ से घर लौटने के लिए लिखा तो उत्तर में इन्होंने यही लिखा कि 'अभी महाभाष्य समाप्त नहीं हुआ है।'

इन्होंने काशी में पं० हरनामदत्त जी भाष्याचार्य से सम्पूर्ण महाभाष्य, काशीनाथ जी से नव्यव्याकरण के समस्त ग्रन्थ तथा वेदान्त, पं० सीताराम शास्त्री द्राविड से नव्य न्याय तथा स्वामी मनीषानन्द जी से भागवत का अध्ययन किया। ये जब काशी में ही थे तो इनके बड़े भाई पुजारी कन्हैयालाल का देहावसान हो गया। कई बार इनके पास उनकी बीमारी के पत्र गये,

---

1. इतिहास खंड ::25

किन्तु इनका एक ही उत्तर था- 'महाभाष्य अभी समाप्त नहीं हुआ।' इनके भतीजे श्रीधर का निधन अमृतसर में शास्त्री परीक्षा देते समय हो गया था।

पूरे सात वर्ष के बाद काशी से घर पर लौटे। विवाह तो बाल्यकाल में ही हो गया था, किन्तु गृहसुख इनके भाग्य में नहीं था, क्योंकि जब इन्होंने घर छोड़ा तो इनकी आयु १८ वर्ष थी। अब वे घर लौटे तो इनकी आयु लगभग २७ वर्ष थी।

उन्हीं दिनों पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने जालन्धर में वैदिक आश्रम खोला। उन्हें उसके लिए विद्वान् की आवश्यकता थी तो पं० कृपाराम तथा महात्मा मुंशीराम जी के आग्रह से ये जालन्धर पहुँचे। तब से लेकर मृत्यु-पर्यन्त ये किसी न किसी रूप में यत्र-तत्र निरीहभाव से आर्यसमाज में अध्ययनाध्यापन कार्य में संलग्न रहे। जालन्धर में वैदिक आश्रम महात्मा मुंशीराम जी की कोठी के सामने, आर्यसमाज के पीछे रेलवे लाइन के किनारे स्थित था। यह आश्रम जालन्धर में १८९८ मई तक रहा। इसके बाद यह गुजरांवाला में चला गया। गुजरांवाला में लगभग दो वर्ष तक यह आश्रम रहा, अतः आचार्य पं० गंगादत्त जी दो वर्ष तक गुजरांवाला में रहे। यहाँ एक संस्कृत पाठशाला भी थी। पढ़ाई खूब जोरों से चल रही थी। पं० गंगादत्त जी के काशी के सहपाठी पं० नारायण सिद्ध जी भी यहीं आ गये थे। इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने गुरुकुल खोलने का निश्चय कर लिया और महात्मा मुंशीराम जी ३० हजार रुपये एकत्र करने का लक्ष्य बनाकर अपने उद्देश्य में जुट गये।

आचार्य जी अपने शिष्यों हरिश्चन्द्र, इन्द्रचन्द्र तथा चन्द्रमणि के साथ २९ जून सन् १९०० ई० में कनखल आ गये। उस समय कनखल एक उजाड़ी हुई बस्ती थी। वहाँ भारामल की बगीची में एक वृद्ध पण्डित अपने दो चार विद्यार्थियों के साथ रहते थे। उन्हीं के साथ आचार्य जी ने भी अपना डेरा डाल दिया। इस प्रकार गुरुकुल का सूत्रपात कनखल में हुआ। इसके पाँच छः मास बाद मुंशीराम जी तैंतीस ब्रह्मचारियों के साथ हरिद्वार पहुँचे। वहाँ ब्रह्मचारियों के लिए झोंपड़िया बनवा रखी थी तथा महात्मा मुंशीराम जी के लिए एक टेन्ट गाड़ा गया था। मुंशीराम जी उसी में रहते थे। इसी में काँगड़ी गुरुकुल का प्रथम कार्यालय था।

आचार्य गंगादत्त जी तथा पं० भीमसेन शर्मा भी इन दिनों काँगड़ी गुरुकुल में अलग-अलग कुटिया में रहते थे। उस समय वहाँ सब ब्रह्मचारी संस्कृत बोलते थे। बेलवृक्षों के झुण्ड में एक सुन्दर यज्ञशाला का निर्माण किया गया था।

गुरुकुल का समारम्भ देखने के लिए सहस्त्रों नर-नारियों का झुण्ड टूट पड़ा। स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती को इस अवसर पर विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। प्रारम्भ में महात्मा मुंशीराम तथा स्वामी दर्शनानन्द जी में घनिष्ठता थी। यदि यह घनिष्ठता भविष्य में भी बनी रहती तो सम्भवतः महाविद्यालय की स्थापना ही न हो पाती। किन्तु परमात्मा को तो मञ्जूर ही कुछ और था। आचार्य यहाँ काँगड़ी गुरुकुल में पाँच वर्ष तक रहे।

इसके बाद १९०८ के प्रारम्भ में अध्ययन-प्रणाली और प्रबन्ध-विषयक मतभेद के कारण आचार्य जी ने पं० भीमसेन जी के साथ काँगड़ी गुरुकुल को छोड़ दिया और ऋषिकेश में उनके काशी के परिचित स्वामी ब्रह्मानन्द भारती जी ने मुनी की रेती में अपने मन्दिर की खाली पड़ी हुई जगह में दो सुन्दर कुटियाएँ बनवा दी थी। उसमें आचार्य जी रहने लगे।

इनके साथ चन्द्रगुप्त (बेलोनवासी पं० चन्द्रगुप्त शास्त्री), सोमगुप्त (कविराज सोमगुप्त वैद्यभूषण जी बेलोन के ही थे और कुछ दिन तक चन्दौसी के प्रसिद्ध वैद्यों में गिने जाते थे), श्रीधर जी (इनके भतीजे) तथा ऋषिदेव बा० प्रताप सिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र, ये चार छात्र रहने लगे। इसके अतिरिक्त दिनभर साधु लोग इनसे पढ़ने के लिए आते थे। इधर आचार्य जी रहते थे और पं० भीमसेन जी उधर भोगपुर (देहरादून) में बाबू प्रतापसिंह जी की पुत्री सत्यवती, शान्ति और विद्या को पढ़ाते थे।

हर दस-पन्द्रह दिन के बाद बाबू प्रतापसिंह जी पं० भीमसेन जी के साथ ऋषिकेश आचार्य जी से मिलने आते थे और भोगपुर तथा ऋषिकेश दोनों स्थानों का व्ययभार वहन करते थे। इस प्रकार ऋषिकेश में आचार्य जी का कार्य स्वाध्याय, अध्ययनाध्यापन, जप-तप के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

वहाँ रहते हुए आचार्य जी ने जटाएँ बढ़ा ली थी और साक्षात् ऋषि प्रतीत होते थे। उन दिनों ऋषिकेश आजकल के समान उपनगर नहीं था और मुनि की रेती तो निरा जंगल था, एकदम एकान्त।

जब आचार्य जी ऋषिकेश में तथा पं० भीमसेन जी भोगपुर में रहते थे तभी महात्मा मुंशीराम जी का स्वामी दर्शनानन्द जी के साथ घोर वाग्युद्ध छिड़ गया। तभी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती पं० भीमसेन जी को मार्च १९०८ में सब कुछ सौंप कर पंजाब चले गये। कुछ दिनों बाद आचार्य जी कनखल आकर रहने लगे। पं० भीमसेन जी ने आचार्य जी से भी महाविद्यालय में आने का आग्रह किया तो इन्होंने रजिस्ट्री आदि के अभाव में आने से मना कर दिया। पुनः पं० भीमसेन जी के प्रयास से १८ अप्रैल १९०८ को एक सभा का गठन हुआ तथा रजिस्ट्री आदि भी हो गयी तो ३१ मई सन् १९०८ ई० को आचार्य जी भी महाविद्यालय में आ गये। इस प्रकार महाविद्यालय में यह पण्डित-मण्डली धीरे-धीरे इस क्रम में आयी-

१. पं० दिलीपदत्त उपाध्याय (किशनपुर, पो० सिकन्दराबाद) जिला बुलन्दशहर- निवासी पं० भीमसेन जी के प्रिय शिष्य, १९०७ ई०। (इस प्रकार इनके साथ पं० भीमसेन शर्मा भी थे, जो रुग्ण होने पर घर चले गये थे)।

२. पं० भीमसेन शर्मा- (आगरा निवासी) का आगमन मार्च १९०८ ई० को हुआ।

३. आचार्य पं० गंगादत्त जी शास्त्री का आगमन ३१ मई १९०८ ई० को पं० भीमसेन जी के प्रयास से हुआ।

इसके बाद आचार्य जी यहाँ २५ वर्षों तक निरन्तर रहे। जीवन के अन्तिम काल में निवास महाविद्यालय-काल में ही इन्होंने महाविद्यालय से भी संन्यास ले लिया और निश्चिन्त होकर कनखल के पुल के पास अपने मुक्ति-आश्रम में रहते थे।

सन् १९१५ में बड़े कुम्भ के अवसर पर जब महामना मदनमोहन मालवीय का महाविद्यालय में आगमन हुआ था तो जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य जी के प्रधान शिष्य, जो ऋषिकुल के महोत्सव के अवसर पर आये थे, श्री सुब्रह्मण्य-देवतीर्थ। उन्हीं से आचार्य गंगादत्त जी ने संन्यास ले लिया था और ये आचार्य गंगादत्त से स्वामी शुद्धबोध तीर्थ हो गये थे।

महाविद्यालय के २५ वर्षों तक के काल में आचार्य जी ने मुख्य रूप से आचार्य पद को अलंकृत किया (सन् १९०८ से सन् १९३२ तक)। इस बीच सन् १९१४-१५ तथा १९२६ में मुख्याधिष्ठाता पद का भी कार्यभार ग्रहण किया। इस काल में इन्होंने महाविद्यालय को अपनी संस्था मानकर मनोयोग से सेवा की।

सन् १९३३ में १६ सितम्बर की रात्रि में लगभग साढ़े दस बजे इन्होंने इस भौतिक शरीर का परित्याग कर परमपद प्राप्त किया। महाविद्यालय उनकी सेवा के लिए सदैव उनका चिर-ऋणी रहेगा।

आचार्य जी अपने विषय के निपुणतम प्राध्यापक-महोपाध्याय थे। व्याकरण जैसे शुष्क विषय को भी वे बड़ी सरलतापूर्वक शिष्यों के गले उतार देते थे। शरीर इनका हृष्ट-पुष्ट था। छात्रों पर अपूर्व वात्सल्य था। दलबन्दी से सदैव दूर रहते थे। जहाँ मान-सम्मान की सम्भावना देखी कमण्डल उठाकर चल देते थे। अगर ये काशी में रहते तो काशी के गणमान्य पण्डितों में इनकी गणना होती, किन्तु विधि ने तो इन्हें आर्यसमाज के गौरव को बढ़ाने के लिए नियुक्त कर भेजा था।

आर्यसमाज में इस प्रकार लगन से संस्कृत-व्याकरण विद्या का प्रचार करने वाला अनथक पण्डित शायद ही कोई हुआ हो। वे पूर्णतया निस्पृह थे। इसकी पुष्टि के लिए गुरुकुल काँगड़ी का परित्याग तथा एक अन्य घटना कही जा सकती है।

---

1. इतिहास खंड ::27

जगन्नाथपुरी के बड़े शंकराचार्य श्री १००८ स्वामी मधुसूदन तीर्थ इन्हीं के परिवार के थे, बड़े ताक लगते थे। जिनके कारण इन्हें जगन्नाथपुरी के शंकराचार्य की गद्दी मिल रही थी, किन्तु इन्होंने स्पष्ट रूप से मना कर दिया और कहा कि मैं आर्यसिद्धान्तों का अनुयायी होकर इस गद्दी को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ।

आचार्य जी क्रोधी जीव थे। उन्हें क्रोध बड़ी जल्दी आता था, तभी तो इन्होंने अपने बड़े भाई की बात पर क्रुद्ध होकर घर का त्याग कर काशी-निवास किया। इसीलिए बैलोन में इनका नाम "रिसी" पड़ गया था। बाद में रिसी से ऋषि जी हो गये। उनके स्वभाव को यदि थोड़े शब्दों में कहना हो तो जगन्नाथ पण्डित जी के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं-

उपरि करवाल-धाराकाराः भुजङ्गमपुङ्गवाः।
अन्तः साक्षाद् द्राक्षादीक्षा-गुरवो जयन्ति केऽपि जनाः॥

उनके निर्देशानुसार यथारीति अध्ययन न करने वालों के लिए वे साक्षात् भुजङ्ग थे, किन्तु हृदय इतना कोमल था कि छात्रों का हित सधता हो तो वे अन्यों के हिताहित की परवाह नहीं करते थे। छात्रजन-समुदाय ही उनका सर्वस्व था। उनके लिए वे सब कुछ कर सकते थे।

-सम्पादक

प्रेरक प्रसंग-

राजधर्म की प्रेरणा

शाहपुर (राजस्थान) के राजा नाहरसिंह स्वामी दयानन्द जी के प्रति अनन्य श्रद्धा-भावना रखते थे। स्वामी जी काफी समय तक शाहपुर रहे तथा राजा को उन्होंने मनुस्मृति, न्यायशास्त्र, योगशास्त्र आदि का अध्ययन कराया।

एक बार स्वामी जी राजा के अतिथि थे। उन्हें बगीचों में ससम्मान ठहराया गया था। राजा सवेरे शाम नियुक्त समय पर उनसे मिलकर उपदेश ग्रहण करते थे। एक दिन दोपहर के समय अपना राजकाज अधूरा छोड़कर स्वामी जी से मिलने जा पहुँचे। स्वामी जी ने उन्हें देखते ही कहा- 'राजन्, इस असमय में कैसे पधारना हुआ।'

राजा ने जवाब दिया- 'महाराज, आज मन कुछ उचटा सा है। अतः मन को ज्ञानार्जन में लगाने के उद्देश्य से सेवा में उपस्थित हो गया हूँ।'

स्वामीजी ने निर्भीकता से कहा- राजन्, आप राजा हैं। राजा को प्रत्येक कार्य समयानुसार करना चाहिए। राजकाज का काम अधूरा छोड़कर ज्ञानार्जन का व्यक्तिगत कार्य करने पर राजकोष के धन से भोजन करने के भी आप अधिकारी नहीं हैं।'

राजा नाहरसिंह को स्वामीजी ने राजधर्म का आभास करा दिया था। वे तुरन्त राजकाज में लगने हेतु वापस लौट गए।

प्रस्तुति- शिवकुमार गोयल

पं० भीमसेन शर्मा

पं० भीमसेन जी शर्मा का जन्म सन् १८७७ ई० में जयपुर राज्य के भागवाना ग्राम में हुआ था। वहाँ से इनके पिता आगरा में आकर स्थायी रूप से रहने लगे थे। ये आठ वर्ष के थे तो इनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया। जब १६ वर्ष के हुए तो विद्याध्ययन के लिए काशी पहुँचे। उन दिनों काशी में पं० कृपाराम जी ने एक पाठशाला खोल रखी थी, जिसमें पं० काशीनाथ जी पढ़ाते थे। आचार्य गंगादत्त जी भी उन दिनों उसी पाठशाला में अध्ययनाध्यापन करते थे। पं० भीमसेन जी ने अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी का कुछ भाग पं० काशीनाथ जी से पढ़ा। फिर काशी संस्कृत कालेज में महामहोपाध्याय श्री भगवताचार्य जी से पढ़ने लगे और वहाँ से मध्यमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। काशी में सात वर्षों तक रहकर व्याकरण, दर्शन और साहित्य में पाण्डित्य प्राप्त करके लौटे। इनके संतान थी- तीन पुत्र, एक पुत्री, ज्येष्ठ डॉ० हरिदत्त शास्त्री, द्वितीय श्री शिवदत्त शास्त्री तथा कनिष्ठ श्री विश्वनाथ थे। इनमें छोटे पुत्र श्री विश्वनाथ तथा पुत्री विजया का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था।

ये जिन दिनों काशी में रहते थे तो इनका हिन्दी के ओजस्वी लेखक 'सुदर्शन' पत्र के तत्कालीन सम्पादक पं० माधवप्रसाद मिश्र के साथ अच्छा परिचय हो गया था। 'सुदर्शन' इनका प्रिय पत्र था। काशी से लौटते हुए इन्होंने कुछ दिन कानपुर में भी निवास किया। वहाँ इनकी घनिष्ठता पं० प्रतापनारायण मिश्र के साथ हो गयी। उनके द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मण' पत्र के भी ये पूर्ण भक्त थे। हिन्दी के लेखकों में मिश्र जी तथा पं० बालकृष्ण भट्ट जी के प्रति इनकी विशेष श्रद्धा थी। 'परोपकारी' और 'भारतोदय' में लेख 'कश्चिद् ब्राह्मणः' इस नाम से ही प्रकाशित होते थे। हिन्दी तथा संस्कृत पर इनका अच्छा अधिकार था। ये संस्कृत कविता भी लिखते थे।

इन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं जिनमें योगदर्शन पर भोजवृत्ति का अनुवाद, संस्कार- विधि का भाष्य तथा शंकर मिश्र के 'भेदरत्न' का हिन्दी भाषान्तर 'द्वैतप्रकाश' मुख्य है। ये प्रकाशित भी हो चुके हैं, इसके अलावा 'सर्वदर्शन-संग्रह' ग्रन्थ की ग्रन्थियों को भी बड़ी मार्मिकता से खोला था। इस ग्रन्थ की इनके गुरुजी पं० काशीनाथ जी ने भी प्रशंसा की थी, किन्तु दुर्भाग्यवश छपने के लिए जाते समय यह कहीं गुम हो गया। जिसका इन्हें अन्तकाल तक दुःख रहा।

काशी से प्रत्यागमन--- दिल्ली-निवास

काशी में शिक्षा समाप्त करके इन्होंने दिल्ली की आर्यसमाज पाठशाला में अध्यापन कार्य किया। इन्हीं दिनों सितम्बर १८९७ ई० में सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) आर्यसमाज के महोत्सव पर इनका परिचय श्री पद्मसिंह शर्मा के साथ हुआ। उत्सव के बाद ये बीमार हो गये और बड़ी कठिनाई से दिल्ली पहुँचे। इनके साथ पं० पद्मसिंह शर्मा भी थे। उन्हें ये आग्रहपूर्वक ही दिल्ली लाये थे। बाद में स्वस्थ होने पर वे सिकन्दराबाद चले गये, तभी से इनकी पं० पद्मसिंह जी के साथ घनिष्ठता बढ़ती गयी।

अजमेर-निवास

दिल्ली में इन्होंने लगभग डेढ़ वर्ष तक निवास किया। यहाँ से ये वैदिक यन्त्रालय अजमेर गये, यहाँ इन्हें संशोधन का कार्य सौंपा गया। उन दिनों यहाँ वेदों की मूल संहिताएं छप रही थीं। अतः इनके सम्पादकत्व में ही यह कार्य सम्पन्न हुआ। इन्हीं दिनों कुछ समय तक प्रेस में मैनेजर भी रहे।

---

1. इतिहास खंड ::29

सिकन्दराबाद गुरुकुल में अध्यापन

लगभग १९०० ई० में ये अजमेर से सिकन्दराबाद गुरुकुल में आ गये और कई वर्षों तक वहाँ अध्यापन कार्य किया। उन दिनों पं० पद्मसिंह शर्मा, अहार (बुलन्दशहर) की वैदिक संस्कृत पाठशाला में मुख्याध्यापक थे। इन दिनों इनका परस्पर संस्कृतमय पत्र व्यवहार हुआ, जो पं० पद्मसिंह शर्मा जी के पास बहुत दिनों तक अक्षय निधि के रूप में सुरक्षित रहा। सन् १९०० ई० के श्रावण मास में दिल्ली में सम्पन्न अखिल भारतीय सनातन धर्म महामण्डल में विद्वानों का परिचय इनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से हुआ।

तिलहर के लिए प्रस्थान

सिकन्दराबाद गुरुकुल में अध्यापन करते हुए इनका तत्कालीन मुख्याधिष्ठाता स्वामी शान्त्यानन्द के साथ प्रबन्ध-सम्बन्धी मतभेद हो गया। अतः इन्होंने गुरुकुल छोड़ दिया और पं० चिम्मनलाल जी की प्रार्थना पर तिलहर (शाहजहाँपुर) चले गये।

काँगड़ी गुरुकुल में आगमन एवं पुस्तक-लेखन

महात्मा मुंशीराम तथा आचार्य गंगादत्त जी के आग्रह से ये तिलहर से काँगड़ी गुरुकुल में आ गये। इनके वहाँ आने के कुछ दिनों बाद सन् १९०४ ई० के अन्त में पं० पद्मसिंह शर्मा भी गुरुकुल काँगड़ी में आ गये थे। यहाँ पं० भीमसेन जी ने गुरुकुल के लिए आर्य-सूक्ति-सुधा, संस्कृतांकुर और काव्य-लतिका ये तीन संस्कृत पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। आचार्य गंगादत्त जी एवं इनके भगीरथ प्रयास से पं० श्री काशीनाथ जी ने भी यहाँ काँगड़ी गुरुकुल में रहना स्वीकार कर लिया था।

इस समय के सम्बन्ध में पं० पद्मसिंह शर्मा जी के उद्गार इस प्रकार हैं-

"गुरुकुल आज भी है और उन्नति की मध्याह्न दशा में है, पर गुरुकुल का वह प्रभात समय बड़ा ही रम्य और मनोरम था। उस वक्त का गुरुकुल अपनी अनेक विशेषताओं के कारण स्थायी प्रभाव छोड़ गया है, उसकी स्मृति किसी और ही दशा में पहुँचा देती है, उसका वर्णन नहीं हो सकता।"

छोटे भाई का देहान्त एवं काव्य-रचना

जब पं० भीमसेन शर्मा गुरुकुल काँगड़ी में आचार्य गंगादत्त एवं पं० पद्मसिंह शर्मा के साथ साहित्यिक चर्चाओं का आनन्द ले रहे थे, तभी एक दुःखद घटना हुई। इनके छोटे भाई रामसहाय जी का युवावस्था में ही आगरा में देहान्त हो गया। इसका इनके हृदय पर गहरा आघात लगा, क्योंकि उन्हें ये बहुत प्रेम करते थे। इसके अलावा उनका विवाह भी हो गया था। अतः बाल-विधवा की कारुणिक दशा को देखकर इनका कोमल हृदय रो उठता था। पं० पद्मसिंह जी शर्मा ने इस समय का अपने संस्मरण में अन्तस्तल-स्पर्शी चित्रण किया है।

एक बार उन्होंने ऐसी दशा में मौलाना हाली की 'मनाजाते बेवा' के कुछ छन्द सुनाये। उसे सुनकर इनके रोते-रोते आँसू सूख गये, आँखें सूज गईं, सन्नाटा छा गया, बड़ी मुश्किल से तबीयत संभाली। उनकी ऐसी दशा देखकर पं० पद्मसिंह जी ने एक बार उनसे 'मनाजाते बेवा' का संस्कृत पद्यानुवाद करने का आग्रह किया, जिसे स्वीकार कर इन्होंने 'विधवाविविनय' नाम से इसका अनुवाद किया, जिसके सम्बन्ध में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने कहा था कि- "हमें तो अनुवाद भी मूल सा पसन्द आया।"

इस कृति के कुछ अंशों का प्रकाशन पं० पद्मसिंह शर्मा जी ने 'परोपकारी' पत्र में भी किया, किन्तु अभी तक वह पुस्तकाकार में प्रकाशित नहीं हो सका। वस्तुतः यही संस्कृत काव्य-कृतियों का दुर्भाग्य है।

गुरुकुल काँगड़ी का परित्याग एवं भोगपुर निवास

इसके पश्चात् १९०८ के प्रारम्भ में अध्ययन-प्रणाली और प्रबन्ध-विषय मतभेद के कारण आचार्य गंगादत्त एवं इन्होंने गुरुकुल काँगड़ी को छोड़ दिया और महात्मा मुंशीराम जी के रोकने पर भी नहीं रुके। गुरुकुल छोड़ने के बाद इन्होंने बाबू प्रतापसिंह जी के साथ भोगपुर (देहरादून) में निवास किया।

ज्वालापुर महाविद्यालय में आगमन एवं वर्षों तक सेवा

इधर ज्वालापुर में नहर के किनारे स्वामी दर्शनानन्द जी ने गुरुकुल महाविद्यालय खोल रखा था। स्वामी दर्शनानन्द जी को गुरुकुल खोलने की एक धुन थी। आर्यसमाज में वर्तमान गुरुकुल-पद्धति के प्रथम प्रवर्तक वही थे। कार्यक्षेत्र में वह किसी कार्यक्रम, नियम या प्रबन्ध के पाबन्द न थे। 'आगे दौड़ पीछे छोड़' उनकी नीति थी। महाविद्यालय का काम अभी जमा न था, न कोई फण्ड था, न कमेटी, सर्व-शून्य-दरिद्रता का राज्य और अव्यवस्था का दौर था। तभी गुरुकुल काँगड़ी तथा ज्वालापुर महाविद्यालय में प्रबल प्रतिद्वन्द्विता उपस्थित हो गयी। कुछ समय तक स्वामी जी ने काँगड़ी गुरुकुल का डटकर मुकाबला किया, किन्तु अपने स्वभाव के अनुसार अन्ततः महाविद्यालय को इसी दशा में छोड़ पंजाब चले गये। महाविद्यालय के कुछ अध्यापक एवं विद्यार्थी भी चलते बने। महाविद्यालय टूटने लगा। यह सन् १९०८ की बात है।

इधर भोगपुर में रहते-रहते पं० भीमसेन जी का मन ऊबने लगा था तो उन्होंने पं० पद्मसिंह शर्मा को आवश्यक बातें करनी हैं, ऐसा कहकर भोगपुर आने के लिए लिखा। उनके आने पर इन्होंने उनसे नये गुरुकुल की स्थापना के प्रस्ताव पर सम्मति माँगी तो उन्होंने इन्हें ज्वालापुर महाविद्यालय में जाने की सम्मति दी और कहा-

'किसी गुरुकुल संस्था में ही रहने का विचार है तो फिर महाविद्यालय ज्वालापुर में ही चलकर बैठिये। एक बना बनाया महाविद्यालय काम करने वालों के अभाव में नष्ट हो रहा है, उसे सँभालिये। नये मन्दिर के निर्माण की अपेक्षा पुराने का जीर्णोद्धार कहीं श्रेयस्कर है।'

इस पर इन्होंने काँगड़ी गुरुकुल के साथ संघर्ष की बात कही तो भी पं० पद्मसिंह जी ने नये गुरुकुल की सम्मति नहीं दी।

अन्त में स्वामी दर्शनानन्द एवं बाबू सीताराम जी के प्रयास से इन्होंने महाविद्यालय में आना स्वीकार कर लिया। उस समय महाविद्यालय में आकर बैठना बड़े साहस का कार्य था। दूसरे साथियों की हिम्मत न पड़ती थी। प्रारम्भ में इनके साथ आने को कोई साथ सहमत नहीं था। फिर भी ये अकेले ही यहाँ आकर डट गये। शनैः-शनैः और लोग भी यहाँ आ गये और काम चल निकला, महाविद्यालय-तरु उखड़ते-उखड़ते पुनः जम गया। वस्तुतः तो महाविद्यालय को महाविद्यालय बनाने का बहुत कुछ श्रेय पण्डित जी को ही है।

पं० भीमसेन जी शर्मा सन् १९०८ से १९२५ ई० तक अविच्छिन्न रूप से महाविद्यालय के साथ मुख्याध्यापक के रूप में सम्बन्धित रहे। यद्यपि बीच में और लोग भी मुख्याध्यापक पद पर रहे, किन्तु फिर भी मुख्याध्यापक पद से इनका ही बोध होता था। अतः मुख्याध्यापक जी इनका दूसरा नाम हो गया था। कुछ समय तक इन्होंने महाविद्यालय सभा के मंत्री पद पर भी कार्य किया। बीच में कुछ दिन के लिए देवलाली (नासिक) गुरुकुल के आचार्य भी रहे। किन्तु उस समय भी उन्हें महाविद्यालय का ध्यान निरन्तर रहा। कुछ कार्यकर्ताओं के साथ वैमनस्य बढ़ जाने के कारण सन् १९२५ ई० में इन्होंने महाविद्यालय को छोड़कर संन्यास ले लिया। संन्यासाश्रम का इनका नाम 'स्वामी भास्करानन्द सरस्वती' था। महाविद्यालय से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर भी इन्होंने कई बार महाविद्यालय की सहायता की। महाविद्यालय की अन्तरंग सभा के सदस्य होने के कारण बराबर इनका आना महाविद्यालय होता रहता था।

शरीर और स्वभाव

पण्डित जी का शरीर दुबला-पतला कद मध्यम था। बड़ी-बड़ी आँखें, गौर वर्ण, हंसमुख चेहरा, सुन्दर आकृति, सरल प्रकृति, अभिमानशून्य स्वभाव यह सब उनके पाण्डित्य के साथ सोने में सुहागे सदृश थी। वे स्पष्ट वक्ता एवं तेजस्वी ब्राह्मण थे। निरभिमानी होते हुए भी स्वाभिमानी थे। किसी का अनुचित व्यवहार उन्हें सह्य नहीं था। शालीन थे, किन्तु दब्बूपन और चाटुकारिता से नफरत करते थे। उनका स्वर मधुर था और पद्य पढ़ने का ढंग बड़ा ही मनोहर था। वर्णों का उच्चारण बड़ा ही स्पष्ट और विशुद्ध था। शास्त्रार्थ की शैली मे वे दक्ष थे। बड़े अच्छे संशोधक होने के साथ-साथ गुणग्राही एवं कृतज्ञ थे। परिहास-प्रिय थे, हृदय करुण था। करुण कविता पढ़ते एवं सुनते समय गद्‌गद् हो जाते थे। जगद्धरभट्ट की "स्तुति-कुसुमाञ्जलि" और अमरचन्द्र सूरिकृत 'चारु भारत' उनके प्रिय ग्रन्थ थे, उन्हें पढ़ते समय वे प्रायः तन्मय हो जाते थे। उनकी आवाज ओजपूर्ण थी, जो सुनने वालों के हृदय को पिघला देती थी। संस्कृत बोलने का अच्छा अभ्यास था। वे धाराप्रवाह संस्कृत बोलते थे। जब कोई विशुद्ध धाराप्रवाहिक संस्कृत बोलने वाला मिल जाता था तो बहुत प्रसन्न होते थे और बार-बार उसकी प्रशंसा करते थे।

शिष्य परम्परा

इनकी सारी उम्र संस्कृत भाषा के प्रचार में ही व्यतीत हुई। ऐसे बहुत कम विद्वान् हैं, जिन्होंने विद्या का इतना प्रचार किया हो। इनके पढ़ाये हुए शिष्यों की संख्या सैकड़ों में है, जिनमें उत्तम, मध्यम, तीर्थ, शास्त्री, आचार्य सब प्रकार के शिष्य हैं। आर्यसमाज में तो इनके शिष्यों का एक जाल सा बिछा हुआ है। गुरुकुलों तथा दूसरे संस्कृत विद्यालयों में इनके शिष्य आचार्य और अध्यापक पदों पर कार्यरत हैं। बहुत से उपदेशक, प्रचारक, कवि तथा लेखक भी हैं। इनके शिष्यों में भी 'मुनिचरितामृतम्' इत्यादि काव्यों के रचयिता पं० दिलीपदत्त शर्मा उपाध्याय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने इनके अन्तिम समय में मनोयोग से सेवा करने का भी सुयोग्य प्राप्त किया।

रोग और निरवधिक वियोग

पण्डित जी अपने जीवन काल में बहुमूत्र रोग से पीड़ित रहे। इस भयानक रोग ने उनके शरीर को मानो चर लिया था। इसीलिए ये सदा दुबले-पतले और निर्बल रहे। प्रारम्भ में रोग की चिकित्सा भी बहुत की, किन्तु कोई लाभ न हुआ, अपितु बढ़ता ही गया। इन्हें प्रायः आधा-आधा घण्टे बाद पेशाब जाना पड़ता था। उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जब तक यज्ञोपवीत उनके गले में रहा तो कान पर ही टंगा रहा। निर्बलता होते हुए भी शरीर से आलस्य एवं अकर्मण्यता नहीं थी। स्वभाव में लापरवाही थी, किन्तु उत्साही भी थे। कभी अपने काम से कभी संस्था के काम से बराबर इधर-उधर घूमते रहते थे। भ्रमण में अधिक रहने के कारण खान-पान में नियम, संयम तथा परहेज आदि निभ नहीं पाता था। अपने अन्तिम काल में इसी कारण लगभग दो वर्षों तक निरन्तर रुग्ण रहे। सन् १९२८ ई० के ज्येष्ठ मास के दशहरा से कनखल के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामचन्द्र शर्मा की चिकित्सा चल रही थी तो कुछ आराम देखकर गुरुकुल सिकन्दराबाद चल गये। साथ में इनके प्रिय शिष्य पं० दिलीपदत्त उपाध्याय भी थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा, भक्ति एवं सच्ची लगन से पण्डित जी की सेवा की। किन्तु अकस्मात् स्वास्थ्य गिरता गया। मेरठ के वैद्यराज पं० हरिशंकर शर्मा और पं० रामसहाय जी बराबर चिकित्सा करते रहे, किन्तु लाभ न हुआ।

ऐसे समय में इन्होंने पं० रामचन्द्र वैद्य को कई बार याद भी किया। किन्तु व्यस्तताधिक्य के कारण वे सिकन्दराबाद न जा सके, अतः सभी की यह अन्तिम इच्छा पूर्ण न हो सकी। अन्ततः एक मास तक बीमार रहकर शुद्ध श्रावण बदि ६, सोमवार संवत् १९८५ (दिनांक ९.७.१९२८ ई०) को पण्डित जी ने इस भौतिक शरीर को त्यागकर परमपद प्राप्त किया।

– सम्पादक

आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

गुरुकुल महाविद्यालय की सुदीर्घकाल तक सेवा एवं संवर्धना करने वालों में परमत्यागी एवं तपस्वी आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ का नाम सदा स्मरण किया जाता रहेगा। यूँ तो कार्य का क्षेत्र एवं उत्तरदायित्व का कोई पद शेष नहीं रहा, जिसे उन्होंने न संभाला हो। वे महाविद्यालय के प्रतिष्ठित सदस्य रहे, अन्तरंग सदस्य रहे, विद्यालय के सदस्य रहे, मन्त्री रहे, उपप्रधान रहे, प्रधान रहे, आचार्य मुख्याध्यापक रहे, मुख्याधिष्ठाता रहे तथा कुलपति आदि पदों को सुशोभित करते रहे। वे कुछ वर्षों तक 'भारतोदय' के सम्पादक भी रहे। आरम्भ के १९०८ से लेकर १९१३ ई० तक उस कठिन समय में उन्होंने मुख्याधिष्ठाता के दायित्वपूर्ण पद पर रहते हुए अपनी सुव्यवस्था से महाविद्यालय की नींव को सुदृढ़ बनाया। १९०७ ई० में जब महाविद्यालय के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द जी भी इसे छोड़कर चल दिए थे, दानवीर माननीय बाबू सीताराम जी ने अपनी भूमि तो दी ही, इसे चलाने के लिए अथक परिश्रम करके आचार्य पं० गंगादत्त शास्त्री, पं० भीमसेन शर्मा साहित्याचार्य (आगरावासी), पं० पद्मसिंह शर्मा एवं पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ को यहाँ जुटाकर उन्हें इसके संचालन का कार्य सौंपा। बाद में श्री रविशंकर शर्मा का भी सहयोग प्राप्त हो गया। पं० गंगादत्त जी शास्त्री ने आचार्यत्व का भार संभाला, पं० भीमसेन शर्मा मुख्याध्यापक बने एवं पं० नरदेव शास्त्री को मुख्याधिष्ठाता का कठिन कार्य सौंपा गया, जिसे उन्होंने अपनी कुशलता, लगन एवं परिश्रम से निभाया।

आचार्य नरदेव शास्त्री का जन्म २१ अक्तूबर, सन् १८८० में श्री श्रीनिवास राव के घर में श्रीमती कृष्णाबाई के गर्भ से हुआ था। पिता हैदराबाद राज्य में उच्च पद पर कार्य करते थे। परिवार प्रतिष्ठित एवं संपन्न था। इनके पिता श्रीनिवासराव सुशिक्षित एवं विवेकशील थे, परन्तु अतिक्रोधी थे। माता धार्मिक विचारों की थीं, किन्तु अति हठी। ये दोनों ही गुण- क्रोध और हठ श्री नरदेव शास्त्री को पैतृक-सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुए थे। शास्त्री जी का जन्म का नाम नरसिंहराव था। आचार्य गंगादत्त जी के सम्पर्क में आने पर उन्होंने इनका नाम 'नरदेव' कर दिया। बाद में वे इसी 'नरदेव' नाम से ही प्रसिद्ध हुए और 'शास्त्री' (पंजाब की) तथा 'वेदतीर्थ' (कलकत्ता की) परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लेने पर, ये दोनों भी उनके मूल नाम के साथ जुड़ गयीं और उनका पूरा नाम हो गया 'नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ'। वैसे सामान्य रूप से लोग उनको 'शास्त्री जी' एवं समीप के लोग 'राव जी' कहकर पुकारते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा

श्री नरदेव शास्त्री के पूर्वज किसी समय महाराष्ट्र से कर्नाटक में जा बसे थे। उस समय की निजाम हैदराबाद की रियासत में रायचूर के पास हचोली नामक ग्राम में बस गये थे। वहीं इनका जन्म हुआ था और मराठी की आरम्भिक शिक्षा भी वहीं हुई। जब वे सात वर्ष के थे, इनके पिता श्री श्रीनिवास राव का स्थानान्तरण निजाम राज्य के धाराशिव नामक स्थान में हो गया। यहाँ मास्टर बापूराव और मास्टर गणपतराव से वे मराठी पढ़ते रहे और घर पर इनके पिताजी इन्हें हिन्दी भी सिखाते थे, यहाँ ये तीसरी कक्षा तक पढ़े। इसके पश्चात् पढ़ने के लिए इन्हें पूना भेजा गया। वहाँ इनके दो बड़े भाई नारायण राव और भीमराव फर्ग्यूसन कालेज, पूना की शाखा न्यू इंगलिश स्कूल में पढ़ते थे। इन्हें म्यूनिसपलिटी के स्कूल नं० ३ की तीसरी कक्षा में ही भरती कराया गया। वहाँ उस समय इनकी कक्षा में ही लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का पुत्र विश्वनाथ भी पढ़ता था। इस स्कूल में एक वर्ष ही पढ़े। इसके पश्चात् इन्हें नूतन मराठी विद्यालय की चतुर्थ श्रेणी में प्रविष्ट कराया गया। अब यह स्कूल 'न्यू पूना कालेज' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी वर्ष इनका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी धूमधाम से सम्पन्न कराया गया। उस युग में, लगभग एक हजार रुपया इनके पिताजी ने इस कार्य पर खर्च किया। वस्तुतः दक्षिण में ब्राह्मण परिवारों में उपनयन संस्कार का आयोजन विराट् रूप में किया जाता है।

श्री रावजी विद्याध्ययन करते हुए पूना में १८९४ ई० तक रहे। इस बीच में पूना की परिस्थितियों का उनके मन पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनके सार्वजनिक जीवन का बीजारोपण यहीं हुआ। जहाँ लोकमान्य तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री पाटनकर, श्री नामजोशी, श्री आपटे जैसे महानुभावों के प्राय: दर्शन होते रहते हों, जहाँ महात्मा रानाडे की सौम्य मूर्ति को देखकर सात्त्विक भावों का उद्रेक होता हो, जहाँ इन महानुभावों के तथा महाराष्ट्रीय विद्वानों के भाषण एवं विचार सुनने के अवसर प्राय: मिलते हों, जो पूना महाराष्ट्र प्रदेश का बहुत महत्त्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र है, जो मरहठों एवं पेशवाओं की राजधानी रह चुका है, उस पुण्य भूमि (पुण्य पत्तन) का उनके मन पर प्रभाव कैसे न पड़ता। उन्होंने नूतन मराठी विद्यालय में पढ़ते हुए छह श्रेणियों पर्यन्त मराठी का समस्त कोर्स समाप्त कर लिया और अंग्रेजी का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस विद्यालय के हेडमास्टर श्री हरिनारायण आपटे थे। ये महाराष्ट्र के प्रसिद्ध उपन्यासकार थे। इनके बड़े भाई ने संस्कृत के उद्धारार्थ एक लाख पचीस हजार रुपया दिया था। जिससे 'आनन्द आश्रम' संस्था स्थापित हुई थी। इस संस्था ने संस्कृत के अनेक विलुप्त एवं अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन किया है। यह भारतवर्ष में 'आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला' के नाम से प्रसिद्ध है।

इधर राव जी पूना में पढ़ रहे थे और उधर उस्मानाबाद (धाराशिव) में, जहाँ उनके पिताजी रहते थे, उनकी भविष्य की शिक्षा के लिए एक नयी योजना बन रही थी। बात यह हुई कि जिन दिनों इनके पिताजी धाराशिव में थे, उन्हीं दिनों पातुर बराड़ के प्रसिद्ध रईस डॉ० गोविन्द सिंह वहाँ रहते थे। ये आर्यसमाजी विचारों के थे और इनके साथ राव जी के पिताजी की घनिष्ट मित्रता थी। इन्हीं के सम्पर्क से रावजी के पिताजी के विचार भी आर्यसमाजी हो गये थे। डा० गोविन्द सिंह के परामर्श से रावजी को लाहौर के डी०ए०वी० कालेज में प्रविष्ट कराने का आयोजन हो रहा था। नवम्बर १८९४ ई० के अन्तिम सप्ताह में श्री रावजी, उनके बड़े भाई भीमराव, छोटे भाई व्यंकट राव, पिताजी एवं डा० गोविन्द सिंह पाँचों व्यक्ति लाहौर के लिए चल पड़े। पूना होकर बम्बई पहुँचे। वहाँ आर्यसमाज में इनके पिताजी और डा० गोविन्द सिंह के भाषण हुए। ये बम्बई से अजमेर, जयपुर, हिसार, फिरोजपुर होते हुए लाहौर पहुँचे थे।

लाहौर में शिक्षा

उस समय आर्यसमाज दो दलों में बटा हुआ था। एक का नाम था कल्चर्ड पार्टी, जिसका नेतृत्व म० हंसराज करते थे। जिसे बाद में 'कालेज पार्टी' के नाम से लोग पुकारने लगे। दूसरे दल का नाम था महात्मा पार्टी, जिसका नेतृत्व महात्मा मुंशीराम जी करते थे, बाद को इसे गुरुकुल पार्टी के नाम से लोग पुकारने लगे। नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में दोनों ही दलों की आर्यसमाजों का वार्षिक उत्सव मनाया जा रहा था। महात्मा पार्टी का आर्यसमाज मन्दिर बच्छोवाली में और कल्चर्ड पार्टी का आर्यसमाज अनारकली में था। जब रावजी के पिताजी अपने तीनों पुत्रों और मित्र डा० गोविन्दसिंह के साथ लाहौर के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे तो दोनों ही पार्टियों के स्वयंसेवक वहाँ उपस्थित थे। कहाँ जाएं इस पर कुछ समय सोच-विचार करने के पश्चात् उन्होंने बच्छोवाली आर्यसमाज जाना निश्चित किया। वहाँ म० मुंशीराम, पं० भीमसेन शर्मा (इटावा निवासी), मास्टर आत्माराम, पण्डित लेखराम प्रभृति लोगों के दर्शन किए एवं व्याख्यान सुने। दूसरे दल के समाज में भी गये और वहाँ म० हंसराज एवं लाला लाजपतराय के भाषण सुने। उत्सवों की समाप्ति पर, बहुत सोच-विचार के पश्चात् पिताजी ने तीनों बच्चों को डी०ए०वी० हाईस्कूल में प्रविष्ट न कराकर २ दिसम्बर, १८९४ ई० को दयानन्द हाईस्कूल (महात्मा पार्टी) में प्रविष्ट कराया तथा निवास के लिए आर्य-विद्यार्थी-आश्रम में प्रविष्ट कराया। यहाँ मास्टर तोतारामजी वार्डन थे। स्कूल के हेडमास्टर आचार्य दुर्गाप्रसाद थे। इसी स्कूल से रावजी ने १८९६ में मिडिल पास किया। इसके पश्चात् इस स्कूल की स्थिति ठीक न रहने के कारण सरदार दयालसिंह के 'युनियन एकेडेमी' नामक स्कूल में प्रविष्ट हुए। यही स्कूल बाद को 'दयालसिंह कालेज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यहीं से सन् १८९८ में उन्होंने एण्ट्रेन्स परीक्षा पास की। विद्यार्थी आश्रम में रावजी चार वर्ष

रहे । इसी अवधि में पं० पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य भी यहाँ रहते थे । प्रथम परिचय उनसे यहीं हुआ । इसके बाद घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण, पिताजी ने सभी को घर आने के लिए लिखा। दोनों भाई तो चले गये, किन्तु रावजी लाहौर में ही रहे। परन्तु उन्हें अत्यधिक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ऐसे ही समय में बच्छोवाली आर्यसमाज के प्रधान लाला जीवनदास ने एक पत्र देकर इन्हें जालन्धर में म० मुंशीराम जी के पास भेज दिया। उन्होंने इन्हें धैर्य बँधाया एवं अपने मकान के पास ही स्थित 'वैदिक आश्रम' में ले गये एवं वहाँ पं० गंगादत्त शास्त्री से कहा कि 'आपके लिए एक योग्य शिष्य लाया हूँ' इतना कहकर चले गये । तब जून १८९८ में पं० गंगादत्त जी शास्त्री से जो परिचय हुआ, वह कभी छिन्न नहीं हुआ । कुछ दिनों के पश्चात् वे दोनों जालन्धर से गुजरांवाला (पश्चिमी पंजाब) चले गये । इन्हीं दिनों गुरुकुल स्थापित करने की योजना बनी । म० मुंशीराम जी ने इसके लिए ३० हजार रुपया एकत्र करने की प्रतिज्ञा की । श्री रलाराम ने गुरुकुलशिक्षा प्रणाली का प्रचार करने के लिए अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी । म० मुंशीराम जी एवं श्री रलाराम में गुरुकुल के स्थान को लेकर मतभेद हो गया । श्री रलाराम चाहते थे कि गुरुकुल गुजरांवाला में रहे । म० मुंशीराम जी एवं पं० गंगादत्त शास्त्री हरिद्वार में बनाने पर विचार कर रहे थे । इसी समय नजीबाबाद के ला० अमनसिंह ने गुरुकुल के लिए कांगड़ी ग्राम दान में दिया और हरिद्वार में गुरुकुल की स्थापना का पक्ष प्रबल हो गया । २६ जून १९०० को पं० गंगादत्त जी और रावजी दोनों गुजरांवाला से जालन्धर आये और वहाँ से २९ जून को हरिद्वार । यहाँ कनखल में भारामल के बगीचे में ठहरे । जैसे पूना से पंजाब में आने पर पूना-स्मृति आती रहती थी और घर से पूना आने पर घर की, उसी प्रकार उत्तर प्रदेश में आने पर निरन्तर पंजाब की स्मृति आती रहती थी । यहाँ कुछ दिन रहकर आचार्य गंगादत्त जी एवं रावजी दोनों सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) चले गये और वहाँ से आचार्य जी के जन्मस्थान बेलोन । जिन दिनों रावजी पंजाब में थे, तभी 'सद्धर्म-प्रचारक' में कुछ आपत्तिजनक लेख छपने के कारण उन पर एक मुकदमा चला था, किन्तु बाद को निर्दोषी घोषित कर दिए गए थे ।

बेलोन में राव जी ने आचार्य गंगादत्त जी से नवाह्निक महाभाष्य पढ़ा । इसे उन्होंने आद्योपान्त कण्ठस्थ कर लिया था । बेलोन से आचार्य गंगादत्त जी और रावजी पुनः कनखल में भारामल की बगीची में आ गये । अजमेर के बा० रामविलास शारदा के आमन्त्रण पर रावजी शतपथब्राह्मण के पाठ-संशोधन के लिए अजमेर चले गये । वहाँ प्रधान संशोधक के पद पर उन्होंने सात-आठ महीने कार्य किया । यहाँ वैदिक प्रेस में उन्होंने महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भी देखा । उस समय डॉ० केशवदेव शास्त्री प्रेस के प्रबन्धक थे । श्री रावजी अजमेर से गुरुकुल कांगड़ी आये । उस समय श्री गंगादत्त शास्त्री गुरुकुल के प्रथम आचार्य बनकर वहाँ आ चुके थे । ३-४ महीने वहाँ रहे और इस बीच छात्रों को पढ़ाते रहे । यहाँ से ग्वालियर चले जाने पर वहाँ के मूर्धन्य विद्वानों से उन्होंने कादम्बरी, साहित्यदर्पण, नलचम्पू आदि ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन किया । इसके पश्चात् उन्होंने १९०२ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा पास की और १९०४ में काशी में जाकर म०म० अम्बादास शास्त्री से रसगंगाधर आदि उच्चकोटि के साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन किया । काशी से वे सिकन्दराबाद के गुरुकुल में आये। उनके प्रयत्न से ही गुरुकुल सिकन्दराबाद को आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने अपने अधीन ले लिया और सिकन्दराबाद से इसका स्थानान्तरण फर्रुखाबाद कर दिया । फिर वहाँ से यह वृन्दावन चला गया और तब से यह 'गुरुकुल वृन्दावन' नाम से प्रख्यात है । सिकन्दराबाद के प्रमुख व्यक्तियों ने उसी पुराने गुरुकुल के स्थान पर एक नये गुरुकुल की स्थापना कर दी । वहाँ के पं० मुरारीलाल शर्मा (शास्त्रार्थ-महारथी) एवं उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री देवेन्द्रनाथ शास्त्री ने गुरुकुल की बहुत सेवा की ।

सिकन्दराबाद में कुछ समय रहकर श्री नरदेव शास्त्री जी वेदों का अध्ययन करने के लिए कलकत्ता चले गये । वहाँ वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्री सत्यव्रत सामश्रमी से निरुक्त, ऐतरेय ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, ऋग्वेद के दो अष्टक (सभाष्य), सामवेद आदि का अध्ययन किया । श्रौतसूत्रों में आश्वलायन श्रौतसूत्र, बौधायन एवं आपस्तम्ब का भी अध्ययन किया। यहीं रहते हुए १९०६ में ऋग्वेद में वेदतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की । तभी से उनके नाम के साथ यह 'वेदतीर्थ' भी जुड़ गया । इनके गुरु पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने काशी में महर्षि दयानन्द का जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें मध्यस्थता की थी । कलकत्ता में रहते हुए

नरदेवजी को सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिनचन्द्र पाल आदि के भाषणों को सुनने का अवसर मिला। शिवाजी महोत्सव के अवसर पर लोकमान्य तिलक के बाईस व्याख्यान हुए। यहाँ रहते हुए राजनीतिक नेताओं से भी उनका परिचय हुआ। देशरत्न बा० राजेन्द्रप्रसाद से भी उनका प्रथम बार यहीं परिचय हुआ। यद्यपि जिस समय रावजी पूना में थे, उस समय भी अनेक राष्ट्र के गणमान्य व्यक्तियों के दर्शन करने एवं भाषण सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था, किन्तु उस समय उनकी उम्र बहुत कम थी, परन्तु सन् १९०५-१९०७ में कलकत्ता निवास के समय वे २५ वर्षीय सुशिक्षित युवक थे। इसलिए पूना-निवास में राष्ट्रीय संस्कारों का जो बीजारोपण हुआ था, वह पुनः विपिनचन्द्र पाल और लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं के भाषणों से अङ्कुरित हो उठा।

पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी रावजी पर अतिप्रसन्न थे, इसलिए वे रावजी को कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही वेदाध्यापक के रूप में नियुक्त कराना चाहते थे, परन्तु उन्हीं दिनों पं० गंगादत्त जी ने तार देकर उन्हें गुरुकुल कांगड़ी में बुला लिया। उनकी स्वीकृति के बिना ही आचार्य गङ्गादत्त जी और म० मुन्शीराम जी ने गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक के रूप में उनकी नियुक्ति कर दी। उस समय उच्चश्रेणी में श्री इन्द्र, श्री हरिश्चंद (दोनों म० मुन्शीराम जी के पुत्र) एवं श्री जयचन्द्र- तीन ही विद्यार्थी थे, उनको वे महाभाष्य और निरुक्त आदि पढ़ाने लगे। उस समय गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य गङ्गादत्त जी आचार्य थे और पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० भीमसेन साहित्याचार्य, प्रो० सियाराम जी और रावजी प्रभृति अध्यापक थे और उन्हीं दिनों म० मुन्शीराम जी ने श्री रामदेव को गुरुकुल में मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया। श्रीरामदेव जी अंग्रेजी के पक्षपाती थे। तीसरी कक्षा से ही अंग्रेजी चलाना चाहते थे, अतः आचार्य गंगादत्त जी से शिक्षा-सम्बन्धी मतभेद के कारण गुरुकुल छोड़कर चले गये। उनके पश्चात् पं० भीमसेन जी, पं० पद्मसिंह, नरदेव शास्त्री, प्रो० सियाराम आदि भी गुरुकुल छोड़कर चले गये। पं० पद्मसिंह शर्मा कुछ समय पूर्व ही 'परोपकारी' पत्र के सम्पादक होकर अजमेर चले गये थे। गुरुकुल से जाने के पश्चात् आचार्य गंगादत्त जी तो ऋषिकेश चले गये और पं० भीमसेन जी बा० प्रतापसिंह के साथ भोगपुर (देहरादून) चले गये और वहीं रहने लगे। म० मुन्शीराम जी ने आचार्य जी को राजी करके एक बार पुनः गुरुकुल में लाने का प्रयत्न किया, किन्तु प्रो० रामदेव जी के उद्धत स्वभाव के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। इधर स्वा० दर्शनानन्द जी के प्रयत्न से पं० भीमसेन जी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आ गये। कुछ ही समय पश्चात् बा० सीताराम जी के प्रयत्न से आचार्य गंगादत्त जी भी महाविद्यालय में आ गये। सन् १९०६ में जब सिकन्दराबाद का गुरुकुल आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा फर्रुखाबाद में स्थानान्तरित कर दिया गया तो श्री नरदेव शास्त्री को वहाँ का आचार्य नियुक्त किया गया। फर्रुखाबाद में यह गुरुकुल पन्नालाल के बाग में था। किसी समय इसी स्थान पर महर्षि दयानन्द ने एक संस्कृत की पाठशाला स्थापित की। बाद को उन्होंने उसकी सन्तोषजनक प्रगति न देखकर उसे समाप्त भी कर दिया था। किन्तु बाग का वह स्थान जहाँ पाठशाला थी, अब भी रिक्त था। इसी स्थान पर सिकन्दराबाद के गुरुकुल को यहाँ प्रतिष्ठित किया गया था। ऐसा कहा जाता है कि फर्रुखाबाद स्वामीजी को अतिप्रिय था। पं० नरदेव शास्त्री फर्रुखाबाद के गुरुकुल में लगभग एक वर्ष तक आचार्य के पद पर कार्य करने के पश्चात् शिमला चले गये और गुरुकुल भी उन्हीं के प्रयत्नों से राजा महेन्द्रप्रताप की प्रदत्त भूमि में वृन्दावन चला गया और तब से अब भी वहीं है।

जिन दिनों में नरदेव शास्त्री शिमला में थे, कलकत्ता विश्वविद्यालय में आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी के स्थान पर वेदाध्यापक के पद पर कार्य करने के लिए पर्याप्त आग्रह उनके गुरुजी की ओर से हो रहा था, परन्तु उनका मन नौकरी करने के पक्ष में नहीं था। इधर गुरुकुल महाविद्यालय में आचार्य गंगादत्त जी गम्भीर रूप से बीमार हो गये। तार देकर नरदेवशास्त्री को बुलाया गया। महाविद्यालय में उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था न देखकर उन्होंने म० मुन्शीराम जी को एक पत्र इस आशय का लिखा कि आचार्य जी को यहाँ से ले जाकर उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था गुरुकुल कांगड़ी में कराई जाय। आचार्य जी महाविद्यालय के संचालन का भार अपने प्रिय शिष्य नरदेव जी को सौंपकर म० मुन्शीराम जी के साथ वहाँ

चले गये । गुरुकुल महाविद्यालय में स्थायी रूप से जमने की इच्छा न रहते हुए भी नियति ने उन्हें यहीं जमा दिया । यह बात फरवरी ३, १९०८ ई० की है । उस समय महाविद्यालय में ११ विद्यार्थी थे और बाबू सीताराम की दी हुई तीन बीघा भूमि थी। बीच में 'शान्तिनिकेतन' नाम का बंगला था । ब्रह्मचारियों के रहने के लिए खपरैल के मकान थे । शान्तिनिकेतन में गृहस्थी लोग रहते थे । पं० भीमसेन जी, डा० प्रतापसिंह जी और ला० चिमनलाल (तिलहर वाले) – ये तीनों सपरिवार यहाँ रहते थे। सन् १९०८ ई० के ब्रह्मचारियों में प्रमुख थे, श्री विश्वनाथ शास्त्री (आचार्य गुरुकुल भैंसवाल), श्री हरिशंकर शास्त्री, श्री चन्द्रदत्त शास्त्री, श्री जयदेव गुप्त वैद्यभूषण (नजीबाबादी) आदि । ८ फरवरी, १९०८ के सद्धर्म प्रचारक के एक लेख में शास्त्री जी ने यह स्पष्ट किया कि स्वा० दर्शनानन्द जी ने किस प्रकार महाविद्यालय की स्थापना की और उसके सम्मेलन में किस-किस प्रकार की बाधाएं उत्पन्न हुईं । भविष्य में पं० भीमसेन जी के मुख्याध्यापकत्व में उसके सुचारु रूप से चलने की संभावना है, क्योंकि स्वा० दर्शनानन्द जी गुरुकुल महाविद्यालय छोड़कर पंजाब चले गये हैं और इसका प्रबन्ध अब उन्होंने एक रजिस्टर्ड सभा को सौंप दिया है' आदि । मार्च में वार्षिक उत्सव हुआ और उसमें सभा ने नरदेव शास्त्री जी को ही सर्वसम्मति से मुख्याधिष्ठाता चुन लिया । वे इस पद पर १९०८ से १९१३ तक रहे । महाविद्यालय का यह उत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ था । इसमें मास्टर आत्माराम जी, पं० गणपति शर्मा, पं० अखिलानन्द, पं० जगन्नाथ निरुक्तरत्न प्रभृति प्रमुख पण्डित एवं व्याख्याता उपस्थित हुए थे । पं० अखिलानन्द ने अपनी टोपी उतार कर जनता से धन देने का आग्रह किया था । पाँच हज़ार रुपये एकत्रित हुए थे ।

१९१३ ई० के पश्चात् तीन वर्ष तक अध्यापक के रूप में शास्त्री जी महाविद्यालय में कार्यरत रहे । १९१६ में शिक्षा के क्षेत्र से हटकर उनका ध्यान राजनीतिक-क्षेत्र की ओर मुड़ा । पं० पद्मसिंह शर्मा भी इसी वर्ष से एकान्त रूप से साहित्य निर्माण के क्षेत्र में अग्रसर हुए । राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्यरत रहने पर भी नरदेव शास्त्री जी का महाविद्यालय से भी, किसी न किसी रूप में सम्बन्ध बना ही रहा । सन् १९२३ में जेल से आने के पश्चात् पुनः वे महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता रहे । इसी प्रकार १९२८ में भी मुख्याधिष्ठाता के पद का भार उन्होंने संभाला । जब १९०८ ई० में उन्होंने प्रथम बार मुख्याधिष्ठाता का पद ग्रहण किया, महाविद्यालय में केवल ११ ब्रह्मचारी थे और केवल तीन बीघा भूमि । उनके कार्यकाल के बाद के दिनों सम्भवतः १९३२ के आस-पास छात्र संख्या दो सौ तक पहुँच गयी और भूमि भी बढ़ते-बढ़ते चार सौ बीघा तक हो गयी । यहाँ से जो योग्य स्नातक निकले, उन्होंने शिक्षा, राजनीति, समाज एवं धर्म के हर क्षेत्र में राष्ट्र की सेवा की एवं ख्याति पाई । पं० नरदेव शास्त्री जी लगन और निष्ठा के साथ ही आचार्य पं० गंगादत्त जी, जिन्होंने सन् १९१५ में स्वामी सुब्रह्मण्यदेव तीर्थ से संन्यास ले लिया था और स्वामी शुद्धबोध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए, चौबीस वर्ष तक शान्त-गम्भीर भाव से महाविद्यालय की सेवा की। वस्तुतः महाविद्यालय के विकास में आचार्य स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी, पं० नरदेव शास्त्री जी, पं० भीमसेन शर्मा, पं० पद्मसिंह शर्मा एवं श्री रविशंकर जी, पं० काशीदत्त जी प्रभृति तपस्वी महानुभावों का जो योगदान रहा है वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है ।

राजनीति और समाज के क्षेत्र में योगदान

सन् १८९१ से १८९४ के बीच पूना में रहते हुए राष्ट्रीय नेताओं के दर्शन और भाषणों से शिशु-हृदय में राष्ट्र-प्रेम का जो अंकुर उठा, वह सन् १९०३ से १९०६ तक के कलकत्ता-निवास के काल में राष्ट्रीय नेताओं के सम्पर्क में आकर पल्लवित हुआ था, वही १९१६ में पुष्पित होकर उन्हें सब कुछ छोड़कर राजनीति के क्षेत्र में जाने के लिए उद्वेलित करने लगा । वे दिन ऐसे ही थे । प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो चुका था । विदेशी शासन का चक्र भी तीव्र वेग से चल रहा था । शास्त्री जी अपने आपको रोक न सके और १९१६ में वे महाविद्यालय की सीमाओं से बाहर भी देश सेवा के लिए निकल पड़े ।

उनके मन में राजनीतिक विचारों का बीजारोपण किस प्रकार हुआ, इसका उन्होंने स्वयं ही विवरण दिया है । हम उसे उन्हीं के शब्दों में यहाँ उद्धृत कर रहे हैं–

'जनतात्मा में भी परमात्मा है और उसकी सेवा से वह भी प्रसन्न होगा । निवृत्ति-पथ में जाने का जो फल है, वही फल कर्मयोग के सिद्धान्तों पर आरूढ़ रहने से प्रवृत्ति पथ में भी मिलता है, जिसको Practical Vedanta कहते हैं, उसकी कुछ शिक्षा हमको स्वा० विवेकानन्द जी से ही मिली । इस विषय को यहीं छोड़कर यह बतलाना चाहते हैं कि हमारे मन में राजनैतिक विचारों का बीजारोपण कैसे और कब हुआ और फिर अंकुर कैसे बढ़ा और शाखा-प्रशाखाएं कैसे फूटीं । पूने में (१८९४) जब मैं "नूतन मराठी विद्यालय" नामक स्कूल में पढ़ता था, तब वह स्कूल जिस विशाल मकान में था, उसी के एक भाग में आर्यभूषण प्रेस भी था, जिसमें केसरी छपता था । केसरी मंगलवार के दिन प्रकाशित होता था । सोमवार के दिन प्रायः कई घण्टे और मंगलवार को प्रातः लोकमान्य तिलक इस कार्यालय में आकर बैठते थे और लिखते थे । कई आदमी बैठकर लिखते थे । सम्भवतः ये लोकमान्य के सहकारी थे । प्रथम बीजारोपण लोकमान्य तिलक के इन दर्शनों में हुआ। लोकमान्य हमारे पिताजी के मित्र थे । इसलिए पिताजी ने हमको आज्ञा दे रखी थी कि जब कोई दिक्कत हुआ करे तब तिलक महाराज से कह दिया करो । इसी आज्ञानुसार कभी सात दिन में, कभी दस दिन में, कभी पन्द्रह दिन में हमारे ज्येष्ठ भ्राता नारायणराव लोकमान्य के पास जाते रहते थे और सब समाचार यहाँ आते रहते थे । मैं श्री नारायण जी के साथ लोकमान्य तिलक के घर पर जाता रहता था । जब हम पूने में रहते थे, तब नेशनल कांग्रेस का एक महाधिवेशन भी हुआ था । उसके संस्कार अब तक विद्यमान हैं। बच्चे थे, पॉलिटिक्स को क्या समझ सकते थे । किन्तु लोकमान्य तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री प्रिन्सिपल आगरकर, प्रिन्सिपल आप्टे, श्री प्रिन्सिपल माले, श्री परांजपे, महात्मा महादेव रानडे इत्यादि की कार्यक्षेत्र की पवित्र भूमि में रहकर इन दर्शनों का कुछ तो प्रभाव मन में पड़ना ही था । मैं कह ही चुका हूँ कि मैं नूतन मराठी विद्यालय में पढ़ता था । महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कादम्बरीकार हरिनारायण आप्टे (संस्थापक आनन्दाश्रम संस्था) हमारे हेडमास्टर थे । मराठी सेक्शन के मुख्याध्यापक थे श्री सिनकर । पूने में दो दल थे; समाजसुधारक व कट्टरपन्थी । हमारे स्कूल के प्रायः सभी अध्यापक व संचालक समाज-सुधारक दल के थे । लोकमान्य तिलक कट्टरपन्थियों के अगुआ समझे जाते थे। उन सब परिस्थितियों का हमारे मन पर बहुत प्रभाव पड़ा । लातूर (हैदराबाद दक्षिण) में लोकमान्य तिलक व उनके एक साझी की जिनिंग फैक्टरी थी । जब लोकमान्य लातूर आते थे तब धाराशिव (उस्मानाबाद) जहाँ हमारे पिताजी नौकर थे, पिताजी से मिलने आते थे और हमारे यहाँ ही ठहरते थे । इस प्रकार बीजारोपण हुआ और अन्त में लोकमान्य ही मेरे राजनीति के गुरु बने । पूना छूटने के पश्चात् लखनऊ कांग्रेस में ही लोकमान्य के दर्शन हुए। तब पिताजी का स्वर्गवास हो गया था । लोकमान्य ताजे ही मांडले से आये थे, जब मैं मिला, तभी पहले पिताजी का क्षेम पूछा । जब उनकी निधनवार्ता सुनी, तब उनको बहुत दुःख हुआ । मैं भूलता हूँ, सन् १९०५ में लोकमान्य तिलक कलकत्ते में आये थे । शिवाजी महोत्सव के निमित्त आये थे । कलकत्ते में उनके बाईस व्याख्यान हुए थे । डॉ० मुंजे और खापर्डे उनके साथ थे । तब भी कई बार मिलने का सौभाग्य हुआ । अमृतसर (१९१९) कांग्रेस में भी दर्शन हुए। इस प्रकार मेरा राजनैतिक गुरु बाल्यावस्था से लेकर बराबर मुझे मिलता व शिक्षा देता रहा। कभी-कभी पत्र-व्यवहार द्वारा बातचीत होती रहती थी । महाविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर मैं जब देहरादून जिले में पहुँचा (१९१५), तब वहाँ बीज अंकुरित होकर प्रस्फुटित हुआ । १९१९ में शाखाएं फूटने लगीं और १९२० देहरादून कान्फ्रेन्स के कारण प्रशाखाओं का भी विस्तार हुआ । दस वर्ष तक ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के मेम्बर रहने और १९२१, १९३०, और १९३२ में सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने के कारण समस्त भारतवर्ष ही मेरा विशाल-गृह बन गया ।

रावजी ने अपनी राजनीतिक गतिविधियों के लिए भोगपुर (देहरादून) को सबसे पहला केन्द्र बनाया । भोगपुर नगर के शोरगुल और भीड़-भाड़ से दूर पर्वत के साथ सटा हुआ एक रमणीक ग्राम जैसा है । यहाँ का जलवायु अच्छा है । यह स्थान उस समय के टेहरी राज्य की सीमा के समीप पड़ता है । यहाँ रहते हुए श्री रावजी को टेहरी राज्य एवं पौड़ी गढ़वाल (उस समय के ब्रिटिश गढ़वाल) में प्रवेश करने में सुविधा रहती थी ।

गढ़वाल क्षेत्र में राजनीतिक जागरण के लिए भोगपुर को ही अपना केन्द्र बनाया । यहाँ तीन वर्ष तक वे ला० मुसद्दीलाल के मकान में रहे । उन्होंने तन, मन और धन से सब प्रकार सहायता की । गढ़वाल के प्रसिद्ध धनपति घनानन्द मालदार से भी उनका अच्छा परिचय रहा । उन्होंने भी पर्याप्त आर्थिक सहायता की । मसूरी का घनानन्द इण्टर कालेज इनके कनिष्ठ भ्राता वल्लभ ने बनवाया था, जिसे बाद को उन्होंने शासन को समर्पित कर दिया । यहाँ रहते हुए तीन वर्षों १९१६ से १९१९ तक की काल में, इस क्षेत्र के लोगों की राजनीतिक दशा सुधारने के लिए बहुत कुछ कार्य किया । सबसे प्रथम उन्होंने भोगपुर से शराब की दुकान को बन्द कराया । इस क्षेत्र में ईसाइयों का बहुत बड़ा प्रभाव था, उसे क्षीण किया । जनसामान्य में राजनीतिक चेतना जागृत करके सामाजिक उत्थान के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे । इस क्षेत्र के लोग उन्हें राजनीतिक गुरु मानते थे । सन् १९१९ में वे 'भारतोदय' के सम्पादक होकर मुरादाबाद गये । किन्तु थोड़े ही समय पश्चात् उन्होंने पुनः देहरादून राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथों में ले लिया । देहरादून में उन्होंने तीन बड़ी-बड़ी राजनीतिक कान्फ्रेन्सें करायीं । इनके अतिरिक्त, हिन्दू कान्फ्रेन्स हुई, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का महाधिवेशन हुआ, आर्य प्रतिनिधि सभा का महोत्सव हुआ। महात्मा गांधी द्वारा श्रद्धानन्द अनाथ-वनिताश्रम की स्थापना एवं श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन द्वारा उद्घाटन । महात्मा गान्धी के उत्तर प्रदेश के दौरे के अवसर पर जब वे देहरादून, मसूरी, सहारनपुर, देवबन्द तक सबजगह महात्मा जी के साथ रहे थे और देहरादून से चौदह हजार रुपये भेंट में दिए थे । इसी प्रकार १९२० में तिलक-स्वराज्य-फण्ड में सोलह हजार रुपये एकत्र करके दिए थे । देहरादून में सम्पन्न उपर्युक्त सभी सम्मेलनों में राव जी ही स्वागताध्यक्ष रहे थे । देहरादून का कोई भी आयोजन चाहे वह सामाजिक हो, शैक्षिक हो, राजनीतिक हो, साहित्यिक हो- सभी में उनका हाथ रहता ही था । सन् १९२१ में दिसम्बर ६ को १४४ धारा तोड़ने के अपराध में उनको १५ महीने का कठोर कारावास मिला । फिर १९३० में २८ अप्रैल को आन्दोलन के प्रथम डिक्टेटर चुने जाने के कारण ६ महीने का कारावास दण्ड मिला । १९३२ में मई २० को पुन: ६ महीने का कारावास दण्ड मिला । इससे पूर्व २४ जनवरी १९३२ को देहरादून की सीमा में प्रवेश न करने का जिलाधीश का आदेश भी प्राप्त हो चुका था । इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के परिणामस्वरूप उनको कितनी ही बार जेल की यात्रा करनी पड़ी।

शास्त्री जी की जेल-यात्राएं

सक्रिय राजनीति एवं राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेने के परिणामस्वरूप शास्त्री जी को अनेक बार जेलों में बन्द किया गया ।

प्रथम जेलयात्रा

शनिवार, १० दिसम्बर, १९२१ को शहर में लगी १४४ धारा को तोड़ने के अपराध में शास्त्रीजी को तिलक भूमि में बन्दी बनाकर देहरादून जेल में भेज दिया गया । १३ दिसम्बर, १९२१ को अदालत में एक वर्ष का सपरिश्रम कठोर कारावास एवं दो सौ रुपये जुर्माना देने की सजा सुनायी गयी । जुरमाना न देने की स्थिति में तीन महीने का अतिरिक्त सपरिश्रम जेल काटने का दण्ड सुनाया । शास्त्री जी ने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया । उन्हें कुछ समय देहरादून जेल में रखा गया । उसके पश्चात् कुछ समय तक मुरादाबाद जेल में, उसके बाद बरेली जेल में, तत्पश्चात् लखनऊ जेल में एवं उसके पश्चात् रायबरेली जेल में भेजा गया । उसके पश्चात् वहाँ से इलाहाबाद जेल में भेजने का भी आदेश, तो रायबरेली जेल वालों को प्राप्त हो गया, किन्तु किसी कारण से इलाहाबाद नहीं भेजा गया और वहीं से ११.३.२३ ई० को जेल से मुक्त करके देहरादून भेज दिया गया। यह शास्त्री जी की पहली जेल यात्रा थी । इसमें सुखकर और दु:खकर सभी प्रकार के अनुभव हुए । देहरादून जेल में, वहाँ आने के प्रथम दिन ही जेल से शास्त्री जी की शीघ्र मुक्ति के लिए नायबजेलर की पत्नी ने एक दिन का अनशन व्रत रक्खा

था। सुनकर शास्त्री जी को बड़ी प्रसन्नता हुई थी। वस्तुतः देहरादून-गढ़वाल में शास्त्री जी धार्मिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के गुरु माने जाते थे। वहाँ की जनता में अत्यधिक आदर था।

द्वितीय जेलयात्रा

सन् १९३० में नमक-सत्याग्रह में ६ महीने की सादी कैद एवं पचास रुपये का जुर्माना हुआ। उन्हें कुछ समय तक देहरादून जेल में रखने के पश्चात् फैजाबाद भेज दिया गया। वहाँ पर देहरादून के ही श्री महावीर त्यागी, श्री नारायणदत्त डंगवाल, स्वा० विचारानन्द एवं श्री कुलास वर्मा पहले से ही विद्यमान थे। सभी साथ रहे।

तृतीय जेलयात्रा

देहरादून के धर्मपुर में शराब की भट्टी पर पिकेटिंग करने के कारण ६ महीने कड़ी सजा हुई और ५० रुपये जुर्माना। इस बार देहरादून जेल में ही रहे।

१२.१.४१ चतुर्थ जेलयात्रा

अपनी चतुर्थ जेलयात्रा के समय शास्त्री ने सत्याग्रह करने के लिए ऋषिकेश को चुना। ऋषिकेश में भी लक्ष्मणझूला के स्थान को। उस दिन मकरसंक्रान्ति का पर्व था। १२ जनवरी को प्रातः उन्हें बन्दी बनाया गया और देहरादून जेल में भेज दिया गया। वहाँ एक वर्ष की सजा सुनाई गयी। कुछ समय तक तो देहरादून जेल में ही रहे, फिर बरेली सेन्ट्रल जेल भेज दिए गए। इस समय शास्त्री जी की वयस् ६७ वर्ष हो चुकी थी, अतः उनसे जेल में कठोर परिश्रम नहीं लिया गया।

९.८.४२ से १७.११.४३ पञ्चम जेलयात्रा

९ अगस्त, १९४२ को कांग्रेस की ओर से 'भारत छोड़ो' देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ किया गया। महात्मा गान्धी, श्री जवाहरलाल नेहरु, श्री पटेल प्रभृति बड़े- बड़े नेता तो बन्दी बना ही लिए गये, भारत के सभी नगरों में स्थानीय कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। इसी क्रम में श्री नरदेव शास्त्री को भी बन्दी बना लिया गया। इस बार एक वर्ष तीन महीने और आठ दिन तक उन्हें कारावास भोगना पड़ा। देहरादून जेल में ९.८.४२ से २४.११.४२ तक रहे। इसके पश्चात् आगरा सेन्ट्रल जेल में रहे।

जेलों में रहते हुए शास्त्री जी ने खूब अध्ययन किया, मनन किया और लिखा भी खूब। जेलें उनकी साधना स्थली भी रहीं। उनमें रहते हुए उन्होंने बहुत बड़े परिमाण में गायत्रीमन्त्र का जप किया। इसका विवरण उन्होंने स्वयं इस प्रकार दिया है-

१९२१-१९२३ के प्रथम जेल निवास में (देहरादून, मुरादाबाद, बरेली, लखनऊ और रायबरेली)	१०२५०००
१९३० की द्वितीय जेलयात्रा में (देहरादून- फैजाबाद)	६२५०००
१९३२ की तृतीय यात्रा में (देहरादून में ही)	६२५०००
१९४१ की चतुर्थ जेलयात्रा में (बरेली)	७२५०००
१९४२-१९४३ की पंचम जेलयात्रा में (देहरादून- आगरा)	२६३०००

नरदेव शास्त्री जी की ग्रन्थ-रचना

शिक्षा, समाज और राजनीति के क्षेत्र में तो विविध प्रकार से संलग्न रहते हुए उन्होंने समाज की सेवा की ही है। ग्रन्थ-रचना के क्षेत्र में भी, इतर कार्यों में अति- व्यस्त रहने पर भी वे इस कार्य के लिए भी थोड़ा बहुत समय निकाल ही लेते

थे। ग्रन्थ-रचना की दृष्टि से जेल-यात्राएं उनके लिए वरदान सिद्ध हुईं। जेलों में रहते हुए उन्होंने बहुत पढ़ा। उनके पठित ग्रन्थों की सूची देखकर आश्चर्य होता है कि इतना उन्होंने कैसे पढ़ लिया। पढ़ने के साथ उन्होंने लिखा भी बहुत है। नीचे उनके रचे ग्रन्थों की हम सूची दे रहे हैं-

१. आर्यसमाज का इतिहास भाग १ — ४०० पृष्ठ

२. आर्यसमाज का इतिहास भाग २ — ४०० पृष्ठ

३. आर्यसमाज का इतिहास भाग ३

(अमुद्रित रूप में ही यह उनकी जेलयात्रा के समय गुम हो गया)

भाग १ स्व० पं० रामजी लाल शर्मा, हिन्दी प्रेस प्रयाग ने छापा था।

भाग २ श्री फूलचन्द, द्वादशश्रेणी प्रेस अलीगढ़ ने छापा था।

४. सचित्र शुद्धबोध (श्री १०८ स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी महाराज का जीवनचरित)

५. ऋग्वेदालोचन (स्व० सत्यव्रत शर्मा, शान्ति प्रेस आगरा से छपा था) — ३२५ पृष्ठ

६. गीताविमर्श (स्व० रामसहाय वैद्य, मेरठ ने अपने खर्च से छपाया था) — ३५० पृष्ठ

७. पत्रपुष्प भाग १, (श्री रामस्वरूप गुप्त, अलीगढ़ निवासी ने छापा था) — ५०० पृष्ठ

८. पत्रपुष्प भाग २

९. राजशास्त्र

१०. देहरादून-गढ़वाल — १२५ पृष्ठ

११. १९२१ की धकापेल (कारावास की रामकहानी) — २०० पृष्ठ

१२. आत्मकथा-आपबीती जगबीती

१३. यज्ञ में पशु-वध वेदविरुद्ध (छोटी सी पुस्तिका हिन्दी-संस्कृत दोनों में) — ४० पृष्ठ

१४. दयानन्द-दिग्विजय (छोटा ग्रन्थ, हिन्दी-संस्कृत दोनों में)

१५. आनन्दबाग में आर्य दरबार

१६. वैदिक स्वराज्य

१७. अछूत-मीमांसा (छोटा ग्रन्थ)

१८. कालेर गति (यह उनके पिताजी ने मँगवा लिया था, फिर छपने नहीं दिया)

इनके अतिरिक्त बहुत से साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों का उन्होंने सफल सम्पादन किया। समाचार-पत्रों में सैकड़ों लेख लिखे। उनके लिखे पत्रों की तो गणना सम्भव ही नहीं। लेखन-कार्य उनका बहुत ही तीव्रगति से चलता था। विचारों में परिपक्वता एवं भ्रान्ति-शून्यता थी। उनकी स्पष्टवादिता बहुधा लोगों को अखर जाती थी। वे संसार में रहते हुए भी उससे ऊपर रहते हुए निर्लिप्त थे। इसलिए लाग-लपेट से रहित थे। जो सत्य समझते थे, कहते थे और लिखते थे।

आचार्य नरदेव शास्त्री के कार्यों का तिथि के अनुसार कार्य-विवरण-

१९०८ से १९१५ — महाविद्यालय में मुख्याधिष्ठाता।

१९१५ में — गंगोत्री की यात्रा।

१९१६	महाविद्यालय में तथा राजनीतिक क्षेत्र में।
१९१७ से १९१९	भोगपुर में एकान्तवास तथा ग्रन्थ-लेखन आदि।
१९१९ से १९२०	देहरादून राजनीतिक क्षेत्र में।
१९२०	प्रथम देहरादून पोलिटिकल कान्फ्रेन्स। सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू तथा स्वागताध्यक्ष श्री नरदेवशास्त्री।
१९२१ दिसम्बर से	कारावास देहरादून, मुरादाबाद, बरेली, लखनऊ, रायबरेली,
१९२३ अप्रैल तक	जेल (१५ मास)
१९२३	कारावास से आकर पुनः महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता।
१९२५	निखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन देहरादून। इसमें स्वागताध्यक्ष श्री नरदेव शास्त्री थे तथा सभापति स्व० श्री माधवराव सप्रे।
१९२६	देहरादून में आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त का वृहदधिवेशन। इसके भी स्वागताध्यक्ष श्री नरदेव शास्त्री ही थे।
१९३०	कारावास। फिर महाविद्यालय के आचार्य तथा कुलपति। बीच में देहरादून जिला के डिक्टेटर रहे।
१९३२	कारावास, फिर महाविद्यालय के आचार्य।
१९४० से १९४१	कारावास।
१९४२-१९४३	कारावास।
१९४४ से १९४७	महाविद्यालय के आचार्य रहे।
१९४६ से १९४७	देहरादून जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे।
१९४७ (अप्रैल)	महाविद्यालय की सेवा से निवृत्त हुए, परन्तु विश्रामस्थल महाविद्यालय बना रहा।
१९४७ से १९५२	देहरादून के क्षेत्र में राजनीतिक कार्य किया।
१९५२ से १९५७	उत्तर प्रदेश की विधान-सभा के सदस्य रहे।
१९५७	के पश्चात् भी जीवनपर्यन्त सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करते रहे। इस काल में भी महाविद्यालय से विशेष रूप से सम्बद्ध रहे।

- सम्पादक

पं० पद्मसिंह जी शर्मा

पं० पद्मसिंह शर्मा जी का जन्म सन् १८७६ ई० दिन रविवार फाल्गुन सुदि १२ संवत् १९३३ वि० को चांदपुर स्याऊ रेलवे स्टेशन से चार कोस उत्तर की ओर नायक नगला नामक एक छोटे से गाँव में हुआ था। इनके पिता श्री उमरावसिंह जी गाँव के मुखिया, प्रतिष्ठित, परोपकारी एवं प्रभावशाली पुरुष थे। पैतृक पेशा जमींदारी और खेती था। पिताजी के समय में खैंचो-रात्र का काम भी होता था। आर्थिक स्थिति अच्छी थी।

इनके एक छोटे भाई थे, जिनका नाम था श्री रिसालसिंह। ये १९३१ ई० से पूर्व ही दिवंगत हो गये थे। ये सम्भवतः अविवाहित थे। पं० पद्मसिंह शर्मा जी की तीन सन्तान थीं। इनमें सबसे बड़ी पुत्री थी आनन्दी देवी, उनसे छोटे पुत्र का नाम श्री काशीनाथ था तथा सबसे छोटे पुत्र रामनाथ शर्मा थे। पं० काशीनाथ का जो किसी संस्कृत पाठशाला में मुख्याध्यापक थे, देहान्त इनके सामने ही हो गया था।

इनके पिता आर्यसमाजी विचार धारा के थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। इसी कारण उनकी रुचि विशेष रूप से संस्कृत की ओर हुई। उन्हीं की कृपा से इन्होंने अनेक स्थानों पर रहकर स्वतंत्र रूप से संस्कृत का अध्ययन किया।

जब ये १०-११ वर्ष के थे तो इन्होंने अपने पिताश्री से ही अक्षराभ्यास किया। फिर मकान पर कई पण्डित अध्यापकों से संस्कृत में सारस्वत, कौमुदी और रघुवंश आदि का अध्ययन किया।

सन् १८९४ ई० में कुछ दिन स्वर्गीय भीमसेन शर्मा इटावा निवासी की प्रयाग स्थित पाठशाला में अष्टाध्यायी पढ़ी। उसके बाद काशी जाकर अध्ययन किया। पुनः मुरादाबाद, लाहौर, जालन्धर, ताजपुर (बिजनौर) आदि स्थानों पर भी अध्ययन किया। बीच-बीच में घर पर ही एक मुन्शी और मौलवी साहब से उर्दू-फारसी का भी अभ्यास किया।

इस प्रकार अध्ययन समाप्त करके सन् १९०४ ई० में गुरुकुल काँगड़ी में कुछ दिन अध्यापन कार्य किया। उन दिनों वहाँ पं० भीमसेन और आचार्य पं० गंगादत्त जी भी थे। उसी समय महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी ने पं० रुद्रदत्त जी के सम्पादकत्व में हरिद्वार से सत्यवादी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। उस समय पं० पद्मसिंह शर्मा जी भी उनके सम्पादकीय विभाग में थे। इनका सम्पादन एवं लेखन का प्रारम्भ यहीं से हुआ। इसके बाद तो शर्मा जी का जीवन लेखन सम्पादन एवं अध्ययन आदि में ही व्यतीत हुआ। प्रारम्भ में 'सत्यवादी' में ही कई लेख लिखे।

इसके बाद सन् १९०८ के प्रारम्भ में जब आचार्य गंगादत्त जी गुरुकुल कांगड़ी छोड़कर ऋषिकेश में रह रहे थे तो शर्मा जी परोपकारी (मासिक) पत्रिका के सम्पादक होकर अजमेर वैदिक यन्त्रालय में गये। वहाँ पर इन्होंने 'परोपकारी' के साथ ही कुछ दिन तक 'अनाथ-रक्षकम्' का भी सम्पादन किया।

सन् १९०९ ई० में इनका आगमन ज्वालापुर महाविद्यालय में हुआ। यहाँ इन्होंने 'भारतोदय' (महाविद्यालय का मासिक मुख्य पत्र) का सम्पादन एवं साथ ही अध्यापन कार्य भी किया। सन् १९११ ई० में इन्होंने महाविद्यालय की प्रबन्ध-समिति के मन्त्री पद पर भी कार्य किया। इस प्रकार महाविद्यालय की अविरत सेवा करते रहे। इनके सम्पादकत्व में 'भारतोदय' पत्रिका ने खूब ख्याति प्राप्त की। सन् १९१७ में इनके पिताजी का देहान्त हो गया। इस कारण इन्हें महाविद्यालय छोड़कर घर आना पड़ा। इस प्रकार महाविद्यालय के साथ इनका ९ वर्ष तक सम्बन्ध रहा। इनके अथक प्रयासों से महाविद्यालय निरन्तर उन्नति के पथ की ओर अग्रसर होता रहा।

महाविद्यालय छोड़ने के बाद श्रीयुत शिवप्रसाद जी गुप्त के अनुरोध पर ये सन् १९१८ में 'ज्ञानमण्डल' में गये।

आश्विन संवत् १९७७ (सन् १९२०) में मुरादाबाद में संयुक्त प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बने। इसी वर्ष इनकी माताजी का भी देहान्त हो गया था। सन् १९१३ ई० में इन्हें 'बिहारी-सतसई' पर मंगलाप्रसाद पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सन् १९२८ में इन्होंने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मुजफ्फरपुर (बिहार) में सभापतित्व किया। इसी वर्ष इन्होंने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में हिन्दी प्रोफेसर पद पर भी कार्य किया।

सन् १९११ ई० में 'पद्मपराग' और 'प्रबन्ध-मञ्जरी' का प्रकाशन हुआ। एक बार ये संग्रहणी रोग के रोगी हो गये तो इन्हें हरदुआगंज लाया गया, साथ में इनके पुत्र काशीनाथ शर्मा भी थे। जब वहाँ पर चिकित्सा से कोई लाभ न हुआ तो इन्हें मुरादाबाद लाया गया। वहाँ डॉ० गंगोली पीयूषपाणी की चिकित्सा करायी गयी। किन्तु ऐसी अवस्था में भी अविरल रूप से इन्होंने साहित्यिक सेवा की। उस समय भी ऐसा कोई दिन नहीं जाता था, जिसमें ये दस-पन्द्रह चिट्ठियाँ अपने मित्रों को न लिखाते हों। उस समय इनकी सेवा के लिए कवि 'शंकर' (पं० नाथूराम शर्मा) के पुत्र इनके पास थे। इनके पास बड़े-बड़े साहित्यकारों की चिट्ठियाँ रोज आती थीं। उनका उत्तर ये अपनी भाषा में ही दिलवाते थे।

डेढ़ मास तक इनकी चिकित्सा चलती रही कोई लाभ न होने पर इन्होंने महाविद्यालय ज्वालापुर में आने की इच्छा प्रकट की और कहा- 'चलो महाविद्यालय चलो' मरना तो है ही, उसी पुण्य भूमि में प्राण त्यागूँगा, गंगा की गोद में।' अतः स्पष्ट ही महाविद्यालय के प्रति उनमें कितना आत्मीयता एवं श्रद्धा का भाव था।

अतः उन्हें महाविद्यालय लाया गया। साथ में पं० भीमसेन शर्मा भी थे। यह सन् १९२०-२१ की बात है, जब महाविद्यालय में श्री विश्वनाथ जी मुख्याधिष्ठाता थे। यहाँ आने पर पं० हरिशंकर शर्मा वैद्यराज जी की पहली पुड़िया से ही इन्हें बहुत लाभ हुआ और ये बीस-बाईस दिन में ही पूर्ण स्वस्थ हो गये।

पं० पद्मसिंह शर्मा जी को पाँच बातें बहुत पसन्द थीं- १. स्वाध्याय, २. नवीन लेखकों को प्रोत्साहन, ३. साहित्यिकों से मिलना-जुलना, ४. अतिथि सत्कार, ५. मित्रमण्डली के साथ सैर।

वे साहित्यिक यात्रा बहुत पसन्द करते थे। अपनी मृत्यु से पूर्व भी उनका विचार श्रावण में व्रज की यात्रा करने का था। उनका कहना था- 'भाई अब की बार श्रावण में व्रज की यात्रा करनी चाहिए। आगरे के मित्र भी साथ हों। कलकत्ते से बनारसीदास जी तथा श्रीरामजी को भी बुलाया जाये, किन्तु हतभाग्य कि इस साहित्यिक यात्रा से पूर्व ही उन्होंने जीवन की अन्तिम यात्रा कर ली।

कविजी (पं० नाथूराम शर्मा जी) के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। कवि जी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनुराग रत्न' लिखी और उसका समर्पण काव्य-कानन-केसरी पं० पद्मसिंह जी को ही किया। जबकि एक सज्जन उन्हें इसके लिए पाँच हजार देने को तैयार थे। उन सज्जन के कहने पर उनका कहना था कि- मैं अपना प्रचुर परिश्रम एक कलाविद् को ही अर्पण करूँगा और मेरी राय में पं० पद्मसिंह शर्मा इसके लिए सर्वश्रेष्ठ हैं।

***

महाविद्यालय की उपयोगिता

– पं० पद्मसिंह शर्मा (साहित्याचार्य)

प्रत्येक प्राणी दुःख से छूटकर आनन्द पाना चाहता है, सुख प्राप्ति के उपायों और साधनों में भेद भले ही हो परन्तु उद्देश्य सबका यही है कि "सुखं भूयाद् मा दुःखं भूत्" पर प्राणिमात्र की यह नैसर्गिक इच्छा होने पर भी किसी विरले ही भाग्यवान् को सुखोपलब्धि होती है, इसका कारण क्या है ? वही अविद्या जिसके विषय में महर्षि पतञ्जलि का कथन है कि-

'अविद्याक्षेत्रमुत्तरोत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।'

अर्थात् 'अस्मिता' आदि सब क्लेशों की जड़ अविद्या है। संसार भर के यावद् दुःखों का समावेश इन्हीं 'अस्मिता' का मूलोच्छेद नहीं हो जाता, ये (अस्मिता आदि) किसी न किसी रूप में बने रहते हैं और जीव को जीवन-मरण के चक्कर में फंसाए रखते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि सुख प्राप्ति या आनन्दोपलब्धि का एकमात्र साधन विद्या है।

भगवती श्रुति भी इसी तत्त्व का उपदेश करती है कि 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' 'विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है।' मनुष्य- जन्म की प्रधानता इसीलिए दी गयी है कि इसी योनि में 'अमृतपद' की प्राप्ति सम्भव और सुलभ है। बस, मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है कि जीव तीनों तापों से छूटकर अमृत पद की शीतल छाया में विश्राम पा सके। सांख्याचार्य कपिलमुनि स्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि 'दुःखात्यन्तनिवृत्ति ही अत्यन्त पुरुषार्थ है।'

प्राचीन आर्यों ने मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को समझकर 'परम पुरुषार्थ' की सिद्धि के लिए 'ब्रह्मचर्याश्रम' की नींव डाली थी। इसी परम पवित्र आश्रम में प्रविष्ट होकर, विद्योपार्जन करता हुआ मनुष्य 'अमृत पद' और 'परम पुरुषार्थ' के योग्य बन सकता है। लोहे को सोना बनाने वाला 'पारस' और 'मर्त्य' को 'अमृत' कर देने वाला रसायन, यही आश्रम है। जब तक संसार में ब्रह्मचर्याश्रम की प्रथा प्रचलित और सुरक्षित रही, मनुष्य सब दुःखों से रहित और परम पुरुषार्थ सम्पन्न रहे। जब से इस आश्रम का नाश हुआ, तभी से सब प्रकार के दुःखों ने संसार को आ घेरा। मिथ्या ज्ञान का माहात्म्य देखिए कि कहाँ तो कपिलमुनि के आज्ञानुसार सब दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति ही 'परम पुरुषार्थ' माना जाता था और कहाँ अब दुःख-प्राप्ति के साधनों का ही नाम 'पुरुषार्थ' हो गया।

जो मनुष्य जितने ही अधिक आदमियों को मूँडकर अपना अनुगामी बना ले, उचित-अनुचित उपायों द्वारा जितना ही अधिक द्रव्य इकट्ठा कर ले, वह उतना ही 'पुरुषार्थ' समझा जाता है। संसार में फैला हुआ यह अज्ञान और तज्जन्य दुःख दूर नहीं होगा, जब तक कि फिर यथापूर्व ब्रह्मचर्याश्रम की प्रथा प्रचलित करके प्राचीन रीति पर सच्छास्त्रों की शिक्षा का प्रबन्ध न किया जायेगा। जो लोग सिर्फ साइन्स और कलाकौशल द्वारा सुख-शान्ति का स्वप्न देख रहे हैं, उन्हें आँखें खोलकर यूरोप और अमेरिका की ओर निहारना चाहिए कि वहाँ कितनी शान्ति है ? कैसा सुख है ?

'हंडिया खदबद' कराने वाली शिक्षा का नाम विद्या नहीं है। वास्तव में विद्या वही है, जिसके द्वारा मनुष्य अमृतपद का भागी बन सके और मनुष्य जन्म को सफल कर सके। आत्मिक ज्ञान और धर्मपरायणता के बिना मनुष्य सच्चे सुख का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता और इसका उपाय ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन-पूर्वक विद्याध्ययन के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

कैसा शोकजनक दृश्य है कि धर्मप्राण आर्यजाति भी इस महत्त्व को भूल गयी और भूलती जाती है। ऐसी दशा में उस विस्मृतप्राय ब्रह्मचर्याश्रम का आदर्श फिर से लोगों के सामने रखने की कितनी आवश्यकता है, यह किसी विचारशील व्यक्ति से छिपा नहीं है। आर्यजाति का सर्वस्व वेदविज्ञान और संस्कृत साहित्य, हम लोगों के प्रमाद से जिस प्रकार अत्यन्त शोचनीय दशा को पहुंच गया है, उसका उद्धार कितना आवश्यक है, यह कौन नहीं जानता ? परन्तु यह सब क्या यों ही हो जायेगा। कहने के साथ कुछ करने की भी तो जरूरत है।

ऐसे महाशयों की कमी नहीं है, जिनकी वाचनिक सहानुभूति तो 'ब्रह्मचर्याश्रम' और 'संस्कृत भाषा' के साथ है। इनके उद्धार की आवश्यकता को भी वे सहस्रमुख से स्वीकार करते हैं। इस बात का दूसरों को उपदेश भी देते हैं, परन्तु उनका सारा प्रयत्न और पुरुषार्थ किसी दूसरी ही ओर खर्च होता है। अंग्रेजी स्कूल और कालिजों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति और वृद्धि, तथा 'संस्कृत विद्यालयों' का ह्रास और अवनति, इसका समुज्ज्वल प्रमाण है। इस शताब्दी में आर्यजाति की ओर से जितना प्रयत्न अंग्रेजी शिक्षा की उन्नति और प्रचार में किया गया है। यदि उसका सहस्रांश भी संस्कृत भाषा की रक्षा में किया गया होता तो इसकी यह शोचनीय दशा उपस्थित न होती।

सारे संसार की महाशक्ति जिस भाषा के प्रचार में लगी हुई है, आर्यजाति ने भी अपनी अल्पशक्ति उसी में नष्ट करके 'गतानुगतिकता' का परिचय दिया है। संस्कृत विद्यालयों की स्थापना के पक्षपाती और ब्रह्मचर्याश्रम के अनुरागी यह नहीं कहते कि लोग अंग्रेजी न पढ़ें, या उसके लिए कुछ प्रयत्न न करें, किन्तु उनकी इच्छा यही है कि कुछ अपना भी ध्यान रखो। वे सिर्फ यही कहते हैं कि सारी उदारता औरों के लिए खर्च न कर दो, घर की खबर भी लो-

गुल फेंके है औरों की तरफ बल्कि समर भी,

ऐ खानाबरन्दाज चमन ! कुछ तो इधर भी !

यह अनाथ और निराश्रय बुढ़िया 'संस्कृत भाषा' और वृद्धाम्ब 'संस्कृत साहित्य' सहायता के लिए तुम्हारा मुंह तक रहे हैं। इनका सहारा तुम्हीं हो-

वृद्धौ हि मातापितरौ भर्तव्यौ मनुरब्रवीत्

पूज्य पूर्वजों की कीर्तिरक्षा, सन्तान का परम कर्तव्य है। जो शिक्षा पूर्वजों का अनादर सिखाती है, उनका गौरव भुलाती है, वह 'कुशिक्षा' है, हेय है। किसी अनुभवी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है-

हम ऐसी कुल किताबें काबिलेजब्ती समझते हैं,

कि जिनको पढ़के लड़के बाप को खब्ती समझते हैं !!

यह बड़े अभाग्य और सन्ताप का विषय है कि हमारे नवशिक्षित युवक प्रायः अपने पूर्वजों को 'खब्ती' समझना ही 'सिविलाइज्ड' होने की निशानी समझने लगे हैं ! वह नवीनता के प्रवाह में तिनके की तरह बह रहे हैं, अगली पिछली कुछ खबर नहीं, जो लहर उठती है, उसी के आगे हो लेते हैं। इस अनिष्ट परिणाम से बचाने का सिद्ध उपाय अपनी प्राचीनता का परिचय दिलाना है और यह तभी हो सकता है जबकि भारत में 'ब्रह्मचर्याश्रम' को पुनरुज्जीवित करके प्राचीन पाठ्यप्रणाली का प्रचार किया जाये। और इसका साधन ऐसे विद्यालय हैं, जिनमें शुल्करहित (मुफ्त) संस्कृत शिक्षा का प्रबन्ध हो। महाविद्यालय ज्वालापुर इसी शुभ उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई दशाब्दियों से एक परम रमणीय भूमि में स्थापित है, जो ईश्वर के अनुग्रह और सत्पुरुषों के साहाय्य से उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। प्रत्येक प्राचीनताभिमानी वैदिक धर्मानुगामी का कर्तव्य है कि तन, मन, धन से विद्यालय की सहायता करके पुण्य का भागी बनें।

***

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

संक्षिप्त परिचय

उत्तर भारत के उत्तराञ्चल प्रदेश में अवस्थित जनपद हरिद्वार के ज्वालापुर नामक उपनगर से २ फर्लांग की दूरी पर पुण्यसलिला भगवती भागीरथी की नहर के दक्षिणी तट पर रेलवे लाइन से बिल्कुल सटा हुआ, लोहे के पुल के दक्षिण की ओर सुविस्तृत एवं परम रमणीक भूमि में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर स्थित है ।

इसकी स्थापना आज से १०० वर्ष पूर्व वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) सम्वत् १९६४ वि० (तदनुसार ३० जून सन् १९०७ ई०) को दानवीर स्वर्गीय बाबू सीताराम जी, इंसपेक्टर आफ पुलिस ज्वालापुर, के सुरम्य उद्यान में संस्कृत-शिक्षा के प्रचार एवं विलुप्त ब्रह्मचर्याश्रम-प्रणाली के पुनरुद्धार के विशेष उद्देश्य को लेकर शास्त्रार्थ-महारथी, उद्भट विद्वान्, प्रसिद्ध त्यागी, स्वनामधन्य, तार्किकशिरोमणि, वीतराग श्री १०८ स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती के कर-कमलों द्वारा केवल तीन बीघा भूमि में बारह आने के स्थिर कोष से हुई थी ।

आज इस संस्था को जनता जनार्दन की एक निष्ठा से मूक सेवा करते हुए १०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं । इस काल में अपने जीवन की अनेक अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना किया है । सब कुछ होने पर भी अपने आदर्शभूत उद्देश्य का आज तक परित्याग नहीं किया ।

महाविद्यालय ज्वालापुर की विशेषता है कि यह प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम प्रणाली के आधार पर आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार निर्धन एवं धनवान् छात्रों को सर्वथा समान भाव से वैदिक वाङ्मय की उच्चतम निःशुल्क शिक्षा देना है ।

शिक्षा का माध्यम आर्य-भाषा है । इस संस्था में वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, संस्कृत साहित्य, धर्मशास्त्र आदि प्राच्य विषयों की शिक्षा के अतिरिक्त हिन्दी, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान (भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र) कम्प्यूटर और अंग्रेजी भाषा की भी यथोचित शिक्षा दी जाती है । यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके सहस्राधिक छात्र स्नातक बनकर देश के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी तत्परता और कुशलता के साथ कार्य कर रहे हैं । यह संस्था संस्कृत साहित्य के ज्ञान और उसके ठोस पाण्डित्य में अपना विशेष स्थान और प्रभाव रखती है ।

यहाँ का जीवन सरल और रहन-सहन सादा है । स्नातकों तथा छात्रों में शास्त्रीय विषयों के प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ-साथ ग्रन्थ-लेखन, पत्रकारिता, कवित्व शक्ति, कुशल अध्यापकत्व, व्याख्यान-कला आदि में विशेष प्रगतिशीलता है । इसके पास ३०० बीघा भूमि है, जिससे कृषि और वाटिका आदि के द्वारा पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है । संस्था में बड़े-बड़े विशाल भवन हैं, जो यहाँ के सौन्दर्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं ।

यहाँ के कार्यकर्ता एवं आचार्य सदा से त्यागी, तपस्वी, सरस्वती के सच्चे उपासक एवं अनन्य भक्त रहे हैं, जो सांसारिक प्रलोभनों से भी उदासीन हैं । इसी का यह सुपरिणाम है कि आज की विषम परिस्थितियों में भी यह संस्था किसी न किसी रूप में दुःख-सुख भोगकर अपना अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए है । इसे पूर्णरूपेण न राज्याश्रय प्राप्त है और न ही अपेक्षित रूप से जनता का आश्रय ही प्राप्त हुआ है । केवल भगवान् के भरोसे पर उसी दीनबन्धु के विश्वास और आदर्श-संन्यासी श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती के एकमात्र भोगवाद के दृढ़ सिद्धान्त पर इसका सञ्चालन निर्बाध रूप से हो रहा है ।

जन-समुदाय इसे देखकर आश्चर्यचकित है। इसका कारण एक ही है, और वह यह कि कुछ संस्कृत विद्या के स्वर्गीय तथा आधुनिक विशिष्ट व्यक्तियों ने अपना जीवन-मरण इस संस्था को बना लिया था और बनाया हुआ है। वे ही इसकी समुन्नति में अनवरत यथाशक्ति प्रयत्नशील रहे हैं और आज भी प्रयत्नशील हैं।

वैदिक धर्म की मान-मर्यादा, आर्य-सिद्धान्तों और उच्चतम आदर्शों का व्यावहारिक रूप आप यहाँ की शिक्षा में प्रत्यक्ष देख सकते हैं। धार्मिक-निष्ठा, सत्यपरायणता, आस्तिकता यहाँ की शिक्षा-पद्धति का विशेष गुण है।

उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दक्षिणी भारत, मद्रास, ट्रावनकोर, बम्बई, हैदराबाद, गुजरात, सिन्ध, लंका, नेपाल, काबुल, कन्धार तक के छात्र यहाँ शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। फीजी, अमेरिका, मारीशस और डेनमार्क के छात्र यहाँ अध्ययन करते रहे हैं, और आज भी अध्ययन कर रहे हैं।

आर्यजगत् के प्रायः समस्त गणमान्य विद्वान् नेताओं की इस संस्था पर विशेष कृपादृष्टि रही है और उनके जीवन-काल में यह गुरुकुल उनका विशेष रूप से कृपापात्र रहा है। राजनैतिक नेताओं में भी ऐसा कोई नेता नहीं रहा, जिसने इस कुलभूमि को अपनी कृपा और सहानुभूति का आधार न बनाया हो। बड़े से बड़े नेता यहाँ आकर अलौकिक आनन्द का अनुभव करते रहे हैं।

यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। स्थान बहुत सुन्दर और रमणीक है। यहाँ का वातावरण सर्वथा शान्त एवं गम्भीर है। यहाँ की पुण्य भूमि को देखकर प्राचीन ऋषि-आश्रमों की स्मृति जागृत हो जाती है। बिना घृत, दुग्ध के भी यहाँ के छात्र सर्वथा स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न-वदन दिखाई देते हैं। यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, ऊँची-नीची पर्वतमालाएं आगन्तुकों का मनोरञ्जन करती रहती हैं। इस गुरुकुल को उत्तर भारत की काशी कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इतना सब कुछ होते हुए भी महाविद्यालय की आर्थिक स्थिति शोचनीय बनी रहती है। यद्यपि भारतवर्ष स्वतन्त्र है। अपना राज्य है। अपनी ही भाषा राष्ट्रभाषा है। प्रत्येक व्यक्ति भारतीय संस्कृति की दुहाई दे रहा है, फिर भी मानसिक दासता से अभी हमें छुटकारा नहीं मिला है। उसमें अभी हम सब बुरी तरह जकड़े हुए हैं। उसी का यह प्रभाव है कि आर्षवाङ्मय संस्कृत शिक्षा के केन्द्र, प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम-प्रणाली के आधार पर निर्धन तथा धनवान् का भेदभाव मिटाकर समानभाव से निःशुल्क शिक्षा देने वाली इस संस्था के प्रति जनता की सहानुभूति पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हो सकी है।

आशा है कि अचिर भविष्य में जनता इसकी वास्तविकता एवं यथार्थ उपयोगिता को समझेगी और यथाशक्ति इस राष्ट्र-यज्ञ को अपनी आहुति से प्रज्वलित करती रहेगी।

दिनांक - ८.७.२००३ई०

-कुलपति

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर- कतिपय संस्मरण

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

स्वामी दयानन्द के शिक्षा-सिद्धान्तों को मूर्तरूप देने के लिए स्थापित ज्वालापुरीय गुरुकुल महाविद्यालय का भौतिक साक्षात्कार तो मैंने १९५९ में किया था, किन्तु मानसिक और आत्मिक स्तर पर उसका परिचय मुझे काफी पहले मिल गया था। तप:पूत वीतराग संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी निष्काम कर्म में आस्था रखते थे। वे प्रखर लेखक, वक्ता तथा शास्त्रार्थ महारथी होने के साथ-साथ गुरुकुल शिक्षा के प्रबल हामी थे। स्थान-विशेष पर गुरुकुल की स्थापना करना, तत्पश्चात् उसके संचालन का भार स्थानीय आर्यबंधुओं के लिए छोड़कर सर्वथा निर्लेप भाव से उस स्थान से आगे चले जाना और अन्य स्थान पर एक अन्य गुरुकुल बनाना उनकी जीवनचर्या का अभिन्न अंग बन गया था। गुरुकुलों की भांति वैदिक सिद्धान्तों को पुष्ट करने के लिए पत्रों का प्रकाशन करना, उनका प्रिय कार्य था। मैं एक दर्जन उन हिन्दी, उर्दू के पत्रों की सूची अपने ग्रन्थ 'आर्यसमाज की पत्रकारिता' में दे चुका हूँ, जो स्वामी दर्शनानन्द द्वारा जारी किए गए थे। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती थी कि उनके द्वारा आरम्भ किया गया यह पत्र अल्पजीवी होता है या दीर्घजीवी।

ज्वालापुर गुरुकुल को स्थापित करने के पीछे उसके संस्थापक के दो मुख्य उद्देश्य थे- नि:शुल्क शिक्षा तथा पाठ्यक्रम में संस्कृत तथा प्राच्य विद्याओं को प्रमुखता देना। स्पष्ट है कि १९०२ में स्थापित गुरुकुल कांगड़ी द्वारा उपर्युक्त प्रयोजनों को पूर्णरूपेण सिद्ध होता न देखकर स्वामी दर्शनानन्द जी ने गंग-नहर के किनारे बाबू सीतारामजी द्वारा प्रदत्त भूमि पर इस विद्यालय की स्थापना की। स्वामी दर्शनानन्द जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित होने के साथ-साथ इस महाविद्यालय की अन्य गण्यमान्य विभूतियों का भी परिचय मुझे प्राप्त था। आचार्य नरदेव शास्त्री, स्वामी शुद्धबोधतीर्थ, पं० भीमसेन शर्मा (आगरा), पं० पद्मसिंह शर्मा आदि से मेरा साक्षात् परिचय तो नहीं हुआ, किन्तु उनके कार्य तथा उनके वैदुष्य की जानकारी मुझे अवश्य थी। महाविद्यालय में वर्षों तक आचार्य रहे पं० हरिदत्त शास्त्री (विभिन्न तीर्थ उपाधियों से अभिषिक्त) के प्रथम दर्शन जोधपुर में हुए जब वे किसी कार्यवश वहाँ आए थे। उस समय उनके शिष्य पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री जोधपुर आर्यसमाज के पुरोहित थे, जहाँ मैं उन दिनों मन्त्री था। याद आता है कि जोधपुर के एक पौराणिक पण्डित रामकर्ण असोपा ने ऋषि दयानन्द की व्याकरण-विषयक एक कथित त्रुटि का उल्लेख अपने एक लेख में किया था। उनकी यह आपत्ति किसी पाणिनीय सूत्र को लेकर थी। जब मैंने यह विषय शंका रूप में पं० हरिदत्तजी तथा पं० लक्ष्मीनारायण जी के समक्ष रखा, मुझे स्मरण है कि दोनों विद्वान् गुरु-शिष्यों ने परस्पर विचार करने के अनन्तर स्वामी दयानन्द के मत को सत्य बताया तथा पं० रामकर्ण की आपत्ति को निराधार सिद्ध किया। मैंने इस प्रसंग की चर्चा तत्कालीन आर्यपत्रों में की थी।

वाग्देवी के अवतार, शास्त्रार्थ-पटु तथा प्रवचन देने में कुशल चूरू (राजस्थान) निवासी पं० गणपति शर्मा प्राय: महाविद्यालय में आते रहते थे। इसी परिसर में उन्होंने स्वामी दर्शनानन्द से वृक्षों में जीवविषय पर शास्त्रार्थ किया था, जिसका रोचक वृत्तान्त प्रत्यक्षदर्शी पं० पद्मसिंह शर्मा ने पूना से प्रकाशित होने वाले 'चित्रमय जगत्' में छपवाया था। इस अंक की एक दुर्लभ प्रति मेरे संग्रहालय में है। पं० पद्मसिंह शर्मा हिन्दी के विश्रुत समीक्षक तथा तुलनात्मक समालोचना-पद्धति के प्रवर्तक माने जाते हैं। हिन्दी साहित्य का अध्यापक तथा छात्र होने के कारण शर्माजी के साहित्यिक कृतित्व की पर्याप्त जानकारी मुझे पहले से ही थी, किन्तु वे महाविद्यालय के प्रति कितने अनुरक्त थे, यह उनके अनेक लेखों से विदित होता है। उनका निबंध-संग्रह, पद्मपराग महाविद्यालय से सम्बद्ध कतिपय विद्वानों के रेखाचित्र मार्मिक शैली में प्रस्तुत करता है।

महाविद्यालय से विद्याप्राप्त कतिपय विद्वानों से मेरा निजी परिचय रहा है। दर्शनों के अप्रतिम विद्वान् पं० उदयवीर शास्त्री, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, स्व० पं० प्रकाशवीर शास्त्री तथा पं० सच्चिदानन्द शास्त्री इन स्नातकों के कुछ नाम हैं, जिन्होंने

अपने वैदुष्य तथा अन्य गुणों के कारण न केवल सारस्वत समाज में, अपितु व्यापक सार्वजनिक जीवन में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है। महाविद्यालय में अध्यापक रहे हिन्दी के रससिद्ध कवि स्व० पं० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' की काव्य-रचना का मैं प्रशंसक रहा हूँ तथा अपने ग्रन्थ 'आर्यसमाज की हिन्दी काव्य को देन' में उनकी कृतियों की विशद समीक्षा मैंने लिखी है।

महाविद्यालय के प्रत्यक्ष दर्शन का प्रथम अवसर मुझे तब मिला जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा की वार्षिक साधारण सभा में भाग लेने के पश्चात् मैं हरिद्वार-देहरादून की यात्रा के लिए अपने एक साथी स्व० छोटमल आर्य के साथ गया। दिल्ली में ही मुझे सुझाव दिया गया था कि हम अपना निवास महाविद्यालय में रखें। यद्यपि आचार्य नरदेव जी उन दिनों वहाँ नहीं थे, किन्तु हमें विद्यालय परिसर मे ठहरने में कोई असुविधा नहीं हुई। पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति को मैं अपना गुरु मानता रहा हूँ। उनके साथ आर्य वानप्रस्थाश्रम के सत्संग में हमने भाग लिया। इस कार्यक्रम में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक (अमेरिका की अनेक यात्राएं करने वाले) का मुख्य प्रवचन था। यह संयोग ही था कि परिव्राजकजी के दर्शन का यह पहला और अन्तिम अवसर मुझे वहाँ मिल गया। पं० धर्मदेव जी के साथ जाकर गुरुकुल कांगड़ी के विभिन्न विभाग और कार्यकलाप देखे। उन दिनों पं० धर्मदेवजी हिन्दी-अंग्रेजी-संस्कृत-शब्दकोश के कार्य में लगे थे और श्री श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान के अन्तर्गत अपनी सेवाएं दे रहे थे।

पं० नरदेव शास्त्री से मेरी भेंट देहरादून राजपुर रोड पर स्थित शाहंशाही आश्रम में हुई। वे उन दिनों ग्रीष्मकालीन विश्राम के लिए यहाँ ठहरे थे। आर्य पत्र-पत्रिकाओं में निरन्तर लिखते रहने के कारण मेरा आर्यसमाज के सभी विद्वानों से परिचय रहा है, चाहे साक्षात्कार सबसे नहीं हुआ हो। शास्त्रीजी से तो मैंने एक इण्टरव्यू ही ले लिया जो बाद में आर्यजगत् में छपा। मैंने एक प्रश्न में शास्त्रीजी से यह जानना चाहा था कि उन्होंने अपने द्वारा लिखे गए आर्यसमाज का इतिहास (दो भाग) में विवादास्पद बातें क्यों लिखीं, जिनके कारण उनका यह ग्रन्थ आर्यसमाज में कटु आलोचना का पात्र बना। मैंने स्वयं इसे पहले ही पढ़ रखा था, इसलिए इस पर शंका करना मेरे लिए कठिन नहीं था। पर्याप्त समय बीत जाने पर भी मुझे स्मरण है कि शास्त्रीजी येन केन प्रकारेण अपना बचाव करते रहे और अपने ग्रन्थ को निर्दोष बताते रहे। उनके सौजन्य की तो कोई सीमा ही नहीं थी। उनका उस समय निवास एक छोटे टीले पर बनी कुटिया में था। उन्होंने आदमी भेजकर नीचे से कुछ फल मंगवाए और मुझ जैसे युवा अतिथि का प्रेमपूर्वक सत्कार किया। १९५९ में महाविद्यालय की स्वर्ण जयन्ती स्मारिका छपी थी। मेरे संग्रह में महाविद्यालय विषयक दो ग्रन्थ हैं जो पं० नरदेवजी द्वारा सम्पादित हैं। इनमें बहुमूल्य सामग्री है, जो महाविद्यालय के विगत इतिहास का चित्रण करती है।

वर्षों बाद जब मैं १९८०-१९९१ की अवधि में पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द शोधपीठ के अध्यक्ष पद पर रहा तो महाविद्यालय में जाने के कई अवसर मिले। उन दिनों ब्रिटिश गायना का निवासी पं० सतीशप्रकाश (वर्तमान में न्यूयार्क आर्यसमाज से सम्बद्ध) महाविद्यालय में रहता था। उसने वैदिक साहित्य में कांगड़ी विश्वविद्यालय से एम०ए० किया था और मेरे सुझाव पर ऋषि दयानन्द की बृहत्त्रयी (सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) पर पं० रामप्रसाद जी के निर्देशन में पी-एच०डी० हेतु शोधकार्य कर रहा था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में कार्यवशात् जब मैं चण्डीगढ़ से आता तो पं० सतीश के आग्रह पर मध्याह्न भोजन मैंने महाविद्यालय में ही किया। पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री तब तक संन्यास लेकर स्वामी नारायण मुनि चतुर्वेद के रूप में महाविद्यालय में ही रहते थे। मेरा उनसे पुराना परिचय था। मेरी गृहिणी भी इस समय मेरे साथ थीं। स्वामी नारायण मुनि से वार्तालाप के समय हम दोनों ने जोधपुर-निवास के अनेक संस्मरणों की पुनरावृत्ति की जो अतीत का पुनरवलोकन था। याद आता है कि इस दिन महाविद्यालय की संचालक समिति का चुनाव होना था और व्यवस्था बनाये रखने के लिए पर्याप्त संख्या में पुलिस दल विद्यालय परिसर में चहल-कदमी कर रहा था।

१९९० के वार्षिकोत्सव में मुझे सम्भवतः शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए महाविद्यालय से निमंत्रण मिला। प्रमुख अतिथि थे तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर जी। भारत के किसी प्रधानमंत्री के साथ स्टेज शेयर करने का यह मेरे जीवन का पहला और शायद अन्तिम मौका था। श्री चन्द्रशेखर का दीक्षान्त भाषण प्रभावशाली, गरिमापूर्ण तथा विचारोत्तेजक था। राजनीति से हटकर बोलना भी एक कला है, जो पेशेवर राजनीतिज्ञों में प्रायः दुर्लभ होती है, तथापि श्री चन्द्रशेखर इसके अपवाद हैं। इस वर्ष स्नातक बने छात्रों के अनुरोध पर उनका एक समूहचित्र प्रधानमंत्री के साथ लिया गया। यह एक सुखद संयोग ही था कि मैं भी उस समूहचित्र में स्थान पा सका।

महाविद्यालय आज अपने यशस्वी जीवन के १०० वर्ष पूरे कर रहा है, यह गौरव की बात है। वर्षों से यहाँ का संस्कृत मासिक-पत्र 'भारतोदय' मुझे मिल रहा है, जिससे यहाँ की गतिविधियों से रूबरू होने का अवसर प्राप्त होता रहता है। यह महाविद्यालय यशस्वी एवं चिरायु हो।

पता- ८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली

– सुशील कुमार त्यागी 'अमित', विद्याभास्कर, एम०ए०, साहित्याचार्य

वेद-विद्या, ब्रह्मचर्य का पढ़ाती पाठ सदा,
मानव की उन्नति का पथ दिखलाती है।
कूट-कूट भरती 'अमित' उर देश-प्रेम,
शुद्ध वेद-धर्म का ये मर्म सिखलाती है।
जीवन के वन में खिलाती नव ज्ञान-पुष्प,
श्रुतियों की सुधा का ये पान करवाती है।
सुन्दर सुरुचिपूर्ण, सबके ही मन भाती,
'गुरुकुल-शिक्षा की प्रणाली' कही जाती है॥१॥
भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार, दुराचार,
नष्ट-भ्रष्ट करके ये जग को जगाती है।
शारीरिक, सामाजिक, अलौकिक बल देके,
घनघोर अँधियारा जग से मिटाती है।
पथ-भ्रष्ट दानवों को देवता बनाती यह,
देवभाषा का प्रखर पण्डित बनाती है।
निज नव सृजन 'अमित' करती है, श्रेष्ठ-
'गुरुकुल-शिक्षा की प्रणाली' कही जाती है॥२॥

***

पता- प्राध्यापक- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द जी महाविद्यालय पधारे ।

– डॉ० प्रदीप कुमार जैन

उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्दजी भी एक बार गुरुकुल ज्वालापुर पधारे थे। वे गुरुकुल के आचार्य तथा 'भारतोदय' के सम्पादक साहित्य-मनीषी सम्पादकाचार्य पंडित पद्मसिंह शर्मा के प्रति श्रद्धाभावना रखते थे। सन् १९२७ में वे गुरुकुल कांगड़ी की साहित्य परिषद् की अध्यक्षता करने पधारे थे। पंडित पद्मसिंह शर्मा जी के साथ कई दिन रहे थे।

सन् १९३२ में शर्मा जी का निधन हुआ, तो पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल-भारत' का 'पद्मसिंह अंक' निकाला था। चतुर्वेदीजी की प्रार्थना पर मुंशी प्रेमचन्द जी ने लेख लिखा। 'पद्मसिंह शर्मा के साथ तीन दिन' शीर्षक उनका यह लेख 'विशाल-भारत' के अगस्त १९३२ में प्रकाशित विशेषांक में प्रकाशित हुआ। उस महत्त्वपूर्ण संस्मरणात्मक लेख को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

गुरुकुल-कांगड़ी में हिन्दी-साहित्य-परिषद् का कोई उत्सव था। मुझे न्यौता मिला। उधर शर्मा जी भी निमन्त्रित हुए। हम दोनों एक ही साथ तबेड़े (छोटी नौका) पर बैठकर कांगड़ी पहुँचे। शर्माजी उधर अक्सर आते-जाते रहते थे। तबेड़े पर बैठने के आदी थे। मेरे लिए तबेड़ा अनूठा चीज थी, जो अगर गुरुकुल वालों का आविष्कार नहीं तो पेटेन्ट अवश्य है। उस स्थान की वेगवती गंगा में नाव और किश्ती तथा स्टीमर की गति नहीं। उस वैतरिणी में तो यह गऊ की पूंछ ही पार लगा सकती है। आपको यह विश्वास तो दिला दिया गया है कि अकाल मृत्यु की यहाँ सम्भावना नहीं, क्योंकि गंगा की माता की गोद में भी मौत कुछ कम भयंकर नहीं होती। आपको कुछ आश्वासन हो भी रहा है, लेकिन जब आप उस अपार सागर को देखते हैं, लहरों की तेजी का देखते हैं, तो इस आश्वासन में कुछ कम्पन होने लगता है। आपके मन में यह धारणा जमने नहीं पाती कि ये लहरें आपके तबेड़े का बाल भी बांका नहीं कर सकतीं। आप अपने मित्रों के आश्वासन से दिल मजबूत किए बैठे हैं, लेकिन उनके विनोद में भाग नहीं ले सकते। आपकी दशा कुछ उस मनुष्य की-सी है जो जिन्दगी में पहली बार किसी शरीर घोड़े पर सवार हुआ हो।

शर्मा जी से मेरी पहली मुलाकात छ: सात वर्ष पहले हुई थी, पर वह बहुत थोड़ी देर की मुलाकात थी। आज मैं उनके साथ एक ही तबेड़े पर बैठा हुआ था। यद्यपि वह बीच-बीच में मेरी शंकाओं का समाधान करने के लिए तबेड़े का गुण-गान करते जाते थे, लेकिन मेरा मन उनकी काव्य-कला-मर्मज्ञता का कायल होकर भी तबेड़े के विषय में निःशंक न होता था।

खैर, यात्रा समाप्त हुई, हम लोग गुरुकुल पहुँचे और आतिथ्यशाला में ठहराए गए। वहाँ मुझे मालूम हुआ कि शर्माजी को चाय से बड़ा प्रेम था और वे दो-एक प्याले से संतुष्ट न होते थे। वे चाय को शरबत की तरह पीते थे। नई सभ्यता की शायद यही एक चीज थी, जिसे उन्होंने अपनाया था और सभी बातों में वह पूरे स्वदेशी थे। वेषभूषा में नयापन कहीं छू भी न गया था। जूते भी पुराने ढंग के ही पहनते थे। उन्हें देखकर सहसा यह गुमान न हो सकता था कि यह साधारण-सा व्यक्ति इतने ऊँचे दिल और दिमाग का स्वामी है। आजकल हम लोगों में दिखावे का जो रोग लग गया है, वह उन्हें छू भी न गया था। हम अपनी थोड़ी सी पूँजी को इस तरह प्रदर्शित करते फिरते हैं, मानों विद्या हमारे ही ऊपर खत्म हो गयी है। वेदों और शास्त्रों का इस तरह उल्लेख करते हैं, मानों सब चाटे बैठे हैं। आज अपनी विद्वता का सिक्का जमाने के लिए केवल बड़े-बड़े नाम कंठ कर लेने की जरूरत है। कालिदास पर कोई लेख लिखने के लिए अंग्रेजी के एकाध आलोचकों का लेख पढ़ लेना काफी है। बस, अब हमसे बड़ा कालिदास का पारखी कोई नहीं है। 'कुमारसंभव' ! अजी वह तो कालिदास के युवा-काल की रचना है। उसमें कवि की कला, पूर्णता को नहीं पहुंच सकी है। कवि का कमाल देखना हो, तो 'मेघदूत'

पढ़िए । कहिए, 'शकुन्तला' पर व्याख्यान दे डालें । शेक्सपियर की रचनाओं की नामावली और उसके दो-चार पात्रों की आलोचना पढ़कर शेक्सपियर पर आलोचना करने वालों की कहीं भी कमी नहीं है । शर्माजी इस दिखावे के शत्रु थे और ऐसों का परदा बड़ी निर्दयता से फाश किया करते थे । तब वे जरा भी रू-रियायत न करते थे । उनका साहित्य-ज्ञान बहुत बढ़ा हुआ था । खेद यही है कि अनेक बाधाओं ने उन्हें एकाग्र मन से साहित्य की सेवा न करने दी ।

शर्मा जी और मैं सवेरे और शाम को कांगड़ी से कुछ दूर सैर करने निकल जाते । उस वक्त शर्माजी के मुख से सूक्तियों के सुनने का अवसर मिला । ऐसे-ऐसे कवियों की सूक्तियाँ सुनाते थे, जिनके नाम तक मैंने न सुने थे ।

उन्हीं दिनों दो-एक बार हिंदू-मुस्लिम समस्या पर उनसे मेरा वार्तालाप हुआ । गुरुकुल उस साहित्यिक अधिवेशन में कदाचित् यह भी एक विषय था । शर्माजी पक्के हिंदू-सभाइट थे और अपने पक्ष के समर्थन में ऐसी-ऐसी दलील पेश करते थे- ऐतिहासिक भी और धार्मिक भी- कि उनका जवाब देने के लिए मुझसे कहीं ज्यादा विद्वान् आदमी की जरूरत थी । वे मुझे कायल न कर सके और मैं तो भला उन्हें क्या कायल करता । लेकिन इस मुबाहिसे में मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि हिन्दू-सभा की नीति बड़ी मजबूत बुनियाद पर खड़ी है । औरंगजेब, अकबर, हैदरअली और सिराजुद्दौला पर किए गए आक्षेपों का उत्तर तो दिया जा सकता था और दिया गया । लेकिन मुस्लिम लीग की वर्तमान नीति का क्या जवाब हो सकता था । मन समझाने को चाहे हम कह लें कि मुस्लिम लीग केवल ओहदे के भूखे और अधिकार के इच्छुक लोगों की ही संस्था है, लेकिन जब हम देखते हैं कि मुसलमान जनता, व्यापारी और जमींदार सभी उनके साथ हैं, तो हम जरा देर के लिए भविष्य से निराश हो जाते हैं । हिन्दुस्तान की मुस्लिम नीति केवल हिन्दुओं का विरोधी है । असेम्बली को लीजिए, या कौंसिल को । हिन्दू कोई प्रश्न करता है, कोई प्रस्ताव उपस्थित करता है, तो वह राष्ट्रीय दृष्टि से । मुस्लिम मेम्बर जो कुछ कहेगा, या करेगा, वह अपने मजहबी दृष्टिकोण से । मुस्लिम लीग जब भी विशेष अधिकार चाहती है, विशेष व्यवहार चाहती है, और देश की व्यवस्था ही कुछ इस तरह हो रही है कि मुसलमान नेता जितना ही ज्यादा हिन्दूद्रोही हो, उसका उतना ही मान-सम्मान होता है । उसकी उन्नति देखकर दूसरे भी उसकी रीस करते हैं । टैक्स अधिकतर हिंदुओं की जेब से आए, पर ओहदे मुसलमानों को दिए जायँ। हिन्दू मुकाबले के इम्तहान में जान खपाकर जो ओहदा पाता है, वही मुसलमान चुनाव के द्वारा सहज ही प्राप्त कर लेता है। राष्ट्रवादी हिन्दू तो इस व्यवस्था को काल-गति समझकर सब्र कर लेता है और इस आशा से संतोष लाभ करता है कि मुसलमानों में शिक्षा का खूब प्रचार हो जायेगा, तो वे भी उदार हो जायेंगे । शर्माजी 'विशेष' अधिकारों के नाम से ही चिढ़ते थे । किसी के साथ जौ-भर भी रियायत उन्हें अस्वीकार थी । वे किसी के सामने दबना या झुकना न जानते थे ।

लेकिन इसके साथ ही संकीर्णता उन्हें छू भी न गई थी । मुस्लिम-संस्कृति, इतिहास, साहित्य में जो कुछ आदर योग्य है, उसका वे मुक्त-हृदय से आदर करते थे । खलीफा मामूँ रशीद का चरित्र उन्होंने जितनी श्रद्धा से लिखा है, उतनी ही श्रद्धा से वह कदाचित् चन्द्रगुप्त या अशोक पर लिखते । फारसी कवियों में वह सादी, हाफिज, उमर खैयाम, शम्सतबरेज, मौलाना रूम आदि का उतना ही आदर करते थे, जितना भवभूति, कालिदास या बाण का । उर्दू के अमर कवि अकबर पर तो वह आशिक थे । शायद ही कोई मुसलमान अकबर का इतना भक्त हो ।

शालीनता और विनय के वह मानों पुतले थे । मैं उनके साथ ज्वालापुर का गुरुकुल देखने गया था । मैं तो संध्या समय लौट आया । वे हरिद्वार में ही रह गए । दूसरे दिन मुझे लौटना था । जब हरिद्वार स्टेशन पर पहुँचा, तो शर्माजी मुझे विदा करने के लिए खड़े थे । गाड़ी चली, तो उनके मुख पर स्नेह की ऐसी गाढ़ी झलक नजर आयी मानों उनका अपना बन्धु विदा हो रहा है । वह सूरत आज तक मेरे हृदय-पट पर अंकित है । छोटों पर बड़ों का इतना प्रेम मैंने उन्हीं में देखा । रास्ते भर वह आकृति मेरी आँखों के सामने फिरती रही और अब भी जब याद आ जाती है, तो आँखों में आंसू आ जाते हैं । अगर जानता कि वे इतनी जल्द प्रस्थान करने वाले हैं, तो उनके चरणों के अन्तिम दर्शनकर लेता ।

पता- ४६-बी, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (प्रेषक- शिवकुमार गोयल)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (कुछ संस्मरण)

- पं० भूदेव शास्त्री, विद्याभास्कर

जो गुरुजन गुरुकुल कांगड़ी में प्रारम्भ काल में अध्यापन कार्य करते रहे; गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को सफल बनाने का श्रेय भी उन्हें ही जाता है। आचार्य श्री पं० गंगादत्त जी महाराज, श्रीयुत पं० भीमसेन दर्शनाचार्य जी महाराज, श्रीयुत सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह जी महाराज एवं श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ जी महाराज थे। आचार्य गंगादत्त जी तो पुनः श्री १०८ शुद्धबोधतीर्थ के नाम से विख्यात हुए, इन्होंने तन, मन, धन से म०वि० की तपस्या के साथ सेवा की। शिष्यों को विद्यादान देकर उनके जीवनों पर अपने सदाचार की मोहर लगाकर सभी को सुपात्र बनाकर राष्ट्र को सौंपते रहे। महावृक्ष के समान वटवृक्ष बनकर गुरुकुल महाविद्यालय ने महान् विकास किया। कामधेनु के समान सब कुछ वितरित करके पंचपुरी ही नहीं, सारे भारत में यश के नगाड़े बजा दिए।

दूसरे सर्वश्रेष्ठ छात्र-समर्पित श्रेष्ठतम जीवन बिताने वाले श्री पं० भीमसेन जी महाराज थे। हमारा यज्ञोपवीत संस्कार भी सन् २१ में इनके ही पवित्र हाथों से हुआ था। गुरुकुल में गृहस्थ-सहित रहते थे। बड़े ही उदात्त-चित्त मनस्वी वर्चस्वी और तपस्वी थे। छात्रों की समुन्नति में दिनरात प्रयत्नशील बने रहते थे। मुख्याध्यापक पद का भी यही कार्य करते थे, अगर भण्डार में रसोइया नहीं है, स्वयं उस कार्य को यज्ञरूप समझकर, पूर्ण करते थे। इन्हीं के सुपुत्र श्री डॉ० हरिदत्त शास्त्री जी थे। द्वितीय पुत्र शिवदत्त हमारे साथी थे। तीसरा बेटा विश्वनाथ आश्रम में दाखिल था। महानता के स्वरूप थे। श्री डॉ० हरिदत्त जी ने तो पृथिवी को जैसे बैल ने अपने सींगो पर उठा रक्खा है, उसी तरह म०वि० का समस्त कार्यभार तथा चौमुखा विकासभार उन्होंने अपने सिर उठाया था। आज का गुरुकुल महाविद्यालय उन्हीं की देन स्वरूप है। समस्त स्नातक-वर्ग सदा उनका ऋणी रहेगा। छात्रों को अग्रसर होने के लिए अपने लिए उन्होंने जो मार्ग बनाए थे, वही मार्ग सभी छात्रों के लिए भी खोले और खुलवाए। गुणों में श्री शास्त्री जी खाण्ड की रोटी थे। हजारों छात्र-छात्राएं उनसे दान पाकर सफल अध्यापक, प्रोफेसर, विद्यादानी बने हैं। म०वि० के प्रत्येक विभाग में इनका प्राण-प्रतिबिम्ब झलकता है। श्री करपात्री जी के ग्यारह हजार पण्डितों से शास्त्रार्थ किया। श्लोकों के माध्यम से सभी को हराया। श्री व्यासदेव शास्त्री इनके साथ लगे रहे थे और कुछ मिनटों में श्लोक रचना द्वारा प्रश्न भी करते जाते थे और समुचित बोलती बन्द करने वाला उत्तर भी देते जाते थे। श्री महामना मालवीय जी ने ऐसी विशाल प्रतिभा वाले व्यक्ति को हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रधान संस्कृताध्यक्ष बनाने का निमन्त्रण भेज दिया, परन्तु नहीं गए। इनके जीवन की बहुत सी घटनाएं हैं, पर वे सब इस लेख में नहीं दी जा सकती। छात्र-समर्पित जीवन जिए हैं। तीसरे महाविद्वान् श्री पद्मसिंह शर्मा थे। जब भी किसी शहर या स्थान-विशेष में जाते थे, इनके पास कवियों, शायरों का जमघट जमा हो जाता था दिन हो या रात। चाय का पतीला कभी ठण्डा नहीं होता था। कवि-सम्मेलन जैसी भीड़ उमड़ पड़ती थी। उर्दू, अरबी, फारसी के ही विद्वान् मालूम होते थे। पढ़ाने का भी शौक था। हमें उन्होंने दोपहर के आराम के समय में रघुवंश पढ़ा डाला था। जब कादम्बरी पढ़ाई तो उन्होंने कहा कि सातवीं बार मैं कादम्बरी आप लोगों को पढ़ा रहा हूँ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का इन्हें अध्यक्ष चुना गया। भारत में सब ओर खुशियाँ ही खुशियाँ बिखर रहीं थीं। अध्यक्ष पद का जो भाषण छपा, उसकी प्रतियाँ पांच-छः बार छापनी पड़ी थी। आप की लेखन शैली ही कुछ इस प्रकार की थी, कहानी की उत्सुकता, साहित्य में भावों की गम्भीरता तथा विदूषक सा हास्य अवश्य रहता था। भाषा खिचड़ी आपको पसन्द नहीं थी। हिन्दी साहित्य में इनकी तुलनात्मक-समालोचना प्रसिद्ध है। श्री राजा ज्वालाप्रसाद जी ने "बिहारी सतसई" की टीका की है, जिसकी आलोचना आपने "सतसई-संहार" नाम से की है। बहुत यथार्थ तथा रोचक आलोचना है। मैंने तो उसे कई बार पढ़ा है। दूसरी एक पुस्तक "पद्मपराग" नाम से अलग छपी है। जो पढ़ने ही बनती है। पद्मसिंह जी अपने नाम के सम्बन्ध में कहा करते थे- अच्छे साहित्यकारों, कवियों के साथ मैं पद्म के समान व्यवहार करता हूँ और जो साहित्य में

व्यर्थ वितण्डावाद करते हैं, उनसे मैं सिंह समान होकर गरजता हूँ। सन् १९११ में पंचम जार्ज की दिल्ली में ताजपोशी हुई थी। उनके जुलूस में भारत के छोटे बड़े सभी राजा, महाराजा और नवाब शामिल हुए थे। उनमें किसी ने पंचम जार्ज बादशाह के नोटों को जलाकर चाय बनाकर उन्हें पिलाई थी। "पद्मपराग" में इस लेख की मधुर और कटु आलोचना भी विशेष स्थान रखती है। हास्य रस तो कोई इनसे सीखे।

चौथे विद्वान् भी गुरुवर नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ थे। इनमें पाण्डित्य के अलावा राजनेता होने का अधिक शौक था। महाराष्ट्री थे। अतः राव शब्द से इन्हें पुकारा जाता था। बहुत ही सीधे-सादे टीपटाप के बिना रहते थे। श्री राष्ट्रपिता गांधीजी के अनुयायी थे। मनमौजी थे, जी चाहा तो महाविद्यालय में रहते, वरना क्षेत्र आपने देहरादून को बनाया। देहरादून के नेताओं में भी इनकी प्रसिद्धि थी। जेल जाना तो इन्होंने अपना धर्म ही मना रक्खा था। श्री हुल्लास वर्मा, महावीर त्यागी आदि सभी के साथ इनका मेल-मिलाप था। उत्तरदायित्वपूर्ण कोई काम निभाने से सदा आप दूर ही रहते थे। चुनाव जीतकर उ०प्र० शिक्षामंत्री बने थे, फाइलों की प्रतिदिन की भीड़ से, उनको पढ़कर हस्ताक्षर के कार्य से उकताकर मन्त्री पद को त्यागकर महाविद्यालय ही आकर शान्ति पाई। इनके भगत लोग भी इनका खर्चा वहन करते थे। तप, त्याग, तपस्या इनका मुख्य आचरण था। अच्छा जीवन भोगकर संसार से विदा हुए थे।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के छात्र सदा ही बड़े विद्वान् होकर निकले हैं। अपने सारे जीवन में उन्होंने जनता में सदा नाम कमाया है। श्री पं० दुर्गाप्रसाद और श्री भूपाल सिंह जी अमृतसर और सारे पंजाब में प्रसिद्ध हुए। मेरे साथी श्री गोपाल चन्द्र देव भी व्रती भ्राता करके प्रसिद्ध हुए। श्री उदयवीर शास्त्री ने भी लाहौर में नाम पाया। श्री महात्मा खुशहालचन्द जी से जेल में परिचय बढ़ा। प्रधानमन्त्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल के साथ बड़े गहरे सम्बन्ध रहे। श्री सूर्यकान्त जी ने भी बड़ा नाम कमाया। श्री बलदेव शास्त्री ने नाम पाया। बिहार, बंगाल में भी अनेक स्नातकों ने भी अच्छे कार्यों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त की। जो स्नातक अधिक प्रसिद्ध रहे वे सब श्री डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री के शिष्य रहे हैं। उनमें श्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी भी एक महान् व्यक्तित्व हैं।

अभी संस्था में कामधेनु के समान श्री वत्स जी प्रधानरूप में कार्यशील हैं। भगवान् उन्हें साधन सम्पन्न तो बनाया ही मेधा भी मर्म से पूर्ण की है। विनम्रता, सदाचार श्रेष्ठ सूझ-समझ वाले इन्सान हैं। परिवार भी सम्भ्रान्त समुन्नत है, भूयश्च शरदः शतात्, उसके साथ-साथ जुड़ता चले हमारी यही शुद्ध भावना है। ऐसे ही ऋषि, मुनियों वाले जीवन से महाविद्यालय का सम्बन्ध जुड़ा रहे। दूसरी घटना है सन् १९३९ की। अगस्त १७-१८ को निजाम हैदराबाद से सन्धि हुई और हम सब जेल से छूट गए। हम सब वर्धा पहुँचे। तब विचार बना कि सेवाग्राम चलकर राष्ट्रपिता श्री गांधीजी के दर्शन क्यों न करें। विचार बनते ही वर्धा से पैदल ही वर्षा में भीगते-भागते सेवाग्राम पहुँच गए। रास्ते के किनारे पर ही हमें यह जानकर और देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि झोंपड़ियों में टाइपिस्ट बैठे पूज्य श्री गांधीजी के पत्रों का उत्तर दे रहे हैं। लंगोटी बाबा का सम्बन्ध राष्ट्रपति से कम नहीं था। राष्ट्रपति को भी शायद इतने पत्रों का उत्तर रोज-रोज न देना पड़ता हो। किसी ने हमारी सूचना पूज्य गांधीजी को दे दी थी। हैदराबाद से कुछ सत्याग्रही आपके दर्शनों के लिए पधारे हैं। अस्तु, हमें अन्दर बुला लिया गया। यहाँ भी हमें आश्चर्य हुआ छप्परवाली झोपड़ी में कांग्रेस की अन्तरंग सभा के सभी सदस्यों की मीटिंग हो रही है। प्रायः सभी बड़े नेता वहाँ मौजूद थे। सभी के दर्शनों का अवसर मिला। हमें तो सभी नेताओं के चरण छू-छूकर आशीर्वाद लेना था। जब हमने ऐसा करना चाहा, तो श्री नेहरु जी ने कहा कि नहीं ऐसा नहीं हो सकता, यह पैर छूना गुलामी का चिह्न है, तब मैंने सबसे प्रार्थना की और कहा भी कि हम छोटों का बड़ों के चरण छूकर आशीर्वाद लेना जन्मसिद्ध अधिकार है। तब पूज्य गांधीजी ने कहा कि दो इनके प्रश्न का उत्तर। बड़ों के पैर छूकर आशीर्वाद लेना इनका अपना अधिकार है तो हमें बाधा डालना अनुचित है। हमने नम्बरवार सभी के पैर छुए और बड़ों ने हमारे सिरों पर हाथ धरकर हमें आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के

बाद श्री गांधीजी ने हमसे पूछा कि आपको जेलों में बहुत दुःख उठाना पड़ा होगा । मैंने कहा कि हमारा जीवन गुरुकुलीय जीवन था, जेलों में जाकर और वहाँ की लाल कोठरी का भी दण्ड भोगते हुए हमें किसी मौके पर दुःख के दर्शन नहीं हुए । जेल में भी दुःख पास नहीं आया या भाग गया था ।

इस पर पूज्य महात्मा गांधी जी ने जो कहा वह हमारे लिए प्रमाणपत्र है, वे कहते हैं- ऐसे संयमी, तपस्वी सत्याग्रही जो न कायर हैं, न नशा, न बीड़ी, शराब और न कोई अन्य लत नहीं है, ऐसे सत्याग्रही मुझे मिल जाए तो मैं अंग्रेज सरकार को एक दिन में ही जीत लूँ ।

इसके बाद श्री गांधीजी ने हमें अपना अतिथि समझा । वर्धा में जहाँ श्री जमुनालाल बजाज के यहाँ अन्तरंग सदस्यों का खाना था, हमारे लिए वहीं खाना तैयार किया गया । बजाज जी भी यह जानकर कि ये जेल से छूटकर आए हैं, हमारे लिए खीर, मालपूआ खाने का प्रबन्ध किया ।

***

पता- ४५/२ केशव रोड, देहरादून (उत्तरांचल)

एक स्मरणीय प्रसंग

अमृतसर में स्वामी दयानन्द जी पर पत्थर फेंके गये

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

उक्त घटना के बारे में स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपने जीवनी-लेखक पं० श्रीराम शर्मा को बताया और शर्माजी ने 'दर्शनानन्द-दर्शन' नामक पुस्तक में लिखा- "इन पंक्तियों का लेखक (श्रीराम शर्मा) बदायूं गुरुकुल में सन् १९०३-१९०४ में उपदेशक की श्रेणी में पढ़ता था । एक दिन हम विद्यार्थियों को गुरुकुल के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द जी ने बातों की बातों में अपने बायें पैर के एक घाव का दाग दिखाया और कहा कि यह निशान उस समय का है, जब मैं अमृतसर में स्वामी दयानन्द जी का व्याख्यान सुन रहा था । उस सभा में विघ्नकारियों ने ईंटें फेंकी थी, तब मेरे पैर में एक ईंट आकर लगी और खून बह निकला ।" शर्मा जी ने आगे लिखा कि इस प्रसंग को सुनाते समय स्वामीजी की मुखमुद्रा प्रफुल्लित हो गई थी, मानो वे कोई स्मृतिचिह्न (शील्ड) जीतकर लाए हैं और हम छात्रों को दिखला रहे हैं ।

***

पता- ८/४२३, नन्दनवन, जोधपुर, राजस्थान

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार का मुख्य द्वार
श्री दर्शनानन्द द्वार

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, विहंगम दृश्य

महाविद्यालय का मुख्य मार्ग एवं अतिथि भवन

श्री पद्म सिंह अनुसंधान भवन

उपासना मन्दिर

संस्थाध्यक्ष श्री पं. हरवंश सिंह वत्स द्वारा निर्मित श्रीमती मिश्रीदेवी भवन (अतिथिशाला)

श्री पं. हरवंश सिंह वत्स प्रधान सभा द्वारा नवनिर्मित ''हरि यज्ञशाला''

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम

नवनिर्मित अतिथि भवन (सुखदेव सदन)

गौशाला एवं ट्रैक्टर

गौशाला का एक दृश्य

महाविद्यालय के बड़े आवास कक्ष

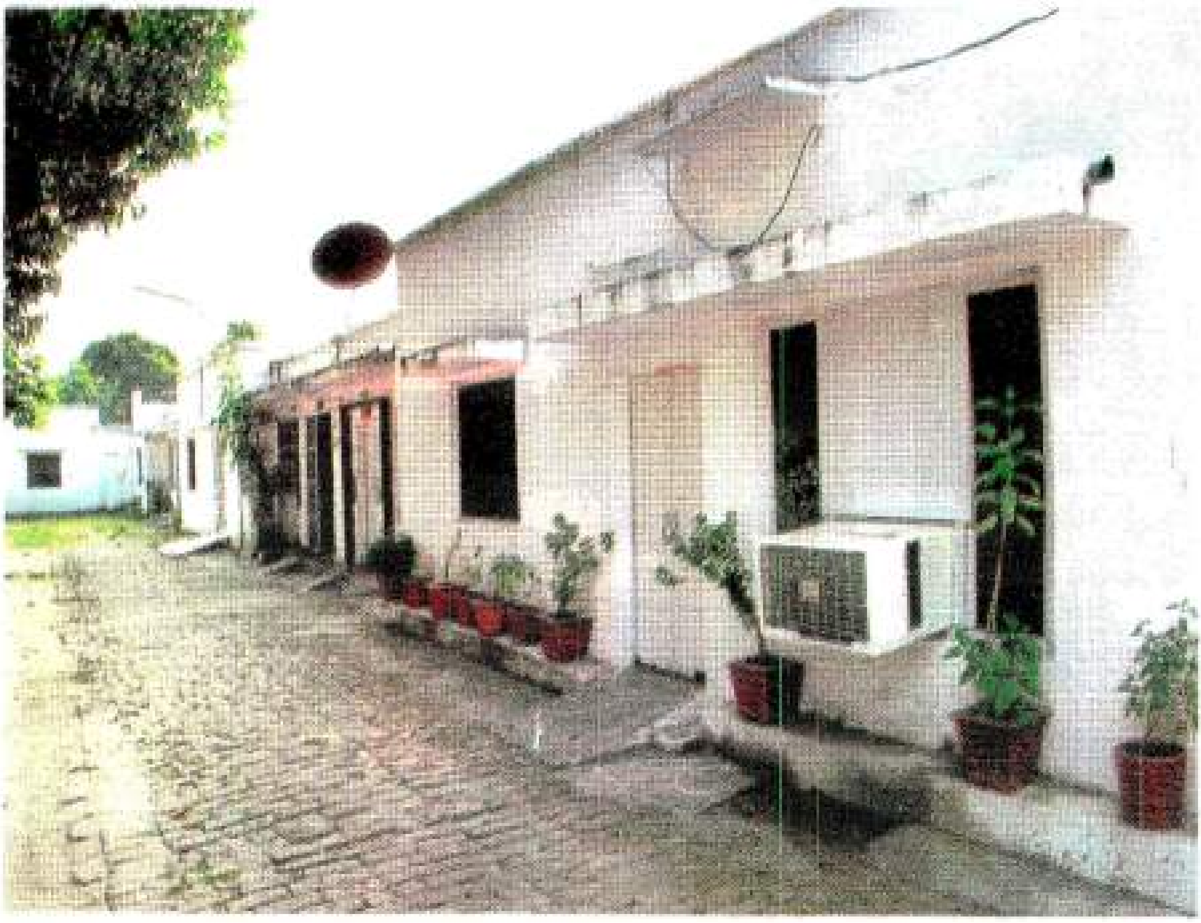

महाविद्यालय के बड़े आवास कक्ष

छोटे आवास कक्ष

गुरुकुल का भोजनालय

पाण्डुलिपि विज्ञान प्रशिक्षणार्थियों के मध्य बीच में बैठे हुए
श्री डा. हरिगोपाल शास्त्री, प्राचार्य एवं डा. गौरी शंकर आचार्य, प्रधान सभा

ज्वालापुर महाविद्यालय की स्थापना क्यों ?

- श्री विद्यासागर शास्त्री

१९०२ गुरुकुल कांगड़ी के स्थापना का समय रहा है। निःसन्देह कांगड़ी की स्थापना का वैदिक विचार पंजाब में उपजा और वहीं से पुष्पित पल्लवित एवं फलित रहा।

ब्रिटिश प्रशासन के आगमन के साथ ही प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य विचारधारा के समावेश का चालाकी पूर्ण कार्य प्रारम्भ हो गया था। भारतीय संस्कृति की न्यूनता को प्रचारित किया जा रहा था।

बंगाल का उर्वर मस्तिष्क पाश्चात्य प्रणाली को लगभग स्वीकार कर चुका था और पंजाब के बौद्धिक वर्ग मे पाश्चात्य वायु-परिवर्तन का बीजारोपण हो चुका था।

महर्षि दयानन्द ने इस कुत्सित प्रणाली को हृदयंगम कर लिया था और उन्होंने बौद्धिक समाज 'ब्रह्मसमाज' के विशिष्ट व्यक्तियों को बहुत हृदयंगम करा दिया था।

महर्षि को छोड़कर शायद ही किसी भारतीय ने इस चालाकी को पकड़ा हो। महर्षि इसका मुख्य कारण शिक्षा को समझते थे। समस्त भारत प्राचीन शिक्षा-पद्धति से विरत हो चुका हो चुका था। नवीन शिक्षा, रहन- सहन के लिए छटपटा रहा था।

बंगाल के प्रचार के बाद महर्षि ने पंजाब पकड़ा। तब पंजाब लगभग पूर्ण शिक्षा के अभाव के गर्त में जा चुका था।

पंजाब और बंगाल में अन्तर यह था कि बंगाल नवीन बुद्धि-चातुर्य्य को तुरन्त पकड़ लेता था। पंजाब में ये गुण न थे। पंजाब सीमावर्ती प्रान्त रहा है और निरन्तर विदेशों के बड़े झटके सहता रहा है।

फिर भी परिवर्तनशील विचारधारा के कुछ बुद्धिजीवी व्यक्ति थे। लगभग ये सब आर्यसमाज से प्रभावित थे। ये लोग महर्षि की शिक्षा-पद्धति को समाज और जीवन के लिए उचित नहीं समझते थे। परन्तु महर्षि की विचारधारा एवं वैदिक भावना से विरत भी होना नहीं चाहते थे। अतः नव्य शिक्षा प्रणाली तथा महर्षि शिक्षा आर्यचिन्तन का मध्यवर्ती मार्ग निकाला गया। इस नव्य शिक्षा-प्रणाली का नाम डी०ए०वी० रखा गया अर्थात् 'दयानन्द एंग्लो-वैदिक'। अर्थात् दोनों प्रणालियों का समन्वय किया गया।

द्वितीय पक्ष अधिक कट्टर था, वह महर्षि की शिक्षा चिन्तना से जरा भी हटना नहीं चाहता था। इसलिए महर्षि की विचारधारा के अनुकूल इस पक्ष ने 'गुरुकुल' प्रणाली को उचित माना।

दोनों विचारधाराओं के समर्थक आर्यसमाजी ही थे। डी०ए०वी० पक्ष के श्री हंसराज, श्री बद्रीदास आदि थे। गुरुकुल-प्रणाली के पक्षधर श्री श्रद्धानन्द जी, महाशय कृष्ण, श्री खुशहालचन्द जी आदि थे।

शनैः-शनैः दोनों विचारधाराओं के समर्थक उग्रतर हो गए। १९८३ से लेकर १९०० तक किसी तरह समन्वय होता रहा। परन्तु १९०१ में असह्य हो गया।

इसी आधार पर पंजाब आर्यसमाज के सदस्यों द्वारा गुरुकुल कांगड़ी का निर्माण किया गया।

यहाँ यह भी जान लेना उचित होगा कि- पंजाब के दोनों पक्ष अब आर्यत्व वैचारिक भावना से पृथक् न होकर प्रचार-प्रसार में सर्वथा अलग हो गए तथा एक दूसरे के आर्यत्व विचार पर विभिन्नताओं पर उग्र आक्षेप करने लगे।

विचारधारा के आधार पर डी०ए०वी० प्रणाली के समर्थक, कालेज पार्टी, गुरुकुल पार्टियों में आ गए। यह 'फाड़' पंजाब आर्यत्व की संक्षिप्त कथा है।

'गुरुकुल' प्रणाली का भार श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी पर आ पड़ा। गंगा-पार हरिद्वार में 'कांगड़ी' नामक ग्राम में कुछ जमीन लेकर गुरुकुल की स्थापना १९०२ में हो गई।

इस प्रणाली के संचालन के लिए श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का अथक परिश्रम रहा। पंजाब के श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, स्वामी जी के परम सहयोगी रहे थे।

हरिद्वार चूँकि उस समय यू०पी० में था और सहारनपुर जिले के अन्तर्गत आता था। इधर भी आर्यसमाज की विचारधारा ग्रामीण-आबादी में तो थी, परन्तु शहर आबादी का सर्वस्व अनालोक भयंकर पौराणिक ही था। सहारनपुर के ग्रामीण बन्धु तथा बिजनौर जिले के भाइयों ने इस गुरुकुल को पूर्ण सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया।

इसमें प्रमुख थे श्री स्वामी शुद्धबोध जी महाराज, श्री नरदेव शास्त्री, श्री पद्मसिंह शर्मा, श्री दिलीपदत्त जी उपाध्याय आदि।

नियमावलि निर्माण हुई। भयंकर आर्थिक युग था। पैसा-पैसा चहुँ ओर माँग थी। सस्ताई पराकाष्ठा पर थी। भारत कृषि-प्रधान ही नहीं, अपितु कृषि-माल पर आश्रित था। उद्योग-धन्धे थे ही नहीं। सुई तार का निर्माण बाहर विदेशों में था।

ऐसे विवादास्पद समय में गुरुकुल-संचालन आसान न था। पंजाब का प्रभुत्व था। अतः नियमावलि में प्रविष्ट विद्यार्थियों के अभिभावकों से शुल्क लेना निर्णय हुआ। संभवतः १५ रुपया मासिक शुल्क रहा था।

आज का युग, उस समय के मुद्रांकन का अनुमान नहीं लगा सकता। नगरीय गवर्नमेण्ट सर्विस का पटवारी १० रुपये मासिक, कलक्टर ३५० रुपये मासिक ही पाता था।

कल्पना कीजिए १ रुपये के ३० सेर गेहूँ तथा ३५ सेर चने थे। सस्ताई के कारण भारत पिस रहा था। इसलिए गुरुकुल को शुल्क का निर्णय लेना पड़ा।

१५ मासिक रुपया भी सामान्य शुल्क न था। अमीर-धनाढ्य व्यक्ति ही १५ रुपया मासिक दे सकते थे। अतः १५ मासिक शुल्क लेने के सम्बन्ध में गुरुकुल संचालकों में मतभेद उभार होने लगा।

महर्षि की विचारधारा थी कि राजा और रंक का पुत्र बिना शुल्क के अध्ययन करे। इसी भावना से ओतप्रोत द्वितीय पक्ष है। विवाद का एकमात्र यही कारण रहा हो, ऐसा उचित मानना नहीं चाहिए। विवाद के अन्य भी मुख्य कारण थे, शिक्षा और उसके प्रकार।

आर्यजगत् के बुद्धिजीवी जनमानस ने हिन्दी-संस्कृत की विचारधारा को राष्ट्र के लिए उपयोगी तो माना, हिन्दी और संस्कृत भाषा की योग्यता से विहीनता के कारण आर्यजगत् भी वास्तविक संस्कृत भाषा के सांस्कृतिक रहस्य से सर्वथा वंचित था।

फिर भी संस्कृत भाषा के प्रसार की क्षीण रेखा के रूप में एक प्रभावशाली कालेज 'संस्कृत-कालेज' के नाम से लाहौर में कार्यशील था। इसके प्रिन्सिपल एक जर्मन विद्वान् 'वुलनर' थे। इसके अतिरिक्त छोटे मोटे संस्कृत संस्थान 'सनातनधर्म कालेज' तथा 'शीतला-मन्दिर' आदि लाहौर में थे। इन्हीं प्रिन्सिपल वुलनर के प्रमुख शिष्यों में आर्यसमाज के तथा अन्य श्री परमेश्वरानन्द जी, विश्वबन्धुजी, भगवद्दत्त जी आदि संस्कृत के विद्वान् थे।

पंजाब निरन्तर इतिहास-शोध के प्रवाह में बहता रहा था, परन्तु सांस्कृतिक तथा भाषा आदि के प्रवाह में न था।

यही पृष्ठभूमि गुरुकुल कांगड़ी में प्रवाहित थी। पंजाबी संस्कृति से प्रभावित श्री श्रद्धानन्द जी महाराज के अतिरिक्त सहारनपुर बिजनौर आदि के ग्रामीण क्षेत्रों के श्री पद्मसिंह आदि भी सहायक के रूप में गुरुकुल कांगड़ी में कार्यरत थे।

श्री गंगादत्त जी (श्री स्वामी शुद्धबोध जी) तथा श्री दर्शनानन्द जी महाराज भी गुरुकुल में कार्यरत थे । ये पंजाबी सांस्कृतिक वातावरण से मतभेद रखते थे ।

गुरुकुल ज्वालापुर महाविद्यालय की स्थापना के छः कारण मुख्य रूप से ये थे- १. निःशुल्क विद्यादान होना चाहिए। २. संस्कृत भाषा की प्रमुखता रहे । संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन हो । ३. संस्कृत के साथ वैदिक वाङ्मय का विशिष्ट पाठ्यक्रम रहे । ४. अनार्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन न रहे, केवल 'आर्षग्रन्थों' का पाठन हो । ५. सिद्धान्तकौमुदी आदि का पाठन न होकर 'अष्टाध्यायी' महाभाष्य आदि का पाठन रहे । ६. सर्विस-भावना से विद्यार्थी अध्ययन न करें, अपितु वैदिक मिशनरी भावना से अध्ययन हो ।

१९०७ की अक्षय तृतीया के आसपास श्री सीतारामजी ज्वालापुर थानेदार का मिलना महाविद्यालय की स्थापना का मुख्य कारण रहा । प्रारम्भिक विद्यार्थियों में श्री उदयवीर जी, चन्द्रदत्त जी, वसुदेव जी आदि ८ विद्यार्थी थे ।

यह लेखक भी १९२३ से १९३५ तक महाविद्यालय का छात्र रहा और १९३५ में 'विद्याभास्कर' उपाधि से गौरवान्वित हुआ ।

***

पता- ६४, आर्यनगर, अलवर, राजस्थान

प्रेरक प्रसंग-

स्वामी दयानन्द जी और मातृशक्ति

स्वामी दयानन्द सरस्वती धर्मप्रचार के दौरान चित्तौड़ (राजस्थान) में निवास कर रहे थे । एक दिन वे कुछ विद्वानों के साथ भ्रमण के लिए निकले । रास्ते में एक मंदिर दिखाई दिया । उसके आंगन में कुछ बच्चे खेल रहे थे ।

स्वामी जी रुके तथा उन्होंने मस्तक झुकाया । साथ चल रहे एक व्यक्ति ने यह देखा तो विनम्रता से बोला- 'स्वामी जी, रात के प्रवचन में आपने मूर्तिपूजा का विरोध किया था । अब मंदिर को देखकर सिर क्यों झुकाया ?'

स्वामी जी मुस्कराए तथा बोले- 'सामने देखो, बालिकाएं खेल रही हैं, किलकारियाँ मार रही हैं । मैंने मूर्ति के सामने नहीं, इन साक्षात् मातृशक्तिरूपी बालिकाओं के प्रति सिर झुकाकर प्रणाम किया है । हमें हमेशा मातृशक्ति के आगे नतमस्तक होने को तत्पर रहना चाहिए ।'

स्वामी जी ने कुछ ही शब्दों में महिलाओं के प्रति सम्मान करने की प्रेरणा दे डाली ।

प्रस्तुति- शिवकुमार गोयल

महाविद्यालय के कुछ संस्मरण

- श्री विद्यासागर शास्त्री

शास्त्रार्थ-परम्परा

समस्त भारत में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के अवसर पर शास्त्रार्थों का समय १९०१ से लेकर १९३५ तक रहा था।

प्रायः मुसलमान, ईसाइयों से ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में शास्त्रार्थ हुआ करते थे। वही प्रेरणा रही हो अथवा गुरुकुल महाविद्यालय की पठन परम्परा का कारण रहा हो, महाविद्यालय में भी शास्त्रार्थ-परम्परा प्रविष्ट हो चुकी थी। शास्त्रार्थ धार्मिक विषय-मूर्तिपूजा-श्राद्ध-अवतार आदि के साथ दार्शनिक विषयों पर भी हुआ करते थे। भाग लेने वालों में मुख्य ये थे- श्री आनन्दप्रकाश जी, श्री विवेकानन्द जी, श्री रुद्रदत्त जी, श्री ब्रजेन्द्र जी (जो कि बाद में संन्यासी सच्चिदानन्द के नाम से विख्यात हुए), श्री ओमप्रकाश (खतौली वाले), श्री गौरीशंकर जी आचार्य आदि।

इसी अवसर पर किसी समय श्री आनन्दप्रकाश जी तथा श्री विवेकानन्द जी में किसी विषय पर शास्त्रार्थ चल रहा था। शास्त्रार्थ में प्रसंग के अवसरों पर 'कस्य तस्य वेदस्य', 'तस्य कस्य शास्त्रस्य' आदि शब्दों का प्रायः प्रयोग होता था। श्री विवेकानन्द, जो ठेठ ग्रामीण क्षेत्रीय हिन्दी भाषी थे और संस्कृत भाषा से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वाचाल, वावदूक थे ही। शास्त्रार्थ की उमंग में- 'तस्य कस्य आत्मास्य' बोल पड़े, जब 'तस्य कस्य आत्मनः' शुद्ध वाक्य होता। महाविद्यालय में वर्षों तक इस वाक्य का हास्यपूर्वक प्रयोग चलता रहा।

एक क्रान्तिकारी का महाविद्यालय में छिपना

बात सम्भवतः १९२८ के आसपास की है। महाविद्यालय का वार्षिकोत्सव था। समस्त छात्रों के अभिभावक, पिता-माता वार्षिकोत्सव पर आये हुए थे।

समस्त क्रान्ति का बिगुल समस्त भारत में बज रहा था। राष्ट्रीय संस्थान गुरुकुल स्वतंत्रता-संग्राम के विश्वस्त स्थली माने जाते थे। क्रान्तिकारी अपने को सुरक्षित छिपाने के लिए गुरुकुल भूमि का प्रयोग निःसंकोच रूप से करते थे। ऐसे ही विकट समय में एक नवयुवक बंगाली क्रान्तिकारी किसी मजिस्ट्रेट पर बंगाल में गोली चलाकर वध करके भागकर महाविद्यालय ज्वालापुर की भूमि पर आ गया था। बंगाली युवक का बाद में पता चला कि वह अंग्रेजी में एम०ए० करके आया था, परन्तु म०वि० में आकर बिना पढ़ा-लिखा बनकर ४ रुपये प्रतिमास पर रसोइए का काम कर रहा था।

तब महाविद्यालय ज्वालापुर, सहारनपुर जिले के अन्तर्गत था। महाविद्यालय में उत्सव के अवसर पर छात्रों के माता-पिता आते थे।

मेरे पितृश्री (रामनारायण जी वकील बारों (कोटा स्टेट) में वकालत करते थे। वे भी उत्सव पर आये थे। उत्सव समाप्त हो चुका था, परन्तु पितृश्री उत्सव के बाद भी एक मास तक विद्यालय में ही रह जाते थे।

संयोग की बात है कि एक दिन प्रातःकाल वे वर्तमान रसोई बनाने के स्थान के पास किसी कार्य से आए होंगे। तभी एक सूटेड-बूटेड सज्जन भोजन बनाने के कमरे में प्रविष्ट हो गए और बंगाली युवक, जो कि रोटी बेल रहा था, का हाथ मजबूती से पकड़ लिया। युवक चिल्लाया, पितृश्री और कुछ छात्र एकदम कमरे में आए। दृश्य देखा- पितृश्री तुरन्त माजरा समझ गए और छात्रों को कुछ संकेत दिया।

छात्रों ने प्रवेश करने वाले सूटेड-बूटेड को इतना पीटा कि वह भोजन के उसी कमरे में बेहोश होकर गिर पड़ा। पितृश्री तुरन्त उस स्थान को छोड़कर अपने स्थान पर आ गए।

मुख्याधिष्ठाता उस समय श्री नरदेव जी शास्त्री थे। उक्त बेहोश व्यक्ति शान्ति-निकेतन में कार्यालय में लाया गया। पानी के छींटे देने पर उस व्यक्ति को होश आया। उसने पितृश्री की आकृति वाले व्यक्ति को तुरन्त मांग की तथा उक्त बंगाली नवयुवक रसोइए को तुरन्त उपस्थित करने का आग्रह किया। रसोइया, समीपस्थ खेतों की सघनता का लाभ उठाकर भाग चुका था।

वह व्यक्ति जिले की गुप्त पुलिस के सुपरिन्टेन्डेन्ट पद पर कार्यशील था। किसी तरह उसे मालूम हो चुका था कि क्रान्तिकारी बंगाल से भागा है और हत्या का अपराधी है। इसीलिए उन्होंने उसे रोटी बनाने के समय हस्तगत करना चाहा था, परन्तु चिड़िया उड़ चुकी थी, अब केवल मारपीट करने वाले छात्र तथा पितृश्री ही सुपरिन्टेन्डेण्ट के क्रोध के पात्र रहे थे। बंगाली युवक हाथ से निकल चुका था।

सुपरिन्टेन्डेण्ट का कथन था कि- पितृश्री की ओर इशारा करके उन्होंने ही विद्यार्थियों को पुझे मारने को प्रेरित किया था। वह निराश था- परन्तु पितृश्री पर क्रोध निकालने के लिए बारां (कोटा स्टेट) को उनके विरुद्ध रिपोर्ट भेजी। कालान्तर में कोटा-पुलिस ने पिताजी को बहुत परेशान किया और विभिन्न अपराधों में फँसाने का प्रयास किया।

उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द्र

१९२७ की ही बात है। रामाश्रम-भीमाश्रम (छात्रावास) के मध्य में एक कमरा है। उस कमरे में प्रसिद्ध साहित्यकार, मंगलाप्रसाद पारितोषिक-प्राप्त, बिजनौर जिले के नायक नगला ग्राम के वासी श्री पं० पद्मसिंह जी शर्मा रहा करते थे।

श्रावणी उपाकर्म अथवा गुरुपूर्णिमा का समय रहा होगा कि - श्री मुंशी प्रेमचन्द जी श्री पद्मसिंह शर्मा से मिलने आए। श्री शर्मा जी महाविद्यालय में 'सम्पादक' बहुश्रुत नाम से ही विख्यात थे। एक सभा रामाश्रम-भीमाश्रम के सामने मैदान में आयोजित हुई। उसी समय पर एक 'आम्रवृक्ष' उनके करकमलों से लगाया गया। उस मीटिंग में मैं स्वयं उपस्थित था। आज उक्त आम्रवृक्ष विशालवृक्ष का रूप धारण कर चुका है। उक्त आम्रवृक्ष की विशालता की महत्ता, उपन्यास-सम्राट् जैसे महान् साहित्यकार के हाथों से आरोपण का आज एकमात्र साक्षी है।

जवाहरलाल नेहरु का आगमन

बात १९२६-१९२७ की है। ग्रीष्म ऋतु थी। अचानक श्रीमती कमलाजी सहित श्री जवाहर लाल जी महाविद्यालय पधारे थे। छात्रावास के बड़े दरवाजे में प्रवेश के समय वे श्रीमती कमला जी के गले में हाथ डाले हुए थे, प्रविष्ट हुए थे। हम लोगों के लिए यह दृश्य महान् आश्चर्य का था। बड़े छात्र कहीं बाहर गए हुए थे। हम छोटे विद्यार्थी थे। पुरानी यज्ञशाला पर मीटिंग हुई। उन्होंने मीटिंग में छोटे विद्यार्थियों को उपस्थित देखकर कहा था कि- मैं इनको राजनीति क्या बात सुनाऊँ। नेहरु जी ने स्विट्जरलैण्ड में पर्वतीय यात्रा तथा स्केटिंग के कुछ मनोरंजक संस्मरण सुनाए।

वे गुरुकुलीय वातावरण से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न थे।

***

पता- ६४, आर्यनगर, अलवर, राजस्थान

खंड २

स्वामी दर्शनानन्द

* स्वामी दर्शनानन्द जी के शास्त्रार्थ
* स्वामी दर्शनानन्द जी की आर्यसमाज को देन

दर्शनानन्द-गौरवम्

-डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

(१)

यतेर्दयानन्द-वरस्य शिष्यं
शास्त्रेषु दक्षं सुगुणानुरक्तम् ।
परार्थ-संसाधन-दत्त-चित्तं
तं दर्शनानन्द-यतिं नमामि ।।

(२)

यो दर्शनानां विशदं विवेक्ता
शास्त्रार्थ-शूरः प्रतिभाऽनवद्यः ।
वन्द्यः सतां संस्कृति-पोषकाणाम्
उदात्तचेताः परमात्म-निष्ठः ।।

(३)

योऽस्थापयत् पञ्च गुरोः कुलानि,
त्यागेन धर्मेण विराजमानः ।
संन्यस्तवित्तोऽनुसृताऽऽर्यवृत्तः,
केषां न वन्द्यः सुकृतावतारः ।।

(४)

तर्के प्रतिष्ठां परमामवाप्य
शास्त्रार्थ-शूरो विजिताऽरिपक्षः ।
युक्त्या प्रमाणेन स्वपक्षसिद्धिं
विधाय लेभेऽनुपमं यशो यः ।।

(५)

दीनोद्धृतौ त्यक्त-समस्त-वित्तः,
वेदोक्त-धर्माचरणेऽनुरक्तः ।
त्यागेन धृत्या जित-सर्वलोकः
स दर्शनानन्द-यतिश्चकास्ति ।।

(६)

प्रणीय ग्रन्थान् त्रिशताधिकं यो
वेदार्थज्ञानं विशदीचकार ।
व्याख्याय षड्दर्शन-तत्त्व-जातं
वैदुष्यमेव प्रकटीचकार ।।

(७)

सरस्वती यस्य मुखाग्र-संस्था
शास्त्रार्थ-काले द्युतिमाततान ।
वाग्मित्व-शक्तिर्मधुराऽर्थ-व्यक्तिः
जहार चेतांसि सुधामणीनाम् ।।

(८)

आस्तिक्यवादे खलु भोगवादे
आदर्शभूतः सुधियां सर्वेषाम् ।
तत्त्वावबोधेन कृतार्थचेताः
व्यमोहयद् मानव-मानसं सः ।।

(९)

स संस्कृतिं वैदिक-धर्म-निष्ठां
प्राचारयद् भारत-भूमि-भागे ।
निःशुल्क-शिक्षा-प्रतिपादनार्थं
गुरोः कुलानां महिमानमाह ।।

(१०)

आर्यं समस्तं भुवनं विधेहि,
वेदोक्तधर्मं प्रतिपालयस्व ।
शंसन् इदं यः प्रजहौ शरीरं
तं दर्शनानन्द-यतिं नमामि ।।

***

गगा निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
ज्ञानपुर (भदोही)

स्वामी दर्शनानन्द

-आचार्य हरिसिंह त्यागी, विद्याभास्कर, एम०ए० साहित्याचार्य

सत्यासत्य तोलने को, न्याय्य बात बोलने को,
गुरुकुल खोलने को, चाह उमगाये थे ।
तेज में दिवाकर, आह्लाद में सुधाकर,
गंभीरता के अब्धि अथाह कहलाये थे ।।१।।
दर्शनों की ज्योति ले के, ईश्वर प्रतीति लेके,
गुरुकुल प्रीति लेके, सुपथ सुझाये थे ।
पाखण्ड के खण्डन को, वेद-विधि मण्डन को,
मूर्ति-पूजा भञ्जन-प्रभञ्जन कहाये थे ।।२।।
तर्क का कुठार धार, दर्शन प्रचार कर,
दिशि दिशि "दर्शन" के दर्शन कराये थे ।
निर्विकार राम-सम, योगी 'हरि' कृष्ण-सम,
दर्शनीय स्वामी दर्शनानन्द जी आये थे ।।३।।

***

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ।।

बोलने से न बोलना अच्छा बताया गया है, किंतु सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, यानी मौन की अपेक्षा भी दूना लाभप्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचन की चौथी विशेषता है ।

शास्त्रार्थ-महारथी स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

- पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

परमात्मा की असीम अनुकम्पा से धर्म और समाज की उन्नति के लिए असाधारण महापुरुषों का आविर्भाव होता है। स्वामी दर्शनानन्द जी उन्हीं महापुरुषों में से हैं, जिन्होंने अपनी चतुर्मुखी क्रान्ति के द्वारा शिक्षा, धर्म और समाज के क्षेत्र में क्रान्ति का बिगुल बजाया। शिक्षा के क्षेत्र में निःशुल्क शिक्षा वाले गुरुकुलों के प्रथम प्रवर्तक थे। वैदिक धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए तीन सौ से अधिक ग्रन्थ और ट्रैक्ट लिखे। सामाजिक क्रान्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर सहस्रों युवकों को ईसाई और मुसलमान होने से बचाया। धर्म और संस्कृति की सत्य रूपरेखा प्रस्तुत कर उन्हें ज्ञान का आलोक दिया।

नीतिकारों का कथन है कि उसी मनुष्य का जीवन सफल है, जिसने ज्ञान, पुरुषार्थ और अदम्य उत्साह से संसार में अक्षय यश प्राप्त किया है। अन्यथा पशु-पक्षी भी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञान-विक्रम-यशोभिरभज्यमानम्।

तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते॥

अतएव महाभारतकार का कथन है कि क्षण भर का जीवन भी सफल है, यदि वह प्रकाशपुंज की तरह देदीप्यमान होता है। धुएं के तुल्य मलिन जीवन निन्द्य है।

'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्।'

स्वामी दर्शनानन्द जी महापुरुष के सभी गुणों से विभूषित थे। ये आर्यजगत् की त्रिवेणी (दयानन्द, श्रद्धानन्द और दर्शनानन्द) के एक रत्न थे। ये परम तपस्वी, वैदिक वाङ्मय के उद्भट विद्वान्, महान् दार्शनिक, परम त्यागी, शास्त्रार्थ-महारथी, अथक लेखक और सरस्वती के वरद पुत्र थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी का जन्म माघ कृष्णा १० संवत् १९१८ वि० (सन् १८६१ई०) में लुधियाना जिले के जगरांवा ग्राम में हुआ था। इनके पिता पंडित रामप्रताप मौद्गल्य-गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम हीरा देवी था। स्वामी जी का बचपन का नाम नेत्रराम था, जो बाद में कृपाराम हो गया। इनके पितामह पं० दौलतराम और प्रपितामह पं० परसुराम थे। ११ वर्ष की अल्प आयु में इनका विवाह पार्वती देवी से हुआ।

इनके पिता धनाढ्य और व्यापारी थे। इन्हें परिवार का व्यवसाय पसन्द नहीं आया और ये महर्षि दयानन्द के व्याख्यान सुनने के लिए लालायित रहते थे। उनका स्वयं का कथन है कि- 'मैंने स्वामी दयानन्द के ३७ व्याख्यान सुने हैं और २७ वर्षों तक आर्यसमाज की सेवा की है।'

इनके पितामह पं० दौलतराम अन्तिम समय में काशी में निवास करने गए थे। वहाँ वे संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति और भोजन आदि देते थे। उनके दिवंगत होने पर कृपाराम जी ने यह काम संभाला। उन्होंने १८८९ ई० में 'तिमिरनाशक' प्रेस की स्थापना की। इस प्रेस से उन्होंने 'तिमिरनाशक' साप्ताहिक पत्र निकाला और अष्टाध्यायी, काशिका, महाभाष्य आदि ग्रन्थों को भी प्रकाशित किया। वे निर्धन छात्रों को बहुत कम मूल्य पर या बिना मूल्य के भी ये ग्रन्थ देते थे। काशी के प्रायः सभी प्राचीन संस्कृतज्ञ विद्वान् पं० कृपाराम के इस उपकार के ऋणी हैं और वे उनका नाम सदा स्मरण करते हैं।

उन्होंने काशी में रहते हुए पं० हरिनाथ जी (स्वामी मनीषानन्द जी) से दर्शनशास्त्र पढ़े और न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग और वेदान्त दर्शनों में विशेष योग्यता प्राप्त की। बाद में उन्होंने इन दर्शनों का हिन्दी में विस्तृत भाष्य भी किया है।

ये वर्तमान समय में महर्षि दयानन्द के मन्तव्यानुसार प्राचीन गुरुकुल पद्धति के समर्थक थे । उन्होंने पांच गुरुकुलों की स्थापना की । १९०३ में गुरुकुल बदायूं, १९०५ में गुरुकुल सिकन्दराबाद (मुजफ्फरनगर), १९०७ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) की स्थापना की । इसके अतिरिक्त रावलपिंडी के निकट चौहान-भक्तां में गुरुकुल पोठोहार की स्थापना की । इस समय गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ही स्वामी दर्शनानन्द जी के आदर्शों के अनुरूप संस्कृत और वैदिक वाङ्मय की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र चल रहा है ।

शास्त्रार्थ-महारथी के रूप में उनका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने अपने जीवन में छोटे-बड़े सैकड़ों शास्त्रार्थ किए थे। वे ही एक ऐसे शास्त्रार्थ महारथी थे, जो पौराणिकों, ईसाई, मुसलमान, जैनों आदि सभी से शास्त्रार्थ में विदग्ध थे । उनके अकाट्य तर्कों का उत्तर प्रतिपक्षी नहीं दे पाते थे, अतः निरुत्तर हो जाते थे। सभी विपक्षी एकमत से यही भाव प्रकट करते थे कि उनकी तर्क-शक्ति प्रबल और अनुपम है,अतः उनके सामने शास्त्रार्थ के लिए आने से घबराते थे। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि वे कभी भी अशिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे, अतः विपक्षी भी उन्हें पूज्य, मान्य और हितैषी के तुल्य मानते थे।

स्वामी जी उच्चकोटि के लेखक, संपादक और साहित्यकार थे । संस्कृत, हिन्दी और उर्दू तीनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था । लेखक के रूप में उन्होंने ३०० से अधिक बड़े और छोटे ग्रन्थों की रचना की है । इनके ट्रैक्टों की संख्या २०० से ऊपर है। वे प्रायः एक ट्रैक्ट प्रतिदिन लिख लेते थे । इनके शास्त्रीय ग्रन्थों में विशेष उल्लेखनीय हैं- न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, सांख्यदर्शन और वेदान्तदर्शन (पूर्वार्ध) के भाष्य, उपनिषत्-प्रकाश, मनुस्मृति का हिन्दी अनुवाद, श्रीमद्भगवद्गीता-सिद्धान्त । इनके कुछ ट्रैक्टों का संग्रह -- दर्शनानन्द ग्रन्थ-संग्रह पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के रूप में छपा है । ये ट्रैक्ट आर्य-सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए लिखे गए हैं । कुछ ट्रैक्ट ईसाई, मुसलमान, जैनियों और पौराणिकों के मन्तव्यों के खण्डन के रूप में हैं ।

कवि के रूप में उन्होंने 'जंग-ए-आजादी' नामक एक काव्यकृति उर्दू में प्रकाशित की थी । इसमें हिन्दी और उर्दू छन्दों का प्रयोग है । भाषा हिन्दी, उर्दू, फारसी और पंजाबी मिश्रित है । उन्होंने उपन्यास और कहानी-ग्रन्थ भी लिखे हैं । इनमें मुख्य हैं- सत्यव्रती महानन्द, धर्मवीर, क्षमा-चन्द्रोदय, चण्डाल-चौकड़ी, विचित्र ब्रह्मचारी और कथा पच्चीसी ।

पत्रकार के रूप में उन्होंने कई पत्र-पत्रिकाएं निकाली थीं। इनमें उल्लेखनीय हैं- १. तिमिरनाशक (साप्ताहिक काशी से, १८८९ई०), २. वेद-प्रचारक (मासिक), ३. भारत उद्धार (साप्ताहिक जगरावां से १८९४ ई०), ३. वैदिक धर्म (उर्दू, मुरादाबाद, १८९७ई०), ५. वैदिक-धर्म (दिल्ली , १८९८) , ६. वैदिक मैगजीन (दिल्ली, मासिक, १८९९ ई०) ७. तालिबे इल्म (साप्ताहिक, आगरा, १९००), ८. आर्य सिद्धान्त (मासिक, बदायूं १९०३) और मुबाहिसा (साप्ताहिक, बदायूं). ९. ऋषि दयानन्द (मासिक, लाहौर, १९०८ ई०), १०. वैदिक फिलासफी (मासिक, गुरुकुल पोठोहार, १९०९ ई०) आदि । उन्होंने लगभग २० पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन और प्रकाशन किया ।

स्वामी दर्शनानन्द जी पक्के भोगवादी थे । वे बीमारी में कभी कोई दवा नहीं लेते थे । उनका मत था कि मनुष्य के भोगों के कारण बीमारी आदि होती है । भोग की समाप्ति पर रोग अपने आप ठीक हो जाएगा । स्वर्गीय ठा. नत्थासिंह उपदेशक ने अपने संस्मरण में लिखा है कि स्वामी जी को बहुत दस्त हो रहे थे । उन्होंने डाक्टर की दवा नहीं ली और दही-पकौड़ी मंगाकर खाई । इससे ही उनका दस्त बन्द हो गया । नए नए गुरुकुलों की स्थापना करना और उन्हें रामभरोसे छोड़कर आगे बढ़ते जाना, उनकी प्रवृत्ति थी । भाग्य से उन्हें योग्य और तपस्वी कार्यकर्ता मिल जाते थे ।

११ मई १९१३ ई० को उन्होंने अपना पार्थिव शरीर छोड़ा और दिव्य-ज्योति में विलीन हो गए। उनके निधन पर न केवल आर्यजगत् ने शोक मनाया, अपितु उनके संपर्क में आने वाले सभी पौराणिक पंडित, ईसाई, मुसलमान और जैनी विद्वानों ने भी वज्राघात के तुल्य शोकोद्गार प्रकट किए।

उन्होंने अन्तिम समय में आर्यसमाज को चेतावनी दी कि वे विद्वानों का आदर-सम्मान करना सीखें, अन्यथा आर्यसमाज निष्क्रिय और निष्प्राण हो जाएगा। उनकी यह चेतावनी आज भी उतनी ही सार्थक और उपयोगी है। विद्वान् और तपस्वी ही किसी समाज के निर्माता होते हैं।

(सार्वदेशिक, १० मई १९९२ से साभार) निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर-भदोही

***

स्वामी दर्शनानन्द

– सुशील कुमार त्यागी 'अमित', विद्याभास्कर, एम०ए०, साहित्याचार्य

युग वेद-निशाकर, दिव्य दिवाकर, गुरुकुल के संस्थापक थे।
स्वामि दर्शनानन्द सरस्वति, सकल जगत में व्यापक थे॥
माघ वदी दशमी तिथि को, जगरावां में था जन्म लिया।
भारत को वह दिव्य-विभूति, जिसका था समुदार हिया॥१॥

बाल्यकाल में कृपाराम थे, दर्शन में पाते आनन्द।
परममित्र दर्शनानन्द के थे श्री स्वामी श्रद्धानन्द॥
सैंतिस भाषण सुने आपने, दयानन्द के हो सानन्द।
आर्यजगत् के उद्भट ज्ञानी, सुधा बह रही वचनानन्द॥२॥

पोटोहार, विरालसी एवं खोल बदायूँ सिकन्द्राबाद।
पंचम गुरुकुल ज्वालापुर है, हमें दिलाता उनकी याद॥
फैली हुई कुरीति बहुत थीं, तब खोले पाँचों गुरुकुल।
श्रेय मिला है ज्वालापुर को, विश्व-विदित यह दर्शन कुल॥३॥

आज खोजती आँखें द्विजवर, तर्कशास्त्र के बाण थे।
भारत-रक्षक दुःखीजनों का, करते नित-प्रति त्राण थे॥
आज समर्पित श्रद्धा के स्वर, गुरुकुल की वह शान थे।
जय हो, जय हो 'अमित' अमर हो, इस युग के नव प्राण थे॥४॥

***

स्वामी दर्शनानन्द जी और उनके शास्त्रार्थ

– डॉ० दिनेशचन्द्र शास्त्री, डी०लिट्०

युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज की विचारधारा को जन-जन तक पहुँचाने तथा विभिन्न मतमतान्तरों के आचार्यों एवं विद्वानों द्वारा वैदिक मन्तव्यों के विपरीत दुष्प्रचार का खण्डन-मण्डन करने के उद्देश्य से आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में शास्त्रार्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कितने ही 'शास्त्रार्थ-महारथी' आर्य-विद्वानों ने विरोधी धर्माचार्यों को शास्त्रार्थ-समर में पराजित कर सत्य-सनातन वैदिक धर्म के प्रचार में अपना उल्लेखनीय योगदान किया है। शास्त्रार्थों की यह परम्परा स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही १९वीं सदी के अन्त में प्रारम्भ हो गयी थी। उन्होंने समय-समय पर न केवल पौराणिक पण्डितों से ही, अपितु इसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों से अनेकों शास्त्रार्थ किए और उनके मन्तव्यों की निष्पक्ष समालोचना/समीक्षा कर वेद प्रतिपादित धर्म की युक्तियुक्तता व उत्कृष्टता/श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया। वस्तुतः उनके ये शास्त्रार्थ वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के प्रबल माध्यम थे। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सैकड़ों आर्यसमाजी विद्वानों ने जगह-जगह पर जाकर जो शास्त्रार्थ किए, उनका स्वरूप प्रायः सार्वजनिक हुआ करता था और उनमें हजारों की संख्या में जनसमुदाय इकट्ठा होता था, जबकि स्वामी दयानन्द के समय में शास्त्रार्थ-सभा में केवल ऐसे लोगों की उपस्थिति ही वाञ्छनीय होती थी, जिनमें शास्त्रार्थ के लिए नियत विषय एवं विचार-विनिमय को समझ सकने की योग्यता हो। आर्यसमाज द्वारा आयोजित ये शास्त्रार्थ काफी लोकप्रिय होते थे।

रामविलास शारदा और पं० लेखराम आदि के द्वारा लिखित स्वामी दयानन्द के जीवनी साहित्य को पढ़ने से एक बात का पता यह चलता है कि उन्होंने सबसे पहला शास्त्रार्थ 'मूर्तिपूजा' विषय पर जयपुर की संस्कृत-पाठशाला के पण्डितों के साथ लिखित रूप में किया था।

जयपुर से प्रारम्भ हुई यह शास्त्रार्थ-शृंखला पंडित लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० भीमसेन शर्मा, स्वामी नित्यानन्द, स्वामी विश्वेश्वरानन्द, पं० गणपति शर्मा, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं० बुद्धदेव मीरपुरी, डॉ० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० रामचन्द्र देहलवी, अमरस्वामी सरस्वती, स्वामी अभेदानन्द सरस्वती, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, पं० शान्तिप्रकाश महोपदेशक, पं० ओमप्रकाश शास्त्री, पं० तुलसीराम स्वामी, म०म० पं० आर्यमुनि, पं० धर्मभिक्षु, पं० दुलारीलाल शर्मा, पं० भोजदत्त शर्मा, पं० मनसा राम 'वैदिक तोप', पं० रुद्रदत्त शर्मा, पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ, पं० बस्तीराम, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, पं० भगवद्दत्त बी०ए०, पं० बिहारीलाल शास्त्री, पं० युधिष्ठिर मीमांसक एवं पं० राजवीर शास्त्री आदि तक अबाध गति से आगे बढ़ती रही है। जिन्होंने समय-समय पर विभिन्न मत-मतान्तरों के विद्वानों से अनेकों शास्त्रार्थ किए तथा शास्त्रार्थ-महारथी के रूप में प्रचुर ख्याति अर्जित की।

उपर्युक्त शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों में स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। स्वामी दर्शनानन्द जी का पूर्व नाम पं० कृपाराम जगरावां वाले था। ये आर्यसमाज के अद्वितीय दार्शनिक विद्वान्, तर्कशिरोमणि तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आदि अनेक संस्थाओं के जहाँ संस्थापक थे, वहीं इन्होंने अपनी शास्त्रार्थ प्रतिभा के कारण अत्यधिक प्रसिद्धि भी प्राप्त की हुई थी। इन्होंने अनेकों शास्त्रार्थ किए। इनमें पं० राजाराम के साथ मिलकर 'मृतकश्राद्ध' विषय पर सनातनियों से किया गया वह शास्त्रार्थ भी शामिल है, जिसके निर्णय के लिए मैक्समूलर के पास लिखित में पक्ष-विपक्ष की सामग्री भेजी गयी थी।

स्वामी दर्शनानन्द ने सबसे पहला शास्त्रार्थ काशी में पं० शिवकुमार शास्त्री से किया था। जिसका विषय था "स्वामी दयानन्द ने देव शब्द का अर्थ विद्वान् किया है, यह ठीक नहीं है।" इसके बाद तो स्वामी दर्शनानन्द ने शास्त्रार्थों की झड़ी लगा

दी। जिनमें १९-२१ फरवरी १९०१ को आगरा में पं० भीमसेन शर्मा से, २९-३० मार्च १९०१ को बिजनौर में 'प्रायश्चित्त' विषय पर पं० भीमसेन शर्मा (इटावा) एवं पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र से, १९६२ विक्रमी शामपुर में 'श्राद्ध' विषय पर पं० बिहारीलाल से, ८ अप्रैल १९११ को ज्वालापुर महाविद्यालय में 'स्थावर वृक्षों में जीव' विषय पर पं० गणपति शर्मा से तथा जून १९१२ ई० में 'ईश्वर सृष्टिकर्ता है' विषय पर जैन पण्डित गोपालदास बरैया से शास्त्रार्थ हुआ तथा प्रतिपक्षियों को पराजय का मुख देखना पड़ा। आपने न केवल पौराणिक पण्डितों से, वरन् मुसलमान मौलवियों से भी सफल शास्त्रार्थ किए। आगरा में स्वामी दर्शनानन्द जी का संन्यासाश्रम प्रवेश से पूर्व 'वेद तथा कुरान में से कौन-सी पुस्तक इलहामी है' विषय पर मौलवी अब्दुल फतह और मौलवी अब्दुल हमीद पानीपती से शास्त्रार्थ हुआ था, जिसकी मध्यस्थता एक यूरोपीयन श्री जेसफारनेन ने की थी। इनका एक बड़ा शास्त्रार्थ सन् १९०३ ई० को देवरिया में 'वेद अथवा कुरान का ईश्वरोक्त होना' विषय पर मौलवी अमृतसरी सनाउल्ला और मौलवी अब्दुलहक देहलवी आदि से हुआ था।

इस निबन्ध में हम स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के उन शास्त्रार्थों के बारे में लिखेंगे, जिनका लिखित में विवरण अमरस्वामी जी द्वारा कई भागों में रचित 'निर्णय के तट पर' में मिलता है। शास्त्रार्थ-महारथी अमरस्वामी जी ने दर्शनानन्द के निम्न शास्त्रार्थों का विवरण दिया है, जो कि इस प्रकार है-

१. वजीराबाद, जिला गुजरांवाला (पंजाब) (वर्तमान पाकिस्तान) में १९ मई १८९५ ई० दिन के चार बजे, बाबू सिकन्दरलाल जी मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में पौराणिक शास्त्रार्थकर्ता, ओरियण्टल कालेज लाहौर के प्रोफेसर पं० गणेशदत्त जी शास्त्री से "क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है"? विषय पर लिखित में किया गया शास्त्रार्थ। जिसके निर्णयार्थ आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, जर्मनी निवासी प्रो० मैक्समूलर को दोनों पक्षों की लिखित सामग्री प्रेषित की गयी थी।

२. आर्यसमाज मोती कटरा, आगरा (उ०प्र०) के १३-१५ सितम्बर सन् १८९९ ई० में मौलवी अबुल फतह साहिब (पानीपती) से श्री जलसा बाबू के प्रधानत्व में (क) "वेदों की उत्पत्ति कब! कहाँ!! और कैसे!!! हुई?" (ख) "इलहामी पुस्तक कौन? वेद या कुरान!" विषय पर हुआ शास्त्रार्थ। इसमें प्रतिपक्षी के सहायक थे मौलवी जहाँगीर खाँ साहब तथा श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहिब व काजी नूरुल्ला हसन साहब। इसमें सभापति थे बाबू जोजफ फारनाव साहब।

३. ८ अप्रैल सन् १९१२ ई० में 'स्थावर में जीव विषयक निर्णय' अर्थात् "वृक्षों में अभिमानी जीव है या नहीं" विषय पर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) में तार्किक-शिरोमणि पं० गणपति शर्मा से हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। विदित हो कि यह शास्त्रार्थ दो आर्यसमाजी दिग्गज शास्त्रार्थ-महारथियों के बीच हुआ था, जो कि पं० गणपति जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ था।

४. अजमेर (राजस्थान) में "क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है?" विषय पर ३० जून १९१२ ई० में जैनियों के प्रसिद्ध विद्वान् पं० गोपालदास जी बरैया से जो शास्त्रार्थ हुआ था उसके सभापति दो प्रसिद्ध व्यक्ति थे- १. बाबू मिट्ठन लाल जी वकील एवं २. सेठ ताराचन्द जी दिगम्बरी। यह शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ था।

५. उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपदान्तर्गत 'गोहावर' नगर में २४ फरवरी सन् १९०४ ई० में "क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है?" इस विषय पर श्री पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र 'मुरादाबादी' के साथ हुआ शास्त्रार्थ।

आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-युग में १९ मई १८९५ ई० को लाहौर के ओरियण्टल कालेज के प्रोफेसर पं० गणेशदत्त शास्त्री के साथ स्वामी दर्शनानन्द जी का जो शास्त्रार्थ हुआ था, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। यह वह शास्त्रार्थ है, जिसकी गूंज प्रतिपक्षियों द्वारा समय-समय पर की जाती रही। इसी शास्त्रार्थ के साथ मैक्समूलर का नाम भी जुड़ा हुआ है। यह शास्त्रार्थ मृतक श्राद्ध की वेदानुकूलता या प्रतिकूलता? पर आधारित था। इस पर जो दोनों पक्षों की लिखित सामग्री मैक्समूलर को भेजी गयी। उस पर प्रो० मैक्समूलर ने अपना कोई निर्णय न देकर 'मृतक-श्राद्ध' पर अपने विचार लिखित में भेजे थे।

मैक्समूलर वास्तविकता को जानते हुए भी सच्चाई को किस प्रकार छिपा गए। यह उनके आगे प्रदर्शित पत्र से पता लग जाता है। इस शास्त्रार्थ की जो सामग्री लिखित रूप में दोनों पक्षों की ओर से भेजी गयी थी, वह इस प्रकार है- (शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ था, उसका हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है।)

प्रथम पक्ष– श्री पं० गणेशदत्त शास्त्री और **द्वितीय पक्ष**- स्वामी दर्शनानन्द एवं पं० राजाराम शास्त्री।

प्रथम पक्ष (पं० गणेशदत्त शास्त्री)- वजीराबाद नगर में आज आर्यसमाजियों के साथ 'मृतक श्राद्ध' विषय पर मेरा शास्त्रार्थ आरम्भ है। आर्यसमाजियों ने ऋग्वेद आदि संहिताओं को स्वतःप्रमाण स्वीकार किया है, यहाँ सनातन धर्म की ओर से मैंने (पं० गणेशदत्त शास्त्री) उक्त विषय के ये प्रमाण दिए हैं। ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १४ मन्त्र (१) परेयिवांसं. ... यहाँ इसमें यम का वर्णन है (२) "यमो नो गातुं..... इसी मण्डल व सूक्त के दूसरे मन्त्र में पितरों का वर्णन है अर्थात् पितर कहे गए हैं। इससे अगले मन्त्र में भी मृतक श्राद्ध का वर्णन स्पष्ट रूप में है। आर्यसमाजियों के द्वारा मनुस्मृति भी परतःप्रमाण रूप से स्वीकार की जाती है। वहाँ पितरों की प्रथमोत्पत्ति में मनुस्मृति के अध्याय १ श्लोक ३७ में वर्णन है। फिर तीसरे अध्याय में ब्राह्मण आदि वर्णों के पृथक्-पृथक् पितर बताए गए हैं। मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १९४ से आरम्भ करके श्लोक २०० तक। फिर मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ८३ में मृतक के सम्बन्ध में अपवित्रता (पातक) के दिनों की संख्या बताई गई है। फिर मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६५-६६ में पितरों और मनुष्यों के काल का भेद बताया गया है। गीता में भी "**पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदक क्रियाः**" गीता अध्याय १ श्लोक ४२; फिर गीता अध्याय १० श्लोक २९ "पितृणामर्यमा चास्मि..... और स्थानों में भी मृतक श्राद्ध के विषय में, इसी प्रकार के प्रमाण हैं। परन्तु विद्या प्राप्त किए हुए पक्षपात-रहित आप लोगों के सम्मुख अधिक खोज करने से बस समाप्त करता हूँ। अब आप (मैक्समूलर) मध्यस्थ निश्चित किए गए हैं। उस सूक्त में मृतक श्राद्ध की सिद्धि होती है कि नहीं? कृपया स्पष्ट लिखिए।

द्वितीय पक्ष (स्वामी दर्शनानन्द एवं श्री राजाराम शास्त्री)- लक्षण और प्रमाणों से वस्तु की सिद्धि होती है, प्रतिज्ञा मात्र से नहीं। वेद का जो लक्षण ऋषियों ने किया है उससे जो विरुद्ध हो, उसको प्रमाण मानना योग्य नहीं है। जैसे ऋषि कणाद ने अपने वैशेषिकशास्त्र में प्रतिपादन किया है। "वेद में बुद्धिपूर्वक वाक्य हैं" और भी उस परमेश्वर के वचन होने से वेदों की प्रामाणिकता है और भी ऋषि गौतम ने कहा है अनृत - मिथ्या, व्याघात- परस्पर विरुद्ध, पुनरुक्त- आवश्यकता के बिना बार-बार एक ही बात का कहना, इन दोषों से युक्त ग्रन्थों की प्रामाणिकता नहीं है। इन वचनों से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि वेदों का जो अर्थ किया जाता है, उस अर्थ से यदि वेदों में कुछ दोष आता है, तो वह वेदार्थ नहीं है। पिता-पुत्र सम्बन्ध विचार के अवसर पर इतने प्रश्न उत्पन्न होते हैं- पिता-पुत्रादि सम्बन्ध शरीर में होते हैं या जीव में, या जीव और शरीर दोनों इकट्ठे रहने में? यदि शरीर में पिता-पुत्र सम्बन्ध है तो मरे हुए पिता के शरीर को भस्म करने पर पुत्र पितृघात का दोषी हो जायेगा। जीव में पिता-पुत्र सम्बन्ध माना जाये, जीव के नित्य होने से यह भी नहीं कहा जा सकता। (पिता-पुत्र सम्बन्ध नित्य नहीं अनित्य है, नित्य जीवात्मा के साथ पिता-पुत्रादि अनित्य सम्बन्ध रह नहीं सकते हैं।) यदि जीव और शरीर दोनों के संयोग में पिता-पुत्र सम्बन्ध है, तो मरने पर वह सम्बन्ध समाप्त हो गया, मृतक में पितृत्व अर्थात् पालन-क्रिया का अभाव होने से (जीव और शरीर का संयोग होने से पिता-पुत्र सम्बन्ध था, वह संयोग रहा नहीं तो पिता-पुत्र सम्बन्ध भी नहीं रहा,) इसलिए मृतक श्राद्ध तत्त्वज्ञो, ज्ञानियों के अनुकूल नहीं है। तत्त्वज्ञान के विरुद्ध होने से (मृतक श्राद्ध बताने वाला अर्थ वेदार्थ नहीं है। पितर शब्द के साथ मृतक विशेषण का अभाव होने से (अर्थात् वेदों में 'पितर' शब्द के साथ 'मृतक' विशेषण नहीं है।) इसलिए "पितर" का अर्थ जीवित माता-पिता आदि ही हैं मरे हुए नहीं। क्योंकि पितर का अर्थ रक्षा करने वाले के है, रक्षा करने की सामर्थ्य जीवितों में ही होती है। मृतकों में नहीं और तीन पितरों (पिता, पितामह, प्रपितामह) का श्राद्ध ही विधान में होने से भी जीवितों का ही श्राद्ध होता है, क्योंकि इन तीनों का जीवित रहना अधिक संभव है।

और, अन्य के किए का फल अन्य को न मिलने से भी मृतक श्राद्ध असिद्ध है। यदि अन्य का किया अन्य भोग सकता है तो बद्ध जीवों के कर्मों से मुक्तों का बन्ध भी मानना पड़ेगा। और भी वेदों में पितरों को बुलाने का विधान होने से भी यही सिद्ध होता है कि श्राद्ध मृतकों का नहीं हो सकता, क्योंकि न मृतकों को बुलाया जा सकता है, न मृतक बुलाने से आ सकते हैं। जो मर जाता है वह कहीं न कहीं जन्म ले लेता है। "ध्रुवं जन्म मृतस्य च" (गीता) मरने वाले का जन्म अवश्य है।

उससे अन्य देह में गए हुओं का बुलाना हो नहीं सकता है। यदि वह पितर शरीर को छोड़कर आएगा तो पितृ-हिंसा हो जाएगी। यदि नहीं आएगा तो वैदिक (कहलाने वाली) क्रिया झूठी हो जाएगी। वेदों में अनृत (झूठ) का अभाव है, इससे मृतकों का बुलाया जाना असम्भव है। इन प्रमाणों से स्पष्टतया यह सिद्ध होता है, कि जीवितों (माता-पिता आदि) का श्राद्ध (श्रद्धा से किया गया तर्पण) ही वेदों के अनुकूल है।

उपर्युक्त दोनों लेखों को पूर्व निर्णयानुसार पंजीकृत डाक से इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ प्रो० मैक्समूलर के पास जर्मनी भेजा गया था। वहाँ से जो निर्णय आया, वह इस प्रकार है-(श्री प्रो० मैक्समूलर के इंग्लिश में लिखे पत्र का हिन्दी अनुवाद)।

मेरे दोस्तो! मेरे बाल सफेद हुए जमाना बीत गया और मेरे बच्चे संन्यास आश्रम में पदार्पण कर चुके हैं। यूं तो मन आराम व शान्ति चाहता है, मगर मेरे पास इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली बल्कि अमेरिका व विशेषकर भारत से इतने पत्र आते हैं कि अगर मैं सभी का जवाब देना चाहूँ तो खुद अपने लिए कुछ भी मेरे पास न रहेगा। खैर! जब तुम्हारा पहला पत्र मिला, मैंने उसे ध्यानपूर्वक पढ़ा और उसका जवाब देना भी आरम्भ किया। मगर बाद में मुझे वह पत्र न मिल सका कहीं खो गया। मैं मानता हूँ कि आप शास्त्रों का ज्ञान रखते हुए श्राद्ध के मूल कारण को मुझसे ज्यादा जानते हैं। श्राद्ध का रिवाज अन्य आर्य देशों में भी मिलता है। बल्कि अनार्य देशों में भी पूर्वजों की पूजा पाई जाती है। यह रिवाज एक बिल्कुल स्वाभाविक मानव-प्रवृत्ति से शुरु हुआ। अपने गुजरे हुए प्रियजनों को कोई प्रिय वस्तु अर्पण करने की भावना। जैसे कि जलती चिता पर मृत शरीर के साथ धनुष व अन्य चीजें जला देना। क्या मरे हुए उन चीजों को लेने आते हैं? यह जानना आवश्यक नहीं था। यही सन्तोष की बात है कि हमने उन्हें जला दिया। ज्यादातर ऐसा परिवार के अन्य सदस्यों की उपस्थिति में किया जाता था- जैसे कि भोजन के समय जबकि वे स्वयं भोजन ग्रहण करते थे। अथवा अन्य योग्य पुरुषों को भोजन कराते समय। इस लिए श्राद्ध मृत व जीवित दोनों के लिए था, लेकिन जल्द ही यह अन्धविश्वास फैल गया कि मृत फिर शरीर धारण कर धरती पर लौटते हैं। इन अर्पण की हुई चीजों का भोग करने। तभी से नास्तिक लोग श्राद्ध को अन्धविश्वास बताने लगे। इस तरह अन्धविश्वास से ही नास्तिकों में संशय पैदा हुआ।

"निर्णयसिन्धु" में श्राद्ध की बहुत अच्छी परिभाषा मिलती है। मरीचि कहता है- प्रेत और पितरों का निर्देश करके जो आत्मा को प्रिय है, उस भोजन का देना "श्राद्ध" कहलाता है। उसी जगह यह बताया गया है कि, यजुर्वेद श्राद्ध को "पिण्डदान" और ऋग्वेद "द्विजार्चन" मानते हैं और सामवेद दोनों को मानता है। "यजुर्वेद" के द्वारा "पिण्डदान" और बहुत सी ऋचाओं के द्वारा ब्राह्मणों का पूजन, सामवेदियों में इन दोनों को श्राद्ध कहते हैं। मेरे ख्याल में सामवेद का मत ठीक है कि श्राद्ध मृत व जीवित दोनों के लिए एक दक्षिणा के समान था। इसमें जीवितों का सम्मान था। खासकर द्विज जो श्राद्ध के समय उपस्थित रहते थे। ये उपहार अपने नजदीकी रिश्तेदारों व दोस्तों पर अर्पण करने चाहिएं और मुझे खुद (वेद पढ़ने के नाते) ऐसे कई श्राद्ध उपहार भारत से उपलब्ध हुए हैं। जबकि मैं 'आर्यावर्त' में पैदा नहीं हुआ।

अब मैं पत्र समाप्त करता हूँ। काम बहुत है। मैं तुम्हारा दोस्त और दूर का सपिण्ड-

(हस्ताक्षर मैक्समूलर)

समीक्षा- उपर्युक्त लिखित शास्त्रार्थ पर प्रो० मैक्समूलर ने अपना निर्णय नहीं दिया, अपितु "मृतक श्राद्ध" पर अपनी सम्मति लिखी । जिससे दो तीन बातें स्पष्ट होती हैं- १. श्राद्ध मृतकों की स्मृति (यादगार) के रूप में ही होता है । २. यह प्रश्न ही नहीं था कि मृतकों की याद में दिया सामान उनको पहुंचता है या नहीं । ३. तीसरी बात यह मैक्समूलर के लेख से निकलती है कि जब से यह दावा किया जाने लगा कि मृतको के नाम पर दिया हुआ भोजन वस्त्रादि को मृतकों को पहुँच जाता है, तब से अनेकानेक प्रश्न उठने लगे ।

इस शास्त्रार्थ और मैक्समूलर की सम्मति पर टिप्पणी करते हुए शास्त्रार्थ-समर-केसरी स्वर्गीय अमरस्वामी जी महाराज ने लिखा है कि- इस शास्त्रार्थ के खेल में दोनों पक्षों से ही अधूरा-अधूरा लिखा गया । मैक्समूलर के पास इसको निर्णयार्थ भेजे जाने में भी कुछ तुक नहीं थी, कोई भी आर्यसमाजी विद्वान् मैक्समूलर को महापण्डित मानने को तैयार नहीं हैं। मैक्समूलर के विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज की सम्मति यह है- "जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितनी संस्कृत मैक्समूलर साहिब पढ़े हैं, उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र की है क्योंकि- "**यस्मिन् देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डो द्रुमायते**" अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं, वैसे ही योरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मैक्समूलर ने थोड़ा सा पढ़ा, वह भी उनके लिए तो अधिक है । परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है, क्योंकि मैंने जर्मनी देश निवासी एक प्रिंसिपल के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं और मैक्समूलर के संस्कृत साहित्य और थोड़ी-सी वेद-व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मैक्समूलर साहब ने इधर-उधर आर्यावर्तीय लोगों की की हुई टीका को देखकर कुछ-कुछ यथा-तथा लिखा है जैसा कि- **युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं** चरन्तं परितस्थुषः । **रोचन्ते रोचना दिवि** । इस मन्त्र का अर्थ- "घोड़ा" किया है, इससे तो सायणाचार्य ने "सूर्य" अर्थ किया है सो अच्छा है । परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है सो मेरी बनाई "ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका" में देख लीजिए । उसमें इस मन्त्र का अर्थ- यथार्थ किया है । इतने से जान लीजिए कि जर्मनी देश और मैक्समूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पांडित्य है? (स०प्र०, एकादश समुल्लास)

प्रो० मैक्समूलर न संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, न वेदों के ज्ञाता थे । आर्यसमाजी कोई विद्वान् उनको इस योग्य नहीं मानता है कि वह हमारे शास्त्रार्थों पर निर्णय दे सकें ।

भारत से जो दो पर्चे शास्त्रार्थ के उनको भेजे गए, वह उनसे खो गए थे, उनसे बार-बार यहाँ के पौराणिकों ने प्रार्थना की कि "मृतक श्राद्ध" पर अपनी सम्मति भेज दीजिए, तब एक वर्ष बीतने के पश्चात् उन्होंने अपनी सम्मति शास्त्रार्थ पर नहीं "मृतक श्राद्ध" पर दी और "मृतक श्राद्ध" को वैदिक नहीं बताया । वेद का एक भी मन्त्र उन्होंने मृतक श्राद्ध के पक्ष में नहीं दिया ।

यह लिखा कि मृतक श्राद्ध तो मरे हुओं की स्मृति में किया जाता था और जो वस्तुएं उन लोगों को प्यारी लगती थीं, वह उनकी याद में लोगों को भेंट स्वरूप दी जाती थीं । मुझको भी ऐसी अनेक वस्तुएं भारत से अनेक बार भेंट में प्राप्त हुई हैं । मैक्समूलर ने लिखा है कि -"यह तो कभी प्रश्न ही नहीं उठता था कि- मृतकों के नाम पर जो वस्तुएं दी जाती हैं' वह उनको पहुँचती हैं या नहीं ।" और जब यह कहा जाने लगा कि ये वस्तुएं मृतकों को पहुँचती है, तबसे नास्तिक लोग इस पर शंकाएं करने लगे । "नास्तिक" शब्द से उनका संकेत चार्वाकों की ओर है । जिन्होंने ये प्रश्न उठाए हैं

मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत् तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां, व्यर्थं पाथेय-कल्पनम् ।।

अर्थात् मरे हुए मनुष्यों के लिए श्राद्ध यदि तृप्ति करने वाला हो सकता है तो घर से दूर यात्रार्थ जाने वालों को मार्ग के लिए भोजनादि की व्यवस्था करनी व्यर्थ है । घर में ब्राह्मण को बुलाकर भोजन करा दें तो यात्रा में गये हुए लोगों को वहीं

पहुँच जाया करेगा । साथ में क्यों व्यर्थ बोझा उठाया जाय ? गरुड़ पुराण में भी ऐसा कहा गया है-

मृतानामपि जन्तूनां, श्राद्धमाप्यायनं यदि ।
निर्वाणस्य प्रदीपस्य, तैलं संवर्धयेत् शिखाम् ।।

(गरुड़पुराण, प्रेतखण्ड, अ०१०, श्लो०९, श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, पृ० १७७)

अर्थात् , मरे हुए मनुष्यों के लिए यदि श्राद्ध तृप्ति कर सकता है तो तेल बुझे दीपक की शिखा को बढ़ा देवे ।

१३ से १५ सितम्बर सन् १८९९ को आर्यसमाज मोती कटरा आगरा (उत्तर प्रदेश) में जोजफ फारनर की अध्यक्षता में मौलवी अबुल फराह साहिब (पानीपती) के साथ निम्न विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ-

१. वेदों की उत्पत्ति कब ! कहाँ !! और कैसे !!! हुई ?

२. इलहामी (ईश्वरीय) पुस्तक कौन ? वेद या कुरान !

इस शास्त्रार्थ पर जो सम्मति सभापति व प्रेजीडेन्ट ने दी वह इस प्रकार है-

मैंने मौलवी अबुल फराह और पं० कृपाराम की तकरीर वेद या कुरान के इलहामी किताब होने पर सुनी, मेरी राय में पं० जी की तकरीरें ज्यादा सही होती थीं, मौलवी साहब की तकरीरों से यह पता चलता था कि या तो उन सवालों को जो पं० जी पूछते थे, वह समझ नहीं पाते थे या अगर समझते भी थे तो जवाब नहीं दे सकते थे । मौलवी साहब ने पं० जी के एक भी सवाल का सही जवाब नहीं दिया, बल्कि अपनी ही इधर उधर की हाँकते रहे, पं० जी ने उत्तर लगभग ठीक-ठीक दिए थे, (जलसा बाबू)

इसी तरह की राय शास्त्रार्थ के सभापति श्री जोजफ फारनर की थी जो कि न मुसलमान थे और न हिन्दू । इनकी सम्मति से यह भी पता चलता है कि मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ के नियमों को ताक पर रखकर किस प्रकार धृष्टता की थी ? अव्यवस्था, शोरगुल आदि भी इनके पक्ष के लोगों द्वारा की गयी थी । जिससे शास्त्रार्थ में व्यवधान पैदा हो गया और वह बन्द करवाना पड़ा । फिर भी इस शास्त्रार्थ का जो ब्यौरा मिलता है, उसके अनुसार पं० कृपाराम जी की दलीलें उक्त शास्त्रार्थ के बारे में सटीक थी । जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं-

१. वेद-अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, चार ऋषियों पर दुनियां के आरम्भ में उतरे । तवारीख बारह सौ या दो हजार साल से ज्यादा की नहीं मिल सकती, वेद को नाजिल (उतरे) हुए एक अरब छयानवे करोड़ से ज्यादा हुआ, तवारीख का ऐसे-ऐसे विषयों में दखल (नोट) नहीं हो सकता, क्योंकि उस समय सृष्टि का आरम्भ था, जो ऋषि सृष्टि के आरम्भ में उनके बाद पैदा हुए उनको सिखलाया, या देना, या उत्पत्ति जो (तिब्बत) देश में हुआ, जो सबसे ऊँचा देश माना जाता है, क्योंकि उस समय दूसरे देश पानी में से निकले हो न थे, और न ही कहीं पर किसी जगह आबादी थी । इस वास्ते उन्होंने अपने चेलो को पढ़ाया जो आज तक सिल-सिलेवार चला आता है । जिसकी वजह से वेद श्रुति कहलाते हैं, चूंकि वेदों में किसी व्यक्ति का जिक्र नहीं, और ना ही कोई इन्सान उसके बनाने वाला साबित हुआ, इस वास्ते उसके कदीम (पुराना) होने में कोई शक (संशय) नहीं । उन ऋषियों का काम भजन योग समाधि और वेदो का प्रचार करना था, "जैन्दावस्था" वगैरह किताबों में वेदों का नाम मौजूद है और "तौरेत" वगैरा में "जेन्दावस्था" के मानने वाले आतिशपरस्तों (अग्निपूजकों) का जिकर है और इंजील, जबूर, कुरान में तौरित का जिकर है, लेकिन वेद में इन किसी का जिकर नहीं है । जिससे पता चलता है कि वेद इन सबसे पहले के हैं । चूंकि वेदों का एक-एक अक्षर अपने आप में सुरक्षित है, जिससे वेदों को गवाही की कोई जरूरत नहीं है । इसलिए वेदपाठी वेद को एक जैसा ही बोलते हैं ।

२. मौलवी साहब ने जो वेदों के नाजिल (प्रकट) होने में अलग अलग राय बतलाई और वेदों के होने में तारीख का सबूत मांगा और ये कहा कि "कई लोग कहते हैं कि वेद महर्षि व्यास जी ने बनाए हैं" मौलवी साहब इस बात को हवाला देकर बतलायें कि 'वेद'- व्यासकृत हैं ? क्योंकि ये बात आज तक किसी हिन्दू से नही कही गयी। वेदों के (परमात्म कृत) होने मे कुल हिन्दू और आर्य एकमत हैं। जो मैंने बयान दिए है। आपने जो एक अरब छयानवे करोड़ का सबूत मांगा, तो उसका सबूत नित्य पत्रा यानी "अहले हनूद" (हिन्दुओं की जन्त्री) से मिलता है। जिसमें हर रोज एक दिन घटता और बढ़ता रहता है। जिसके हिसाब सही होने का सबूत ग्रहण (सूर्यग्रहण आदि) वगैरा हैं, क्योंकि हिसाब में एक भी गलती हो जाए तो सारा हिसाब ही गलत हो जाता है। लेकिन आज तक ज्योतिष का हिसाब ग्रहण वगैरा के सम्बन्ध में गलत साबित नहीं हुआ। जिससे एक अरब छयानबे करोड़ साल से ज्यादा समय से दुनिया की पैदायश व वेदों का होना साबित होता है। हर एक बात के वास्ते जो दुनिया के आरम्भ से सम्बन्ध रखता है, उसमें अकली और इल्मी सबूत जरूरी है। तवारीख की जरूरत नहीं। क्योंकि तवारीख में हर बात लिखी नहीं जाती। आप इस बात का सबूत किताबी पेश कीजिए कि 'वेद'- व्यास ने बनाए ? क्योंकि पहले ही नियमों में यह लिखा जा चुका है कि हर एक को अपने दावे का सबूत पेश करना होगा।

३. चूंकि मौलवी साहब ने जो उसूल (नियम) इस्लाम के बतलाये हैं, उनका खण्डन खुद उनकी पुस्तक कुरान शरीफ से होता है, इस वास्ते इस्लाम बजाय खुदापरस्ती के शर्क (मौहम्मद साहब को शामिल करना) अर्थात् अल्लाह के साथ मौहम्मद साहब को भी जोड़ने की शिक्षा देता है। उसके खुदाई कलाम (वाक्य) होने में हमारे निम्न एतराज हैं-

(क) जो व्यक्ति मकर (मक्कार) दगा करने वाला, कर्ज मांगने वाला और कसमे खाने वाला हो तो क्या उसे खुदा कहा जा सकता है ?

(ख) कुरान शरीफ १३०० साल से नाजिल (पैदा) हुआ, उससे पहले दुनिया की नजात (मुक्ति) का क्या तरीका था ? अगर मुसलमान भाई ये कहे कि कुरान शरीफ से पहले इन्जील और इन्जील से पहले जबूर, और जबूर से पहले तौरेत थी तो वे बतायें कि आदम से लेकर मूसा तक लोग किस किताब पर अमल करते रहे अर्थात् किस किताब के आदेशानुसार चले ? अगर कोई किताब थी तो खुदा की जात पर अर्थात् खुदा पर बेइन्साफी (अन्याय) का इल्जाम (दोष) लागू होता है। क्योंकि आदम से लेकर मूसा तक जिस कदर आदमी हुए उनको नजात (मुक्ति) का तरीका ही न बतलाया और मूसा पर तौरेत नाजिल की। और ये भी बतलायें कि खुदा तौरेत में क्या लिखना भूल गए थे, जिसको पूरा करने के वास्ते जबूर भेजी और जबूर में क्या कमी रह गई थी कि जिसको पूरा करने के लिए इन्जील भेजी। तौरेत, जबूर, और इन्जील में ऐसा कौन सा इल्मी उसूल (ज्ञान का सिद्धान्त) न था जिसको बतलाने के वास्ते कुरान शरीफ आया जबकि कुरान के बनाने वाले ने बार-बार अपने विचारों को गलत समझकर उनको रद्द किया। तो अब उसके सही होने का क्या सबूत है ? और हजरत मौहम्मद साहब को जो पैगम्बर माना जाता है। पैगाम्बर के माने पैगाम (सन्देश लाने वाला) और पैगाम (संदेश) फासला (दूरी) से आया करता है। तो बतलायें कि खुदा और इन्सान के बीच कितना फासला है, जिस वास्ते पैगाम्बरों की जरूरत पड़ी ? और जो खुदा सबका बनाने वाला और सबको चलाने वाला, उसको फरिश्तों का मोहताज (अधीन) होना पड़ा, और आदम को जमीन पर अपना नायब निश्चित करके फरिश्तों को शर्क (मोहम्मद साहब को अल्लाह के साथ मिलाकर) की तालीम देनी पड़ी।

४ आपने जो ऋषियों पर वेद के इलहाम होने और पैगम्बरों के आने का मुकाबला किया ये ठीक नहीं है, क्योंकि वेदों में यह नहीं लिखा कि- फरिश्ते "पैगाम लेकर आए", बल्कि वहाँ पर तो परमेश्वर के हर जगह मौजूद होने से उन ऋषियों की आत्मा में जो परमात्मा सर्वव्यापक है, उन्हीं से उपदेश मिला, यह बतलाया है। इस वास्ते जो शख्स पैगाम लाने का दावेदार है, उसके लिए यह जरूरी है कि पहले खुदा व इन्सानों के बीच फासिला (दूरी) का होना साबित करे। मौलवी साहब मेरे सवाल का जवाब दे कि पैगाम्बर की जरूरत क्यों हुई ? जब तक खुदा और इन्सान के बीच कोई दूरी न मालूम हो जावे तब तक पैगाम्बर की जरूरत नहीं साबित हो सकती ?

५. किसी पुस्तक को "ईश्वरकृत" साबित करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि वह किताब परमेश्वर की जात (परमेश्वर) पर किसी प्रकार का इल्जाम (दोष) न लगाती हो। परमेश्वर ने दुनिया को बनाया है और दुनिया का सिलसिला परमेश्वर के हाथ का बनाया हुआ है। बस जो किताब उसके विरुद्ध न हो वह ईश्वर की किताब है। ईश्वरकृत होने के लिए जो नियम जरूरी है कि वह किसी मुल्क की भाषा में न हो, दूसरे उसमें किसी आदमी का किस्सा कहानी न हो, तीसरे जिस तरह परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में सूर्य की रोशनी दी और इन्सान ने चिरागों की रोशनी बीच में बनाई है, इसी तरह वह दुनिया के आरम्भ से हो, चौथे उस किताब में आपस में विरोध न हो, पांचवें कोई बात इल्मी उसूल के विरुद्ध न हो, छठे उस किताब में एक ही बात को बिना मतलब के बार-बार दोहराया न गया हो। परमेश्वर की किताब को साबित करने के लिए जो नियम करने के लिए हो सकते हैं वह परमेश्वर के गुणों से हो सकते हैं, किसी आदमी के फर्जी खयालात (बनावटी विचारों) से नहीं हो सकते। हर एक किताब की छानबीन करने के लिए दो तरह की गवाहियों की जरूरत है, एक उन बेगर्ज व्यक्तियों की जिन्होंने नियमानुसार उसके नियमों को समझकर उनके बारे में अपनी राय दी हो। दूसरे उसके मजमूनों (विषयों) के अन्दर से । अन्दरूनी शहादतों के लिए ये बातें जरूरी हैं- १. जो उस किताब की जरूरत को साबित करें, २. हर किस्म के ज्ञान के विरुद्ध न हो, ३. जिस तरह परमेश्वर के बनाए हुए एक बीज के अन्दर एक बड़े भारी वृक्ष के बनने की ताकत होती है, इसी तरह उसके अन्दर भी थोड़े शब्दों में अच्छे दर्जे के ज्ञान होने चाहिए। अगर बाहरी गवाहियाँ ली जानी हों तो उन आदमियों की ली जानी चाहिएं, जिनमें काम वासना (विषयवासना) न हो। जिनकी वाणी सच्चाई के लिए, उनके लिखे अनुसार में से एक भी शब्द अकल (बुद्धि) के खिलाफ न मिल सके। जो व्यक्ति ईश्वर के साथ योग और समाधि का सम्बन्ध करके किसी सच्चे इल्म (ज्ञान) के बारे में जानकारी प्राप्त करके अपनी राय दे। तो उसका कथन ठीक माना जा सकता है। जिस तरह आग के निकट रहने पर लोहे के अन्दर आग के गुण आ जाते हैं, इसी तरह परमेश्वर की उपासना करने वाले योगी हर एक बात के तत्त्व को समझ सकते हैं। हाँ अगर कोई आप विषयी व्यक्ति अपनी जानकारी के जोर से कोई बात कहे तो उसका झूठा-सच्चा दोनों हो सकते हैं।

६. यह कहना कि वेद किस मुल्क में उतरे, उसका जवाब यह है कि जिस जगह पर सृष्टि का आरम्भ हुआ। उस जगह का नाम 'तिब्बत' है जो आजकल की खोज से भी यही बात प्रामाणिक है। क्योंकि दुनिया में सबसे ऊँचा पहाड़ हिमालय है और जमीन पानी के अन्दर से निकली है। जिसका सबूत देखो कि सबसे पहले परमात्मा ने प्रकृति को हरकत देकर आकाश पैदा किया, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, इन तत्त्वों की पूर्व हालत अर्थात् ये परमाणु रूप में थे उनको हरकत (क्रिया) दी तो उस हरकत से सर्वप्रथम आकाश पैदा हुआ, आकाश से वायु हुई, वायु के बाद अग्नि पैदा हुई, अग्नि के बाद जल पैदा हुआ, जल के बाद जमीन जाहिर हुई। क्योंकि सबसे पहले हिमालय की चोटियां पानी में से निकलीं, इस वास्ते जिन पर सृष्टि का आरम्भ हुआ और वहीं पर ऋषियों के दिल में जो कि सृष्टि के आरम्भ में पैदा हुए थे उनमें अलग-अलग वेदों का प्रकाश हुआ। ये सवाल करना कि वेदों को लिखवा दिए थे या समझा दिए थे, यह कहना गलत है, बल्कि इस वेदरूपी ज्ञान को उन ऋषियों के दिल में प्रकाश किया था।"

आगरा में संपन्न हुए उपरोक्त शास्त्रार्थ में ये हैं कतिपय स्वामी दर्शनानन्द जी की दलीलें जिनका उत्तर प्रतिपक्षी विद्वान् के पास नहीं था। लिखित में प्राप्त विवरण के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षी विद्वान् केवल "ये ऐतराज उसूल से बाहर हैं" मैं हरगिज जवाब नहीं दूँगा" यह कहकर शान्त हो जाते थे।

८ अप्रैल सन् १९१२ ई० में पूर्वाह्निक और उत्तराह्निक दो समयों में हुआ शास्त्रार्थ आर्यसमाज को शास्त्रार्थ युग का अनुपम शास्त्रार्थ कहा जा सकता है। यह शास्त्रार्थ दो आर्यसमाजी दिग्गज शास्त्रार्थ-पण्डितों, अप्रतिम तार्किक, निरुपम वक्ता, अलौकिक प्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्व विद्वान् तथा प्रतिवादी भयंकर वाग्भट्ट उपदेशक प्रवरों के बीच हुआ था। ये थे तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती और अद्भुत मेधा के धनी गुरु निवासी पण्डित गणपति शर्मा दोनों की

दलीलें ऐसी होती थीं कि जब स्वामी दर्शनानन्द बोलते थे तो ऐसा लगता था पं० गणपति जी हार जायेंगे और जब पं० गणपति जी प्रत्युत्तर में तर्क और प्रमाण देते थे तो ऐसे लगता था स्वामी जी का पक्ष कमजोर है। शास्त्रार्थ का विषय था- "स्थावर में जीव विषयक निर्णय" अर्थात् वृक्षों में अभिमानी जीव है या नहीं ?

इस शास्त्रार्थ के अध्यक्ष अपने समय के हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ मनीषी विद्वान् पं० पद्मसिंह शर्मा थे। विदित हो कि यह शास्त्रार्थ पं० गणपति जी का अन्तिम शास्त्रार्थ था। इसमें स्वामी दर्शनानन्द जी वृक्षों में जीव न मानने वाले प्रतिवादी शास्त्रार्थकर्ता के रूप में थे। जबकि पं० गणपति जी वृक्षों में जीव मानने वाले वादी के रूप में थे। यह शास्त्रार्थ गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की पुण्यभूमि पर हुआ था। इस शास्त्रार्थ के बारे में पं० पद्मसिंह शर्मा ने 'भारतोदय' में लिखा था- ओह ! संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है। कुछ ठिकाना है, यारो ! कल ही की तो बात ही है कि हम तुम सब अपूर्व शास्त्रार्थ-नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद-प्रतिवाद की अवस्थ्य लहरें, कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठाकर फेंक रहीं थीं, किसी एक तट पर जमकर बैठना थोड़ी देर के लिए भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते अपूर्व आनन्द पाते थे और यही चाहते थे कि इसी प्रकार हर्ष-पयोधि में हिलोरें लेते रहें ! आहा ! वह समय, अब तक आँखों में फिर रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध गम्भीर ध्वनि कानों में गूँज रही है, वह दिव्य दृश्य हृदय पर, अब तक अंकित है, जिसे स्मृति की आँखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं।"

क्योंकि इस शास्त्रार्थ में पं० गणपति शर्मा जी वादी के रूप में थे। अतः इन्होंने प्रथम शास्त्रार्थ का आरम्भ 'ओ३म् तत्सत् ब्रह्मणे नमः' इस मंगलाचरण के साथ आरम्भ करते हुए अपने पक्ष की स्थापना में निम्नलिखित प्रमाण जिनमें दो अथर्ववेद के, एक छान्दोग्योपनिषद् का और एक पूरा प्रकरण मनुस्मृति का प्रस्तुत किया-

(क) इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ।। अथर्व० १.३२.१

(ख) जीवलां नघारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् । अथर्व० ८.७.६
अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद् ....।
स एष "जीवेन-आत्मनाऽनुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति ।।
अस्य यदेकां शाखां "जीवो" जहात्यथ सा शुष्यति ।

मनुस्मृति, अध्याय एक श्लोक ४१ से ५० तक-

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजंगमम् ।। (४१)
उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्ड-प्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्प-फलोपगाः ।। (४६)
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ।। (४७)
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना ।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ।। (४९)

तर्कचूड़ामणि व्याख्यान-वाचस्पति पं० गणपति शर्मा ने उस सारस्वत महानद में- जिसमें कि अनेक युक्ति-प्रमाणाख्यानों की तरंगों से सप्रद्ध वेग बह रहा था- में जहाँ रघुवंश, मल्लिनाथ और चाणक्य के भी प्रमाण उद्धृत किए, वहाँ

नागोजी भट्ट और पतञ्जलि-कृत महाभाष्य के भी प्रमाण प्रस्तुत किए थे, जो कि इस प्रकार हैं-

आपोमय: प्राण इति श्रुतेरद्भिर्विना ग्लायमानं प्राणानामेव प्राणत्वात् स्पष्टं चेदं तिष्यपुनर्वस्वोरिति सूत्रभाष्ये। (परिभाषेन्दुशेखर की "सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद् भवति "

(३४वीं परिभाषा के व्याख्यान में)'

इस (उपर्युक्त) परिभाषा में श्रीमन्महामहोपाध्याय श्री नागोजी भट्ट "आपोमय: प्राण:" इस श्रुति का प्रमाण देकर प्राण का लक्षण करते हैं कि अद्भिर्विना ग्लायमानत्वं प्राणत्वम् " जो जल के बिना मुरझा जाय या नष्ट हो जाय उन्हें प्राण कहते हैं सो वृक्षों को यदि जल न मिले तो मुरझा जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। अत: वे प्राणी हैं। प्राण बिना जीव के नहीं रह सकते। "अथैनं क्रामन्तं सर्वे प्राणा उत्क्रामन्ति" और "नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम् " तथा "जानपदकुण्ड" इत्यादि सूत्रस्थ "नील" शब्द पर 'प्राणिनि च' वार्तिक में मुखनासासञ्चारी वायु को प्राण माना है, अत: "तिष्यपुनर्वस्वो:" इत्यादि सूत्र से विरोध नहीं है। अब यह बात सिद्ध हुई कि श्रीमन्महामुनि श्रीपतञ्जलि जी महाराज जी वृक्षों में अभिमानी जीव को मानते हैं।

वृक्षों में जीवविषयक अपनी मान्यता को जहाँ पं० गणपति जी ने प्रबल प्रमाणों से प्रस्तुत किया वहीं एतद्विषयक इनकी दलीलें भी उल्लेखनीय हैं। जिनमें से कतिपय इस प्रकार हैं-

१. जिस प्रकार आप बिना किसी कारण या प्रकरण के, मेरे प्रमाण-रूपेणोपन्यस्त वेदमन्त्रों में प्रधान अर्थ को छोड़कर और (सामान्य शरण्) हरकते इन्तजामी का अवलम्बन कर "गौण" अर्थ को स्वीकार करते हैं, इसी प्रकार मैं भी आपके प्रमाण रूप "प्राणनापानने" पद की व्याख्या में पृथिव्यादि" पद से लिए गए "वृक्षादि" पदार्थों की जड़ता को यदि "गौण" कहकर टाल दूँ तो आप क्या कहेंगे ? अन्यथा बताइये कि क्यों नहीं "वृक्ष" आदि की गौण जड़ता मानी जाय ? क्योंकि "जड़" शब्द का प्रयोग "चेतन" और "अचेतन" दोनों के लिए पाया जाता है। देखो ! श्री भर्तृहरि जी क्या कहते हैं "जाड्यं धियो हरति...." कि "सत्संग" बुद्धि की जड़ता को हरता है- "बुद्धि" की जड़ता कैसी ? श्री गौतम महाराज कहते हैं कि "बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् " - बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये एक ही पदार्थ के नाम हैं। फिर भर्तृहरि जी "बुद्धि की जड़ता" कैसे कहते हैं ? "ज्ञान की जड़ता" "प्रकाश का अंधेरा" यह परस्पर विरुद्ध धर्म क्यों कर सम्बन्धी हो गए? इससे यही पाया जाता है, कि "जड़" शब्द का प्रयोग चेतन और अचेतन दोनों के लिए आता है, अत: भर्तृहरि के वाक्य में "बुद्धि की जड़ता" से अभिप्राय "मान्द्य" कुण्ठता से है। यहाँ आपके मतानुसार "पृथिव्यादि" पद के "आदि" पद से गृहीत जो "वृक्ष" आदि पदार्थ हैं, "उनकी जड़ता का अभिप्राय जीवाभाव नहीं, किन्तु बाह्यज्ञानाभाव है (क्योंकि वृक्ष वे "अन्त:संज्ञ" होते हैं), यदि ऐसा प्रकरण आदि की अपेक्षा न कर, किया जाय तो क्या वह आपको अभीष्ट होगा ? यदि नहीं तो, फिर मेरे पक्ष में "सामान्य"= गौण अर्थ हो और आपके पक्ष में प्रधान ! यह कहाँ का न्याय है ? इस 'अर्धजरतीय न्याय' का अवलम्बन क्यों किया जाय ?

२. "Science (साइंस)"- के अनुसार ही यदि आप Soul (आत्मा) और (प्राण) को मानते हैं तो पशुओं में भी आपको Life (प्राण) ही मानना चाहिए क्योंकि साइंटिस्ट लोग पशुओं में Soul (आत्मा) को नहीं मानते। अतएव पशुओं के मारने में हिंसा भी नहीं माननी चाहिए। परन्तु ऐसा मानने के लिए आप कभी भी तैयार नहीं हैं। यदि आप वृक्षों में साइंस के अनुसार तो "प्राण" मानें और पशुओं में साइंस के विरुद्ध आत्मा मानें तो यह "अर्धजरतीय" न्यायाचरण आपको शोभा नहीं देगा, अत: वृक्षों में (Life) प्राण मात्र मानकर और उसका परमात्मा भी "हरकते इन्तजामी" से चलना मानकर आप वृक्षों में जीव का अभाव सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि "प्राण" बिना "जीव" के हो ही नहीं सकता। परमात्मा को हरकते इन्तजामी तो सभी जगह मानी ही जाती है, मनुष्य के शरीर में भी तो परमात्मा की ही हरकते-इन्तजामी से "प्राण" चलते हैं। यदि जीवात्मा के ही अधीन प्राण हों तो मरते समय वह प्राणों को कभी भी न निकलने दे। अत: "येन प्राणन्ति वीरुध:, जीवलामोषधीम् " इन मन्त्रों में लताओं आदि का प्राण धारण करना, बिना जीव के उत्पन्न ही नहीं हो सकता, अत: वृक्षों

में जीव का अपलाप कर, केवल हरकते इन्तजामी से काम नहीं चल सकता, क्योंकि प्राण बिना जीव के कभी रह ही नहीं सकता। "आत्मा" का नाम ही जीव इसलिए है कि वह प्राण धारण करता है। देखो ! श्री महर्षि "पाणिनि" जी महाराज "जीव प्राणने" लिखते हैं कि जीव धातु प्राणन (श्वास लेना रूप) अर्थ में है और वृक्षों में प्राण आदि का होना पहले कही गई श्रुति और स्मृति द्वारा सिद्ध है- आप की "साइंस" भी इनमें Life (प्राण) को मानती है। यदि इन्हें "नाइट्रोजन" न मिले तो ये सूख जायें। अतः प्राण की सत्ता, जीव की सत्ता की साधिका है।

ये हैं पं० गणपति शर्मा जी की कतिपय अकाट्य दलीलें जिनको आधार बनाकर अपने पक्ष को इन्होंने सिद्ध किया।

अब स्वामी दर्शनानन्द जी के पक्ष को प्रस्तुत करते हैं-

स्वामी दर्शनानन्द जी का यह पक्ष था कि Soul (आत्मा) और Life (प्राण) में भेद है। मनुष्य में आत्मा और प्राण दोनों हैं। वृक्षों में केवल प्राण है, आत्मा नहीं।

अपने उपर्युक्त पक्ष की सिद्धि में स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने जहाँ अनेक तर्क, दलीलें, प्रमाण प्रस्तुत किए वहीं स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से आश्रय लेकर अपने कथ्य को स्पष्ट किया। जिनमें "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में पुरुषसूक्त के "साशनानशने" पद का स्वामी दयानन्द कृत व्याख्यान- "पृथिव्यादिकं जीवसम्बन्धरहितं जडम्" प्रमुख है। अन्य प्रमाणों में वेदान्त, वैशेषिक आदि दर्शनों के सूत्र और इनके तत्तत् भाष्य प्रमुख हैं। स्वामी दर्शनानन्द जी की कुछ दलीलें इस प्रकार हैं-

अब 'येन प्राणन्ति वीरुधः' में साक्षात् प्राण का निरूपण है तो जिस परमात्मा की शक्ति से लताएं प्राण धारण करती हैं अर्थात् जिसकी "हरकते इन्तजामी" से लताएं (बेलें) "प्राण श्वास लेती हैं" यह अर्थ हुआ, न कि कोई जीवात्मा अपनी हरकते इरादी से सांस ले रहा है, क्योंकि किसी जीवात्मा का यहाँ प्रकरण नहीं, परमात्मा का तो प्रकरण है, क्योंकि-

इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति, न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः"

इसका अर्थ यों है कि "हे लोगो ! उस "महाब्रह्म" को जानो, जिसके विषय में कि मैं तुमसे कहता हूं.... इस प्रकार महाब्रह्म का प्रकरण उठाकर कहा है कि (येन॰) जिस परमेश्वर (की हरकते इन्तजामी) से लताएं प्राण धारण करती हैं।" अतः इस प्रकार हमने प्रकरण के अनुकूल ही गौण अर्थ किया है। इसी प्रकार दूसरे मन्त्र "जीवन्तीमोषधीम्" में भी 'जीवन्तीम्' शब्द आया है- जो कि "जीव प्राणने" धातु से बना है, "जीव" धातु का अर्थ "प्राण"= श्वास लेना है, अतः 'जीवन्तीम्' पद का अर्थ हुआ "जीती हुई (ओषधी) को" अर्थात् "प्राण धारण करती हुई को" सो यहाँ भी "प्राणन" मात्र का प्रकरण है, न कि किसी जीवात्मा का। और ओषधी का "प्राण धारण करना हरकते-इन्तजामी से है, न कि किसी जीवात्मा की "हरकते-इरादी" से।

२. वेदान्त दर्शन (शारीरिक भाष्य) में भी वृक्षादि में मुख्य और गौण जीवात्मा के होने के विषय में सिद्धान्त किया है कि वृक्षों में मुख्य जीव नहीं है, किन्तु "गौण" अर्थात् 'अनुशायी', जीव हैं, अर्थात् वृक्षादि के अभिमानी जीव न होकर जो केवल बसेरा मात्र लेते हैं वे 'अनुशायी' जीव कहलाते हैं जैसे मनुष्य के शरीर में अहंभाव वाला जीवात्मा तो "अभिमानी" जीव है और इस शरीर में यूका (जूँ) आदि 'अनुशायी' जीव हैं।

३. 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में जो आप वृक्ष आदि की 'गौण' जड़ता की कल्पना करते हैं कि जड़ता से अभिप्राय 'बाह्यज्ञानाभाव" क्यों न लिया जाय, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ "जीव-सम्बन्ध-रहितं जडम्" यह जड़ का लक्षण कर दिया गया है, "लक्षण" में गौण कल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षण में औपचारिक (गौण) पद नहीं रखे जाया करते। औपचारिक पद तो सामान्य बोलचाल आदि में ही हुआ करते हैं, जैसे कहा जाए कि "ज्वालापुर आ गया, यहाँ "ज्वालापुर नगर" जड़ वस्तु है उसमें "आना" रूप क्रिया नहीं हो सकती। अतः उसका गौण अर्थ यह लिया जाता है कि "हम ज्वालापुर

में आ गए"। अतः वृक्षों की जड़ता से कोई गौण अर्थ नहीं लिया जा सकता, क्योंकि यहाँ लक्षण कर दिया गया है कि हमारा (स्वामी दयानन्द जी का) अभिप्राय "जीवाभाव" से है तो यह बात अर्थात् सिद्ध हुई कि "जीवाभाव" से अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ की कल्पना यहाँ नहीं कर सकते, अब यह बात स्पष्ट हो गयी कि पृथिव्यादि जीव से रहित हैं और इसे आप भी मानते हैं, अन्यथा पृथिव्यादि में भी आप को जीव मानना पड़ेगा जो कि आपके मतानुरूप नहीं है।

४. 'सत्यार्थप्रकाश' के ११वें पृष्ठ में "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" का अर्थ करते हुए श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज लिखते हैं कि- "जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं, "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर, जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं" इत्यादि प्रमाण से यह बात स्पष्ट है कि श्री स्वामी दयानन्द जी स्थावरों को जड़ मानते थे। तथा "सत्यार्थ प्रकाश", के २२१वें पृष्ठ में "कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ जाता है- जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं" इत्यादि प्रकरण में भी जड़ बीज से उत्पन्न वृक्षों को जड़ ही मानते हैं। क्योंकि यहाँ जड़ पृथिवी और जड़ जल के निमित्त से, यह बात सिद्ध है कि वृक्षों में जीव नहीं है, ... १७६ स्थानों में मिलेगा कि वृक्षों में जीव नहीं है।

५. 'मनुस्मृति' अकेली प्रमाण नहीं हो सकती। श्रुत्यनुसारिणी ही स्मृति मान्य हुआ करती है। कोई ऐसी श्रुति बतानी चाहिए जिसमें यह कहा गया हो कि जीव कर्मों के फलों को भोगने के लिए वृक्षों में जन्म लेता है।

६. 'द्वा सुपर्णा' मन्त्र में जीव-ब्रह्म दो पक्षियों के समान हैं- क्योंकि चेतनता समान धर्म से पक्षी तथा जीव ब्रह्मयुक्त हैं- उधर वृक्ष तथा प्रकृति के जड़ होने से समता है, अतः "वृक्ष" जड़ है। क्योंकि वेद पुनरुक्ति आदि दोषों से रहित हैं। यदि यहाँ वृक्ष को जड़ न मानेंगे तो "प्रकृति" से समता न हो सकेगी अतः "जाति" दोष वेद में आयेगा। उसकी निवृत्ति के लिए वृक्षों को जड़ मानना चाहिए यह बात युक्तियुक्त भी है, अन्यथा चेतनता के न होने पर भी यदि आप वृक्षों में जीव मानेंगे तो मेज आदि वस्तुओं में भी 'जीव' मानना पड़ेगा।

७. ईश्वर मनोरूप इन्द्रिय से जाना जाता है। गुण से गुणी का अनुमान किया जाता है, क्रिया से क्रियावान् का अनुमान किया जाता है, अतः सृष्टि के निरीक्षण से जो परमात्मा का अनुमान किया जाता है, वह मन से ही तो किया जाता है? अतः ईश्वरादि परसंवेद्य नहीं है। संसार में धोखा इसलिए होता है कि मनुष्य परसंवेद्य को नहीं जान सकता, यदि परसंवेद्य, स्वसंवेद्य हो जाया करे तो कभी कोई धोखा न खा सके। अतः वृक्षों को ज्ञान होता है, यह बात तब तक नहीं मानी जा सकती, जब तक कहीं व्याप्तिग्रह न हो। बस वेद, स्मृति और युक्ति से किसी प्रकार भी वृक्षों में अभिमानी जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता।

इस प्रकार ये हैं स्वामी दर्शनानन्द जी की कतिपय दलीलें, जिनको आधार बनाकर स्वामी जी ने 'वृक्षों में अभिमानी जीव विषयक' मान्यता का प्रतिवाद किया।

इस तरह उक्त शास्त्रार्थ को शास्त्रार्थ न कहकर यदि सारस्वत महानद कहा जाये तो अधिक समीचीन होगा। इसमें किस पक्ष की जय और किस पक्ष की पराजय हुई, यह कहना बड़ा ही कठिन है। दोनों ही पक्षों के प्रमाण, युक्तियाँ, ऊहा, दलीलें और वाक्पटुता अकाट्य सी प्रतीत होती हैं। मैं ऐसा समझता हूँ कि यह शास्त्रार्थ, शास्त्रों को किस प्रकार समझा जाता है, कैसे गम्भीर स्वाध्याय किया जाता है आदि के बोधनार्थ ही किया गया था। यह बात शास्त्रार्थ के तुरन्त पश्चात् स्वामी दर्शनानन्द जी के हुए व्याख्यान से भी सिद्ध होती है कि 'आर्य लोगों का शास्त्रों को न समझना यह साबित करता है कि आर्य लोग स्वाध्याय नहीं करते ...'। पं० गणपति शर्मा और स्वामी दर्शनानन्द जी में परस्पर घनिष्ठता थी। गणपति जी प्रायः समय-समय पर महाविद्यालय ज्वालापुर में आया करते थे। विद्वानों को परस्पर (आपस में) किस प्रकार अपने वैदुष्य का अभिमान छोड़कर बर्तना चाहिए, यह शिक्षा भी इस शास्त्रार्थ से मिलती है।

मैंने उक्त शास्त्रार्थ का बड़ी ही सूक्ष्मता से अध्ययन कर यह पाया कि इसमें स्वामी दर्शनानन्द जी के पक्ष में कुछ प्रश्न अनुत्तरित से लगते हैं, जिनका मैं कोई समाधान नहीं ढूंढ पा रहा हूं। विद्वानों से अपेक्षा है कि शायद वे कोई समाधान दे सकें –

१. स्वामी दर्शनानन्द जी ने पं० गणपति जी के निम्न वचनों- "वृक्षों के लिए भी मरना शब्द का प्रयोग होता है, देखिए ! लोक में बोलते हैं कि "फसल मारी गई", "खेती मारी गई" । तथा रघुवंश में देखिए !

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।

हिमसेक-विपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ।। (रघु०)

इसकी टीका में मल्लिनाथ लिखते हैं- अत्रार्थे **हिमसेकेन** तुषार-निष्यन्देन **विपत्ति- मृत्युर्यस्याः** सा नथा नलिनी पद्मिनी मे **पूर्व प्रथमं** निदर्शनमुदाहरणं मता' - अतः **संस्कृत भाषा में भी** वृक्षों के लिए 'मृत्यु' शब्द का प्रयोग आता है।" को सुनकर यह प्रतिवाद किया कि "साहित्य के जानने वाले "आत्मविद्या" को क्या जानें तथा **लोक को प्रमाण नहीं माना जा सकता** " ।

स्वामी दर्शनानन्द जी के उक्त प्रतिवाद को यदि उचित मानें तो सांख्यदर्शनकार महर्षि कपिल के इस सूत्र '**लोक-व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः**' (सां०द० ५.४०) अर्थात् लोकव्यवहार में व्युत्पन्न पुरुष को ही वेद के मूल **तात्पर्य की प्रतीति** होती है'- की क्या स्थिति होगी ? फिर तो जहाँ-जहाँ स्वामी दयानन्द जी ने भी लोकव्यवहार को आधार बनाकर अपने कथ्य को स्पष्ट किया है- उनको भी छोड़ना होगा । जैसे कि '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**' के 'वैदिकप्रयोग विषय संक्षेपतः' में- '**व्याकरणरीत्या..... वेदार्थोऽस्मथैव वर्णितः**' आदि ।

२. स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा छान्दोग्योपनिषद् शाङ्करभाष्य के निम्न वचन

बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, काणादमते तु स्थावरा जडाः" वचन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया । यह वचन इस रूप में न होकर इस प्रकार है "**वृक्षस्य रसस्रवणशोषणादिलिङ्गाज्जीववत्वं दृष्टान्त-श्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति, बौद्धकाणादमतमचेतनाः स्थावराः इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति ।**" छा०उ०-शाङ्करभाष्य का यही पाठ ठीक है । जिसके अनुसार वृक्षों में चेतनता सिद्ध होती है, न कि जड़ता । हमारी दृष्टि में स्वामीजी ने यह शांकरभाष्य का स्थल तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत किया है । समझ में नहीं आ रहा है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ?

३. आधुनिक वैज्ञानिक डॉ० जगदीश चन्द्र वसु जी ने भी अपने **वैज्ञानिक प्रयोगों से मनु** की '**अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः**' मान्यता की पुष्टि भी की है । उनके प्रयोगों से **इस बात** की **पुष्टि हुई है कि** वृक्षों को भी सुख दुःख की अनुभूति होती है । यह बात भी हमारे मन में रह-रहकर आ रही है कि यदि स्वामी दर्शनानन्द जी के पक्ष को हम स्वीकार करें तो डॉ० वसु के वैज्ञानिक प्रयोगों की सत्यता का क्या होगा ?

४. स्वामी दर्शनानन्द जी ने ऋग्वेद प्रथम मण्डल के मन्त्र- '**यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः०**' को उद्धृत करते हुए कहा है कि इस मन्त्र में जगतः प्राणतः ऐसा लिखा है, अर्थात् जो परमात्मा प्राण-धारण करने वाले समस्त जगत् का या (विश्वस्य जगतः) गतिशील संसार का पति है ।" '**जगत् को प्राण धारण करने वाला**' विशेषण देना यह सिद्ध करता है कि जो गतिमान् नहीं है, वह प्राण धारण भी नहीं करता, या जो प्राण धारण करता है वह गतिमान् है सो 'वृक्ष' गतिमान् नहीं हैं, अतएव प्राणी भी नहीं हैं और सजीव भी नहीं हैं ।

अपने इस शास्त्रार्थ में दूसरी जगह स्वामी जी ने कहा है कि **वृक्षों में केवल प्राण है, आत्मा नहीं** । अर्थात् एक जगह स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा है कि वृक्ष प्राणी भी नहीं है, दूसरी जगह कहा है कि वृक्षों में प्राण है आत्मा नहीं । अतः स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के वाक्यों में परस्पर विरोध (वदतो व्याघात) भी मुझे देखने को मिलता है । शास्त्रार्थ-

महारथी अमरस्वामी सरस्वती ने भी इस बात को अपने 'निर्णय के तट पर' ३८वें शास्त्रार्थ पृ० २३१ में रेखाङ्कित किया है।

३० जून सन् १९१२ ई० में जैन पण्डित गोपालदास जी बरैया के साथ "क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है?" विषय पर अजमेर-राजस्थान में हुआ शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ था।

इस शास्त्रार्थ में पं० गोपालदास बरैया ने अनेक प्रश्न किए थे। जिनमें कुछ एक इस प्रकार हैं- "पदार्थों का उद्देश्य लक्षणों से निश्चित किया जाता है, सृष्टि के बनने में ईश्वर का कर्तव्य क्या है? परमाणु में क्रिया और सूर्य-चन्द्रमा आदि की सूरतें रहने से वह उन रूपों में परिवर्तित हो गए, एक स्थान से दूसरे स्थानों में जाने का नाम किया है, जब परमेश्वर से कोई स्थान खाली नहीं है, तब इसमें क्रिया कैसे हो सकती है? जिसमें स्वयं क्रिया न हो वह दूसरे को क्रिया कैसे दे सकता है?

यदि यह माना जावे कि- परमेश्वर ने सृष्टि बनाने की इच्छा की, और परमाणुओं को सूर्य-चन्द्रमा के रूप में बन जाने की आज्ञा दी और यह आज्ञा पाते ही इन रूपों में बदल गए, तो ईश्वर जीव में कुछ अन्तर नहीं रहेगा। परमाणुओं में भी हरकत (चेतनता) आ जाती है।

यदि परमात्मा ने एक-एक परमाणु को पकड़-पकड़ कर जोड़ा तो परमात्मा साकार हुआ, और साकार होगा तो एक देशी होगा, और उसकी सर्वव्यापकता जाती रहेगी।

उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान स्वामी दर्शनानन्द जी ने इस प्रकार किया-

क्रियावान् ही क्रिया करे, यह कोई नियम नहीं है। चकमक पत्थर स्वयं नहीं हिलता है, पर लोहे को हिला देता है। इससे सिद्ध हुआ कि, क्रिया से क्रिया उत्पन्न नहीं होती है। किन्तु शक्ति से क्रिया उत्पन्न होती है। इच्छा अप्राप्त वस्तु की हुआ करती है, कोई वस्तु परमात्मा को अप्राप्त नहीं है। इसलिए परमात्मा में इच्छा नहीं बन सकती। क्रिया दो तरह की होती है - एक इच्छा के अनुसार अर्थात् इरादे के साथ क्रिया। दूसरी नियमपूर्वक क्रिया। इच्छापूर्वक क्रिया- यह जीव की होती है और नियमपूर्वक क्रिया परमात्मा में होती है। ईश्वर में क्रिया स्वाभाविक मानी जाती है। यथा "स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च"।

सृष्टि मे हर एक क्रिया नियमपूर्वक हो रही है। सूर्य-चन्द्रमा आदि सबमें नियमपूर्वक क्रिया है। वृक्ष आदि के एक-एक पत्ते के अन्दर नियमपूर्वक क्रिया हो रही है। जो अपने नियामक की ओर इशारा करती है।

सृष्टि और जगत् दोनों शब्द भी अपने बनाने वाले का निशाना बतलाते हैं, अर्थात् उसकी तरफ इशारा करते हैं। अतः पता चला कि, सृष्टि वह है जो बनाई गई हो, और जगत् वह है जो चले। न कोई चीज अपने आप चल सकती है और न अपने आप बन सकती है। यह साफ जाहिर हो गया।

परमाणुओं में क्रिया नहीं है, इसलिए इस सृष्टि (जगत्) का कोई बनाने या चलाने वाला अवश्य होना चाहिए। अगर परमाणुओं में स्वाभाविक क्रिया होती तो इनका मेल नहीं हो सकता था, क्योंकि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तुओं में भेद हमेशा बना रहता है। जो परमाणु जिस परमाणु से जितनी दूर पर आ रहा था, वह उतनी ही दूर पर रहता है। परमाणुओं में कार्य का रूप भी नहीं है, हरेक कार्य में तीन चीजें होती हैं। एक 'आकृति' यानी शक्ल, दूसरे व्यक्तित्व, तीसरा 'जाति' किस्म।

मिट्टी में ईंट की आकृति नहीं है, और न ही ईंट ही मकान की आकृति है। तब आकृति कहाँ से आयी? हर कोई कहेगा कि ईंट की शक्ल कुम्हार और मकान की शक्ल इंजीनियर के ज्ञान से आई है।

इससे सिद्ध हुआ कि आकृति कर्ता के ज्ञान से आती है, नेस्ती से हस्ती नहीं हुआ करती (अभाव से भाव अथवा शून्य से उत्पत्ति को कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता), उपादान कारण से व्यक्तित्व आता है। प्रकृति नित्य है, जगत् आकार वाला है, जन्य यानी (पैदा शुदा) है। साकार पैदा शुदा यानी जन्य होता है। जैसे घड़ा साकार है, जन्य है।

परमाणु इस जगत् के आकारवाले नहीं हैं । तब परमाणुओं में यह आकृति कहाँ से आई ?

परमात्मा ने हुक्म दिया और परमाणुओं ने सुना, यह आर्यसमाज का दावा नहीं है, परमात्मा एक-एक पदार्थ को लेकर जोड़ता है, यह ठीक नहीं है । यह दोष एकदेशी और नाशवान् पदार्थों में होता है, परमात्मा सर्वव्यापक है, जगत् उसके अन्दर है । अन्दरूनी पदार्थ में हरकत देने के लिए हाथ-पाँव आदि इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं । इसलिए कहा गया था-

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः सः शृणोत्यकर्णः" अर्थात् परमेश्वर के हाथ पैर नहीं, पर वह चलता और पकड़ता है, आँख के बिना देखता और कान न होते हुए भी सुनता है आदि-आदि । अर्थात् वह सब शक्तियाँ रखता है । शरीर के घावों को भरने के लिए जो खून आता है, उसको कौन हाथ से खींचकर लाता है ? कौन सा हाथ रक्त खींचकर लाता है ?

इस प्रकार स्वामी जी ने अनेक दलीलें देते हुए यह सिद्ध किया कि ईश्वर सृष्टिकर्ता है । स्वामीजी की वाक्पटुता और अकाट्य दलीलों को सुनकर श्रोतृवृन्द पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि पं० दुर्गादत्त शास्त्री और पं० शम्भुनाथ ने जैन धर्म छोड़ने की घोषणा कर दी । उनको बाकायदा वैदिक धर्म की दीक्षा दी गयी ।

ऐसे थे स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती । इनकी तर्कशक्ति का लोहा उस समय हर कोई मानता था । न्यायदर्शन और वैशेषिकदर्शन पर स्वामी जी का असाधारण अधिकार था । शास्त्रार्थकर्ता को न्यायदर्शन का विशेष ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है, तभी वह प्रतिपक्षी की दलीलों को काटकर उसे निग्रहस्थान में ला सकता है । स्वामी जी की यह विशेषता थी कि वे अपने प्रतिपक्षी को निग्रह स्थान में लाकर पराजित करते थे, जो कि किसी भी विद्वान् की बहुत बड़ी विशेषता है । आर्यसमाजी शास्त्रार्थ-पण्डितों में स्वामी दर्शनानन्द के बाद यह वैलक्षण्य पं० रामचन्द्र देहलवी और ठाकुर अमरसिंह में विशेष रूप से दिखाई देता है ।

स्वामी दर्शनानन्द के शास्त्रार्थों का सम्यक् आलोडन-विलोडन करने पर हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने आचार्य यास्क के उस चिन्तन को आधार बनाया, जिसमें यास्क ने तर्क को ऋषि माना है । 'तर्क के प्रकाश में अज्ञान या अविद्यारूप अन्धकार के हट जाने पर यथार्थरूप में पदार्थ का प्रत्यक्ष होता है । किसी का भी कथन तर्करूपी निकष पर उचित सिद्ध न हो पाये, तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए । सर्वत्र विवादास्पद स्थलों पर तर्क के द्वारा विवेकपूर्ण निर्णय किया जा सकता है ।' यास्क निर्दिष्ट सिद्धान्त दर्शनानन्द के शास्त्रार्थों में ही नहीं, अपितु उनके जीवन में भी स्पष्ट झलकता है ।

***

पता- ३०, योगी विहार कालोनी (होटल क्लासिक रेजिडेन्सी के पीछे),

ज्वालापुर, हरिद्वार- २४९४०७

म०वि० प्रांगण में एक शास्त्रार्थ : स्वामी दर्शनानन्द का पं० गणपति शर्मा से

स्थावर (वृक्षों) में जीव है या नहीं ?

– पं० पद्मसिंह शर्मा

श्री गणपति शर्मा जी का वह अन्तिम और अपूर्व शास्त्रार्थ जिन महाशयों ने स्वयं सुना था वे तो अब तक उस समय को याद करके सिर धुन रहे हैं और यह सोचकर कि अब ऐसा अवसर फिर इस जन्म में नहीं मिलेगा। अपने को धन्य समझ रहे हैं कि सौभाग्य से ही यह सुयोग हमें प्राप्त हो गया, जब कि आर्यसमाज के दो अप्रतिम-तार्किक, निरुपम-वक्ता, अद्वितीय शास्त्रार्थकर्ता, अलौकिक-प्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्व-विद्वान् तथा प्रतिवादि-भयङ्कर वाग्भट उपदेशकप्रवरों के संवाद-संगर देखने और श्रवणसुधावर्षी वाग्विलास सुनने का अलभ्य लाभ मिल गया।

आ हा ! सचमुच ही वह कैसा विचित्र समय और पवित्र अवसर। महाविद्यालय की सुरम्य भूमि के समीप विशाल बाग में कुदरती शामियाने के नीचे हजारों मनुष्यों का समाज जुड़ा है, एक ओर पीतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी-समूह, पंक्ति बांधे शान्तभाव से, पर उत्कर्ण हुआ, अपने आसन पर आसीन है, दूसरी ओर गैरिकरागरंजित-वेष-विभूषित, पर वैराग्यसम्पन्न अनेक सम्प्रदायों के साधु महात्मा जन-जिन जीवन्मुक्तायमानों को विवादसंगर-दिदृक्षा और शास्त्रार्थ-शुश्रूषा खींच लाई है, आसन मारे विराजमान हैं।

शेष श्रोतृमण्डल फर्श पर पर बांधे डटा हुआ है, कोई नोट लेने के लिए चाकू निकाले पेन्सिल घड़ रहा है, कोई कागज के दस्ते संभाल रहा है, कोई पाकेट-बुक के पन्ने उलट रहा है, कोई किसी से कागज पेन्सिल मांग रहा है। कोई बार-बार घड़ी निकालकर देख रहा है। कोई वक्त पूछ रहा है। शास्त्रार्थ शुरू होने में अभी कुछ देर है, पर श्रोता अभी से उतावले-बेसब्रे हो रहे हैं, उन्हें एक-एक मिनट भारी हो रहा है, बैठे-बैठे गर्दन उठा उठाकर देख रहे हैं कि पण्डितजी और स्वामीजी आते तो नहीं !

निदान जिस घड़ी का इन्तजार था वह आई और सुनने वालों की दिली कशिश, इन्तजार के बढ़े हुए तार में खींचकर वाग्भटवीरों की जुगल जोड़ी को सभामण्डल में ले ही आई।

ठीक निर्दिष्ट समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ और जिस प्रकार हुआ, वह आगे देखिए। परन्तु प्रिय पाठक ! इन शब्दों में वह अलौकिक आनन्द कहां है जो उस समय वक्ताओं के धाराप्रवाह मधुर भाषणों से टपक रहा था। यह समझिए कि सुधारस-निष्यन्दी, भीषण-नद, बड़े प्रबल वेग से बह रहा था, जिसमें गोते खाते हुए, श्रोतृजन भी साथ-साथ बहे जा रहे थे। कई महाशय जो उस समृद्धवेग नद को कागज पेन्सिल के छोटे-छोटे पात्रों में भरना चाहते थे, देखते रह गए, क्योंकि दरिया को कूजे में बन्द करना, हर-एक का काम नहीं है।

हमारे मित्र पण्डित रलारामजी 'ब्रह्म' की लेखन-पटुता और आशु-ग्राहिता प्रशंसनीय है कि उन्होंने उस प्रबल प्रवाह में से इन रुले हुए मोतियों को रोलकर इकट्ठा कर लिया और उनसे यह सुन्दर कण्ठा बनाकर प्रस्तुत कर दिया, जो प्रिय पाठकों के कमनीय-कण्ठ में सादर समर्पित है।

इस शास्त्रार्थ-मौक्तिकमाला-निर्माण का सारा श्रेय, पण्डित रलारामजी को ही है, इसके लिए पाठकों को उनका ही कृतज्ञ होना चाहिए।

'भारतोदय' अपने पण्डितजी की इस अन्तिम यादगार को सुरक्षित दशा में सर्वसाधारण के सन्मुख रखकर, बड़ा हर्ष अनुभव कर रहा है।

शास्त्रार्थ की पाण्डुलिपि नोटों के आधार पर, पण्डितजी के सामने ही प्रस्तुत हो चुकी थी। जब अन्तिम बार वह पंजाब जा रहे थे, निवेदन किया था कि महाराज ! इसे सुनकर तसदीक कर दीजिए। कुछ भाग सुना और कहा कि अबकी बार आकर सब सुनेंगे, पर अफसोस ऐसे गए कि अब तक न लौटे।

विचार था कि वादी-प्रतिवादी, दोनों महोदयों को एक-बार सुनाकर 'शास्त्रार्थ' प्रकाशित किया जाय, किन्तु दुःख है कि दुर्दैव ने यह इरादा पूरा न होने दिया। ईश्वर की कृपा है कि 'प्रतिवादी' अभी मौजूद हैं, पर हाय 'वादी' को कहाँ से लायें? अब तो यह कहने का मौका भी नहीं रहा-

लोग कुछ पूछने को आये हैं,

अहले-मय्यत जनाजा ठहरायें।

ओह ! संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है ! कुछ ठिकाना है। यारो, कलकी बात है कि हम तुम सब अपूर्व शास्त्रार्थ-नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद-प्रतिवाद की जबरदस्त लहरें, कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठा उठाकर पटक रहीं थीं, किसी एक तटपर जमकर बैठना थोड़ी देर के लिए भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते, अपूर्व आनन्द पाते थे और यही चाहते थे कि इसी प्रकार हर्ष-पयोधि में हिलोरें लेते रहें।

आहा वह समय, अब तक आँखों में फिर रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध गम्भीर ध्वनि कानों में गूँज रही है, वह दिव्य-दृश्य हृदय पर अबलों अङ्कित है, जिसे स्मृति की आँखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं !

ख्वाब था, जो कुछ भी देखा, जो सुना अफसाना था।

प्रत्यक्ष, परोक्ष और वर्तमान, अतीत हो गया, साक्षात् अनुभव का विषय स्मृतिशेष रह गया, जिसे आंखों से देख और कानों से सुन रहे थे, वह सिर्फ सोचने और याद करने के लायक रह गया ! आह ऐसा समय क्या कभी इस जन्म में फिर देखने को मिलेगा ! उस शान्त पावन मूर्ति के फिर भी दर्शन हो सकेंगे ! इन कानों से वे विचित्र बातें फिर सुन सकेंगे ? किसी ने सच कहा है कि-

मनुष्य अपने चित्त-पट पर नाना भाव और अनेक विचाररूपी रंगों से, मनोरथ-चित्र बनाकर तैयार करता है और विधि, एक नादान बच्चे की तरह हाथ फेरकर उसे मेट देता है !

मेरे मन कुछ और है कर्ता के मन कुछ और

आगामी वर्ष के लिए जिन-जिन महोदयों के साथ जिस-जिस विषय पर शास्त्रार्थ और संवाद करने का प्रोग्राम पण्डित जी बना रहे थे, वह यों ही रह गया। सुनने वालों के दिल की दिल ही में रह गई, अफसोस !

यह आरजू थी, तुझे गुलके रू-बरू करते,

हम और बुलबुल बेताब गुफ्तगू करते।

होने को अब भी सब कुछ होगा, उत्सव होगा, व्याख्यान होंगे और शास्त्रार्थ भी होगा, सभा जुटेगी, श्रोता आवेंगे, कहनेवाले कहेंगे, सुनने वाले सुनेंगे, वक्ता की वाणी से निकले हुए शब्द श्रोताओं के इस कान से उसमें होकर निकल जायेंगे, 'पल्ला-झाड़' कथा सुनकर उठ खड़े होंगे-

कहने सुनने की गर्म बाजारी है,
मुश्किल है मगर असर पराये दिल में।
ऐसा सुनिये कि कहने वाला उभरे,
ऐसी कहिए कि बैठ जाए दिल में॥

दिल में बैठने वाली बात कहने वाला मिलना मुश्किल है। अनेक शास्त्रार्थ देखे, बहुतेरी वक्तृताएं सुनीं, पर ऐसा प्रतिभाशाली ऊहवान् और मधुरभाषी शास्त्रीय विषयों का सुवक्ता, विचित्र व्याख्याता हमारे देखने में तो आया नहीं। आगे आशा भी नहीं है-

मानो न अलीक भूमिकम्प ही से कांपता है,
विद्युदादि-वेगों से पहाड़ हिलता नहीं;
भानुका प्रकाश भव्य कारण विकास का है,
तारों की चमक पाय 'पद्म' खिलता नहीं।
'शङ्कर' रसीली कड़ी रेती रेत डालती है,
क्षुद्र छुरी छेनियों से हीरा छिलता नहीं;
हाय गणपति की अनूठी वक्तृता के बिना,
अन्य उपदेश सुने स्वाद मिलता नहीं॥

***

(पद्मपराग से संकलित)

प्रेरक प्रसंग-

सच्चा धर्मात्मा

स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म का प्रचार करते अमृतसर पहुंचे। एक समारोह में उन्होंने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का कुछ भाग सेवा-परोपकार के कार्यों पर अवश्य खर्च करना चाहिए। सेवा से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

स्वामी जी का प्रवचन समाप्त हुआ। एक व्यक्ति उनके पास पहुंचा। बोला- 'महाराज, मैं बड़ी मेहनत करके परिवार के लिए दो समय को भोजन की व्यवस्था कर पाता हूँ। सवेरे से शाम तक मेहनत करते करते थक जाता हूं। ऐसी स्थिति में मैं न तो किसी मंदिर या धर्मशाला के निर्माण के लिए दान दे सकता हूं, न समयाभाव के कारण किसी की सेवा कर पाता हूँ। ऐसी स्थिति में मुझे धर्म-लाभ कैसे प्राप्त हो।

स्वामी जी ने बड़े प्रेम से उसके सिर पर हाथ फेरा, बोले- भैया, परिश्रम से कर्तव्यपालन करने वाला तो स्वत: ही धर्मलाभ का अधिकारी है। जो मानव सदाचारी है, हिंसा, असत्य, छल जैसे पाप कर्मों से दूर रहता है, निश्छल हृदय से भगवान् का स्मरण करता है वह तो हर क्षण धर्मपालन का पुण्य अर्जित करता है। धनिक की अपेक्षा गरीब सदाचारी तो साक्षात धर्मात्मा है।

स्वामी जी के शब्द सुनकर वह अभिभूत हो उठा।

प्रस्तुति- शिवकुमार गोयल

स्वामी दर्शनानन्द : कुछ प्रेरक प्रसंग

- महात्मा चैतन्य मुनि

स्वामी दर्शनानन्द जी आर्यजगत् की एक ऐसी अनुपम विभूति हैं, जिनका अपना एक अलग तथा विशेष स्थान है। स्वामी जी बहुमुखी प्रतिभा के मालिक थे। वे एक सिद्धहस्त एवं सिद्धान्ती लेखक, अद्भुत शास्त्रार्थ-महारथी, कुशल पत्रकार तथा प्रभावशाली वक्ता तो थे ही, वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए इनके मस्तिष्क में नित नई-नई योजनाएं प्रस्फुटित होती रहती थीं। इन्होंने अपना सर्वस्व वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में आहुत कर दिया। हम पूज्य स्वामी जी के जीवन से अपने पाठकों के लिए कुछ प्रेरक प्रसंग यहाँ पर प्रस्तुत कर रहे हैं-

अत्यधिक प्रतिभाशाली- पूज्य स्वामी जी की ससुराल फिरोजपुर में थी। वहाँ के एक बड़े स्कूल में उनके साले श्री पण्डित कृष्णगोपाल जी मुख्याध्यापक के नीचे गणित के विद्वान् श्री राधाकृष्ण जी का काम करते थे। विद्या-प्राप्ति के लिए इनके पिताजी ने इन्हें कृष्णगोपाल जी के पास भेज दिया। वहाँ उन्होंने फारसी का तो अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया, पर राधाकृष्ण जी ने उन्हें कुछ भी शिक्षा न दी। एक दिन उन्होंने कृपाराम (स्वामी जी का पूर्व नाम) को पानी के घड़े खींचने की आज्ञा दी। वे इस भारी काम में ऐसे लीन हो गए कि १९ घड़े खींच डाले। गुरुजी इस पर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने तत्काल गणित के साठ गुर शिष्य को बता डाले। प्रतिभावान् कृपाराम ने एक ही दिन में उन्हें याद कर लिया। इस पर गुरुजी ने उनकी स्मृति-शक्ति असाधारण जानकर गणित का उच्च कोटि का ग्रन्थ लीलावती पढ़ाना शुरू कर दिया। इन ग्रन्थों को पढ़कर कृपाराम गणित-शास्त्र के अनुपम विद्वान् बन गए। अब वे बड़े से बड़े प्रश्न को चट से मौखिक ही हल कर डालते थे।

सत्य पर विश्वास- पण्डित कृपाराम जी प्रतिदिन स्वामी दयानन्द-लिखित ग्रन्थों के पठन और मनन में ही अपना अधिकतम समय लगाते थे। परन्तु बड़ों के आग्रह करने पर उन्हें व्यापार में भी काम करना पड़ता था। उनकी दुकान अमृतसर में माल-दरवाजे के पास थी। पहले दुकान की मशहूरी न थी, मगर पण्डित जी ने कुछ नियम बनाए और छोटे-बड़े के लिए समान भाव रखकर सस्ते दामों में कपड़ा बेचना आरंभ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि खरीददारों की खासी भीड़ इकट्ठी होने लगी। शाम को मुश्किल से उन्हें उठाकर दुकान बन्द की जाती थी। यह उनकी सच्चाई के साथ व्यापार करने का फल था। लोग प्रायः समझते हैं कि सत्य-व्यवहार से व्यापार नहीं चल सकता, मगर पण्डित जी ने सिद्ध कर दिया कि सच्चाई के बल पर व्यापार अधिक चलता है।

गुरु-भक्ति- काशी के टेढ़ी नीम मुहल्ले में स्वामी मनीषानन्द जी का मठ था, जिसमें व्याकरण, दर्शन तथा साहित्य आदि विषय पढ़ाए जाते थे। स्वामी जी पढ़ाने से पूर्व शिष्यों की परीक्षा लिया करते थे कि वे विद्या-ग्रहण करने के अधिकारी भी हैं या नहीं। एक दिन पण्डित कृपाराम जी वहाँ दर्शनशास्त्र पढ़ने की इच्छा से जा पहुँचे। उन्हें भी मनीषानन्द जी ने अधिकारी-परीक्षा देने की शर्त रखते हुए कहा कि हमारे मठ में प्रतिदिन गोबर और मिट्टी के गारे से लेप करना पड़ेगा। क्या तुम ऐसा कर सकोगे? कृपाराम जी ने तुरन्त ही नल से पानी भरा और मुहल्ले में जा गोबर और मिट्टी से मिलाकर गारा बनाया और मकान पर लिपाई करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने रेशमी कपड़े पहन रखे थे, मगर उनकी कुछ भी परवाह न की। इस प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उन्होंने विद्यामृत का पान कर लिया।

महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त- रावलपिण्डी में स्वामी जी को सनातन धर्म के उत्सव पर अपना प्रवचन करने के लिए कहा गया। उन दिनों आर्यप्रतिनिधि सभा के कुछ लोग स्वामी जी के विरुद्ध थे तथा यह बात सनातन धर्म वालों को भी मालूम थी। सनातनधर्म के मन्त्री ने स्वामी जी को प्रवचन करने के लिए बुलाते हुए कहा कि पूर्ण आशा है कि आज स्वामी

जो सनातन धर्म में प्रवेश करेंगे। स्वामी जी ने प्रवचन प्रारम्भ करने से पूर्व कहा– 'भूले हुए हैं वे लोग जो ऋषि दयानन्द की गोदी मे पले हुए किसी भी विद्वान् से यह आशा करते हैं कि वह अपने सिद्धान्त से विचलित हो सकेगा। एक आर्यपुरुष आदि से लेकर अन्त तक आर्य ही रहता है, उसे अपने स्थान से कोई हिला नहीं सकता।' इसके बाद उन्होंने आर्यसिद्धान्तों पर अपना प्रवचन दिया।

ईश्वर-विश्वास– यह गुरुकुल बदायूँ की बात है। एक बार भण्डार में भोजन का दाना भी न रहा। प्रातःकाल होने पर रसोइए भण्डारी के पास चक्कर काटने लगे। स्वामी जी वहीं पर उपस्थित थे। उनके कानों तक भी यह बात पहुँची। मुख्याधिष्ठाता और उनके मुख्य सहयोगी गुरुकुल से बाहर गए हुए थे। प्रश्न पैदा हुआ कि आज ब्रह्मचारियों का भोजन कैसे होगा। स्वामी जी से पूछा गया तो उन्होंने शान्त भाव से कहा कि पहले अध्ययन का काम पूरा होने दो, बाद में भोजन की देखेंगे। अन्ततः भोजन का समय भी हो गया तो रसोइए स्वामी जी के पास पहुँचे कि अब क्या करें? स्वामी जी अब भी शान्त भाव से बोले कि तुम्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं है, जैसा होगा भोगना ही पड़ेगा। रसोइयों ने कहा कि अब तो भोजन की घण्टी बजाने का समय हो गया है। तो स्वामी जी ने पुनः उसी शान्त भाव से कहा कि भोजन की घण्टी बजा दो। रसोइयों ने आज्ञा का पालन करते हुए भोजन की घण्टी बजा दी। ब्रह्मचारी अपनी-अपनी थालियां साफ कर रहे हैं और स्वामी जी अपने लेखन मे व्यस्त हैं। इतने मे गुरुकुलवासियों ने देखा तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। तीन-चार कहार कन्धे पर बहंगियां लादे आ रहे थे। वे गुरुकुल के द्वार से घुसने लगे। उनके पीछे दो-तीन भद्र पुरुष थे, जिन्होंने स्वामी जी से विनम्र निवेदन करते हुए कहा– 'स्वामी जी हमारे यहाँ आज एक बड़ा भोज था, इस कारण हमने पहले ब्रह्मचारियों के लिए प्रसाद लाना उचित समझा। कृपया इसे स्वीकार कीजिए।' बस फिर क्या था, ब्रह्मचारियों ने पेट भरकर उत्तम भोजन किया।

कटु अनुभव- आज आर्यसमाज की जो स्थिति है, इससे भला महर्षि दयानन्द जी का कौन भक्त आहत नहीं होगा। स्वामी जी को अपने समय में भी इसी प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ा था और एक बार अत्यधिक वेदना के स्वर उनके मुखारविन्द से प्रवाहित हो गए थे– 'सज्जनों हमने सब प्रकार से यत्न किया, परन्तु हमारे सब प्रयास आर्यसमाज के लिए अहितकर सिद्ध हुए। हमने अपनी कोई वस्तु अपने लिए नहीं बनाई, प्रत्युत जो कुछ किया, आर्यसमाज के लिए किया, परन्तु हमारे दुर्भाग्य और हमारी मूर्खता से उसका परिणाम आर्यसमाज के लिए अच्छा नहीं निकला.. हमने अपने पास केवल एक ही वस्तु रखी और वह है हमारा अन्तरात्मा। इसका कारण केवल यह है कि इसे हम ऋषि के सिद्धान्तों के अर्पण कर चुके थे। आर्यसमाज की चाल (व्यवहार) ऋषि के सिद्धान्त के विपरीत हो रही है....हमने अपने सर्वसामर्थ्य से प्रयत्न किया कि आर्यसमाज युग के प्रवाह में न बह जावे, प्रत्युत ऋषि दयानन्द का साथ दे, परन्तु भारत के दुर्भाग्य का उपचार किसके पास है। हमारे प्रयास आर्यसमाज के लिए हानिकारक सिद्ध हुए। हमने आर्यसमाज के लिए वेद-प्रचार-निधि स्थापित करवाई, परन्तु इससे आर्यसमाज को बजाए लाभ के हानि पहुंची।

हमारा सारा परिश्रम व्यर्थ गया। यदि हम आर्यसमाज से पृथक् होकर, ऋषि दयानन्द के मिशन के लिए इतना परिश्रम करते तो न तो आर्यसमाज की ही हानि होती जो हमारे आर्यसमाज से कुछ न कुछ संलग्न रहने में पहुंची और न ही हमारा समय कल्लर (शोरे) वाली भूमि में बीज बोने में नष्ट होता, क्योंकि वैदिक धर्म की शिक्षा तो ईश्वर के उपासकों के लिए है, धन की पूजा करने वालों को इससे क्या लाभ हो सकता है। हमने ट्रैक्ट लिखकर आर्यसमाज की हानि की तथा अपना समय नष्ट किया, क्योंकि जो रुपया आर्यों ने ट्रैक्ट क्रय करने में नष्ट किया, यदि वह किसी राजनैतिक समाचार पत्र के क्रय करने में व्यय करते तो स्वराज्य शीघ्र प्राप्त होता....।

***

पता- ८१/एस-४ सुन्दरनगर- १७४४०२ (हिमाचल प्रदेश)

श्री दर्शनानन्द-स्तवः

(शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्)

-डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

(१)

विद्या-वैभव-भास्वरो गुणनिधिः, शास्त्रार्थ-चिन्तापरः,
शास्त्रार्थेऽप्यसमः, रुचौ च विषमः, मोदे विषादे समः ।
तर्के तीक्ष्णमतिः, श्रुतौ धृतगतिः, त्यागे निबद्धस्मृतिः,
सोऽयं योगिवरः सदा विजयते, षड्दर्शनानां प्रधीः ।।

(२)

दीनानां हितचिन्तनेऽतिनिरतः, धर्मे रतः, कर्मधीः,
संस्थाप्यैव गुरोः कुलस्य कुलजो, ज्ञानोच्चयं पञ्चकम् ।
लोके मर्त्यमये बभूव अमरो, देवैर्वृतः सस्पृहैः,
लोकालोककरो दिवाकरसमो, विद्योतते दिव्यधीः ।।

(३)

ग्रन्थानां त्रिशतीं प्रणीय, प्रणयी निःशुल्क-शिक्षासृतेः,
आर्षे ग्रन्थचये च प्राच्यसरणौ, श्रद्धां प्रकृष्टां दधत् ।
भाष्यं दर्शनपञ्चके विरचयन् तत्त्वार्थबोधे रतः,
विज्ञानाऽमृतपान-नष्ट-कलुषो, दिव्यो गतो दिव्यताम् ।।

(४)

माहात्म्यं समवाप्य शास्त्रनिपुणैः सद्धर्म-धुर्यैः बुधैः,
शुद्धैः[1] भीमगुणैः[2] सुपद्मरुचिरैः[3], दीप्तैः दिलीपादिभिः[4] ।।
आचार्यैर्नरदेव[5]-शास्त्रिभिरसौ, भक्त्या सुपुष्ट्या धृतः,
कल्याणं व्यदधादसंख्य-विदुषां, सोऽयं सुधीः दीप्तधीः ।।

(५)

भोगे योगगुणे समः, सुविषमे मार्गेऽपि बद्धादरः,
त्यागे शौर्यचये निबद्धधिषणः, आस्तिक्यमूर्तिः शुभः ।
सर्वस्वं परिहाय आर्यसरणेः, रक्षार्थमाबद्धधीः,
वेदोक्तां सृतिमाश्रयन् विजयते, शास्त्रार्थधुर्यो यतिः ।।

---

१. आचार्यः श्रीशुद्धबोधतीर्थः, २. पं० भीमसेन शर्मा, ३. पं० पद्मसिंह शर्मा,
४. पं० दिलीपदत्त उपाध्यायः, ५. पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थः

(रचना- ७.११.१९८८)

*** पता- निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही)

श्री स्वामी दर्शनानन्द

- आचार्य हरिसिंह त्यागी, पूर्वप्राध्यापक

जीवन-प्रदीप लेकर, आये थे दर्शनानन्द ।
दर्शन-प्रदीप्त उसमें, लाए थे दर्शनानन्द ।।

ले प्रेरणा ऋषि से, रवि से शशांक के सम ।
पाखण्ड की निशा में, चमके थे दर्शनानन्द ।।

निर्धन-निराश बालक, भूलें न संस्कृति को ।
गुरुकुल की यह प्रणाली, लाये थे दर्शनानन्द ।।

आकार से रहित है, ईश्वर जगत् में व्यापक ।
तजिए ये मूर्ति-पूजा, कहते थे दर्शनानन्द ।।

शास्त्रार्थ-महारथी थे, वैदिक-धरम के सच्चे ।
विद्वान् थे यशस्वी, त्यागी थे दर्शनानन्द ।।

लेखन-महामनीषी, योगी उदार-चेता ।
ऐसा मिला न नेता, जैसे थे दर्शनानंद ।।

उनके प्रताप से है, गुरुकुल अचल बगीचा ।
हम चंचरीक इसके, माली थे दर्शनानन्द ।।

थी तीन की चवन्नी, खोला था जबकि गुरुकुल ।
विश्वास ईश का ले, आए थे दर्शनानन्द ।।

जाते समय उन्होंने, लोगों से 'हरि' कहा था ।
शंकाएं सब मिटा लो, जाते थे दर्शनानन्द ।।

***

पता- पूर्व प्राध्यापक, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर
संस्थापक एवं अध्यक्ष- महर्षि कणाद विद्यापीठ,
सिसौना, बिजनौर (उ०प्र०)

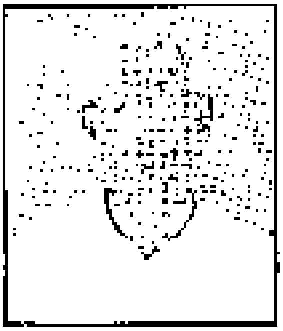

शास्त्रार्थ-महारथी स्वामी दर्शनानन्द

– श्री अमृतपाल शास्त्री, विद्याभास्कर

डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने आर्यसमाज के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना वर्णित की है-

जिला पानीपत (तब पानीपत जिला नहीं था) के सींक पाथरी गाँव का डाकू मुगला डाका डालने की नीयत से पानीपत में एक लाला के मकान पर पहुँचा, वहाँ कोई न था, ताला लगा था। लाला जी का पूरा परिवार आर्यसमाज के उत्सव में जा चुका था। पता लगने पर मुगला भी उत्सव में जा पहुँचा, जो देखा, दर्शनानन्द जी का कर्मफल पर भाषण हो रहा है। ध्यान से सुनने लगा तो बड़ा मजा आया, पर हृदय में तो हलचल मच गई। मन बेचैन हो उठा। इतने में स्वामी जी भी अपना भाषण समाप्त कर यथास्थान आ बैठे।

अब मुगला से रहा न गया और स्वामी जी से एकांत में मिलने की प्रार्थना की। एकांत पाकर मुगला ने उनसे पूछा- 'स्वामीजी, आपने जो यह कहा कि "बुरे कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा" क्या यह सत्य है। स्वामीजी ने उसे संक्षेप में फिर समझाया तो वह अपने किए पर बहुत पछताया और उनके पैरों में गिरकर विलाप करने लगा तथा विश्वास दिलाया कि मैं अब भविष्य में कोई बुरा कर्म नहीं करूँगा। यह थी स्वामी जी की तर्कपूर्ण भाषण शैली।

महर्षि दयानन्द की विचारधारा (आर्यसमाज) को पंजाब-प्रदेश में उपजाऊ तथा उर्वरा भूमि में फूलने फलने का जो स्वर्णावसर मिला वह अन्यत्र सम्भव न हो सका। महर्षि के दर्शन करने वालों एवं सुनने वालों ने आर्यसमाज के कार्यविस्तार को जो अनुपम प्रगति दी वह किसी से छिपी नहीं है। इन मेधाओं में पं० लेखराम, पं० हंसराज, लाला लाजपतराय, गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), पं० कृपाराम (स्वामी दर्शनानन्द), म० राजपाल व पं० मनसा राम आदि के नाम सबसे प्रथम श्रेणी में आते हैं। प्रायः इन सभी ने महर्षि के दर्शन भी किए थे और उन्हें सुना भी था। स्वामी दर्शनानन्द जी तो यहाँ तक कहा करते थे कि मैंने महर्षि के ३६ भाषण सुने और मैंने आर्यसमाज की छत्तीस वर्ष सेवा की।

पं० कृपाराम जी का जन्म लुधियाना जिलान्तर्गत जगरावाँ नामक कस्बे में पं० रामप्रताप व श्रीमती हीरादेवी दम्पती के घर माघ कृष्णा दशमी सं० १९१८ विक्रमी, तदनुसार सन् १८६१ को हुआ। इनके पिता ने अपने व्यवसाय से अच्छा धन कमाया था। कृपाराम की शिक्षा व्यवस्था पिता की देखरेख में होती रही, बाल्यकाल में ही अरबी-फारसी का अच्छा अभ्यास कर लिया था। इन पर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली लोकोक्ति शत-प्रतिशत घटती है। गुलिस्तां, बोस्तां पढ़ डाले। गणित का अच्छा अभ्यास कर लिया, प्रारम्भ में संस्कृत-व्याकरण पिताजी से ही पढ़ा था। संस्कृत में रुचि बढ़ती चली गई।

गुरुकुल ज्वालापुर के प्रथम स्नातक दर्शनों के मूर्धन्य विद्वान् श्री पं० उदयवीर शास्त्री ने हमें सुनाया था कि अपने गुरुकुल के उत्सव पर कृपाराम जी की माताजी पधारीं तो सबके दर्शनों का केन्द्र बन गईं। हम लोग भी उनके दर्शनार्थ पहुँचे और श्री माता जी से उनकी कोई घटना सुनाने की प्रार्थना की। माता जी ने कहा- "हमारे यहाँ एक बार कुछ बिलोच ऊँटों पर बादाम की बोरियां लादकर बेचने आए। धनराशि की कृपाराम को कमी तो थी नहीं। झट से दो बोरी खरीदी और आंगन में ला पटकीं। हमने पूछा ये क्या है? उत्तर मिला- बादाम। हमने कहा इतने बादामों का हम क्या करेंगे? तो फिर मिला- सब पड़ोसी भी खायेंगे।" ऐसे थे परम कृपालु कृपाराम जी।

इनका विवाह भी ११ वर्ष की छोटी आयु में कर दिया गया था। जैसा कि प्रायः उन दिनों सर्वत्र प्रथा थी। स्मरण आ रहा है कि उनकी पत्नी का नाम पार्वती था। विवाहित होकर भी वे वैराग्य की ओर बढ़ते गए।

ये संकल्प के धनी यायावर थे, अनेक स्थानों पर घूम फिरकर दुनियां का अनुभव प्राप्त किया। ऐसे ही भ्रमण करते संस्कृत में प्रवीणता पाने के उद्देश्य से कृपाराम जी संस्कृत-विद्या की मुख्यस्थली काशी जा पहुँचे।

इन्हें मेधावी, गुरुभक्त, अथक परिश्रमी एवं प्रत्युत्पन्नमति जानकर श्री स्वामी मनीषानंद जी ने अपना अन्तेवासी बनाकर लगनपूर्वक पढ़ाया। कृपाराम जी कुछ ही समय में दर्शनों, उपनिषदों तथा व्याकरण में अप्रतिहतगति हो गए। इन्होंने इसी अन्तराल में अनुभव किया कि निर्धन छात्र संस्कृत पढ़ने को इतस्ततः मारे-मारे घूमते फिरते हैं, न निवास की सुविधा, न उपयोगी पुस्तकें बहुमूल्य होने से क्रय कर पाते हैं, पढ़ें तो कैसे। कृपाराम जी ठहरे 'यथा नाम तथा गुणः।' उस समय काशी में यन्त्रालय भी कम थे और जो थे भी उन्होंने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनोरमा, सिद्धान्तकौमुदी आदि संस्कृत-ग्रन्थों का मूल्य निर्धन छात्रों की पहुंच से दूर रखा हुआ था। अब तो निर्धन छात्र कृपाराम के प्रेस से सस्ते दामों पर पाठ्य पुस्तकें सरलता से पाने लगे। कोई कहता मेरे पास तो इतने पैसे भी नहीं हैं, कृपाई हो उसे बिना मूल्य के ही दे देते थे।

कृपाराम जी ने महर्षि के समस्त ग्रन्थ पढ़कर हृदयंगम कर डाले थे। उनका मनन और निदिध्यासन करने से इनकी मेधा चमक उठी। उर्दू, फारसी का अभ्यास भी अच्छा था। अतः स्थान-स्थान पर भाषणों की धूम मचने लगी। विधर्मियों के साथ शास्त्रार्थ होने लगे, आर्यसिद्धान्तों पर छोटे-छोटे ट्रैक्ट लिखने लगे। इनका दृढ़ निश्चय था कि दोपहर के भोजन से पूर्व एक ट्रैक्ट अवश्य लिख डालना है। एक बार की बात है ये एक ट्रैक्ट लिख रहे थे। इतने में जोर की आंधी आ गई और लिखित-अलिखित पत्रे इधर-उधर उड़ते दूर निकल गए। किसी साथी ने कहा पण्डित जी, पत्रे तो चुन लो, ये झट से बोले- जितना समय इनको चुनने में भाग-दौड़ करूंगा, उससे कम समय में मैं दूसरा ट्रैक्ट लिख डालूँगा। ऐसी लग्न थी लेखक कृपाराम में।

इन्होंने कुरानी, पुराणी, पादरियों, जैनियों को चुनौती दे रखी थी कि जब चाहो कृपाराम से वाद-विवाद करके अपने मत-मतान्तरों की कमजोरी तथा आर्य (वैदिक) सिद्धान्तों की सत्यता को जानकर सच्चे सनातन-धर्म की शरण में आकर अपना जीवन सफल बनावें। अन्य स्थानों पर भी प्रेस खोलकर अनेक पत्र-पत्रिकाएं निकालीं तथा पुस्तकों का प्रकाशन किया, जिससे आर्यसमाज के प्रचार को अच्छी गति और दिशा मिली। महर्षि युग (सन् १८६३ से लेकर १८७० तक) आर्यसमाज अनेक परीक्षाओं से गुजरता हुआ कुन्दन होकर उभरा। कृपाराम जी के सम्बन्ध में हम अनेक घटनाएं व संस्मरण गुरुकुल में अध्ययनकाल में अपने पूज्य आचार्यों, उत्सवों आदि पर पधारे विभिन्न विद्वानों, उपदेशकों, वक्ताओं से रुचि के साथ सुनते रहे, पर दुर्भाग्यवश हम उनका सुरक्षित संग्रह नहीं कर सके।

शास्त्रार्थ आदि पर कई बार कुछ मौलवियों ने पं० जी को उलझाने की कोशिश की, परन्तु खुद ऐसे फंसते कि निकल न पाते। व्याकरणाचार्य श्री पं० छेदीप्रसाद जी ने एक बार शास्त्रार्थ की घटना सुनाई- भीड़ जमा थी। तिल रखने की जगह न थी। यथास्थान मौलवी आते ही पं० कृपाराम जी से बोला- 'पण्डित जी, आज तो आपका शेरों से पाला पड़ा है'। पं० जी ने छूटते ही कहा- 'हो तो पशु ही', बस फिर क्या था, जो से तालियां पिटती रहीं, मौलवी के पैरों तले की जमीन खिसक गई और स्वयं ही निग्रह में फंस गए। एक और शास्त्रार्थ की घटना सुनिए- "एक मौलवी साहब शास्त्रार्थ-स्थल पर अपना स्थान ग्रहण करते ही कृपाराम जी से बोले- 'पं० जी आज मुझे आपके सत्यार्थप्रकाश पर लघुशंका करनी है'। श्री पं० कृपाराम जी ने भी धड़ल्ले से मौलवी साहब से कहा- 'आप अपनी लघुशंका थोड़ी देर के लिए अपने मुँह में रख लीजिए। फिर क्या था, सभा में तालियां बजने लगीं और मौलवी जी खिसियाने होकर बगलें झांकने लगे तथा निग्रह-स्थान में फंस गए, शास्त्रार्थ भी यहीं समाप्त हो गया। यह था प्रत्युत्पन्नमति पं० कृपाराम जी की मेधाशक्ति का चमत्कार।

पं० कृपाराम जी ने १९०१ ई० में किन्हीं अनुभवानंद जी से दिल्ली में संन्यास की दीक्षा ली। दर्शनों के उद्भट विद्वान् होने से इनका नाम "दर्शनानन्द" रखा गया। महर्षि-निर्वाण के पश्चात् लाला लाजपतराय, गुरुदत्त विद्यार्थी, म० हंसराज आदि कुछ आर्यों ने महर्षि की स्मृति में "डी०ए०वी०" संस्थाएं (स्कूल, कालेज) खोलीं। उधर म० मुंशीराम जी ने १९०२

में गुजरांवाला में स्थापित अपने गुरुकुल को हरिद्वार में कांगड़ी गांव के निकट गंगा के किनारे स्थानान्तरित कर गुरुकुल कांगड़ी नाम दिया। उस समय उक्त गुरुकुल में पं० गंगादत्त जी, नरदेव शास्त्री, भीमसेन जी पंजाब से साथ आए थे। संस्कृत शिक्षा पर शुल्क लगाने पर म० मुन्शीराम के साथ इनके तीव्र मतभेद हो गए और ये सभी निःशुल्क संस्कृत शिक्षा के एकमात्र केन्द्र स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा १९०७ में स्थापित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आ गए। गुरुकुल की स्थापना के समय स्वामी जी के पास केवल तीन चवन्नियाँ और तीन विद्यार्थी थे।

एक घटना और सुनी थी- 'एक मालिन रेलवे-लालपुल के नीचे कच्चे घाट पर गाजरें धो रही थी, पुल से आते स्वामी जी को देख कहने लगी- 'स्वामी जी गाजरें खालो'। इतने में ही बाबू सीताराम जी, ज्वालापुर के थानेदार आ निकले। उन्हें देखकर 'वह बड़ा निकम्मा, बड़ा सख्त है' टोकरा लेकर भाग गई। स्वामी जी सीताराम जी के साथ हो लिए। स्वामी जी का बाबू सीताराम पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपने बंगले सहित सारी जमीन स्वामी जी को गुरुकुल के लिए समर्पित कर दी। बाबू सीताराम मुरादाबाद के थे। वे निःसन्तान थे। स्वामी जी १२ गुरुकुल खोलना चाहते थे। परन्तु पाँच ही खोल पाए- गुरुकुल बदायूँ, गुरुकुल सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर), गुरुकुल विरालसी (मुजफ्फरनगर), गुरुकुल चोहाभक्तां पोठोहार (पंजाब)। इनमें गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर अच्छी स्थिति में बढ़ता रहा और वातावरण भी सुखद रहा। स्वामी शुद्धबोध तीर्थ, श्री भीमसेन जी, श्री आचार्य नरदेव जी शास्त्री (राव जी), पं० पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य (हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान्) इनको सहयोगी मिले। भारतोदय (हिन्दी पत्र) शर्मा जी के सम्पादकत्व में निकला था। जो अभी भी निकल रहा है। स्वामी जी ईश्वर पर अटूट विश्वास रखते थे।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में सम्पूर्ण भारत से छात्र पढ़ने के लिए आते थे। ट्रावनकोर, कोचीन, मारीशस आदि के छात्र भी। मारीशस के एक छात्र तो मेरे परिवार में अतिथि भी रह चुके हैं। हमारे गुरुकुल के योग्य स्नातकों की सूची बहुत लम्बी है, जो सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में अपना अमूल्य योगदान सफलतापूर्वक करते रहे हैं। सम्पादन एवं काव्य क्षेत्र में भी अपनी चमक छोड़ी है। अनेक स्नातक राष्ट्रपति के अवार्ड से सम्मानित हो चुके हैं। हैदराबाद आर्यसत्याग्रह में भी यहाँ के अध्यापकों तथा छात्रों के तीन जत्थे क्रमशः श्री स्वामी विवेकानन्द जी, श्री पं० भूदेव जी शास्त्री तथा श्री स्वामी आनन्दप्रकाश जी के नेतृत्व में निजाम के छक्के छुड़ाने पहुँचे थे।

***

पता- जे. ३२, से०-१२, नोयडा (गौतमबुद्धनगर)

> पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
> मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः॥
>
> जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उनसे कर ले। कोयला बनानेवाले की तरह जड़ नहीं काटनी चाहिए।

स्वामी दर्शनानन्द जी की आर्यसमाज को देन

- श्री सत्यदेव गुप्त

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज का जन्म माघमास की दशमी विक्रम सम्वत् १९१८ को गांव जगरांवाँ, जिला लुधियाना के एक प्रतिष्ठित, सुशिक्षित एवं सम्पन्न परिवार में माता हीरादेवी जी, पिता श्री पं० रामप्रताप जी जोशी, दादा पं० दौलतराम जी के घर हुआ था। आपका बचपन का नाम बालक कृपाराम था। उस काल की रीति-रिवाज के अनुसार इनकी शादी बाल्यावस्था में ही हो गई थी। आपके दो पुत्र थे- नरसिंह जोशी व अमरनाथ। धर्मधुन का धनी यह बालक घर से निकलकर साधु बना। माता-पिता, अबोध पत्नी व भाई बहनों के प्यार को छोड़कर नित्यानन्द के नाम से यह यहाँ वहाँ भ्रमण करने लगा। अक्टूबर सन् १९०१ में इन्होंने संन्यास की दीक्षा ली और आर्यसमाज के प्रचार में लग गये। उ०प्र०, पंजाब, सिन्ध, जम्मू-काश्मीर, राजस्थान एवं सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रचार कार्य हेतु क्षेत्र बनाया। पौराणिकों, जैनियों, मुसलमानों सभी से शास्त्रार्थ करके बहुत कीर्ति पाई। हर प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से देते थे। आप अद्वितीय शास्त्रार्थ-महारथी रहे। उनकी युक्ति अकाट्य एवं सारयुक्त होती थीं। प्रायः विपक्षी हतप्रभ हो जाते थे।

स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज आर्यसमाज के वह देदीप्यमान विभूति थे, जिनके ज्ञान, कर्म एवं व्यक्तित्व से आर्यसमाज में चार चांद लग गए। वह आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के मिशन के अद्भुत मिशनरी थे तथा अनुपम तार्किक थे, जिनकी तार्किक शक्ति का विपक्षी भी मुक्तकंठ से गुणगान व प्रशंसा करते थे। वे प्रगल्भ वक्ता थे। ऐसा लगता था मानो उनकी वाणी पर सरस्वती का वरदहस्त विराजमान हो। साहित्य-सृजनकला उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनके लिखित साहित्य को देखकर व पढ़कर ऐसा लगता है कि इतना बड़ा कार्य उस व्यक्ति ने कैसे किया होगा। यही नहीं आर्ष पठन-प्रणाली का स्वप्न ऋषि दयानन्द ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में जो निर्देशन किया है, उसको मूर्तरूप देने वाले एकमात्र वीतराग संन्यासी श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज थे।

निःशुल्क शिक्षाप्रणाली की धुन के धनी स्वामी दर्शनानन्द जी एक ही नहीं, अनेक गुरुकुलों की स्थापना की थी एवं आर्ष पद्धति की स्थापना करने में भी उनका अपूर्व योगदान है। प्रमाण हेतु आज भी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार है, जिसकी अब वर्ष २००७ मे शताब्दी मनाई जा रही है। गुरुकुल सिकन्दराबाद बुलन्दशहर, गुरुकुल सूर्यकुंड बदायूँ एवं गुरुकुल शुक्रताल मुजफ्फरनगर आदि सप्रमाण हमारे सामने विद्यमान हैं, जहाँ से अनेक विद्यार्थी गुरुकुल प्रणाली से शिक्षित आर्यजगत् को सुशोभित कर चुके हैं एवं कर रहे हैं।

धुन के धनी आर्यसमाज के प्रचार में जिसने परिवार, धन-सम्पत्ति एवं मान प्रतिष्ठा को त्याग करके अपना सर्वस्व आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में अर्पण कर एक कीर्तिमान् स्तम्भ प्रतिष्ठित किया। जब पंडित भीमसेन अपनी महत्त्वाकांक्षा के वशीभूत आर्यसमाज एवं ऋषि दयानन्द का विरोध करने लगे, तब यह शास्त्रार्थ-महारथी वीतराग संन्यासी अपने सब महत्त्वपूर्ण कार्यों को छोड़कर पं० भीमसेन के पीछे लग गये। जहाँ भी भीमसेन ऋषि दयानन्द के विरुद्ध कुछ कहते तो स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज खड़े होकर पहला प्रश्न करते थे कि पं० जी पहले आप अपने गुरु का नाम बतायें, जिससे आपने यह विद्या एवं लेखनकला सीखी है, प्राप्त की है। तब भीमसेन प्रायः निरुत्तर होकर मौन धारण कर लेते थे। यह प्रक्रिया वर्षों रही। यह ऋषि दयानन्द का दीवाना वीतराग संन्यासी इसी खोज में रहता था कि भीमसेन आज कहाँ हैं, किस सभा में जा रहे हैं। भीमसेन से पहले ही उस सभा में पहुँच जाना स्वामी श्री दर्शनानन्द जी का मुख्य कार्य था। भीमसेन के कई लेखों का उत्तर स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने छोटे छोटे ट्रैक्ट लिखकर दिया है, जैसे- (शतपथब्राह्मण आदि में मिलावट नहीं है)। साहित्य-सृजन में स्वामी दर्शनानन्द जी की ख्याति है कि वह प्रतिदिन एक ट्रैक्ट लिखकर भोजन करते थे। छः दर्शनों पर

उनका भाष्य अद्वितीय, सरल एवं सारयुक्त है, जो ऋषि दयानन्द की प्रश्नोत्तर शैली में आज भी उपलब्ध है, जिसे पढ़कर विद्वज्जन आर्यजगत् में शोभायमान हो रहे हैं।

वैसे तो इनका बाल्यकाल भी अपनी धुन में ही गुजरा, यही गुण आगे चलकर आर्यसमाज के लिए वरदान सिद्ध हुआ। बताते हैं कि बालक कृपाराम एक दिन ऊपर छत पर चढ़कर उसकी मुंडेर पर ही सोने को मचल गया। परिवारीजन बड़े हताश एवं दुःखी हो रहे थे, किन्तु कृपाराम अपनी जिद पर अड़े रहे और मुंडेर पर सो भी गये। परिवारीजन सारी रात नीचे खड़े होकर उनकी रखवाली करते रहे कि कहीं बालक ऊपर से नीचे न गिर जाये, परन्तु यह बालक कृपाराम सारी रात उसी मुंडेर पर अकेला सोता रहा। यही बालक आगे स्वामी दर्शनानन्द बनकर हमारे सामने आर्यसमाज के प्रचार के लिए घर से धन लेकर विद्या की नगरी कही जाने वाली काशी नगरी में प्रेस और विद्यार्थियों के लिए पुस्तकें सुलभ कराने में पूरा धन लगा देता है। परिवारीजन पता लगा रहे हैं कि कृपाराम कहाँ है। जब सारा धन व्यय हो गया तो पुनः घर पहुँचकर धन की मांग करने लगे। घरवालों से येन केन प्रकारेण धन प्राप्त करके पुनः काशी में आ विराजे। आर्यसमाज के लिए अपना तन, मन, धन व्यय करके निम्न युक्ति को चरितार्थ करने वाले कि 'घर फूँक तमाशा देखेंगे' वाला कोई है तो वह है स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज।

अन्त में जब स्वास्थ्य भी साथ नहीं दे रहा था, उस समय भी यह आर्यसमाज का दीवाना प्रचारकार्य में संलग्न अन्तिम समय में प्रचारार्थ उत्तर प्रदेश के हाथरसनगर में व्याख्यान देते हुए अपने शरीर को अर्पण कर हमें निराश एवं असहाय स्थिति में दिनांक ११.५.१९१३ ई० को छोड़कर चला गया।

पता- जमैसाबाद, आगरा, (फोन नं०) ९७१९०५३५७३

***

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।

अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्॥

राजा वृक्ष की भाँति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने) पर भी फल से, खाली रहे (अधिक देने वाला न हो) यदि फल से युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिस पर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुँच के बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होने पर भी पके (शक्तिसम्पन्न) की भाँति अपने को प्रकट करे। ऐसा करने से वह नष्ट नहीं होता।

श्री दर्शनानन्द-गुण-गरिमा

-डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

(गीतिका)

(१)

हे देव दर्शनानन्द, त्वां सततं स्मरामः । (स्थायी)
वेदादिशास्त्रदक्षं, सद्धर्मधीविदग्धम् ।
देवाधिदेवभक्तं, शक्तं वयं नमामः ।।

(२)

सद्भावना-प्रबुद्धं, शुचिकर्मजात-शुद्धम् ।
दुर्भावनाविरुद्धं, बुद्धं यतिं भजामः ।।

(३)

दीनोद्धृतौ प्रवृत्तम् , आर्योन्नतौ प्रसक्तम् ।
दुःखापनोदशक्तं, भक्तं वयं भजामः ।।

(४)

आर्षप्रणालिभक्तं, सत्संस्कृतानुरक्तम् ।
आंग्लाऽऽधिदाहशक्तं, कृतिनं वयं व्रजामः ।।

(५)

वेद-प्रसाद-पूतं, शास्त्रार्थयोधभूतम् ।
ज्ञानाग्निनाऽवधूतं, पूतं वयं नमामः ।।

(६)

देशस्वजातिरक्षां, निःशुल्कशास्त्र-शिक्षाम् ।
त्यागैकयोगदीक्षां, योऽदात् तमानमामः ।।

(७)

सत्यैक-शास्त्रसारं, भोगैकदुःखभारम् ।
योगैकदुःखहारं, योऽख्यात् तमाश्रयामः ।।

(८)

निःशुल्क-शिक्षणस्य, दीनादि-दीक्षणस्य ।
विधवादिरक्षणस्य, कर्त्रे वयं नमामः ।।

(९)

वाग्मिप्रकाण्डमार्यं, लोकोन्नयैक-कार्यम् ।
शास्त्रौघसार-हार्यं, यतिवर्यमानमामः ॥

(१०)

रागादिदोषमुक्तं, सच्छील-शान्ति-युक्तम् ।
विद्यासुधाऽनुरक्तं, सिद्धं सदाऽऽश्रयामः ॥

(११)

कुल[1]पङ्कजस्य कर्त्रे, मोहान्धकारहर्त्रे ।
ज्ञानपुस्तिकाप्रणेत्रे, नेत्रे वयं नमामः ॥

(१२)

यो दर्शनाब्धिसेतुः, विज्ञानज्ञानकेतुः ।
यवनादिनाशहेतुः, तं त्यागिनं भजामः ॥

(१३)

बोध[2]प्रियं वरेण्यं, पद्म[3]प्रियं शरण्यम् ।
भीम[4]प्रियं वदान्यं, मान्यं मुदाऽऽनमामः ॥

(१४)

शुभ-त्यागयोगनिष्ठं, निजलेखनीसरिष्ठम् ।
निगमविभावरिष्ठं, प्रेष्ठं मुनिं नमामः ॥

(१५)

विश्वं विधातुमार्यं, गुणगौरवैकधार्यम् ।
योऽध्यात् प्रचारकार्यं, स्थितप्रज्ञमाश्रयामः ॥

(१६)

पाखण्डदोषहारम् , अस्पृश्यतानिवारम् ।
शुद्ध्याऽऽर्यजातिसारं, हारं मुदा भजामः ॥

(१७)

त्यक्त्वा निजां समृद्धिं, हित्वाऽर्थकामवृद्धिम् ।
लब्ध्वा शरीरशुद्धिं, सिद्धं मुनिं नमामः ॥

---

१. कुल = गुरुकुलम्, २. शुद्धबोध तीर्थः ३. पद्मसिंह शर्मा ४. भीमसेन शर्मा

(१८)

ऋषि-भक्तितामवाप्य, वित्तैषणां समाप्य ।
अजरं यशश्च प्राप्य, मुक्तं मुनिं भजामः ।।

(१९)

आर्यत्वभावमूर्तिं, पुण्यप्रवाहपूर्तिम् ।
सत्कर्मलब्धकीर्तिं, कृतिनं हृदाऽऽश्रयामः ।।

(२०)

तस्यैव पादयुगले, ध्वान्तौघदाहविमले ।
सत्त्वप्रबोधकुशले, श्रद्धाञ्जलिं किरामः ।।

***

(रचना- ११.१.१९६८)

पता- निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (भदोही)

प्रेरक प्रसंग-

सेवा तो संन्यासी का धर्म है

लाहौर के उर्दू के दो सुविख्यात आर्यसमाजी नेता तथा पत्रकार महात्मा आनन्द स्वामी तथा महाशय कृष्ण अंग्रेजों के विरुद्ध लेख लिखने के आरोप में जेल में बन्द थे। महाशय कृष्ण के पुत्र वीरेन्द्र को भी क्रान्तिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहने के आरोप में उसी जेल में भेज दिया गया।

तीनों एक ही बैरक में थे। एक रात महाशय कृष्ण के शरीर में जोरदार दर्द उठा। दर्द के कारण वे बार-बार पैर पटकते थे। बैरक में अंधेरा था। अचानक उन्होंने महसूस किया कि कोई उनके पैर व टांगें दबा रहा है। एक घंटे तक टांगें दबाने से उन्हें दर्द में राहत मिली। अचानक पहरेदार लालटेन लिए निरीक्षण को आ पहुँचा। महाशय जी ने रोशनी में देखा कि महात्मा आनन्द स्वामी पैर दबा रहे हैं। इससे पहले महाशय जी समझ रहे थे कि उनके पुत्र वीरेन्द्र पैर दबा रहे हैं।

महाशय जी ने चौंककर कहा- आप यह क्या कर रहे हैं? आप तो भगवा वस्त्रधारी संन्यासी हैं। मुझ पर पाप क्यों चढ़ा रहे हैं?

आनन्द स्वामी जी ने उत्तर दिया- 'महाशय जी, संन्यास लेते समय गुरु से मैंने सेवा का संकल्प लिया था। क्या संन्यासी को भगवे कपड़ों के कारण सेवा करने से वंचित कर दिया जाना उचित है। यह सुनते ही महाशय जी की आंखों में आंसू आ गए।

परम श्रद्धेय स्वामी दर्शनानन्द जी

- डॉ० देवशर्मा आर्य

वेद ईश्वर की पवित्र वाणी है, अखिल विश्व की विभूति है, मानवमात्र की सम्पत्ति है और भारत वर्ष की वह अमूल्य निधि है कि जिसके आगे शेष समस्त संसार भी नतमस्तक है। वेदों में अध्यात्म-विद्या विज्ञान के साथ-साथ आधिभौतिक विज्ञान का भी सम्पूर्ण समावेश है। यह बात सार-रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कही थी।

उसी महान् चिन्तक, मन्त्रवेत्ता ऋषिदयानन्द ने 'माँ भारती' "जो उस वक्त पराधीनता का दंश झेल रही थी, स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है के मूलमन्त्र को स्वीकार कर" को उस महाकष्ट में मुक्त कराने के लिए विचार-क्रान्ति लाने का अदम्य साहस दिखलाया और उसके लिए वैदिक विचारों से अनुप्राणित आधारभूत एक धर्मप्रचारक संस्था "आर्यसमाज" की स्थापना सन् १८७५ ई० में की।

ऋषि दयानन्द का धर्मप्रचार, उनका दर्शन और उनके उपदेश विचार-क्रान्ति का रूप लेकर जनमानस को अपनी ओर खींच चुके थे। अनेक लोगों के मन में धर्म-प्रचार की भावना-प्रबल वेग से जाग उठी थी। उनमें से धर्मवीर पंडित लेखराम जी, लाला मुंशीरामजी, जिन्हें आज हम सब अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के नाम जानते हैं और शास्त्रार्थ शिरोमणि, वैदिकदर्शन के तत्त्ववेत्ता, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के नाम प्रमुख रूप से स्मरणीय हैं, जो कि ऋषि दयानन्द के दर्शनों और उपदेशों की सारगर्भिता व सत्य को अंगीकार कर वैदिक धर्म के अनुयायी हो गए थे। ऋषि दयानन्द के बलिदान के पश्चात् धर्मप्रचार में जुटे दीवानों ने जहाँ ऋषि के कार्य को पूरा करने के लिए जी-जान एककर दी, वहीं उनका मन वैदिक धर्म के प्रचार के स्थायी समाधान को खोजने में लगा रहा, चिन्तन करता रहा और बहुत लम्बे समय तक विचार मन्थन के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द जी और स्वामी दर्शनानन्द जी ने मिलकर ४ मार्च १९०२ को हरिद्वार के समीपस्थ कांगड़ी गांव में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। मूलतः इसी भावना के साथ कि यहाँ शिक्षा-ग्रहण करने वाले ब्रह्मचारी अपने जीवन को वेदमय बनाएं और आगे चलकर ऋषि द्वारा स्थापित आर्यसमाज के वैदिक धर्म के प्रचार का कार्य भी पूर्ण मनोयोग से करेंगे और वेद-प्रचार का कार्य निरन्तरता को प्राप्त हो जाएगा और हुआ भी वही। जैसा उन दोनों मनीषियों ने मनन किया था।

मगर कुछ समय के अन्तराल में ही दोनों में एक वैचारिक मतभेद उत्पन्न हो गया, स्वामी श्रद्धानन्द सशुल्क शिक्षा के पक्षधर बन गए और स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज जो त्याग की प्रतिमूर्ति थे, वह निःशुल्क शिक्षा देने पर डट गए, परस्पर पर्याप्त परिचर्चा के उपरान्त भी जब दोनों में एकमात्र बिन्दु पर साम्य न बन सका तो स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज गुरुकुल कांगड़ी को छोड़कर ज्वालापुर के समीप एक आम के वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए और थोड़े ही समय में उस समय मात्र तीन चवन्नियों की आर्थिक पूंजी के साथ उन्होंने सन् १९०७ में गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना की। निःशुल्क शिक्षा का उनका व्रत था, संकल्प था जिसे अद्यावधि गुरुकुल महाविद्यालय के प्रबन्ध-तन्त्र द्वारा निभाया जा रहा है। बच्चों के भविष्य को संवारने के लिए निःशुल्क शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से जो कार्य स्वामी दर्शनानन्द जी ने किया वह स्वामी दयानन्द के सपनों को साकार करने के लिए उठाया गया निष्ठापूर्ण कदम था। जिसके द्वारा अपने देश के कोने-कोने में वैदिक धर्म का शंखनाद किया, जिसकी गूँज आज सौ साल बाद भी करोड़ों कानों में गूँज रही है।

स्वामी दर्शनानन्द जी स्वयं उच्चकोटि के ऋषि सन्त और महात्मा थे। वैदिक धर्म के प्रचार में अवरोधक बनने वाली भ्रान्तियों को मिटाने के लिए और समाज में फैले हुए गुरुडम का बहिष्कार करने के लिए, किसी भी वेदधर्म के विरुद्ध व्यवहार करने वाले गुरु से शास्त्रार्थ के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उन्होंने स्वयं कभी अपने अनुयायियों को भेड़ों की तरह

---

2. स्वामी दर्शनानन्द :: 10।

अन्धानुकरण करने का परामर्श नहीं दिया। उन्हें केवल वेदों की शिक्षा पर चलने का उपदेश दिया और नितान्त सहजता और सरलता के साथ जन-जन तक वेदज्ञान को पहुँचाने का कार्य स्वामी दर्शनानन्द जी ने किया और आर्यसमाज के मूल उद्देश्यों को समाज में स्थापित किया। आर्यसमाज या किसी वेदधर्म-प्रचारक आर्यसमाजी ने उन्हें परमात्मा का अवतार कभी नहीं माना या बताया, बल्कि आर्यसमाज सदैव आध्यात्मिक स्वतंत्रता-प्रदान की, जिसका उपदेश वेदमर्मज्ञ ऋषि दयानन्द ने दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज के प्रमुख उद्देश्य वेदधर्म का प्रचार करने के लिए, समाज-सुधार के सपने को साकार करने के लिए और देश के भविष्य को सुसंस्कारित करने के लिए स्वामी दर्शनानन्द जी ने जीवन के वास्तविक एवं व्यवहारोपयोगी शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाने के लिए अनेक गुरुकुलों की स्थापना की। जिनमें पढ़कर शिक्षा प्राप्तकर कितने ही वीरों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना समग्र भाव से सहयोग दिया, कितनों ने स्वामी दर्शनानन्द जी के निर्देश पर वेद-धर्मप्रचार को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और कितनों ने भटकी हुई भारतीय राजनीति को सही दिशा देने का प्रयास किया, इसकी गणना करना आसान नहीं है। आज भी लगभग हर नगर हर गाँव में यदि वैदिक नाद गूँज रहे हैं - ओम् पताका लहरा रही है तो उसका सम्पूर्ण श्रेय गुरुकुलों को जाता है, स्वामी दर्शनानन्द जी को जाता है। महर्षि दयानन्द जी ने अपना सारा जीवन वेदों के मर्म को जानने के लिए कठोर साधना में, समाज-सुधार में, आर्यसमाज की स्थापना में बिताया, तो उसके बाद आर्यसमाज के कार्यों को पूरा करने में स्वामी दर्शनानन्द जी ने जो योगदान दिया आर्यसमाज को, वह किसी भी अर्थ में कमतर नहीं है।

***

पता- प्रवक्ता, गांधी स्मारक इण्टर कालेज, सुरजन नगर (मुरादाबाद)

प्रेरक प्रसंग-

पुरुषार्थ ही सार्थक है

आर्यसमाज के जाने माने विद्वान् स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पं० बुद्धदेव विद्यालंकार) का सत्संग करते समय उनके शिष्य विवेकानन्द सरस्वती ने उनसे प्रश्न किया- 'आपका हस्तरेखा ज्ञान के सम्बन्ध में क्या विचार है?' उन्होंने उत्तर दिया- 'हस्तरेखा से भाग्य का पता चलता है या नहीं, यह सत्य है या असत्य। इस पर विचार करना निरर्थक है।'

विवेकानंद जी ने जिज्ञासा व्यक्त की 'सत्य है या असत्य- दोनों मायनों में निरर्थक कैसे कहा जा सकता है?'

स्वामी समर्पणानन्द जी ने समझाते हुए कहा- 'यदि हस्तरेखा देखकर किसी ने बताया कि भविष्य में जीवन में अमुक संकट आने वाला है। उस भविष्य के संकट को टालने से क्या लाभ हो सकता है? यदि ज्योतिषी ने कोई उपाय उस संकट को टालने का बताया और वह टल गया तब तो हस्तरेखा देखकर की गयी भविष्यवाणी स्वतः असत्य ही सिद्ध हो जाएगी। अतः ज्योतिषी की भविष्यवाणी के चक्कर में न पड़कर हमें पुरुषार्थ करना चाहिए। पुरुषार्थी व्यक्ति बड़े से बड़े संकट पर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है।

विवेकानन्द जी अपने गुरुदेव के मुख से पुरुषार्थ का महत्त्व जानकर गदगद हो उठे।

प्रस्तुति- शिवकुमार गोयल

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के पुनरुद्धारक

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

– सुशील कुमार त्यागी 'अमित', विद्याभास्कर, एम०ए०, साहित्याचार्य

वेदों के आधुनिक व्याख्याता और आर्यसमाज के संस्थापक जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी, दर्शनों के उद्भट विद्वान् , तार्किक-शिरोमणि, दृढ़ ईश्वर विश्वासी एवं आधुनिक युग में गुरुकुलीय शिक्षा–पद्धति के जन्मदाता वीतराग स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती उन भारतीय मनीषियों में से एक हैं, जो आर्यसमाज के गौरवमय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

इन महान् विभूति का जन्म माघ कृष्ण दशमी संवत् १९१८ विक्रमी (सन् १८६१) को पंजाब प्रान्त के लुधियाना जनपदान्तर्गत 'जगरावां' नामक ग्राम में हुआ। इनके पिता पं० रामप्रताप शर्मा एक धनाढ्य व्यापारी थे। इनकी माता श्रीमती हीरादेवी सुगृहिणी धर्मपरायणा भारतीय नारी थीं। उन्होंने अपने इस बालक का नाम 'नैनराम' रखा, जो कि बाद में 'कृपाराम' नाम के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। जिससे कि यह बालक आगे चलकर कृपाराम के नाम से ही पुकारा जाये और भगवान् राम के समान सभी प्राणियों पर कृपा करने वाला बने।

उस समय बाल-विवाह जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित थीं, जिसके शिकार 'कृपाराम' भी हुए, जैसा कि विदित है कि वैशाख कृष्णा पंचमी संवत् १९२९ विक्रमी को ग्यारह वर्ष की अल्पायु में ही पं० कृपाराम विवाह के बन्धन में बँध गये, लेकिन यह बन्धन इन्हें रास नहीं आया। आखिर एक दिन सांसारिक मोह-माया-बन्धन आदि को छोड़कर उन्नीस वर्ष की अवस्था में ये मनीषी दिव्य-तत्त्व की खोज में विचरण करने लगे अर्थात् पं० कृपाराम संन्यस्त होकर 'स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती' के नाम से प्रसिद्ध हो गये और दर्शनशास्त्र के गम्भीर चिन्तन में अपना समय व्यतीत करने लगे।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव महर्षि दयानन्द सरस्वती का पड़ा था। इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के ३७ उपदेश सुने और ३७ वर्षों तक आर्य समाज की सेवा का दृढ़ संकल्प लिया था। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने वेद, दर्शन, उपनिषद् , भगवद्गीता पर अपनी विशद व्याख्या प्रस्तुत कर तथा प्रखर प्रतिभा का परिचय दिया। यत्र तत्र-सर्वत्र भारत भ्रमण करते हुए एवं विधर्मियों को, विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों को, शास्त्रार्थ हेतु ललकारते हुए स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने अपने वैदिक-धर्म-पथ पर अग्रसर होने के लिए सभी का आह्वान किया। धर्म-प्रचारार्थ स्वामी दर्शनानन्द ने न जाने कितने धर्मग्रन्थों तथा संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों जैसे काशिका, महाभाष्य, अष्टाध्यायी आदि को छपवाकर आर्य जनता तथा संस्कृत जगत् में निःशुल्क वितरित किया। जो ग्रन्थ अधिक मूल्य के थे, उनको भी अत्यल्प कम मूल्य पर अथवा निःशुल्क भी आर्यजगत् एवं संस्कृत-समाज को आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराते रहे। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने अपना 'तिमिर-नाशक' प्रेस भी खोला, जिसने वैदिक साहित्य के प्रकाशन में विशेष रूप से अपनी भूमिका निभायी। इस बीच स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा, किन्तु वे कभी भी अपने जीवन में घबराये नहीं और अपने लक्ष्य की ओर निर्भय होकर निरन्तर आगे बढ़ते रहे।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इस वैदिक सूक्ति को चरितार्थ करते हुए भारतीय वैदिक परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए गुरुकुलों की स्थापना का संकल्प स्वामी दर्शनानन्द ने लिया। इन्होंने पांच गुरुकुलों की स्थापना की, जिनमें सन् १८९८ ई० में सर्वप्रथम गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्थापना संस्कृत के प्रचार के विशिष्ट उद्देश्य के लिए की। तदुपरान्त सन् १९०३ ई०

में गुरुकुल बदायूँ की स्थापना की। इसके दो वर्ष बाद सन् १९०५ में उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर जनपद के सिकन्दराबाद ग्राम में 'गुरुकुल सिकन्दराबाद' की स्थापना की। पाकिस्तान के प्रसिद्ध शहर रावलपिंडी के निकट 'गुरुकुल पोठोहार' की स्थापना भी इन्हीं दिनों में की। तत्पश्चात् हरिद्वार नगर के सन्निकट शीतल्व, पावनत्व आदि विशेषताओं से युक्त गंगनहर के दक्षिण दिशा की ओर ज्वालापुर के समीप सुरम्य वातावरण में सन् १९०७ ई० में 'तीन चवन्नी, तीन बीघा भूमि और तीन छात्रों' के द्वारा स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने 'गुरुकुल ज्वालापुर' की स्थापना बाबू सीताराम इंस्पैक्टर आफ पुलिस ज्वालापुर के द्वारा दान में दी गयी भूमि पर की थी। जो आर्यसमाज की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था के रूप में विद्यमान है और उच्चतम संस्कृत शिक्षा एवं संस्कृति के प्रचार-प्रसार में संलग्न है। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार एवं पठन-पाठन अविरल चलता रहे, एतदर्थ गुरुकुल ज्वालापुर की स्थापना का बीजारोपण कर वैदिक संस्कृति की ध्वजा दिग्-दिगन्त में फहराई। इनके इस महायज्ञ में आचार्य गंगादत्त शास्त्री (जो संन्यस्त होकर आचार्य शुद्धबोध तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुए), पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (जो पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ स्वतंत्रता-आन्दोलन में जेलों में रहे तथा बाद में उत्तर प्रदेश की प्रथम विधान सभा में देहरादून विधानसभा क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य के रूप में चुने गये), पं० पद्मसिंह शर्मा (हिन्दी साहित्य के उद्‌भट विद्वान् एवं समालोचक, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की प्रसिद्ध पत्रिका 'भारतोदय' के सम्पादक तथा 'बिहारी सतसई' के व्याख्याता), पं० भीमसेन शर्मा (आगरा वाले), श्री पं० दिलीपदत्त उपाध्याय (मुनिचरितामृतम् महाकाव्य के प्रणेता) आदि संस्कृत के अनन्य विद्वान् सहयोगी रहे और गुरुकुल कांगड़ी छोड़कर स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के द्वारा स्थापित गुरुकुल ज्वालापुर की सेवा करने के लिए समर्पित हो गए।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के अनेक छात्र देश में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी वैदिक-पताका फहरा रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी गुरुकुल ज्वालापुर कभी पीछे नहीं रहा, अपितु इसने तन-मन-धन से देश की सेवा दृढ़तापूर्वक की। इतना ही नहीं, इस गुरुकुल ज्वालापुर ने अनेक उद्‌भट विद्वान्, वक्ता, राजनेता, साहित्यकार, संत एवं समाज-सुधारक दिए, जिनका इतिहास साक्षी है।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती एक साहित्यकार, पत्रकार एवं उपदेशक के साथ-साथ कवि भी थे। इनका हृदय अत्यधिक सुकोमल था। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती की प्रथम उर्दू काव्यकृति 'जंग-ए-आजादी' प्रकाशित हुई, जिसमें इन्होंने अपना उपनाम 'आजाद नित्यानन्द' लिखा है। इसी प्रकार अनेक भाषाओं में भी विभिन्न रचनाएँ कीं।

आर्यसमाज में ऐसा प्रकाण्ड विद्वान्, लेखक, शास्त्रज्ञ एवं वीतरागी, आर्यों का सेवक, वैदिक-धर्म के लिए न्यौछावर होने वाला कोई विरला ही होगा। ऐसे महान् त्यागी, तपस्वी, मनीषी के प्रति श्रद्धावनत होना प्रत्येक भारतीय के लिए गर्व का विषय है।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती का निर्वाण ११ मई सन् १९१३ ई० को हुआ था। स्वामी जी के निर्वाण के बाद सबसे बड़ा आघात आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ को हुआ था। इस विषय में उन्होंने कहा था कि- 'स्वामी दयानन्द के पश्चात् आर्यजगत् में जितना प्रचार हुआ है, उसके आधे के ऊपर प्रचार का श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। कितने प्रेस खोले, कितने समाचार-पत्र निकाले, कितने ट्रैक्ट लिखे, कितने व्याख्यान दिए, कितने शास्त्रार्थ किए, कितने सहस्र मीलों घूमे। स्वामी दर्शनानन्द जी वास्तव में उत्साह, जागृति और स्फूर्ति की ज्वलन्त मूर्ति थे।'

इसी शृंखला में पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय ने स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के महाप्रयाण पर अपने हृदयोद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए थे और कहा था कि- 'जिस समय हमें स्वामी दर्शनानन्द का स्मरण आता है, आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है। उनमें ऐसे गुण थे, जो बहुत कम मनुष्यों में देखे जाते हैं। उस व्यक्ति की वाणी दो-धारी तलवार की भाँति ऐसी तीव्रता से, दक्षता से चलती थी कि आक्षेपकर्त्ताओं के आक्षेप कट-कट कर गिरते थे।'

साहित्याचार्य पं० हरिसिंह त्यागी ने कविता के माध्यम से अपनी हृदयगत भावना इस प्रकार व्यक्त की है--

थीं तीन ही चवन्नी, खोला था जब कि गुरुकुल,
विश्वास ईश का ले, आये थे दर्शनानन्द ।
जाते समय उन्होंने, लोगों से ये कहा था-
शंकाएं सब मिटा लो जाता ये दर्शनानन्द ।।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के पूर्व प्राध्यापक, हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् स्वर्गीय डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' ने स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को इस प्रकार स्मरण किया है-

दर्शनानन्द तो दर्शन के आनन्द-सिन्धु में लीन हुए ।
अब बिना दर्शनों के उनके व्याकुल गुरुकुल दुग्दीन हुए ।।

इस महान् मनीषी कवि, साहित्यकार एवं दार्शनिक विद्वान् स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती को मैं अपनी भावांजलि इस प्रकार अर्पित करता हूँ-

आज खोजती आँखें दिगम्बर, तर्कशास्त्र के प्राण थे ।
भारत-रक्षक दुःखीजनों का, करते नितप्रति त्राण थे ।।
आज समर्पित श्रद्धा के स्वर, गुरुकुल की वह शान थे ।
जय हो, जय हो, 'अमित' अमर हो, इस युग के वह प्राण थे ।।

***

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।

ऐश्वर्य या उन्नति चाहनेवाले पुरुषों को नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (जल्दी हो जाने वाले काम में अधिक देर लगाने की आदत)- इन छः दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए ।

श्री स्वामी दर्शनानन्दजी

- डॉ० देवशर्मा आर्य

था दर्शन पर अधिकार जिसे, अपने में पूरा गुरुकुल था ।
वो नहीं बीच यह बात अलग, जित देखूँ उसकी छाया है ।
मानो सर पर वो साया है ।।

जो त्यागमूर्ति था तेजपुंज, औ पावन पुण्य प्रभाकर था,
जो आर्य जगत् का परम कुंज, या वैदिक-धर्म-दिवाकर था ।
क्या कहूँ उसे हैं शब्द नहीं, यादों में वही समाया है ।
मानो सर पर वो साया है ।।

ऋषि दयानन्द के परमभक्त, बनकर अपना सारा जीवन,
जग विषयों में हो अनासक्त, अर्पित कर डाला था तन मन ।
प्रेरक-कल्याणी वाणी से, थे जन मन सुप्त जगाया था ।
मानो सर पर वो साया है ।।

थीं तीन चवन्नी हाथों में, गंगातट पर गुरुकुल खोला,
सन्मार्ग सुझाया बातों में, दिए तर्क अकाट्य जब मुँह खोला ।
विज्ञान-ज्ञान की शिक्षा ले, निःशुल्क पास वो आया है,
मानो सर पर वो साया है ।।

थे अद्भुत औ गम्भीर धीर, ना मिला दूसरा फिर कोई,
थे धर्मवीर औ कर्मवीर, क्या गए, आत्मा तक रोई ।
उसने क्या ज्ञान अनन्त दिया, जीवन का पथ दिखलाया है,
मानो सर पर वो साया है ।।

जो रचे अनेकों महाग्रन्थ, वेदों की सब किरणें उनमें,
भूले भटकों को दिखा पन्थ, नव आस जगाती है मन में ।
जब देव फँसा जग-उलझन में, वो याद हमेशा आया है,
मानो सर पर वो साया है ।।

***

पता- गांधी स्मारक इण्टर कालेज
सुरजननगर-जयनगर, मुरादाबाद (उ०प्र०)

खंड ३

गुरुकुल के आधार-स्तम्भ एवं यशस्वी स्नातक

* आद्य आचार्य
* सहायक अध्यापक एवं कार्यकर्ता
* यशस्वी स्नातक और उनकी देन

गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम आचार्य श्री शुद्धबोधतीर्थ (पं० गंगादत्त जी)

-श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

शीत-ऋतु के अन्तिम दिन थे। सायंकाल के चार बजे के लगभग हम कोई एक दर्जन बच्चे पंजाब से आने वाली गाड़ी से हरिद्वार के स्टेशन पर उतरे। हम गुजरांवाला से पिताजी (मुंशीराम जी) के साथ आए थे। जालन्धर में हमारी मण्डली में भंडारी शालिग्राम जी दो-तीन बच्चों को साथ लेकर सम्मिलित हो गये थे। स्टेशन पर आचार्य पं० गंगादत्त जी कई सज्जनों के साथ स्वागत के लिए आए हुए थे।

जब हम लोग स्टेशन पर उतरकर सामान के पास बैठे तो कुछ ईसाई पादरी और पादरिनें हमारे वेश से आकृष्ट होकर वहीं आ गये। सब बालकों ने धोती का एक छोर बांधा हुआ और एक छोर गले में डाला हुआ था। शरीर पर कुरता था और हाथ में एक-एक लाठी थी। वे हमें कुछ देर तक ध्यान से देखने और आपस में चर्चा करने के बाद पिताजी के पास जाकर पूछताछ करने लगे। हमें उन्होंने किसी मिशनरी संस्था के बालक समझा और हम लोगों के स्वास्थ्य की प्रशंसा की।

स्टेशन से निकलकर एक जुलूस बनाया गया। सबसे आगे पिताजी और पं० गंगादत्त जी थे, उनके पीछे महर्षि दयानन्द का बड़ा चित्र लिए एक सज्जन थे, जिनका नाम तोताराम था। उनके पीछे दो-दो की पंक्ति में हम लोग थे। स्टेशन से निकलते ही हम लोगों ने प्रार्थना के आठ मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ आरम्भ कर दिया, और निरन्तर करते रहे, जब तक जुलूस कनखल से पार न हो गया। हम लोग स्टेशन से चलकर मायापुर के पुल से उतरकर कनखल के बाजार में पहुँचे और सारे बाजार का चक्कर काटते हुए दक्ष के मन्दिर पर जा पहुँचे। इस सारे रास्ते में सब लोग निरन्तर वेद-मन्त्रों का उच्च स्वर से पाठ करते रहे। हरिद्वार और कनखल तब मुख्य रूप से यात्रियों और पण्डों के शहर थे। अब तो धीरे-धीरे उनमें कुछ नवीनता का संचार हो गया है, पर उस समय तो वह सनातनता के स्तम्भ थे। ओम् के झंडे और वेदमंत्रों के खुले पाठ को वह बहुत आश्चर्यभरी दृष्टि से देख रहे थे। वे हम लोगों को किसी दूसरी दुनिया के प्राणी समझकर विनोद अनुभव कर रहे थे। दक्ष का मन्दिर पार करके हमने वेद-पाठियों का रूप छोड़कर यात्रियों का रूप धारण कर लिया। हम गुजरांवाला में ही सुन चुके थे कि हरिद्वार के समीप गंगा के उस पार कांगड़ी नामक ग्राम गुरुकुल के लिए दान में मिला है। हम लोग वहीं ले जाये जा रहे थे। बच्चों के लिए सब कुछ नया था। दक्ष के मन्दिर से आगे चलते ही रास्ता गंगा की रेती में उतर गया, जहाँ गोल पत्थरों और बालू के दो मील चौड़े नदी के स्तर पर दो-तीन पुल बने हुए थे। सूर्य अस्ताचल पर पहुंच चुका था, अन्धकार के साथ सर्दी आकाश से उतर रही थी। हम बालक नई दुनिया देखने की उत्सुकता से प्रेरित होकर नंगे पांव उस पत्थर और बालू के मार्ग पर तेज गति से चले जा रहे थे।

अन्धकार बहुत देर तक न रहा। या तो पूर्णिमा थी या प्रतिपदा, गंगा के स्तर से पार होते-होते आकाश में चांदनी छिटक गई, जिसके प्रकाश में हमें आगे फैला हुआ घना जंगल और उसकी पृष्ठभूमि पर नीलगिरि के शिखर दिखाई दिए।

जंगल के कंटीले रास्तों से हम लोग आगे बढ़ते जा रहे थे कि इतने में पीछे से एक आवाज आई- 'प्रधान जी, हम तो रास्ता भूल गये। यह तो पगडण्डी गुरुकुल की नहीं, यह तो कांगड़ी ग्राम की है।'

पिताजी गुरुकुल में प्रधान जी इस नाम से कहलाते थे, क्योंकि वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान रह चुके थे, और गुरुकुल में भी प्रधान थे।

यह सुनकर पिताजी ने कहा- 'तब तो हमें कांगड़ी के नाले से होकर जाना पड़ेगा। मग्घरसिंह से कहो कि एक लालटेन लेकर आगे-आगे चले। मग्घरसिंह नाम हम लोगों के कानों अजीब सा मालूम हुआ। हम सब बच्चे उस नाम पर

मुस्काए। थोड़ी देर में मंगलसिंह मिस्त्री लालटेन हाथ में लटकाए आगे-आगे हुआ और तीर्थयात्रियों की लम्बी पंक्ति उसके पीछे खैरों के कांटों को रौंदती हुई चली।

जिस समय वह निशा-यात्रा समाप्त हुई, आकाश में चांदनी के धवल प्रकाश में जो सुन्दर दृश्य दिखाई दिया, वह अब तक भी भूला नहीं है। घने जंगल के बीचोंबीच कोई दो बीघे का मैदान साफ किया गया था। उसमें एक ओर फूंस के छप्परों की एक लम्बी पंक्ति थी, जो छात्रों के रहने का आश्रम स्थान था। उसके साथ समकोण बनाती हुई दूसरी छप्परों की पंक्ति में भोजन भण्डार था। उनके बीच के कोने में एक स्विस काटेज लगा हुआ था, जो प्रधान जी का दफ्तर भी था और रहने का स्थान भी। इन छप्परों का डेरा उस खिली हुई चांदनी में अद्भुत शोभा दिखा रहा था। हमें उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि हम सचमुच स्वर्ग के किसी टुकड़े पर पहुँच गए हैं। वह गुरुकुल का प्रारम्भिक रूप था।

गुजरांवाला शहर से चलकर हम लोग कांगड़ी ग्राम की शोभन भूमि पर कैसे पहुंच गए, इसका किस्सा सुनाने के लिए मुझे थोड़ा सिंहावलोकन करना पड़ेगा।

मैं पहले ही बतला आया हूँ कि पिताजी यह प्रतिज्ञा करके देश के दौरे पर निकल पड़े थे कि जब तक तीस हजार रुपये की राशि इकट्ठी न हो जाय तब तक घर वापिस न जायेंगे। आज तीस हजार रुपये इकट्ठे करना बच्चों का खेल मालूम होता है, परन्तु तब गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये की राशि एकत्र करना असम्भव-सा प्रतीत होता था। जब विरोधियों ने पिताजी की प्रतिज्ञा सुनी तो यह समझा कि इस व्यक्ति का दिमाग फिर गया है। लोग यह भी नहीं जानते थे कि 'गुरुकुल' किस चिड़िया का नाम है। रुपया भी बहुत महंगा था, परन्तु आर्यजनता को असाधारण हर्ष हुआ जब उन्हें सूचना मिली कि लगभग छः महीनों में दान की राशि तीस हजार से बढ़ गई है।

हम दोनों भाई तब गुजरांवाला के अस्थायी गुरुकुल में पढ़ते थे। आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुजरांवाला की वैदिक पाठशाला को अस्थायी गुरुकुल के रूप में परिणत कर दिया था। वह संस्था शहर से लगे हुए एक मकान में थी। हम लोगों को चन्दे की राशि पूरी होने का समाचार गुजरांवाला में मिला। पिताजी आए और दोनों भाइयों को लाहौर ले गये। गुरुकुल के चन्दे का दौरा लगभग समाप्त करके पिताजी लाहौर के आर्य होस्टल में ठहरे हुए थे। हम दोनों भाई उस रात जीवन में पहली बार अपने पिताजी के दोनों ओर चारपाइयों पर सोए। उस रात सोने से पहले पिताजी हमारी चारपाइयों पर आए और प्रत्यक्ष में प्यार किया। वह अनुभव हमारे बाल्य जीवन में बिल्कुल अपूर्व था। अन्यथा सदा पिताजी हमसे दूर-दूर रहकर वात्सल्यभाव रखते रहे। कभी उसे अनुभव में नहीं आने दिया। उस रात उन्होंने प्रेम से हम दोनों के सिरों को चूमा। हम दोनों भाइयों ने उस समय मानों स्वर्गीय सुख का अनुभव किया।

अगले दिन हम लोग गुजरांवाला वापिस भेज दिये गये और पिताजी प्रतिज्ञा पूरी करके अपने घर वापिस आ गए। जालन्धर में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने कोठी में प्रवेश किया, परन्तु वह प्रवेश त्याग के लिए था, भोग के लिए नहीं। त्याग की ओर उनकी प्रवृत्ति तो पहले ही बढ़ रही थी। सिगरेट, हुक्का और पान तक एक-एक करके विदा हो चुके थे। कोट, पैंट और नेकटाई उन लोगों में बांट दिए गए थे, जिन्हें उनकी आवश्यकता थी और बूट की जगह नामाशाही जूता आ गया था। यह कायापलट गुरुकुल कांगड़ी में आने से पहले ही हो चुका था। हमारे नाना रायसाहिब सालिगरामजी पुराने ढंग के रईस थे। व्यवहार में बहुत उदार, परन्तु विचारों में बिल्कुल कंजर्वेटिव थे। कन्जर्वेटिव शब्द का प्रयोग मैंने जान-बूझकर किया है। अनुदार, सनातनी, दकियानूसी शब्दों में से कोई भी उन पर ठीक नहीं लगता था। काया-पलट के पहले अध्याय के समाप्त होने पर पिताजी हाथ में लोटा लेकर और पैरों में जूता पहनकर प्रातःकाल के समय घर से दूर जंगल में शौचार्थ जाने लगे थे। उनका रास्ता हमारी ननसाल के सामने से होकर गुजरता था। एक दिन पिताजी को नानाजी ने उस बाने में देख लिया। सुनते हैं कि उस दिन नानाजी की आंखों में आंसू बह निकले थे। उन्होंने दुःखी होकर कहा- 'की करिए, मुण्डा साधु हो गया' (क्या करें, लड़का साधु हो गया।)

उन्हीं दिनों पिताजी को बिजनौर जिले से सन्देश प्राप्त हुआ कि वहाँ के एक जमींदार मुंशी अमनसिंह जी गंगा पार का एक पूरा गांव, जिसके साथ लगभग ७०० बीघे जमीन है, गुरुकुल बनाने के लिए दान देना चाहते हैं। प्यासे को मानो पानी का ठण्डा स्रोत मिल गया। पिताजी तो ऐसी भूमि की तलाश में ही थे। वह तुरन्त बिजनौर गए और आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम कांगड़ी ग्राम रजिस्ट्री करवा लिया।

गांव गंगा की धार से डेढ़ मील की दूरी पर शिवालक पहाड़ की तलहटी में था। गांव के साथ लगी हुई भूमि पहाड़ की तलहटी से लेकर गंगा तट तक फैली हुई थी। पिताजी को गुरुकुल के लिए यह स्थान आदर्श प्रतीत हुआ। गांव से दूर ठीक गंगा तट पर घने और कंटीले जंगल के मध्य में लगभग दो बीघा जमीन के टुकड़े को साफ करवाकर उसमें आश्रम के लिए छप्पर डालना थोड़े ही दिनों का काम था, विशेषतः जबकि पिताजी जैसा धुन का पक्का और अनथक आदमी उस कार्य को शीघ्र पूरा करने पर तुल गया हो।

जब छप्पर तैयार हो गए और पं० गंगादत्त जी आचार्य के रूप में बच्चों को संभालने के लिए गुरुकुल कांगड़ी पहुंच गए, तब आर्य प्रतिनिधि सभा की अनुमति से गुजरांवाला आए और लगभग दर्जन भर बालकों को साथ लेकर लाहौर ठहरते हुए हरिद्वार की ओर रवाना हो गए।

***

पता- पूर्व कुलपति, गुरुकुल वि०वि० कांगड़ी, हरिद्वार

प्रेरक प्रसंग-

कुलदीपक नहीं, देशदीपक

पंजाब के एक गांव में मां ने अपने बेटे हंसराज से कहा- 'मेरी एक ही इच्छा है कि तू पढ़-लिखकर 'कुल का दीपक' बनना। हंसराज पढ़ने-लिखने में बहुत तेज था। वह लिखना पढ़ना सीख गया। गाँव बजवाड़ा के अधिकांश लोग अनपढ़ थे। वे शहर से आने वाली चिट्ठियाँ पढ़वाने घर आने लगे। माँ हंसराज से कहती 'तू अपना समय दूसरों के चिट्ठी पढ़ने जैसे बेकार के काम में क्यों गंवाता है? वह उत्तर देता- 'माँ दूसरों की सहायता करना क्या समय गँवाना है। पिताजी तो आर्यसमाज के जलसों में कहा करते हैं- 'सहायता-सेवा करना सबसे बड़ा धर्म है।'

हंसराज के पिता लाला लालचन्दराय के मित्र थे। हंसराज को लाहौर के मिशन स्कूल में दाखिला दिला दिया गया। स्कूल के अंग्रेज प्रिन्सिपल ने एक दिन भारतीयों व वैदिक धर्म की खिल्ली उड़ाई तो हंसराज ने उसका विरोध किया। हंसराज को बेंत की सजा देने के बाद स्कूल से निकाल दिया गया।

हंसराज की मां ने कहा- 'तू बेकार के विवाद मोल क्यों लेता है?'

हंसराज ने उत्तर दिया- 'माँ, क्या तेरा बेटा अपने देश का, अपने धर्म का अपमान सहन करता, तब अच्छा लगता।'

यही हंसराज आगे चलकर- 'महात्मा-हंसराज' के नाम से विख्यात हुआ। उन्होंने दयानन्द एंग्लोवैदिक कालेजों की स्थापना की। महात्मा आनन्द स्वामी ने एक दिन कहा था 'माँ हंसराज को कुलदीपक बनाना चाहती थी, किन्तु वह आज 'देशदीपक' बन गए हैं। शिक्षारूपी दीप प्रज्वलित कर उन्होंने अंधकार का उन्मूलन शुरू कर दिया है।'

आचार्य शुद्धबोध तीर्थ जी

(गुरुकुल कांगड़ी से महाविद्यालय ज्वालापुर की ओर)

- श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

इस समय तक मैंने गुरुकुल में छोटे-मोटे परिवर्तनों का जो इतिहास सुनाया है, उससे पाठकों ने यही समझा होगा कि गुरुकुल में प्राचीनता के वातावरण में अर्वाचीनता बूंदें बनकर टपकी थी । अब मैं यात्रा के जिस पड़ाव पर आ गया हूं, उसमें पाठक अर्वाचीनता को बरसात में नदी की तरह गुरुकुल में प्रवेश करता हुआ पायें । १९०२ में गंगा के तट पर गुरुकुल का उद्घाटन हुआ था । अब तक जो कहानी सुनाई गई, वह प्रारम्भिक वर्षों की है । १९०६ में गुरुकुल का दूसरा दौर शुरू हुआ । हम दोनों भाई सबसे ऊपर की श्रेणी में थे, इस कारण प्रत्येक परिवर्तन का सबसे अधिक असर हम दोनों पर ही होता था ।

इस युग का विचार आते ही तीन नाम याद आते हैं । सबसे पहला नाम डॉ० चिरंजीव भारद्वाज का है । आर्यसमाज की वर्तमान संतति डाक्टर भारद्वाज के नाम से अधिक परिचित नहीं है । इसका मुख्य कारण यही है कि डाक्टर जी को इच्छानुसार समाजसेवा करने का अधिक अवसर नहीं मिला । दुर्दैव ने उनके जीवन को अकाल में ही समाप्त कर दिया । डाक्टर भारद्वाज विलायत से डाक्टरी की बहुत ऊंची परीक्षा पास करके आये थे । वे ऋषि दयानन्द के परम श्रद्धालु थे । श्रद्धा और आवेग यह दो उनकी विशेषताएं थीं । विलायत जाने से पहले ही ऐसे नौजवान आर्यसमाजियों का एक गिरोह उनके चारों ओर इकट्ठा हो गया जो सुधार की भावना को क्रियात्मक रूप से अपने जीवन का अंग बना देना चाहते थे । विलायत से वापिस आने पर पिताजी के त्यागमय जीवन से प्रभावित होकर डॉ० भारद्वाज गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुए और बड़ौदा रियासत की ऊंची नौकरी छोड़कर गुरुकुल आ गए । आर्य समाचारपत्रों ने यह समाचार इस रूप में छापा कि 'डाक्टर भारद्वाज ने गुरुकुल को जीवनदान दे दिया ।'

दूसरे महानुभाव जिनका इस युग से विशेष सम्बन्ध है, वे प्रोफेसर रामदेव जी थे, जो उस समय मास्टर रामदेव जी कहलाते थे । प्रो० रामदेव जी आर्यसमाज को कालिज-पार्टी के नेता महात्मा हंसराज जी के भाई लगते थे । जब दोनों पार्टियों का संघर्ष बहुत जोरों से चल रहा था, तब प्रो० रामदेव जी का झुकाव महात्मा पार्टी की ओर हो गया । वे प्रकृति के अतिशय प्रेमी थे । उनका कोई कार्य छोटे आकार में या धीमी प्रगति से नहीं हो सकता था । वे उन खिलाड़ियों में से थे, जो या तो छक्के लेते हैं अथवा बाण्डरी लगाते हैं । डॉ० चिरंजीव भारद्वाज के वे पट्टशिष्य थे । पिताजी से उन्हें तभी से प्रेम था, जब पंजाब की पार्टियों के झगड़े में प्रो० रामदेव जी बी०ए० पास करके जालन्धर छावनी के हाईस्कूल में हेडमास्टर बनकर आये थे । वहाँ का कार्य छोड़कर वे भी डॉ० भारद्वाज के साथ ही गुरुकुल आ गये थे । इसे आर्यसमाज के समाचार पत्रों में दूसरा जीवनदान कहा गया ।

तीसरे मा० गोवर्धन जी बी०ए० थे । मा० गोवर्धन जी का यदि संक्षेप में वर्णन करना हो तो हम कह सकते हैं कि वे 'शरीरधारी नियम' थे । नियम की तरह कठोर और नियम की तरह कठोरताहीन थे । गुरुकुल की पाठशाला को स्कूल के रूप में लाना उन्हीं का काम था । यद्यपि मा० गोवर्धन जी जीवनदान देकर गुरुकुल में नहीं आये थे, तो भी उनके जीवन का बहुत हिस्सा गुरुकुल में व्यतीत हुआ ।

अबतक हम लोग अपने रहने के कमरों में ही पढ़ा करते थे । जब सुबह का प्रातराश हो जाता था तो पढ़ाई आरम्भ हो जाती और जब खाने की घंटी बज जाती तो पढ़ाई समाप्त हो जाती थी । इस प्रकार भण्डारी सालिग्राम जी की घण्टी ही हमारी पढ़ाई का नियंत्रण करती थी । मा० रामदेव जी के आने पर पहला परिवर्तन यह हुआ कि पढ़ाई की घण्टी बजने लगी।

इस अर्वाचीन रीति का काफी विरोध हुआ। ब्रह्मचारियों को यह बन्धन प्रतीत होता ही था, अध्यापक भी इससे प्रसन्न नहीं थे। भण्डारी जी ने घोषणा कर दी थी कि यह रीति व्यवहार योग्य नहीं है। एक दिन प्रातःकाल पढ़ाई की घण्टी बजने के पश्चात् दूध की घंटी बजी, क्योंकि दूध इससे पूर्व गर्म नहीं हो सका। दूसरे दिन भोजन की घंटी पढ़ाई के बीच में ही बज गई। भोजन तैयार हो गया था।

अस्तु, यह व्यवस्था धीरे-धीरे ठीक हो रही थी कि एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। डॉ० चिरंजीव जी ने एतराज उठाया कि बच्चों को पढ़ने के लिए डेस्क क्यों नहीं दिए जाते? उनका मानना था कि पुस्तक ठीक दूरी पर न रहने से आंखें खराब हो जाती हैं। इस प्रस्ताव का विरोध हुआ। विरोधियों की यह युक्ति थी कि डैस्क आ जाने से तो यह बिल्कुल स्कूल बन जायेगा। ऐसे सभी परिवर्तनों के पीछे प्रधान जी की स्वीकृति रहती थी, इस कारण अन्त में यह हो ही जाते थे।

यह तो परिवर्तनों का आरम्भ था। एक बार गेंद लुढ़की तो लुढ़कती ही चली गई। पढ़ाई के कमरे अलग हो गए, घण्टे बजने लगे। पहले छोटे डैस्क और फिर कुर्सी वाले बड़े डैस्क आ गये। पढ़ाई के विषयों में भी क्रान्ति पैदा होने लगी। प्रो० रामदेव जी की अध्यक्षता में अंग्रेजी, इतिहास और अर्थशास्त्र की पढ़ाई जोर-शोर से होने लगी। मा० गोवर्धन जी साइंस पढ़ाते थे। संस्कृत के विषयों का अध्यापन गुरु काशीनाथ जी के अतिरिक्त पं० भीमसेन जी शर्मा, पं० नरदेव जी शास्त्री, पं० पद्मसिंह शर्मा तथा पं० विष्णुमित्र जी आदि करते थे। जब स्कूल बना तो एक हेडमास्टर भी चाहिए था। मा० रामदेव जी गुरुकुल के प्रथम हैड-मास्टर (मुख्याध्यापक) नियत हुए। जब ग्यारहवीं श्रेणी खुल गई और हम लोग महाविद्यालय में चले गये, तो मा० रामदेव जी प्रिंसिपल हो गये और मुख्याध्यापक का कार्य मा० गोवर्धन जी के सुपुर्द हुआ। गुरुकुल के सभी पुराने स्नातक जानते हैं कि गुरुकुल विश्वविद्यालय को नियम और नियंत्रण में लाने का श्रेय अधिकतर मा० गोवर्धन जी को ही था। अगले परिच्छेद में बतलाऊंगा कि देहरादून यात्रा के पश्चात् ब्रह्मचारियों के हृदय में अर्वाचीन विद्याओं को सीखने की रुचि बढ़ गई थी। डॉ० चिरंजीव भारद्वाज और प्रो० रामदेव जी के व्यक्तित्व भी जोरदार थे। सबसे बढ़कर बात यह थी कि पिताजी उपदेशों तथा व्याख्यानों द्वारा बालकों को आवश्यक परिवर्तनों के लिए तैयार करते रहते थे। इन सब कारणों से लोगों का सामान्य झुकाव परिवर्तनों के पक्ष में हो गया था।

आचार्य गंगादत्त जी दिल से इन परिवर्तनों के विरोधी थे। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे सर्वथा अपरिवर्तनवादी या सनातनपन्थी थे। सामान्य रूप से वे किसी सनातन रूढ़ि में आस्था नहीं रखते थे। विचारों में आर्यसमाजी थे, परन्तु उनकी तबीयत में लचकीलेपन का सर्वथा अभाव था। एक बार आर्यसमाजी बन गये तो बने रहे। नई परिस्थिति के अनुसार बदलना या किसी नई बात को लेकर नया अंग बना लेना उनके लिए सम्भव नहीं था। डॉ० चिरंजीव भारद्वाज और प्रो० रामदेव जी से सम्भवतः प्रथम दर्शनों से ही उनकी प्रतिकूलता हो गई थी, जो समय के साथ सम्बद्ध रहे। आचार्य गंगादत्त जी का और उनका संघर्ष लगभग तीन वर्षों तक चला। आचार्य गंगादत्त जी निरन्तर यह अनुभव करते रहे कि वह संघर्ष में परास्त हो रहे हैं। उन्हें एक-एक करके कई कदम पीछे हट जाना पड़ा, जिससे अन्त में उन्होंने और उनके कुछ शिष्यों ने गुरुकुल कांगड़ी छोड़कर गंगा के दूसरे पार ज्वालापुर महाविद्यालय जाने का निश्चय कर लिया।

१९०६ से १९१० के मध्य में गुरुकुल के रूप में लगभग क्रान्ति हो गई। गुरुकुल विद्यालय तथा महाविद्यालय इन दो भागों में विभक्त हो गया। विद्यालय की पाठविधि १० वर्षों में बांटी गई और महाविद्यालय की ४ वर्षों में। इस समय सोचने पर अनुभव होता है कि यूनिवर्सिटियों की कड़ी आलोचना करते हुए भी उस समय हमने सोलहों आने यूनिवर्सिटियों के बाह्यरूप को अपना लिया। शायद उस समय कोई दूसरा मार्ग भी नहीं था। पाठशाला की पुरानी पद्धति बदली, क्योंकि पुरानी शैली बदलती हुई नई परिस्थितियों के अनुरूप नहीं थी। उसे जारी रखने का अभिप्राय यह होता कि गुरुकुल ताल का कूप ही बना रहता और ब्रह्मचारी कूप-मंडूक होते। दूसरी कोई पद्धति आविर्भूत नहीं हुई थी। जो महानुभाव गुरुकुल का

विश्वविद्यालय का रूप देना चाहते थे, उनमें किसी को यह अवसर नहीं मिला कि वह पाठशाला और स्कूल के मध्य का कोई मार्ग निकाल सकते। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार नई बोतलों में पुरानी दवा भरने का यत्न आरम्भ हो गया।

यह संस्मरणों का संग्रह है, इसमें सम्मतियां देना अप्रासंगिक ही है, तो भी पथभ्रष्ट होकर सम्मति दे डाली है, इसके लिए पाठक क्षमा करें। मैं संस्मरणों के इस भाग को समाप्त करते हुए इतना बतला देना आवश्यक समझता हूँ कि इस परिवर्तन युग की समाप्ति पर हम गुरुकुल भूमि में फूंस के घरों के स्थान पर महाविद्यालय की पक्की इमारतें खड़ी पाते हैं। कलेवर बदल चुका था, बहुत कुछ मन भी बदल चुका था। केवल आत्मा के प्रतिनिधि मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुंशीराम जी गुरुकुल की निरन्तरता को कायम रख रहे थे।

(आर्यजगत् से साभार) — पता- पूर्व कुलपति, गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी (हरिद्वार)

गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली

-आचार्य संदीप कुमार त्यागी 'दीप', विद्याभास्कर, साहित्याचार्य

ज्ञान की प्रकाशिका है, वेद की विभासिका है,
मानव को वास्तविक मानव बनाती है।
रोम-रोम भरती अटूट देश-प्रेम-भाव,
वीरों को दे जन्म सदा देश को बचाती है।।
ज्ञान के 'संदीप' द्वारा विश्व में प्रकाश करे,
तम-तोम धरा और व्योम से भगाती है।
'गुरुकुल शिक्षा की प्रणाली' है निराली यह,
देव दयानन्द की पताका फहराती है।।१।।
राम-श्याम-भीष्म-बलराम तथा भीम जैसे,
धीर-महावीर नर-केसरी बनाती है।
त्याग-तप-आत्मबल द्वारा ये सबल करे,
आन-बान-शान-स्वाभिमान सिखलाती है।।
भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर,
वेदामृत-पान जन जन को कराती है।
'गुरुकुल शिक्षा की प्रणाली' सर्वश्रेष्ठ यह,
इसका बखान नहीं वाणी कर पाती है।।२।।

***

निदेशक- फ्रीडम योगा टीचर्स ट्रेनिंग सेन्टर, टोरंटो (कनाडा)

आदर्श कुलपति आचार्य शुद्धबोध तीर्थ

- डॉ० अजय कौशिक, आचार्य, एम.ए., पी-एच.डी.

आर्ष-परम्परा के प्रामाणिक हस्ताक्षर आचार्य शुद्धबोधतीर्थ जी को आर्यजगत् में स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी के नाम से सब लोग जानते हैं। आचार्य शुद्धबोध तीर्थ ने आजीवन अध्यापनवृत्ति का आश्रय लिया।

आचार्य शुद्धबोध तीर्थ ने अपने सम्पूर्ण जीवन में इस ब्राह्मणवृत्ति को अधिग्रहण करते हुए गुरुकुल महाविद्यालय की सेवा की और उनको कई बार जगद्गुरु शंकराचार्य पद से विभूषित करने के लिए आमंत्रित किया गया था, किन्तु पूज्यपाद आचार्य शुद्धबोध तीर्थ पंडित-प्रवर ने उसको सर्वथा तिरस्कृत करते हुए अपनी अध्यापनवृत्ति को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए चयनित किया; इस तरह से उन्होंने बाल्यकाल से लेकर तुरीय अवस्था तक अपने ब्राह्मणत्व का परित्याग नहीं किया। आचार्य शुद्धबोध तीर्थ ने अनेकानेक संकटों का सामना करते हुए इस अध्यापनवृत्ति से दोनों हाथों से दान किया और इसको एक सुदीर्घ परम्परा रही। उसी परम्परा के फलीभूत आज हमारे समक्ष गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर एक उज्ज्वल एवं प्रस्फुटीकरण रूप में विद्यमान है। यह आचार्य की अन्तरंग आत्मा का आशीर्वचन है, जिस आशीर्वचन की कृपा से गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर किसी राजकीय अनुदान न होने पर भी दिनानुदिन प्रगति पथ पर अग्रसर है। आचार्यप्रवर ने व्याकरणपरक जिस अमर कृति का प्रणयन किया उसका नाम तत्त्वप्रकाशिका है। आचार्य के वैदुष्य को पढ़कर मैंने यह निश्चित किया, क्यों न मैं इस अमर कृति को आराध्य बनाकर इस पर शोधकार्य करूँ। आचार्य की यह अमरकृति भावी व्याकरण के जिज्ञासुओं के लिए सहस्राब्दियों तक प्रेरणा की स्रोत रहेगी। यही आचार्य का अपने जीवन में मुख्य कृतित्व है। यह अमर कृति पाणिनि की अष्टाध्यायी पर एक विशेष कृति के रूप में लिखी गई है।

आचार्य जी का संक्षिप्त जीवन परिचय यह है

१. जन्म स्थान बेलोन। यह स्थान राजघाट नरोरा के पास है।

२. यह ब्राह्मणकुल में अवतरित थे, स्वामी जी के पूज्यपाद पिता का नाम पं० हेमराज वैद्य था।

३. भ्राता- इनके एक भाई थे, जिनका नाम पं० कन्हैयालाल पुजारी था।

४. आचार्य शुद्धबोध जी का शैशवकाल का नाम गंगादत्त था।

५. स्वामी जी का शैशवकाल में अध्ययन बेलोन में ही हुआ और जब स्वामी जी किशोर अवस्था में आए तो बुलन्दशहर जनपद के अन्तर्गत उस समय में एक बड़ा नगर खुर्जा था, वहाँ पर ज्योतिष का अध्ययन किया और उसके अनन्तर इनको व्याकरण में अधिक रुचि थी और वहाँ उन्होंने अपने जीवन में प्रमुख उद्देश्य कि मैं आजीवन व्याकरण विषय का ही अध्ययन करूँगा और वे यमुना के नील-जल की आभा से आप्लावित मथुरा नगर चले गए और वहाँ उन्होंने प्राचीन व्याकरण का अध्ययन किया। उसके बाद पूज्यपाद स्वामी जी ने ऐसा तार्किक आभास किया कि मेरी ज्ञानपिपासा की कुछ निवृत्ति काशी जाने से ही जायेगी। पूज्यपाद स्वामी जी मथुरा से सीधे काशी चले गए और वहाँ जाकर पं० हरनामदत्त भाष्याचार्य से महाभाष्य का अध्ययन किया एवं अपने पूज्यपाद गुरुवर पं० काशीनाथ शास्त्री से नव्य व्याकरण के दुर्धर्ष ग्रन्थों को पढ़ा। साथ ही वेदान्त का भी अध्ययन किया। संस्कृत विद्या में पारंगत होने के लिए न्यायदर्शन की भी अति आवश्यकता होती है, इसलिए उन्होंने सीताराम शास्त्री द्रविड़ से न्यायदर्शन पढ़ा। इस तरह से आपने कुछ मिलाकर आठ वर्ष तक गुरुओं के सान्निध्य में रहकर अनेक विषयों का अध्ययन करते हुए विद्या-उपार्जन किया। उसके अनन्तर सन् १८९४ में आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब ने प्रचार के लिए उपदेशक-मंडली के निर्माण हेतु एक वैदिक-आश्रम नाम के विद्यालय का संस्थापन जालन्धर में किया गया। यह सौभाग्य का विषय है कि जब दो महान् आत्माओं का मिलन हुआ, स्वामी दर्शनानन्द जी जिनका

मूल स्थान पंजाब का क्षेत्र था और यह भी काशी में विराजमान थे। आचार्य गंगादत्त जी के वैदुष्य से स्वामी दर्शनानन्द जी अत्यधिक प्रभावित थे। उधर पंजाब में महात्मा मुंशीराम द्वारा खोले गए वैदिक-आश्रम के लिए किसी सुयोग्य विद्वान् की आवश्यकता थी, क्योंकि महात्मा मुंशीराम भी पंजाब भूमि के एक देवात्मा-स्वरूप वरद पुत्र थे और पं० कृपाराम जी भी पंजाब के दर्शन के उद्भट्ट विद्वान् और संस्कृत के परिष्कृत विद्वान् पंजाब भूमि में ही अवतरित थे, इसलिए क्षेत्रीयता की दृष्टि से दोनों का परिचय स्वाभाविक था। महात्मा मुंशीराम जी ने पं० कृपाराम जी को पत्राचार द्वारा निवेदन किया कि मुझे एक परमार्जित संस्कृत-विद्या के पारंगत विद्वान् की आवश्यकता है। पं० कृपाराम जी ने उनके इस निवेदन को सहर्ष स्वीकार करते हुए आचार्य गंगादत्त जी को जालन्धर भेज दिया और वैदिक आश्रम में पं० गंगादत्त जी ने कई वर्ष अध्यापन किया और पुनः हरिद्वार के अन्दर गुरुकुल खोलने की एक संकल्पना ली गई और उस संकल्पना को पूरा करने के लिए गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता के रूप में महात्मा मुंशीराम जी को प्रतिष्ठापित किया गया और पंडित गंगादत्त जी गुरुकुल के आचार्य के रूप में नियुक्त किए गए। गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य के पद पर पं० गंगादत्त जी ही आसीन हुए थे। ये गुरुकुल के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखित है। महात्मा मुंशीराम जी के सशक्त हस्त के रूप में १९०१ से १९०५ तक गुरुकुलीय समस्त परम्पराओं का निर्वहन करते हुए सुचारु रूप से कार्य किया। आपने निर्धन छात्रों के हितार्थ और गुरुकुलीय सिद्धान्तों को स्थापित करते हुए विचार-विभिन्नता के कारण गुरुकुल कांगड़ी का परित्याग कर दिया। इसमें कोई निजी स्वार्थ नहीं था, अपितु भारत की शैक्षणिक पद्धति निःशुल्क होनी चाहिए या सशुल्क होनी चाहिए। भारत की शैक्षणिक पद्धति निःशुल्क होनी चाहिए, इसमें अपना स्पष्ट अभिमत संस्थित करते हुए विचार-विभिन्नता के कारण गुरुकुल कांगड़ी को छोड़ दिया। आप १९०७ में तार्किक-शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा संस्थापित आर्यजगत् की मूल धरोहर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में १९०७ में आ गए। सन् १९०७ से १९३२ तक गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पद को अलंकृत करते रहे और इस कार्यकाल में अनेक व्याकरण प्रतिभाओं को समुत्पादित किया। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की महासभा ने अपने १९३२ के निर्वाचन प्रक्रिया में आपको गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का कुलपति बनाया।

आचार्य शुद्धबोध तीर्थ ने १८९४ से लेकर १९३३ तक अर्थात् लगभग ४० वर्ष तक आर्ष पा०विधि से कैसे व्याकरण को पढ़ाया जा सकता है, इसका प्रायोगिक स्वरूप प्रतिष्ठित किया।

६. आचार्य शुद्धबोध तीर्थ जी के दीक्षा गुरु श्री १०८ श्री सुब्रह्मण्यदेवतीर्थ परमहंस थे। ५ अगस्त १९३३ को आप अत्यधिक रुग्ण हो गए और रुग्णता लगातार बढ़ती गई और इस रुग्णता ने आचार्यप्रवर के जीवन का समापन कर दिया।

***

पता- कुलसचिव, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर
हरिद्वार (उत्तरांचल)

पुरुषार्थ से धनादि पदार्थ बढ़ाके उसको
अच्छे मार्ग में खर्च किया करें। (यजुर्वेद)

समालोचक- सम्राट् पं० पद्मसिंह शर्मा

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

हिन्दी में तुलनात्मक समालोचना का प्रारम्भ करने वाले सुप्रसिद्ध आलोचक पं० पद्मसिंह शर्मा आर्यसमाज की दिव्य साहित्यिक विभूति थे। यद्यपि साहित्य के इतिहासकर्ताओं ने शर्माजी की प्रतिभा का महत्त्व भलीभाँति नहीं आंका तथा उनकी भाषा-शैली को और उनकी समालोचना-पद्धति को 'महफिली तर्ज' की कहकर उसे कम बताते रहे, परन्तु अब समय समय आ गया है, जबकि पद्मसिंह शर्मा के विषय में हिन्दी के समालोचकों तथा इतिहास-लेखकों को पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस साहित्यज्ञ की साहित्य-सेवाओं का उचित मूल्यांकन करना चाहिए। शर्मा जी का जन्म स्थान बिजनौर जिले का नायक नगला ग्राम था, जहाँ फाल्गुन शुक्ला १२ रविवार संवत् १९३३ वि० को उन्होंने जन्म धारण किया। शर्मा जी के पिता श्री रिसालसिंह जी थे, जो गांव के प्रतिष्ठित मुखिया और नम्बरदार थे। बाल्यकाल में शर्मा जी ने संस्कृत का अध्ययन किया। १८९४ वि० के लगभग वे स्वामी दयानन्द के शिष्य इटावा-निवासी पं० भीमसेन शर्मा की पाठशाला में अष्टाध्यायी पढ़ते रहे। पुन: काशी, मुरादाबाद और जालन्धर आदि अनेक स्थानों पर विद्यार्जन करते रहे। इसी बीच घर पर रहकर उर्दू, फारसी का भी अभ्यास किया। शर्मा जी के पिता आर्यसमाजी विचारों के थे, अत: आपका भी आर्यसमाज की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही था।

कर्मक्षेत्र में- महात्मा मुन्शीराम जी के आग्रह पर शर्मा जी सन् १९०४ में गुरुकुल कांगड़ी में हिन्दी के अध्यापक बन कर आये। उस समय मुन्शीराम जी ने हरिद्वार से सम्पादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा के सम्पादकत्व में 'सत्यवादी' नामक पत्र निकाला था। पद्मसिंह शर्मा भी इस पत्र के सम्पादकीय विभाग में सम्मिलित कर लिए गए। यहीं से उनकी सम्पादन-कला में दीक्षा का प्रारम्भ समझना चाहिए। १९०८ में स्वामी दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा ने अपने मुखपत्र 'परोपकारी' के सम्पादन के लिए शर्मा जी को अजमेर बुला लिया। कुछ काल 'परोपकारी' का सम्पादन कर आप १९०९ के प्रारम्भ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आ गए। यहाँ पर आप १९१७ तक रहे। महाविद्यालय के मुखपत्र 'भारतोदय' के सम्पादक भी आप रहे। उनके सम्पादनकाल में ही स्वामी दर्शनानन्द तथा पं० गणपति शर्मा का 'वृक्ष में जीव' विषय पर सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ, जिसका रोचक वृत्तान्त आपने 'भारतोदय' में प्रकाशित कराया। अब इस शास्त्रार्थ को 'तपोभूमि' मथुरा के विशेषांक के रूप में पुन: प्रकाशित कर दिया गया।

साहित्यिक सेवाएं- बाबू शिवप्रसाद गुप्त के अनुरोध पर शर्मा जी १९०५ के लगभग ज्ञानमंडल काशी में चले गए। वहाँ रहकर वे मंडल से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों का सम्पादन करते रहे। इसी बीच शर्मा जी ने बिहारी-सतसई पर अपना सुप्रसिद्ध "संजीवनभाष्य" लिखा और बिहारी-सतसई की भूमिका लिखकर हिन्दी में तुलनात्मक समालोचना लिखने की प्रक्रिया को जन्म दिया। सनातनधर्म के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'बिहारी सतसई-संहार' शीर्षक एक लेखमाला सरस्वती में लिखना आरम्भ किया। यही बिहारी-सतसई पर उनकी भूमिका और भाष्य की उपक्रमणिका बनी। भूमिका में शर्मा जी ने बिहारी की तुलना प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, उर्दू तथा फारसी के अनेक कवियों से करते हुए उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। गाथा-सप्तशती, आर्यसप्तशती तथा अमरुशतक के शृंगारपूर्ण पद्यों से बिहारी के दोहों की तुलना कर शर्माजी ने यह सिद्ध कर दिया कि बिहारी की प्रतिभा के सम्मुख अन्य कवि जरा भी नहीं ठहर सके हैं। उनकी इसी कृति पर संवत् १९८० में उन्हें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला।

आश्विन संवत् १९७७ में ये संयुक्तप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुरादाबाद अधिवेशन के सभापति बनाए गए तथा संवत् १९८५ में उन्हें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुजफ्फरपुर (बिहार) अधिवेशन का सभापतित्व करना पड़ा। इन अधिवेशनों में दिए गए उनके भाषण गंभीर साहित्यिक सूझबूझ का परिचय देते हैं। सन् १९३२ में हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग के अनुरोध पर आपने 'हिन्दी, उर्दू हिन्दुस्तानी' विषय पर अपना सुप्रसिद्ध भाषण दिया। इस भाषण के द्वारा व्यक्त किए गए भाषा-विषयक उनके संतुलित विचारों की सभी क्षेत्रों में प्रशंसा हुई।

शर्मा जी के सहस्रों महत्त्वपूर्ण निबन्ध यत्र-तत्र में प्रकाशित होते रहते थे। श्री पारसनाथ सिंह के उद्योग से शर्मा जी के निबन्धों का एक संग्रह 'पद्मपराग' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस "निबंध-संग्रह में संगृहीत उनके पं० गणपति शर्मा, पं० भीमसेन शर्मा, पं० सत्यनारायण कविरत्न जैसे संस्मरण अत्यन्त मार्मिक हैं। शर्माजी केवल हिन्दी और संस्कृत के ज्ञाता पुरानी परिपाटी के विद्वान् ही नहीं थे, अपितु उर्दू और फारसी के वे मर्मज्ञ तथा उर्दू कविता के सफल अध्येता थे। उनका उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी से प्रगाढ़ सम्बन्ध था। अकबर शर्मा जी के साहित्य प्रेम और कला-रसिकता के कद्रदान थे। शर्मा जी ने स्व० पं० हृषीकेश भट्टाचार्य द्वारा लिखित संस्कृत-प्रबन्धमंजरी का सम्पादन कर प्रकाशित कराया।

साहित्यकारों से सम्पर्क- अपने समकालीन प्रसिद्ध साहित्यकारों से पं० पद्मसिंह शर्मा का सम्बन्ध रहा। रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य जी के देहावसान पर उन्होंने स्व० आत्मा के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि देते हुए उनकी कृतियों के पुनःप्रकाशन पर जोर दिया। कविताकामिनीकान्त पं० नाथूराम शर्मा शंकर शर्मा जी पर अत्यन्त कृपा रखते थे। पत्रकार-प्रवर पं० बनारसी-दास चतुर्वेदी जी से शर्माजी के मधुर सम्बन्ध थे। इसी प्रकार व्रजभाषाकोकिल महावीरप्रसाद द्विवेदी, देव-पुरस्कार-विजेता सत्यनारायण कविरत्न, पं० हरिशंकर जी शर्मा आदि सभी साहित्यरसिकों से उनका अनन्य सौहार्दभाव था। पत्रव्यवहार में शर्माजी बड़े पटु थे। अपने समकालीन लगभग सब सुप्रसिद्ध साहित्यकारों से उनका पत्राचार चलता रहा था। अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि उनके द्वारा लिखे गए पत्रों का संकलन तथा सम्पादन पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा डॉ० हरिशंकर शर्मा द्वारा किया जाकर आत्माराम एण्ड सन्स से प्रकाशित हो चुका है। इन पत्रों को पढ़ने से शर्मा जी के सरल और अकृत्रिम व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है।

शर्मा जी का आकस्मिक स्वर्गवास ७ अप्रैल १९३२ को विषूचिका रोग से उनके जन्मस्थान नायक नगला में हो गया। आर्यसमाज की गतिविधियों से वे निराश हो चले थे, ऐसा उनके पत्रों से ज्ञात होता था। उनके दिवंगत होने पर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने निम्न संस्कृत पद्य द्वारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

> याते दिवं त्वयि सुहृद्वर पद्मसिंह,
>
> तत्रैव सा रसिकतापि गतेव मन्ये।
>
> क्वाहं भवादृशमनन्त-सुभाषितज्ञं,
>
> प्राप्स्ये हतेन विधिना बहुवंचितोऽस्मि॥
>
> संस्मृत्य तेऽद्य सरसं च कथा-कलापं,
>
> सत्यं वदामि हृदयं शततां प्रयाति।
>
> आर्तस्य निर्गतधृतेर्मम शोकशान्तौ,
>
> त्वत्सन्निधौ तु गमनेन विनिश्चिनोमि॥

यों तो बहुत समय से पं० पद्मसिंह शर्मा के ग्राम नायक नगला जाने की इच्छा थी, किन्तु अकस्मात् ही उसकी पूर्ति हुई २२ मार्च १९७४ ई० को। संयोग इस पर बना कि उस दिन पं० पद्मसिंह शर्मा के सुपुत्र पं० रामनाथ शर्मा बिजनौर आए

हुए थे । सौभाग्यवश प्रसिद्ध हिन्दी-साहित्य-सेवी पं० रमेशचन्द्र दुबे भी उस दिन वहीं थे । हम पं० पद्मसिंह शर्मा की प्रामाणिक जीवनी के लिए सामग्री-संकलन हेतु नायक नगला जाना भी चाहते थे । अतएव उस दिन सायंकाल लगभग चार बजे हम लोगों ने कार से नायक नगले की ओर प्रस्थान किया । नायक नगला ग्राम बिजनौर जिले के चाँदपुर कस्बे में उत्तर की ओर लगभग चार कोस की दूरी पर स्थित है ।

कार क्षिप्रगति से आगे बढ़ रही थी । पक्की सड़क छोड़कर अब कार खेतों के बीच के मार्ग से गुजरने लगी । यहाँ बैठकर कभी पं० पद्मसिंह शर्मा काव्य-गोष्ठी जमाते अथवा ग्राम के बच्चों को पढ़ाया करते थे । पं० रामनाथ जी ने ग्राम के कुछ लोगों को इकट्ठा कर लिया था । इनमें प्रौढ़ावस्था के श्री वेदप्रकाश जी भी थे, जो पं० पद्मसिंह शर्मा के भतीजे हैं । उन्होंने बताया कि पंडित जी इसी पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर उन्हें रामचरितमानस पढ़ाते थे । श्री वेदप्रकाश जी ने स्मृति पर जोर डालते हुए निम्नलिखित पंक्तियां सुनाईं, जो पंडित जी अक्सर गुनगुनाया करते थे-

ये खूब क्या है ये जीस्त क्या है,
जहाँ की असली शरिस्त क्या है ।
बड़ा मजा हो तमाम चेहरे,
अगर कोई बेनकाब कर दे ।

***

पता- ८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।

राजन् ! धन की आय, नित्य नीरोग रहना, स्त्री का अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्र का आज्ञा के अन्दर रहना तथा धन पैदा करने वाली विद्या का ज्ञान- ये छः बातें इस मनुष्यलोक में सुखदायिनी होती हैं ।

आचार्य नरदेव शास्त्रीजी और उनका जेल का साथी

- संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

आज से छः दशक पूर्व दक्षिणदेश से चार किशोर उत्तरापथ को आए। ये चारों ही उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध देशभक्त, हिन्दी के सुलेखक और भारतीय जनता के परम श्रद्धा-भाजन बने। उनमें एक थे पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे, दूसरे श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर। इन दोनों ने ही हिन्दी-सम्पादकों में शीर्षस्थान प्राप्त किया। तीसरे थे बरहज के परमहंस बाबा राघवदासजी, जो पूर्वी उत्तरप्रदेश में पूर्वी गान्धी के नाम से विख्यात थे। जिन्होंने कितनी ही शिक्षण-संस्थाएं बनायीं। गोरक्षा, स्वराज्य-प्राप्ति और हिंदी राष्ट्रभाषा के लिए कितना अत्यधिक कार्य किया। इसे कोई इतिहास लेखक ही बता सकेगा और चौथे थे हमारे पं० नरदेव शास्त्रीजी। लगभग १४-१५ वर्ष की अवस्था में वे इधर पढ़ने के लिए आए थे। ये पं० गंगादत्त जी शास्त्री (जो पीछे स्वामी शुद्धबोध तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए) के साथ लाहौर से गुरुकुल कांगड़ी में आए। स्वामीजी का महात्मा मुंशीराम जी (जो पीछे स्वामी श्रद्धानन्दजी के नाम से विख्यात हुए) से कुछ मतभेद होने पर आप दोनों ज्वालापुर महाविद्यालय में चले आए और लगभग ५० वर्षों से भी अधिक समय तक महाविद्यालय की सेवा करते रहे। उनके पढ़ाए हुए सहस्रों विद्यार्थी आज शास्त्री, आचार्य, एम०ए० तथा विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हुए विद्यमान हैं। शास्त्रीजी अत्यन्त सीधे सादे तथा निरभिमानी थे। अपने विद्यार्थियों से उन्होंने कभी गुरु-शिष्य का सा व्यवहार नहीं किया। वे उनसे परस्पर में हँसते बोलते और मैत्रीपूर्ण ढंग से बातें करते। पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० नाथूरामजी शंकर शर्मा, पं० श्रीशंकरदत्त जी आदि आपके घनिष्ठ मित्रों में थे। वे अच्छे अध्यापक, शिष्यप्रिय आचार्य, हिन्दी के सुलेखक, लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक, धाराप्रवाह बोलने वाले वक्ता, शास्त्रार्थकर्ता, राजनीतिक नेता, उत्साही कर्मठ जनसेवक तथा सफल प्रशासक थे। त्याग की तो वे मूर्ति ही थे। स्वामी शुद्धबोधतीर्थजी ने आपके ही नाम से एक छात्रावास का नाम 'देवाश्रम' रख दिया था। उसमें ७-८ कोठरियाँ थीं। सबसे अन्त की कोठरी में वे रहते थे। उस कोठरी में लोटा-बाल्टी, एक-दो चटाई, एक तौलिया और ३-४ खद्दर के कपड़े इतनी ही उनकी सम्पत्ति थी। रोटी वे भंडार से जैसी भी रूखी-सूखी बनती थी, माँग लेते थे। उन्होंने परम विरक्त साधु की भाँति पूरा जीवन बिता दिया। मैंने उनके जीवन में कभी कोई परिवर्तन नहीं देखा। सभी परिस्थितियों में एकरस एकभाव। सदा हँसते रहना, सदा कहकहे लगाते रहना उनका स्वभाव था। जहाँ शास्त्रीजी रहें, वहाँ कोई सुस्त और मुर्दनी मुख लिए रह नहीं सकता। उनकी आदत थी हमेशा हंसी की बातें कहकर हंसते रहना, दूसरों को हँसाते रहना। मैंने उन्हें कभी दुखी, चिन्तित और सुस्त नहीं देखा। ८० वर्ष की अवस्था में भी वे युवकों से बढ़कर उत्साही थे।

सर्वप्रथम मैंने उनके दर्शन खुरजा (जिला-बुलंदशहर में) किए। उन दिनों मैं आचार्यचरण गुरुवर्य पं० चंडीप्रसादजी शुक्ल के समीप पढ़ता था। शास्त्रीजी ज्वालापुर से लाला रामजीलाल द्वारा अपने भतीजों का यज्ञोपवीतसंस्कार कराने को बुलाए गए थे। महाराष्ट्रीय ढंग का चदरा ओढ़े हुए वे बड़े ही सुन्दर लगते थे। प्रथम भेंट में ही उन्होंने इतना अपनत्व प्रकट किया कि मानों हम जन्म जन्मान्तर के परिचित हैं। फिर सन् २१ के सत्याग्रह आन्दोलन में मैं खुरजे से पकड़ा गया और वे देहरादून से। संयोग की बात हम दोनों ही लखनऊ केन्द्रीय-कारावास में विशेष श्रेणी में रक्खे गए। एक ही जेल में, एक ही वार्ड में, एक ही कमरे में हम साथ थे। हमारे कमरे में शास्त्रीजी, पं० वंशीधर पाठक, बाबू सम्पूर्णानन्द, पं० शिवविनायक मिश्र आदि बहुत से लोग थे। शास्त्रीजी सबसे अलग चुपचाप पेड़ के नीचे बैठे रहते और वहाँ भी गीता, उपनिषद् तथा शांकरभाष्य आदि पढ़ाया करते। जेल में सभी बच्चे बन गये थे। दिन भर इतना उपद्रव करते कि बच्चे भी क्या करेंगे। आज जो बड़े-बड़े नेता, मन्त्री, राजदूत, राज्यपाल बने हैं, वे दिनभर हुड़दंग मचाते रहते। उन सबके अग्रणी थे आचार्य कृपलानी।

बंदरों की तरह पेड़ों पर चढ़ जाते, जिसकी भी मिठाई आदि रक्खी पाते, चुराकर खा जाते। गद्दू कबड्डी और विविध खेल चलते रहते। शास्त्रीजी इन सबमें निर्विकार बने रहते। कोई कहता भी कि महाराज ! लोग बड़ा उपद्रव करते हैं तो आप हँसकर कह देते- 'अरे भाई ! कैसे भी समय तो काटना ही है।'

कुछ समय पश्चात् सरकार ने एक कमीशन बैठाया कि बहुत से अयोग्य व्यक्ति विशेष श्रेणी में आ गए हैं, उन्हें निकालकर साधारण श्रेणी में भेजा जाय। कुछ योग्य व्यक्ति साधारण श्रेणी में पहुँच गए हैं, उन्हें विशेष श्रेणी में लाया जाय। तब उन दिनों आज की भाँति ए०बी०सी० क्लासें नहीं थीं। एक तो विशेष श्रेणी (स्पेशल क्लास) थी, जिसमें टंडनजी, पं० मोतीलाल नेहरू आदि ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति थे जो लखनऊ जेल में रक्खे गए थे। दूसरी राजनीतिक बंदी श्रेणी (पोलिटिकल प्रिजनर्स) थी, जो फैजाबाद में रक्खे गए। तीसरी साधारण बन्दी श्रेणी (नानपोलिटिकल) थी, जो साधारण कैदियों की भाँति सब जेलों में रक्खे जाते थे। उन दिनों बहुत से स्पेशल क्लास से निकालकर साधारण कैदियों में भेजे जा रहे थे। शास्त्रीजी को भी देहरादून के जिलाधीश के आदेश से साधारण कैदी बनाकर वहाँ से हटाया जा रहा था। जब उनके पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डालकर बाहर भेजा जा रहा था, तो मेरी आँखों में आँसू आ गए। वे हँसते हुए बोले- 'देखो, मेरे पढ़ाए हुए विद्यार्थी तो स्पेशल क्लास में हैं और मुझे राजनीतिक भी नहीं, तीसरी श्रेणी में भेजा जा रहा है।' वे इस अपमान से तनिक भी विचलित नहीं हुए। इसके पश्चात् तो वे क्रमशः पाँच बार जेल गए। कोई भी आन्दोलन ऐसा नहीं था, जिसमें वे जेल न गए हों।

जब हरिद्वार में हरि की पौड़ी पर नगरपालिका की ओर से प्रतिबन्ध लगा था, तब स्वयं मालवीय जी सत्याग्रह करने गए और उन्होंने प्रतिबन्ध के लगे रहने पर भी व्यासासन पर बैठकर कथा बाँची। शास्त्रीजी ने मालवीय जी से कहा- 'महाराज ! मैं तो आप जहाँ कहो वहाँ बैठकर कथा बाँच सकता हूँ, किंतु मैं आर्यसमाजी हूँ।'

वे जिससे मिलते थे, हृदय खोलकर मिलते थे। उनमें बनावट या बड़प्पन की गन्ध भी नहीं थी। जब भी कभी प्रयाग आते, मुझसे मिलने अवश्य आते। कई बार ऐसा हुआ कि वे आए, मैं अपने अनुष्ठान-नियम में था। प्रतीक्षा करके लौट गए। फिर जाकर पत्र लिखे। देखो, तुम्हारी हाजिरी मैं दे आया था। तबसे जब भी आते पहिले फोन कर लेते। लोग कुछ कहते कि वे अभी नहीं मिलेंगे, तो उन्हें डाँट देते। तुम उनतक मेरा संदेश पहुँचा तो दो। उन्हें मेरा नाम तो बता दो।

अन्तिम बार आश्रम में वे अभी गत वर्ष ही आए थे। 'सरस्वती' ने अपनी रजत-जयन्ती पर अपने पुराने लेखकों को सम्मानित किया था। आपका भी पुराने सरस्वती के लेखक होने के नाते सम्मान किया गया। उसी में सम्मिलित होने प्रयाग आए थे। फोन करके स्वयं ही रिक्सा लेकर आ गए। बड़ी देर तक हँसते रहे। उलाहने देते रहे- 'तुम्हारे चेले मिलने ही नहीं देते। वे समझते हैं, कोई रिक्सेवाला है। जानते नहीं, शास्त्री का ब्रह्मचारीजी से कैसा सम्बन्ध है।' पूरे आश्रम में घूमते रहे, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। मैंने कहा- 'शास्त्रीजी ! कुछ दिन रहिए, वृन्दावन में भी ऐसा ही एक आश्रम है वहाँ अवश्य आइए।' बोले- 'हाँ-हाँ आऊँगा, रहूँगा। अब तो मैं राजपुर शाहंशाही आश्रम में जाकर ठहरूँगा।'

अभी-अभी जब मैं आषाढ़ में श्रीबद्रीनाथ से लौटकर मसूरी गया, तो मुझे राजपुर एक महात्मा अपने यहाँ ले गए। मुझे पता नहीं था शास्त्रीजी यहीं हैं। किसी ने मेरे आने का समाचार दे दिया। तुरंत दौड़े-दौड़े आए। बोले-'भाई अब तो ८७ वर्ष के हो गए। नदी के किनारे के वृक्ष की भाँति हैं, न जाने कब प्रवाह आ जाय, कब गिर पड़ें। चिकित्सकों ने मसूरी रहने को मना कर दिया है, इसलिए न बहुत ऊपर रहते हैं न नीचे। बीच में रहते हैं।'

मैंने कहा- शास्त्रीजी ! अब तो आप संन्यास ले लीजिए। आप बोले- 'हाँ, भाई ! सोच तो मैं भी रहा हूँ। किंतु हमें कोई गुरु नहीं मिल रहा है।'

मैंने कहा- अपने आप ही ले लो, शास्त्रों में तो ऐसा विधान है। फिर आप तो संन्यासी ही हैं।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।

सच्चे संन्यासी तो आप ही हैं।

बोले- हाँ भाई, बहुत बीत गयी। अब तो थोड़ी ही रही है। साथी सब चले गए। हम ही हैं सो प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आप ८० वर्ष की अवस्था मे भी स्वस्थ थे। युवकों की भाँति चलते थे। उनके किसी भी कार्य में व्यवधान नहीं पड़ा था। हमें स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि आप इतने शीघ्र परलोकवासी बन जायँगे।

जब मैंने समाचारपत्रों में पढ़ा कि इसी २४ सितम्बर १९६२ को आपने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया, तो मैंने समझा त्याग-तपस्या का जाज्वल्यमान प्रतीक, संस्कृति का प्रकाण्ड पण्डित, हिंदी का महान् लेखक, राजनीति का सच्चा कर्मठ नेता और विद्यार्थियों का सच्चा मित्र, महान् आचार्य, भारतमाता का सच्चा सपूत, देश का एक अमूल्य रत्न खो गया। न जाने अब ऐसा दूसरा रत्न मिलेगा भी या नहीं।

***

('कल्याण'- नवम्बर १९६२ से साभार)

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।

सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ।।

मनुष्य को कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया (गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव), क्षमा तथा धैर्य- इन छः गुणों का त्याग नहीं करना चाहिए।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।

काम, क्रोध और लोभ- ये आत्मा का नाश करने वाले नरक के तीन दरवाजे हैं, अतः इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

म०वि० का विकास, एक विहंगम दृष्टि

- डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री

म०वि० के प्रतिष्ठित वैद्य

पं० हरिशंकर वैद्य- म०वि० से स्नातक होकर मेरठ में अभ्यास शुरू किया। सन्तान नहीं थी। म०वि० के प्रधान बने। आपके प्रधान बनने से विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए १४ कमरों का निर्माण हुआ। एक प्रार्थना- भवन भी निर्मित हुआ। आपके सहयोग में डॉ० नरेन्द्रदेव शास्त्री आगरा और पं० हरिदत जी शास्त्री का योगदान सराहनीय है। इन तीनों के सहयोग से कृषि-योग्य भूमि मिली। भरतपुर से १० गाएं दान में ली गयीं। जिससे विद्यार्थियों के दूध की पूर्ति हुई। कृषि-कार्य में गोशाला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पं० हरिशंकर जी के सहयोग से ओषधि-निर्माण कार्य के लिए प्रयोगशाला बनाई गई, जिसमें रस, भस्म, आसव, अरिष्ट इत्यादि का निर्माण कर फार्मेसी का रूप दिया गया। लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि २ साल बाद ओषधि-निर्माण का कार्य बन्द हो गया। इसमें श्री वासुदेव जी शर्मा, स्नातक चिकित्सा-कार्य में नियुक्त हुए।

आयुर्वेदभास्कर में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी, उनमें प्रमुख थे- रामचन्द्र वैद्य (अयोध्या), सत्यनारायण जी (मुजफ्फरपुर) वैद्य आर्येन्द्र जी (दिल्ली), ज्योतिः स्वरूप जी (खुब्बनपुर)। श्री वीरेन्द्र जी शर्मा (बिजनौर) पीलीभीत और लखनऊ में प्राचार्य हुए। आज भी आयुर्वेद के क्षेत्र में वीरेन्द्र जी का प्रमुख स्थान है। आप में सर्जरी की योग्यता थी। ये ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज से भी स्नातक हुए।

डॉ० सुदर्शन और बलवीर शास्त्री- इनका जड़ी-बूटियों के क्षेत्र में और ओषधि-निर्माण में विशेष योगदान रहा है। इन दोनों ने झांसी में एक बड़े वैद्य के संरक्षण में जड़ी बूटियों के पैदा करने में विशेष योग्यता प्राप्त की। डॉ० विजय, योगी-फार्मेसी, कनखल, ने पाकिस्तान से आने के बाद कनखल मे विशेष स्थान बनाया और अपना योगी-फार्मेसी के नाम से नया संस्थान बनाया। यह कनखल लक्सर रोड पर स्थित है।

श्री विष्णुदत्त वैद्य- कनखल में म०वि० के प्रमुख सहयोगी पं० रामचन्द्रजी वैद्य की कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने श्री लल्लू जी को दत्तक पुत्र के रूप में स्वीकार किया। उसी समय विष्णु जी का जन्म हुआ और इन्होंने म०वि० के स्नातक होकर विष्णु फार्मेसी स्थापित की। कनखल में यह परिवार सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में अपना प्रमुख स्थान रखता था और सदा म०वि० का सहायक रहा। विष्णु जी के भाई शेखर जी ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज से पढ़कर विष्णु फार्मेसी के सहयोगी बने।

श्री योगेन्द्रपाल शास्त्री- ये म०वि० फार्मेसी के संचालकों में से एक थे। श्री मूलचन्द्र शास्त्री म०वि० के मुख्याधिष्ठाता थे। तभी योगेन्द्रपाल शास्त्री स्नातक होकर घर आ गए। इन्होंने म०वि० से पृथक् होकर कन्या गुरुकुल कनखल की स्थापना की। जो आज भी शक्ति-आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। श्री मूलचन्द्र शास्त्री ने कन्या गुरुकुल के पीछे एक महिला कालेज की स्थापना की। जो आज अच्छे ढंग से चल रहा है।

श्री दयाराम जी वैद्य- म०वि० से स्नातक होकर इन्होंने शिवहारा में अपना औषधालय चलाया और ये म०वि० से हैदराबाद सत्याग्रह में भी गए थे। ये अधिक समय जीवित न रह सके।

श्री हरिश्चन्द्र आत्रेय (धामपुर)- श्री धर्मदेव आत्रेय, हरिश्चन्द्र आत्रेय, यज्ञदेव आत्रेय और जयदेव त्यागी। ये महाविद्यालय से स्नातक होकर बी०एच०यू० से आयुर्वेद के स्नातक हुए और श्री हरिश्चन्द्र आत्रेय ने अपना एक बड़ा हॉस्पिटल धामपुर में स्थापित किया और अपने पुत्र को रूस से डाक्टरी स्नातक होने पर अस्पताल का अध्यक्ष नियुक्त किया। श्री हरिश्चन्द्र आत्रेय की एक विशेषता है कि मरने के बाद जिसने भी अपनी आँखें दान दी। उसको परोपकारार्थ भारत सरकार

को देकर पुण्यकार्य किया । उन्होंने २ हजार से बढ़ाकर ४ हजार अन्धों को दृष्टि प्रदान की । हरिश्चन्द्र आज भी धामपुर में बहुत प्रसिद्ध हैं ।

हरिश्चन्द्र और धर्मदेव जी हैदराबाद आर्य-सत्याग्रह में भी गए थे । श्री धर्मदेव जी का कुछ समय बाद देहान्त हो गया। उनके छोटे भाई यज्ञदेव कृषिविभाग से रिटायर्ड होकर दिल्ली में निवास कर रहे हैं । इनके छोटे भाई जयदेव त्यागी म०वि० से स्नातक होकर लखनऊ मेडिकल कालेज से एम०बी०बी०एस० होकर सरकारी सेवा में नियुक्त हुए । इनकी धर्मपत्नी का ज्योति-नर्सिंग होम के नाम से जच्चा-बच्चा सेन्टर बेगमपुर (मेरठ) में स्थित है और श्री जयदेव सरकारी सेवा से निवृत्त होकर यहाँ निवास कर रहे हैं और जनसेवा कर रहे हैं ।

डॉ० सुदर्शन जी और श्री बलवीरदत्त शास्त्री- ये म०वि० से स्नातक होकर परशुराम आयुर्वेदिक कालेज (हरियाणा) में अध्यापन कार्य में लग गए । यहाँ से मुक्त होकर बलवीरदत्त शास्त्री म०वि० के आयुर्वेदिक विभाग के प्राचार्य हुए । कुछ काल के बाद यहाँ से भी मुक्त होकर जड़ी-बूटियों के काम में आगरा में कार्य करने लगे । संप्रति डॉ० सुदर्शन जी इन्दौर में अपनी कन्या के पास रह रहे हैं और डॉ० बलवीर शास्त्री लक्सर (सहारनपुर) में गोवर्धनपुर रोड पर अपना मकान बनाकर पक्षाघात का इलाज कर रहे हैं ।

श्री रुद्रदेव जी और श्री सुखदेव- श्री रुद्रदेव जी म०वि० से स्नातक होकर धनुर्विद्या के प्रदर्शन और आयुर्वेद के प्रचार कार्य में लगे रहे । श्री सुखदेव जी यावज्जीवन अपने चिकित्सा कार्य में लगे रहे ।

श्री बृहस्पतिजी और श्री स्वराज्य शर्मा- ये म०वि० के पुराने संरक्षकों में से एक तथा गणित आदि के अध्यापक श्री आशाराम जी शर्मा के सुपुत्र थे । इनकी सेवाएं म०वि० में भुलाई नहीं जा सकतीं । श्री बृहस्पति जी चिकित्सा-कार्य नई मंडी, मुजफ्फरनगर में कर रहे हैं । श्री स्वराज्य जी हिन्दू कालेज में हिन्दी के अध्यापक रहे और रिटायर्ड होकर संप्रति पालम एअरपोर्ट के पास द्वारिका में रह रहे हैं ।

श्री जगदीश्वर बहुगुणा- ये म०वि० के स्नातक थे । इन्होंने देहरादून में एक आयुर्वेदिक कालेज खोला था ।

म०वि० का आश्रम-विभाग

श्री पं० कांशीदत्त शर्मा- म०वि० के संचालन में ब्रह्मचर्याश्रम (छात्रावास) का एक प्रमुख स्थान है । तत्कालीन अधिकारियों ने छात्रावास का नक्शा बनाकर छात्रावास की स्थापना की । जिसके प्रमुख संरक्षक पं० कांशीदत्त जी शर्मा नियुक्त हुए । आपका विद्यार्थियों के जीवन-निर्माण में प्रमुख स्थान था । प्रातः ४ बजे छात्रों को उठाकर नित्यकर्म के लिए प्रेरित करना, नहर के किनारे भ्रमण और व्यायाम के कार्य पर प्रमुख ध्यान देते थे । म०वि० के इतिहास में पं० कांशीदत्त जी की सेवा अत्यन्त प्रशंसनीय रही है । दान मांगकर लाना और भोजन आदि की व्यवस्था कराना और अस्वस्थ बच्चों की चिकित्सा कराना आदि पर आपका विशेष ध्यान रहता था । यहाँ रहते हुए आपने अपने पुत्र श्री वासुदेव शर्मा जी को चिकित्सक बनाकर स्वयं यशस्वी बने ।

श्री पं० प्रभुदयाल जी- पं० कांशीदत्त जी के बाद श्री प्रभुदयाल जी संरक्षक रहे । ये शामली के पास के रहने वाले थे । अत्यन्त सरल स्वभाव वाले थे । प्रतिदिन व्यायाम, भ्रमण, योगशिक्षा छात्रों को कराते थे । साथ ही गणित भी पढ़ाते थे।

श्री जवाहरलाल जी- प्रभुदयाल जी के बाद श्री जवाहरलाल जी संरक्षक रहे । उनके पुत्र श्री ओमप्रकाश जी ने म०वि० से आयुर्वेदभास्कर किया । कुछ समय तक औषधालय में चिकित्सक होकर औषधि-निर्माण में काम करते रहे । श्री ओमप्रकाश जी के पुत्र श्री चन्द्रकान्त म०वि० के स्नातक हुए और डी०ए०वी० कालेज अजमेर में कार्यरत हैं ।

श्री भीमसेन जी पटनायक- भारत-भ्रमण के लिए ये दो व्यक्ति निकले थे । एक म०वि० आकर घर लौट गए और श्री भीमसेन जी जीवन भर म०वि० में ही रहे । साधारण टूटी-फूटी हिन्दी जानते थे । यहाँ रहकर हिन्दी सीख गए । ये

छात्रों को इंग्लिश् भी पढ़ाते थे ।

श्री रामानन्द घोष- ये बंगाल से आए थे । इन्होंने अपना सारा जीवन म०वि० को दिया । ये छात्रों को इंग्लिश् पढ़ाते थे । अन्तिम समय तक म०वि० में सेवारत रहे ।

श्री मुरारीलाल शर्मा- ये म०वि० में भोजन-भंडार के अध्यक्ष रहे । वर्षों तक यहाँ भंडारी रहे और सेवाकार्य किया। इनके दो पुत्र- प्रकाशचन्द्र वैद्य और देवप्रकाश म०वि० से स्नातक होकर दिल्ली के प्रसिद्ध वैद्यों में रहे । इन्होंने सामाजिक क्षेत्र में आर्यसमाज का अच्छा काम किया । प्रकाशचन्द्र जी कई वर्षों तक म०वि० सभा के मंत्री रहे । इनके छोटे भाई देवप्रकाश का सड़क-दुर्घटना में देहान्त हो गया था ।

श्री रणवीर सिंह जी (भाई जी)- ये गुरुकुल म०वि० में व्यायाम में प्रशिक्षण हेतु प्रतिवर्ष २ या ३ मास म०वि० में रहते थे और लाठी-तलवार-गदका-बनेटी आदि व्यायाम सिखाते थे । ये कन्या गुरुकुल हाथरस, पोरबन्दर कन्या गुरुकुल आदि में भी अपना समय देते थे और वहाँ व्यायाम की शिक्षा देते थे ।

श्री रामशरण वानप्रस्थी- ये पंजाब के एक संभ्रान्त परिवार से संबद्ध थे । ये गुरुकुल में आनन्द आश्रम के ऊपर की कुटिया में रहते थे । वहाँ साधना ध्यान आदि करते थे । बहुत उदार व्यक्ति थे ।

श्री आशाराम वानप्रस्थी- ये सपरिवार गुरुकुल में कई वर्ष रहे । इन्होंने अपने पुत्र को म०वि० में भर्ती कराया । उसका नाम विनोद था । बाद में ये वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर चले गए और वहीं रहे ।

श्री राजेन्द्र नाथ शास्त्री- ये म०वि० के स्नातक थे । ये बाद में श्री स्वामी सच्चिदानन्द योगी के नाम से प्रसिद्ध हुए । इन्होंने गौतमनगर दिल्ली में एक गुरुकुल खोला था । आजकल इसके आचार्य श्री हरिदेव आचार्य हैं । इसमें इस समय ३००-४०० विद्यार्थी हैं । यह इस समय बहुत उन्नति पर है । इनके पुत्र ने अभी श्रद्धानन्द कालेज, दिल्ली से रिटायर्ड होकर दिल्ली को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया है । ये योग्य और प्रतिभाशाली विद्वान् हैं । इन्होंने गौतमनगर गुरुकुल खोलने से पहले यमुना के तट पर वेद विद्यालय की स्थापना की थी । जिसके छात्रों में श्री आचार्य भगवान् देव (बाद में स्वामी ओमानन्द बने) थे । ये बाद में हरियाणा आर्यसमाज के नेता, गुरुकुल झज्जर के संस्थापक और नरेला कन्या गुरुकुल के संस्थापक तथा संचालक रहे । स्वामी ओमानन्द जी ने अपनी सारी संपत्ति इन गुरुकुलों को दान में दे दी थी । आज भी हरियाणा में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के समीप इन्होंने योगग्राम के नाम से एक योगशिक्षा संस्थान स्थापित किया । आजकल यहाँ के संचालक स्वामी दिव्यानन्द जी हैं । ये देश और विदेश में योगशिक्षा के लिए बाहर जाते रहते हैं । ये मारीशस और दुबई आदि भी योगशिक्षा के लिए जाते रहते हैं ।

म० वि० के आचार्य और अध्यापक

श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ- गुरुकुल की स्थापना के पश्चात् यहाँ पर आचार्य का कार्यभार श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी ने संभाला । श्री शुद्धबोधतीर्थ जी ने गुरुकुल के कुलपति होने के अतिरिक्त सैकड़ों विशिष्ट छात्रों को महाभाष्य आदि का उद्‌भट विद्वान् बनाया । उनकी शिष्य-परंपरा में स्वामी वेदानन्द तीर्थ (ये नारायण स्वामी जी के देहान्त के बाद वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के अध्यक्ष बने), श्री रामेश्वरानन्द जी लोकसभा के सांसद और सार्वदेशिक सभा के अधिकारी बने । श्री देवदत्त जी शर्मोपाध्याय संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में वेद और व्याकरण के अध्यक्ष रहे ।

श्री दर्शनानन्द जी द्वारा खोले गए गुरुकुलों में- १. गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर शिक्षाक्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखता है । २. सिकन्दराबाद संस्कृत विद्यालय के रूप में आज भी विद्यमान है । किन्तु यहाँ से चलकर यह गुरुकुल

फर्रुखाबाद पहुँचा । यहाँ से यह गुरुकुल वृन्दावन पहुँचा । यहाँ क्रान्तिकारी नेता राजा महेन्द्रप्रताप ने गुरुकुल को भूमिदान देकर संस्था को शक्तिशाली बनाया । आज भी यह गुरुकुल आर्य-प्रतिनिधि सभा उ०प्र० के संरक्षण में चल रहा है । ३. कन्या गुरुकुल सासनी (हाथरस) भी स्वामी जी की प्रेरणा से स्थापित हुआ था । यह अच्छी स्थिति में चल रहा है । वहाँ श्रीमती लक्ष्मीदेवी जी के पश्चात् प्रो० महेन्द्रप्रताप शास्त्री जी और उनकी पत्नी ने अपनी शिष्या कमला को आचार्य पद पर नियुक्त किया और आज कन्या गुरुकुल हाथरस अच्छी स्थिति में अपना कार्य कर रहा है । ४. पोठोहार गुरुकुल पाकिस्तान में चला गया । ५. सूर्यकुण्ड बदायूं आज भी संस्कृत विद्यालय के रूप में विद्यमान है । यहाँ के शिष्यों में आचार्य विशुद्धानन्द शास्त्री आदि उद्‌भट विद्वान् हैं । इनकी ही देखरेख में बदायूं गुरुकुल का कार्य संचालन हो रहा है ।

शिक्षाक्षेत्र में गुरुकुल को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी, जो त्यागी, तपस्वी और विद्वान् हों । उस समय इन पंच पांडवों श्री नरदेव शास्त्री, पद्मसिंह शर्मा, शुद्धबोध तीर्थ जी और भीमसेन शर्मा आदि विद्वानों ने गुरुकुल की भूमि में बैठकर गुरुकुल का संचालन कर एक प्रक्रिया प्रारम्भ की, जिसमें अपनी शिक्षाविधि, रीति-नीति चलाकर और विद्यार्थियों को विद्वान् बनाया जाय । विद्याभास्कर एवं आयुर्वेदभास्कर दो धाराएं चलाईं । किन्तु हमारे विद्वानों ने यह विचार-विमर्श भी किया कि परीक्षाओं की मान्यता के बिना विद्यार्थी का बाजारभाव क्या बनेगा, अतः म०वि० की परीक्षाओं को प्राथमिकता देकर इसमें उत्तीर्ण होना अनिवार्य किया गया, तथा वाराणसेय सं०वि०वि० की शास्त्री और आचार्य परीक्षा विकल्प के रूप में रखी गईं। इस प्रकार म०वि० के स्नातक को आन्तरिक और बाह्य परीक्षाओं में योग्यता प्राप्त करनी अनिवार्य रखी । परिणामतः उस समय के विद्वान् भारत में अपना एक प्रमुख स्थान रखते थे । इस प्रकार म०वि० के स्नातकों का विद्वानों में एक अच्छा स्थान था। उनमें पं० हरिदत्त शास्त्री, आचार्य के रूप में रहे । नरदेव शास्त्री जिनकी प्रतिभा से गुरुकुल यशस्वी बना । इसके साथ पं० भीमसेन शर्मा एवं शुद्धबोधतीर्थ जी का व्याकरण के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान माना जाता था ।

म०वि० की शिक्षा-प्रणाली में वेद, दर्शन, उपनिषद् , व्याकरण में योग्य होना अनिवार्य था । म०वि० के विशिष्ट स्नातकों में पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री वेदान्ताचार्य का संस्कृत-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान रहा । पं० विश्वनाथ पंचानन, इनका संस्कृत साहित्य के साथ-साथ जैन दर्शन पर अधिकार प्राप्त था । श्री रामावतार विद्याभास्कर रतनगढ़ (बिजनौर) निवासी का नाम दार्शनिक विद्वानों में महत्त्वपूर्ण स्थान था ।

आचार्य नरदेव शास्त्री- दाक्षिणात्य ब्राह्मणों में महाराष्ट्रीय विद्वान् आचार्य नरदेव शास्त्री का है, वे महाराष्ट्र से चलकर लाहौर आए और वहाँ से म०वि० ज्वालापुर में आए । आपने अपना सारा जीवन एक किसान की भूमि में कुटिया बनाकर व्यतीत किया । तबसे आज तक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में श्री नरदेव जी शास्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । सभी विद्वान् आपको श्रद्धा के भाव से देखते थे । जीवन में तप और त्याग की ये साक्षात् मूर्ति थे । म०वि० ज्वालापुर में रहकर सर्वत्र त्याग की प्रतिष्ठा की । श्री जवाहरलाल नेहरु, गोविन्द वल्लभ पन्त, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन जी आचार्य जी को जानते और मानते थे । १९५१ में देहरादून-ऋषिकेश से इन्हें कांग्रेस की ओर से विधानसभा का प्रत्याशी बनाया गया। भारी मतों से विजयी होकर ये ५ साल तक विधायक रहे । अगली बार पुनः प्रत्याशी बनाने के लिए पार्टी ने बहुत आग्रह किया पर आचार्य जी ने इस पद के लिए अपने को असमर्थ बताया और चुनाव नहीं लड़े । पं० जवाहरलाल नेहरु म०वि० की अर्धशताब्दी पर इनके आग्रह पर ही महाविद्यालय पधारे थे । यह उनके व्यक्तित्व का प्रभाव था । वह अपनी त्याग-तपस्या के कारण सबकी दृष्टि में संमानित माने जाते थे और सारे जीवन किसान की भूमि में रहकर वे जाति और समाज का कार्य करते रहे ।

इसी शृंखला में वाराणसी के एक पं० छेदीप्रसाद जी व्याकरणाचार्य का उल्लेख आवश्यक है । म०वि० में एक व्याकरण के विद्वान् की आवश्यकता थी । पं० काशीनाथ जी (गुरुजी) से एक पंडित मांगा गया और उन्होंने पं० छेदीप्रसाद जी व्याकरणाचार्य को म०वि० में भेजा । ये व्याकरण और दर्शन के अद्‌भुत विद्वान् थे । इन्होंने सारा जीवन म०वि० की सेवा

में ही व्यतीत किया।

श्री नन्दकिशोर शास्त्री- म०वि० के उच्चकोटि के विद्वानों में पं० नन्दकिशोर शास्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्हें डी०ए०वी० प्रबंध समिति ने अम्बाला बुलाया, पर शास्त्री जी ने यह कहकर मना कर दिया कि जब थोड़े से पैसे से अपना काम चलाना है तो अधिक के लालच में मैं डी०ए०वी० में नहीं जा सकता और उनकी मांग अस्वीकार कर दी। इसी प्रकार हरिद्वार स्टेशन के सामने एक साधुओं के अखाड़े वालों में म०वि० से अपने यहाँ रखने के लिए उठा ले गए। ज्ञात होने पर म०वि० की शिष्टमंडली वहाँ गई और इन्हें अपने पास उठा लाई। ये अन्तिम समय तक म०वि० में ही रहे। इनके छोटे भाई पं० वागीश्वर जी व्याकरणाचार्य म०वि० के स्नातक हुए और म०वि० में अध्यापन और व्यवस्था-सम्बन्धी कार्यों, मुख्याधिष्ठाता, आचार्य पद पर वर्षों कार्य किया। आपके तीसरे भाई चन्द्रकान्त जी भी म०वि० में ही पढ़े, पर छोटी अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया।

पं० सत्यव्रत शास्त्री- (धामपुर, बिजनौर निवासी) म०वि० से स्नातक होकर म०वि० में ही सहायक अधिष्ठाता और प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों में सारा जीवन लगा दिया। इनके ३ पुत्र डॉ० विनय, डॉ० अश्विनीकुमार, डॉ० अरुण कुमार दिल्ली में अध्यापनकार्य में लगे रहे। शास्त्री जी की दो कन्याएं कुसुमलता शर्मा और सत्यभामा अध्यापन कार्य में दिल्ली में लगी रहीं। शास्त्री जी के दोनों दामाद रुद्रदत्त शर्मा और हरीशशर्मा भी दिल्ली में ही अध्यापन का कार्य करते रहे। शास्त्रीजी की धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णादेवी जी ज्वालापुर में अध्यापिका थीं। यहीं से अवकाश ग्रहण किया और धामपुर में आर्यसमाज के निकट मकान बनाकर रहीं। शास्त्री जी के चचेरे भाई श्री कान्तिचन्द्र शर्मा भजनोपदेशक के रूप में सारा जीवन आर्यसमाज की सेवा में लगा दिया। आपके सहयोगियों में श्री ऋषिरामजी भजनोपदेशक का प्रमुख स्थान रहा है। श्री ऋषिराम जी भजनोपदेशक ने अपने एकमात्र पुत्र बलजित् शास्त्री को म०वि० में पढ़ाकर स्नातक बनाया और ये पंजाब में शिक्षक के रूप में रहे। ये जालंधर में डी०ए०वी० कालेज के छात्रावास के अध्यक्ष भी रहे। वहाँ से आकर मेरठ में जिला सूचना विभाग के अधिकारी रहे। उनके ४ सुपुत्र और १ पुत्री थी। सबसे बड़े पुत्र श्री अशोक चौहान और श्री आनन्द चौहान शिक्षाक्षेत्र में अपने दो छोटे भाइयों के साथ सराहनीय कार्य कर रहे हैं। आपके द्वारा स्थापित एमिटी यूनिवर्सिटी दिल्ली में नोएडा तथा साकेत में एवं गोमती नगर लखनऊ में बहुत विशाल रूप में कार्य कर रही है। इसका प्रबन्ध आपकी पत्नी अमिता चौहान की देखरेख में चल रहा है। आपके बाबा श्री ऋषिराम जी आर्यसमाज के प्रचारक थे। उस साधारण स्थिति से उठकर यह परिवार आज साधन-सम्पन्न है और करोड़ों की सम्पत्ति का स्वामी है। इनके पिता श्री बलजित् शास्त्री महाविद्यालय के स्नातक थे और श्री अशोक चौहान संप्रति महाविद्यालय के कुलाधिपति हैं।

श्री पं० रामदत्त जी शास्त्री- म०वि० के स्नातकों में प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के रूप में विख्यात संस्कृत साहित्य के अद्भुत विद्वान् थे। इन्होंने म०वि० में अधिष्ठाता और शिक्षक के रूप में कार्य किया। तत्पश्चात् ये अनूपशहर डी०ए०वी० कालेज में अध्यापन कार्य करते रहे। ये श्री प्रकाशवीर शास्त्री के चाचा लगते थे।

श्री जयनारायण शास्त्री- ये अजमेर के निवासी थे। म०वि० से स्नातक होने के बाद म०वि० कार्यालय को व्यवस्थित करने में आपका प्रमुख स्थान रहा। म०वि० की बहुत लंबे समय तक सेवा करने के बाद आप अपनी पत्नी के आग्रह पर ये म०वि० छोड़ अजमेर चले गए और अन्तिम समय तक वहीं रहे। समय-समय पर महाविद्यालय आते रहते थे।

आचार्य वागीश्वर जी- म०वि० से स्नातक होकर म०वि० में अधिष्ठाता पद पर रहे, उसी समय पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री म०वि० के आचार्य रहे। इसी समय भारत-विभाजन होने पर लाखों शरणार्थी इधर से उधर हुए। इस संकट की स्थिति में आपने महाविद्यालय संस्था को बचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

डॉ० श्रुतिकान्त शास्त्री- ये गोवर्धनपुर, लक्सर के निवासी हैं। आपका पूरा परिवार म०वि० का स्नातक है। ये

महाविद्यालय की सेवा में निरन्तर लगे रहे। आप महाविद्यालय के अधिष्ठाता रहे।

पं० हरिशंकर जी शास्त्री- आप म०वि० के पुराने स्नातक थे। बिजनौर के निवासी थे। ये म०वि० में अध्यापन कार्य करते हुए, म०वि० की सहायता के लिए बाहर भी जाते थे। आपके पुत्र श्री ओमप्रकाश जी ने बनारस से शास्त्री पास करने के बाद ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज से बी०एम०एस० पास किया और गुरुकुल डौरली (मेरठ) के आयुर्वेदिक कालेज में अध्यापक रहे और गाजियाबाद में चिकित्साकार्य किया। आजकल आप अपनी कन्या के पास मेरठ में रह रहे हैं। वहाँ चिकित्सा-कार्य करते हैं। इनके छोटे भाई वेदप्रकाश जी गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी में सेवारत रहे और वहीं उनका देहान्त हुआ। तीसरे भाई ऋषिप्रकाश बी०एम०एस० करने के बाद वहीं कार्यरत रहे।

पं० भगीरथ जी शास्त्री- महेवड़ कलां (रुड़की) के निवासी थे। यहीं से ही पं० बलदेव शास्त्री, डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री म०वि० के ही स्नातक थे। श्री पं० भगीरथ शास्त्री बहुत लंबे समय तक महाविद्यालय की सेवा में रहे। ये कुछ समय के लिए गुरुकुल कांगड़ी में भी अध्यापन कार्य करने गए। पं० भगीरथ जी के दो पुत्र- लोकनाथ और ऋषिप्रकाश हैं। लोकनाथ अमेरिका में एक फार्मेसी चला रहे हैं और ऋषिप्रकाश हैदराबाद में सरकारी सेवा में हैं।

महाविद्यालय के प्रचारक/उपदेशक/शास्त्रार्थ-महारथी

महर्षि दयानन्द की प्रचार-शैली में शास्त्रार्थ-युग

महर्षि दयानन्द- प्राचीन परंपरा में खंडन-मंडन का युग बौद्ध और जैन धर्म से प्रारम्भ होता है। शंकराचार्य ने इन सभी मतवादियों का मान-मर्दन अपने शंका-समाधानों और शास्त्रार्थों से किया। उसी परंपरा को जीवित रखते हुए महर्षि दयानन्द ने नए युग का प्रारम्भ किया। परिणामतः गुरुवर विरजानन्द जी ने दयानन्द को वैदिकधर्म की रक्षा-हेतु एक आदेश दिया कि वैदिक धर्म का लोप हो रहा है। तुम उसे बचाने के लिए कृतसंकल्प होकर लगो। स्वामी दयानन्द ने देश में बढ़ते हुए अनाचार को देखकर शास्त्रार्थ युग की घोषणा की और बिगड़े हुए मतवादियों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। संस्कारहीन समाज सुसंस्कृत बनाने के लिए सोलह संस्कारों की विधि संस्कारविधि की रचना की। विकृत हुए समाज को सही दिशा देने के लिए सत्यार्थप्रकाश जैसे अमूल्य ग्रन्थ का निर्माण किया। खंडन-मंडन की दृष्टि से सत्यार्थ-प्रकाश को दो भागों में विभाजित कर प्रथम १ से १० तक हमें क्या करना चाहिए। इस पर विचार लिखा। अपने घर में विकृत हुए बौद्ध-जैन और चार्वाक मत को लेकर ११ और १२वें समुल्लास की रचना की। इसके पश्चात् घोर कठोर मतवादी ईसाई और मुसलमानों पर प्रहार किया और इसके लिए वैदिक ग्रन्थों का प्रमाण देना पर्याप्त समझा। परन्तु सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम ४ पृष्ठों में मैं क्या मानता हूँ, इस पर स्वतंत्र मन्तव्य लिखकर अपनी बात स्पष्ट की। इस तरह ऋषि दयानन्द ने अपने वैदिक अनुयायियों को चार विभागों में रखा-

१. दार्शनिक दृष्टि से जिन विद्वानों ने विरोधियों से टक्कर ली, उनमें पं० बिहारीलाल शास्त्री, अमरस्वामी जी महाराज, पं० रामचन्द्र देहलवी, पं० व्यासदेव शास्त्री, पं० रुद्रदत्त शास्त्री और शास्त्रार्थ-महारथी पं० ओम्प्रकाश शास्त्री प्रमुख हैं।

२. संस्कृत के वैदिक साहित्य के विद्वान् पं० उदयवीर शास्त्री, पं० हरिदत्त जी शास्त्री और डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आदि वैदिक विद्वानों ने की है, जिन्होंने घूम-घूमकर विरोधी मतवादियों को अपनी बात मनवाने के लिए प्रयत्न किया। उनमें श्री रमेशचन्द्र शास्त्री (अजमेर), श्री विशुद्धानन्द जी (बदायूं), श्री शिवकुमार शास्त्री (हरदोई) के नाम प्रमुख हैं।

३. एक शृंखला उन विद्वानों की है, जिन्होंने पत्रकार के रूप में लेखन के द्वारा लोगों को समझाने का प्रयत्न किया।

४. इसके अतिरिक्त एक ऐसे विद्वानों की शृंखला है। जिन्होंने संस्कारों के माध्यम से, हवन-पूजा-पाठ के द्वारा

लोगों को सच्चरित्रता का पाठ पढ़ाया । इसके अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी विद्वानों का था, जिन्होंने गुरुकुलों के माध्यम से शिक्षा-जगत् में नई हलचल पैदा की । ऐसे विद्वानों में पं० सत्यव्रत जी शास्त्री (रामपुर), पं० वागीश्वर जी शास्त्री, पं० विश्वंभरदत्त शास्त्री, नारायणदत्त शास्त्री जैसे विद्वान् हैं । इसके अतिरिक्त एक वर्ग उन विद्वानों का है, जो व्यायाम-प्रदर्शन आदि के द्वारा शारीरिक और बौद्धिक चेतना प्रदान कर रहा था । उसमें श्री सुरेन्द्र शुक्ल (सीतापुर), विश्वपाल जयन्त (कोटद्वार), रुद्रदत्त और सुखदेव एवं देवव्रत जैसे लोगों ने शारीरिक और बौद्धिक चेतना जागृत की ।

इस तरह से महर्षि दयानन्द के सपनों का भारत बनाने में आर्यसमाज के विद्वानों ने महान् कार्य किया । उदाहरण के रूप में २०० से अधिक गुरुकुलों और कन्या गुरुकुलों में बच्चों में नए संस्कार डालकर सुसंस्कृत बनाया । आज देश में जो जन-जागरण हुआ, उसमें स्वामी दयानन्द के विचारों का प्रभाव अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है । भारत के विद्वानों में वैदिक कर्मकाण्डों की मान्यता, जो देश को विकृति की ओर ले जा रही थी, स्वामी दयानन्द की वैदिक मान्यताओं ने उन्हें सही दिशाबोध कराया और लुप्त होते हुए वैदिक धर्म को नए युग में लाने के लिए सोचने को बाध्य किया । इसमें महर्षि दयानन्द की प्रणाली ने किसी को बुरा-भला न कहकर उन्हें नया मार्गदर्शन किया । आज सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक दृष्टि से मानव को अच्छाई-बुराई में अन्तर को सोचने के लिए बाध्य किया । इस शृंखला में शिक्षाक्षेत्र से जुड़े हुए गुरुकुलों, शिक्षा-संस्थानों, कन्या गुरुकुलों आदि ने देश को बदलने में महान् कार्य किया है । इस प्रकार आर्यसमाज के वैदिक विद्वानों का देश और समाज ऋणी रहेगा ।

देश की आजादी के लाने में आर्यसमाज के विद्वानों का महान् योगदान रहा है । वैदिक साहित्य के विद्वत्-रूप को आर्यसमाज के वैदिक विद्वानों ने वेदों का भाष्य करके परिष्कृत रूप दिया । जिनमें प्रमुख हैं- स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, पं० सातवलेकर जी, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, आचार्य डॉ० कपिलदेव द्विवेदी और भारत के अन्य वैदिक विद्वानों ने साहित्य की रचना कर महान् कार्य किया है ।

श्री महेशचन्द्र शास्त्री और प्रकाशचन्द्र त्यागी- सरल संस्कृत के प्रचार और प्रसार हेतु श्री के०एम० मुंशी ने भारतीय विद्याभवन बम्बई ने जो योजना बनाई, उसको क्रियान्वित करने में श्री पं० महेशचन्द्र शास्त्री (भुसावल) ने परीक्षामंत्री के रूप में विशेष योगदान किया । इनके सहयोगी के रूप में श्री प्रकाशचन्द्र त्यागी सहायक शिक्षामंत्री के रूप में सहायक रहे। ये दोनों व्यक्ति संस्कृत और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में प्रगतिशील रहे ।

डॉ० गोपालदत्त शास्त्री- गुरुकुल के प्रतिभाशाली स्नातकों में से एक थे । ये आर्य प्रतिनिधिसभा उ०प्र० के प्रचारक के रूप में श्री प्रकाशवीर शास्त्री के साथ रहे और आर्यमित्र के संपादक का पूरा काम करते रहे । यहाँ से वे डी०ए०वी० कालेज लखनऊ में अध्यापक रहे । फिर एक वर्ष लखनऊ वि०वि० में अध्यापन किया । इसके बाद लखनऊ के शिया कालेज में भी कुछ समय अध्यापन किया । उस समय दिल्ली वि०वि० के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० नगेन्द्र ने गोपालदत्त शास्त्री को दिल्ली वि०वि० में अध्यापन के लिए बुला लिया । वे अन्तिम समय तक दिल्ली वि०वि० में अध्यापन कार्य करते रहे ।

गोपालदत्त जी की बड़ी सुपुत्री डॉ० आशा जोशी पश्चिम विहार के पंजाबी बाग स्थित एक कालेज में हिन्दी विभाग में रीडर के रूप में कार्यरत हैं । दूसरी पुत्री सत्यवती कालेज, दिल्ली कामर्स में लेक्चरर है । उसके पति वहीं इंग्लिश् विभाग में लेक्चरर हैं ।

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी- म०वि० के स्नातकों में जो वैदिक साहित्य की रचना में डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने जो योगदान दिया । वह अद्वितीय है । वैदिक साहित्य पर अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें से अधिकतर पुरस्कृत हो चुके हैं। आज भी प्रतिवर्ष एक नया ग्रन्थ वैदिक साहित्य और हिन्दी साहित्य को देते रहते हैं ।

पं० प्रकाशवीर शास्त्री- आर्यसमाज के क्षेत्र में पं० प्रकाशवीर शास्त्री का महान् योगदान है। उन्होंने लोकसभा सदस्य के रूप में अद्भुत कार्य किए हैं, यदि वे आज जीवित होते तो भारत के राजनीतिज्ञों में उनका प्रमुख स्थान होता। खेद है कि वे ट्रेन दुर्घटना में काल-कवलित हो गए।

ब्र० दयानन्द- प्राचीन परंपरा के बाद एक नए व्यक्तित्व का आना आर्यसमाज के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह क्रान्तिकारी परिवार हरदोई के पं० रघुनन्दन शर्मा के नाम से जाना जाता है। इस परिवार में गुरुकुल म०वि० से १२ स्नातक हुए। इनमें प्रमुख थे ब्र० दयानन्द। जो हैदराबाद सत्याग्रह के जत्थे में गए थे और वहाँ से आते ही दिवंगत हो गए और शहीदों में अपना नाम लिखवा गए।

डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री- ब्र० दयानन्द के लघुभ्राता डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री म०वि० से स्नातक होकर हैदराबाद सत्याग्रह में भूमिगत होकर कार्य करते रहे। श्रीमती इन्दिरागांधी ने लाला रामगोपाल शालवाले के सुझाव पर हैदराबाद सत्याग्रह को धार्मिक-राजनीतिक सत्याग्रह मानकर स्वतंत्रता-सेनानी घोषित किया।

डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री आर्यसमाज की इस पीढ़ी के एक उभरते हुए प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं, जिन्होंने गुरुकुल से निकलने के बाद आर्यप्रतिनिधि सभा उ०प्र० के उपदेशक के रूप में कार्य किया और १० वर्ष मंत्री रहे। १९७१ में लाला रामगोपाल शालवाले इन्हें लखनऊ से दिल्ली लाए। वे सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे और शास्त्री जी को मंत्री पद पर नियुक्त किया। ये ३० साल मंत्री रहे। मंत्री रहते हुए इन्होंने वैदिक साहित्य, आर्यसमाज का इतिहास और जो अन्य साहित्य की रचना का कार्य किया, वह अनुपम है और आदर्श है। डॉ० शास्त्री की पत्नी का १९६० में देहान्त हो जाने के बाद उन्होंने केवल आर्यसमाज और वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है। आजकल म०वि० अपनी शताब्दी मनाने जा रहा है। उसके कार्य की पूर्ति में वे पूर्णरूप से संलग्न हैं। वे आजकल दिल्ली, वाराणसी और महाविद्यालय से जुड़कर महाविद्यालय के इतिहास के लिखने में डॉ० कपिलदेव द्विवेदी के साथ लगे हैं। वे इतिहास और स्मारिका दोनों का समन्वित कार्य एक साथ तैयार कर रहे हैं।

***

पता- १. पूर्व महामंत्री, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली।
२. गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)

> इस लोक में जो देनेवाला है वही उत्तम है जो लेनेवाला है वह अधम है और जो चोरी से प्राप्त करने वाला है वह निकृष्ट है।
>
> (ऋग्वेद)

गुरुकुल के प्रधान : परम दानवीर

श्री पं० हरवंशसिंह 'वत्स'

- डॉ० हरिगोपाल शास्त्री

अक्षय तृतीया सं० १९६४ विक्रमी को तार्किक-शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की सुप्रसिद्ध शिक्षण-संस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रधान पद पर प्रतिष्ठित परम दानवीर श्री पं० हरवंश सिंह 'वत्स' एक ऐसे दानशील और ज्ञानशील व्यक्तित्व हैं जिस पर गुरुकुलीय-परिवार को हर्षानुभूति ही नहीं, अपितु गौरवानुभूति होती है। ऐसे दानी, मानी, ज्ञानी, पुण्य पुरुष इस संसार में अत्यन्त दुर्लभ होते हैं, जो सदैव दूसरों के दुःखों का हरण कर सुखों को प्राप्त कराते हैं। श्री पं० हरवंश सिंह 'वत्स' ऐसे ही परोपकारी व्यक्ति हैं।

इन परोपकारी महापुरुष का जन्म ग्राम समालका दिल्ली- ३७ में श्री पं० भगवान सिंह 'वत्स' के घर श्रीमती भुनिया देवी की कोख से हुआ। माता-पिता के संस्कार ही बालक को विरासत में प्राप्त हुए और आगे चलकर यह एक धार्मिक प्रवृत्ति के महापुरुष बने। इसी प्रवृत्ति ने "कर भला हो भला" जैसी भव्य भावना पूर्णरूपेण इनके मन-मानस में जागृत की।

श्री पं० हरवंशसिंह 'वत्स' ने अपने जीवन में न जाने कितने पुण्य-कर्म किए हैं। ये संसार का कल्याण करने के लिए द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ एवं ज्ञान यज्ञ करते रहते हैं। जिसका प्रतिफल भी आपको इस जीवन में प्राप्त हो रहा है।

"**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**" का पालन करते हुए आपने गुरुकुल ज्वालापुर में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद जैसे महायज्ञों का अनेकों बार अपने यजमानत्व में आयोजन कराया है। आप प्रतिवर्ष गायत्री, महामृत्युञ्जय तथा सोमयाग जैसे महायज्ञों का भी आयोजन करते रहते हैं। आप स्वाध्याय से ही यज्ञ-पुरुष हैं।

आप जब से महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रधान बने, तब से ही अनवरत महाविद्यालय ज्वालापुर के स्वरूप को बदलने में प्रयासरत हैं। आपने अपने सात्त्विक दान से महाविद्यालय के जीर्ण-शीर्ण भवनों का संरक्षण ही नहीं किया, अपितु कृषि भूमि हेतु एक ट्रैक्टर का भी दान किया। आपने गुरुकुल परिसर में गोशाला, भोजनशाला का जीर्णोद्धार अपने सात्त्विक दान से कराया। इसी के साथ दर्शनानन्द घाट का भी पुनर्निर्माण सन् २००३ ई० में, "हरिभवन" नामक अतिथिशाला सन् २००० ई० में तथा अपनी सहधर्मिणी श्रीमती मिश्रीदेवी की स्मृति में 'मिश्रीदेवी भवन' नामक विशाल एवं भव्य भवन सन् २००० में दस लाख रुपये में निर्माण कराकर महाविद्यालय सभा को समर्पित किया। इसी के साथ आपने एक 'डाकघर भवन' का निर्माण भी सन् १९९६ ई० में कराया। इस प्रकार समय-समय पर आप अपने दान से गुरुकुल की उन्नति में संलग्न रहते हैं। आपकी प्रकल्पना-शक्ति वास्तव में अद्भुत है।

आप उदारचेता, हँसमुख स्वभाववाले, वयोवृद्ध विद्वान् हैं। आप गुरुकुल को अपना घर ही मानते हैं और गुरुकुल परिसर के वासियों को अपने परिवार का सदस्य। आप सहायता करने में सदैव संलग्न रहते हैं।

आपके चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। पुत्र-पौत्रों सहित आपका परिवार अत्यन्त सुखमय वातावरण में जीवन-यापन कर रहा है।

गुप्तदान देना, घर में आए हुए का सत्कार करना, भलाई करके चुप रहना और सभा में दूसरों के किए उपकार को बतलाना, सम्पत्ति होने पर गर्व न करना, दूसरों की निन्दा न करना आदि आपके जीवन के आदर्श हैं।

वृक्ष जब फलयुक्त हो जाते हैं, तब फलों के भार से झुक जाते हैं। मेघ जब नये जल से युक्त हो जाते हैं, तब जल के भार से दूर तक झुक जाते हैं। ये दूसरे के प्रयोजन के लिए ही झुकते हैं, न कि अपने प्रयोजन के लिए। इनका यह स्वाभाविक धर्म है। उसी प्रकार श्री पं० 'वत्स' जी भी परोपकार में ही निरत रहते हुए नम्रतापूर्वक दूसरों का उपकार करते हैं।

नीतिशतक का निम्न श्लोक वस्तुतः आपके जीवन पर पूर्ण रूप से चरितार्थ होता है-

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूर-विलम्बिनो घनाः ।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।

ऐसे परोपकारी महामानव के दीर्घायुष्य एवं सुस्वास्थ्य के लिए मंगलकामनाएं हैं।

***

पता- प्राचार्य, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

प्रेरक प्रसंग-

इन उपहारों को वापस ले जाइए

आर्यसमाजी नेता पं० प्रकाशवीर शास्त्री संसद् में प्रायः हिन्दी को उपयुक्त स्थान दिलाने तथा भारतीय संस्कृति के मानबिन्दुओं को संरक्षण दिए जाने पर अपने भाषणों में बल दिया करते थे। इसके अलावा वे जनहित के प्रश्न उठाने में भी आगे रहा करते थे।

एक बार हैण्डलूम-पावरलूम से बने कपड़े पर सरकार ने कर लगा दिया। महाराष्ट्र, गुजरात तथा उत्तर प्रदेश के लघु उद्यमियों के प्रतिनिधिमंडल ने दिल्ली आकर शास्त्रीजी से भेंट की तथा उन्हें बताया कि यदि इस सस्ते कपड़े पर कर लगाया गया तो वह मिल के कपड़े के मुकाबले महंगा हो जाएगा। लघु इकाइयाँ बन्द हो जाने से देश के हजारों कारखाने ठप्प हो जाएंगे। लाखों बुनकरों को भी भुखमरी का शिकार होना पड़ेगा। शास्त्रीजी ने लोकसभा में प्रभावी ढंग से हैण्डलूम निर्मित कपड़े को करमुक्त किए जाने की मांग की। परिणामतः सरकार ने उसे करमुक्त करने की घोषणा कर दी।

कुछ दिन बाद लघु उद्यमियों का प्रतिनिधिमंडल शास्त्रीजी को धन्यवाद देने के लिए उनके केनिंग लेन (नई दिल्ली) स्थित निवास स्थान पर पहुँचा। लघु उद्यमी महाराष्ट्र में बनी कुछ धोतियाँ, कपड़े के थान तथा अन्य कुछ उपहार भी साथ लाए थे। उन्होंने आभार व्यक्त करने के बाद जैसे ही ये वस्तुएं शास्त्रीजी के सामने रखीं कि उन्होंने कहा- 'मुझे सांसद् के नाते अच्छा वेतन व भत्ता मिलता है। घर से खेतों का अनाज आ जाता है। धोती-कुरते आदि वस्त्र मैं सीमित संख्या में पास में रखता हूँ। अतः मैं इन वस्तुओं का क्या करूंगा। आप इन्हें वापस ले जाइये। शास्त्रीजी ने विनयपूर्वक तमाम उपहार वापस लौटा दिए। वे कहा करते थे- 'सांसदों, विधायकों को अपना आचरण शुद्ध रखना चाहिए। तभी वे सच्चे जनप्रतिनिधि कहलाने के अधिकारी माने जाएंगे।

पं० उदयवीर शास्त्री

दर्शन एवं संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ विद्वान् , साहित्य-शिरोमणि, स्वतंत्रता-सैनानी, वेदरत्न पं० उदयवीर जी शास्त्री का जन्म पौष शुक्ला दशमी, दिन रविवार, सं० १९५२ विक्रमी तदनुसार ६ जनवरी सन् १८९५ ई० को जिला बुलन्दशहर के बनैल नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री पूर्णसिंह तथा माता का नाम श्रीमती तोफा देवी था। इनका विवाह नाहन स्टेट के सम्पन्न राजपूत परिवार में हुआ। इस परिवार का भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इनके केवल तीन पुत्रियाँ ही हैं।

शास्त्री जी जब लगभग ८ वर्ष के थे तो सन् १९०४ में गुरुकुल सिकन्दराबाद में प्रविष्ट हुए। सन् १९०७ में जब उ०प्र० को संयुक्त प्रान्त आगरा और अवध प्रान्तीय सभा ने अपने अधिकार में लिया तो, यह गुरुकुल-सेठ पन्नालाल के विशाल मैदान तथा बाग में फर्रुखाबाद चला गया। अतः शास्त्री जी भी फर्रुखाबाद चले गये। सन् १९१० में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट हो गये।

जिस समय शास्त्री जी महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए तो उनकी आयु लगभग १६ वर्ष थी, जबकि उस समय गुरुकुल में प्रवेश की आयु न्यूनतम आठ वर्ष तथा अधिकतम १०वर्ष था किन्तु, क्योंकि शास्त्री जी ने पहले गुरुकुल सिकन्दराबाद में ही शिक्षा पाई थी। इसलिए इनको नियम में शिथिलता करते हुए उस समय की सर्वोच्च श्रेणी चतुर्थ में प्रवेश करा लिया गया।

यद्यपि उस समय यहाँ १२ वर्षों में स्नातक होते थे, किन्तु शास्त्री जी यहाँ आने के आठ वर्ष बाद १९१७ ई० में स्नातक हो गये। महाविद्यालय की परीक्षाओं के अतिरिक्त शास्त्री जी ने पहली परीक्षा सन् १९१३ में व्याकरण से मध्यमा दी और सन् १९१४ में कलकत्ता की मध्यमा परीक्षा दी। साथ ही इसी वर्ष बनारस की वेदान्ताचार्य की प्रथम खण्ड की परीक्षा भी दी। सन् १९१५-१६ में कलकत्ता की क्रमशः न्यायतीर्थ तथा सांख्यतीर्थ की परीक्षाएं दीं। सन् १९१७ ई० में पञ्जाब वि०वि० की शास्त्री परीक्षा दी। इस बीच प्रतिवर्ष बनारस की वेदान्ताचार्य की परीक्षा भी देते रहे। वेदान्ताचार्य के पाँच खण्ड ही दे पाये थे कि महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के कारण बनारस जाकर भी ये अन्तिम खण्ड की परीक्षा न दे सके। किन्तु आचार्यों ने बाद में बिना परीक्षा के ही इन्हें वेदान्ताचार्य (पूर्ण) की डिग्री प्रदान कर दी।

वेदरत्न और शास्त्रशेवधि ये दो उपाधियाँ इन्हें महाविद्यालय के १३वें महोत्सव पर आये हुए श्री १००८ श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज, शंकराचार्य गोवर्धन-पीठ ने ससम्मान प्रदान की। इस प्रकार शास्त्री जी ने अपनी अल्पवय में ही शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योग्यता एवं उपाधियाँ प्राप्त कर लीं थीं।

शास्त्री जी ने महाविद्यालय में आचार्य पं० गंगादत्त जी, पं० नरदेव जी शास्त्री, पं भीमसेन जी शास्त्री, पं० दिलीपदत्त जी उपाध्याय, पं० पद्मसिंह तथा पं० काशीनाथ जी से दर्शन, न्याय, व्याकरण, साहित्य, वेद, निरुक्त आदि विषयों का गहन अध्ययन किया।

लाहौर में

सितम्बर सन् १९२१ को शास्त्री जी महाविद्यालय छोड़कर नेशनल कालेज लाहौर में प्राध्यापक पद पर चले गये। वहाँ वे छात्रों को साहित्य और दर्शन पढ़ाते थे। इस समय इन्होंने महान् क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह जैसे देशप्रेमी छात्रों को भी पढ़ाया।

सन् १९२१ के बाद महाविद्यालय को छोड़ने पर भी शास्त्री जी का महाविद्यालय के साथ सम्बन्ध बना ही रहा। वे यहाँ की अन्तरंग सभा के सदस्य भी रहे और बराबर चन्दा देते रहे। किन्तु बाद में महाविद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था की अनुकूलता न रहने के कारण उन्होंने महाविद्यालय की सदस्यता का परित्याग कर दिया।

नेशनल कालेज लाहौर का दूसरा नाम "कौमी महाविद्यालय" भी था। इस महाविद्यालय का प्रारम्भ लाला लाजपत राय तथा भाई परमानन्द जी ने महात्मा गाँधी जी की प्रेरणा से किया था। इसमें वे छात्र शिक्षा पाते थे, जिन्होंने गाँधीजी के आह्वान पर असहयोग आन्दोलन के समय स्कूलों और कालेजों का परित्याग कर दिया था।

यह विद्यालय केवल पाँच वर्ष ही चला, अतः सन् १९२५ ई० में शास्त्री जी डी०ए०वी० कालेज लाहौर से सम्बद्ध 'ब्राह्म महाविद्यालय' में अध्यापक पद पर आ गये। यहाँ पर शास्त्री जी उच्च कक्षाओं को दर्शन, साहित्य और व्याकरण पढ़ाते थे। इस समय लाहौर में रहते हुए शास्त्री जी की संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ० लक्ष्मणस्वरूप जी के साथ बड़ी घनिष्ठता रही।

दिसम्बर सन् १९२८ ई० में शास्त्री जी ने आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स में अपना एक शोधपत्र डॉ० लक्ष्मणस्वरूप जी की प्रेरणा से "एण्टीक्विटी आफ दि सांख्य- सूत्राज्" पढ़ा। जिसकी विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह लेख ओरियण्टल कान्फ्रेन्स की प्रोसीडिंग्स में भी प्रकाशित हुआ।

जिस समय साइमन कमीशन भारत आया और लाहौर पहुँचा तो लाला लाजपत- राय ने इसका विरोध किया तो लाठी वर्षा से घायल होकर लाला लाजपत राय जी की बाद में मृत्यु हो गयी। इस सबको कराने का उत्तरदायित्व पुलिस अधिकारी सॉन्डर्स पर था। अतः इसके प्रतिशोध रूप में भगतसिंह ने सॉन्डर्स को गोली से उड़ा दिया और भगतसिंह चाननसिंह सघाय नामक ग्राम में भूमिगत हो गये। पुलिस परेशान न करे, इस कारण शास्त्री जी ने अस्वस्थता के बाद त्याग-पत्र दे दिया। यह घटना सन् १९२९ के आरम्भ की है।

तब से लेकर सोलह वर्षों तक शास्त्री जी नाहन, देहरादून, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि अनेक स्थलों पर घूमते रहे। सन् १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय शास्त्री जी देहरादून में थे। इन १६ वर्षों में शास्त्री जी का क्रान्तिकारियों के साथ सीधा सम्पर्क रहा। इस बीच इन्होंने देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किए। इनके पास दो कार्यकर्ता थे-रामप्रसाद और जगदीश माथुर, जो सरकार के विरुद्ध पर्चे छापकर रातोंरात बाजार में चिपका देते थे। इस अवधि में शास्त्री जी की डाक पर भी सरकार ने सेंसर लगा दिया था। यह सेंसर ६ माह तक लगा रहा। किन्तु शास्त्री जी की दूरदर्शिता के कारण सरकार कोई भी प्रमाण इनके विरुद्ध पाने में असमर्थ रही।

वायसराय वारेन हेस्टिंग्स की ट्रेन को उड़ाने की योजना को बनाने वाले सम्पूर्णसिंह जी से शास्त्री जी का सीधा सम्पर्क था। वे एक बार शास्त्री जी के पास आये। उनके साथ श्रीमती भगवतीचरण भी थीं। इन दोनों को शास्त्री जी ने बहुत दिनों तक देहरादून तथा हरिद्वार छिपाये रखा। इसके कार्यान्वयन में शास्त्री जी के साले शेरसिंह भी थे, जो बहुत समय के बाद शास्त्री जी की दूरदर्शिता से जेल जाने पर भी कुछ सजा पर ही छूट गये। इन्होंने अपने मित्र जे०ए० चटर्जी (यतीन्द्र मोहन चटर्जी) से मिलकर उनके एक इन्सपेक्टर मित्र के द्वारा जेल में भी पूरी सुविधाएं प्रदान करायीं।

शास्त्री जी अपनी गतिविधियों के कारण पुलिस की दृष्टि में उस समय क्रान्तिकारियों की माँ के रूप में जाने जाते थे। पुलिस का विचार था कि क्रान्तिकारियों को शास्त्री जी हरसम्भव सहायता प्रदान करते हैं, किन्तु प्रमाण के अभाव में कभी पुलिस शास्त्री जी का कुछ नहीं बिगाड़ सकी।

सन् १९३७ में शास्त्री जी लाहौर गये और वहीं पर इन्होंने तीसरी पुस्तक सांख्यदर्शन का इतिहास सन् १९४७ तक पूरी की। इसके पूर्व ये दो पुस्तकें कौटिल्य अर्थशास्त्र (१९२५) और वाग्भटालंकार भी लिख चुके थे। जिस समय देश का विभाजन हुआ और साम्प्रदायिकता की आग धधकी, उस समय ही अपने बच्चों के साथ जुलाई १९४७ में ये अपनी ससुराल नाहन आ गये। ९, १० अगस्त को एक बार पुनः शास्त्री जी ने लाहौर से अपने पुस्तकालयादि को लाने का प्रयास किया, किन्तु टिकट-कन्डक्टर बाबू खैराती- लाल के मना करने पर वे लाहौर नहीं गये।

जिस समय ये लाहौर से आये तो अपने साथ केवल- ब्रह्मसूत्र (भामती टीका), सांख्यसूत्र (विज्ञानभिक्षु भाष्य) तथा एसियाटिक सोसायटी कलकत्ता से प्रकाशित सांख्य का व्यास भाष्य- ये तीन पुस्तकें तथा एक लोटा और एक सिलाई मशीन ही साथ ला सके। बाकी सब लाहौर में ही छूट गया। उस समय लाहौर में इनकी लगभग १५००० रु० की पुस्तकें थी। जिनके छूटने का किसी भी विद्वान् को दुःख होना स्वाभाविक ही था, किन्तु शास्त्री जी की अध्ययन-जिज्ञासा को देखकर आश्चर्य होता है कि आज भी उनके अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय में लगभग ६० हजार की उच्चकोटि की दार्शनिक एवं वैदिक साहित्य सम्बन्धी पुस्तकें हैं।

देश-विभाजन के अनन्तर अपनी ससुराल नाहन से ये कनखल में लंढौरा वालों के राजघाट के मकान में तीन चार वर्षों तक रहे। सन् १९५१ में इन्हें महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रधानाचार्य पद पर आमन्त्रित किया गया, जिसे इन्होंने स्वीकार कर लिया और सन् १९५३ तक प्रधानाचार्य पद पर कार्य करते रहे। इस समय इन्हें महाविद्यालय १५० रुपये मासिक वेतन देता था। डॉ० सूर्यकान्त जी सभा के प्रधान थे। डॉ० हरिदत्त जी के साथ शास्त्री जी के विचार नहीं मिलते थे, अतः उन्होंने डॉ० सूर्यकान्त जी को शास्त्री जी के विरुद्ध प्रेरित किया। जिससे डॉ० सूर्यकान्त जी ने महाविद्यालय में आमदनी के कम होने का कारण बताते हुए इनका वेतन केवल १२५ रु० कर दिया। इस पर भी इन्होंने कोई बुरा नहीं माना और कार्य करते रहे, किन्तु इन्होंने मन में महाविद्यालय को छोड़ने का निश्चय कर लिया था।

उसके पश्चात् करोड़पति सेठ रामगोपाल मोहता बीकानेर की सहायता से ये शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ बीकानेर में प्रधानाचार्य पद पर चले गये। साथ में परिवार को भी ले गये तथा महाविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया। इस प्रकार शास्त्री जी का सन् १९५४-५५ से महाविद्यालय के साथ सम्बन्ध पूर्ण रूप से समाप्त हो गया।

बीकानेर से शास्त्री जी सन् १९५८ ई० में सेवानिवृत्त हुए। उसके बाद ये विरजानन्द वैदिक शोध-संस्थान, संन्यास आश्रम, गाजियाबाद में आ गये। आप मीमांसा पर भाष्य लिख रहे थे जो पूर्ण न हो सका और आप दिवंगत हो गए।

शास्त्री जी द्वारा रचित ग्रन्थ- १. पांच दर्शनों के विद्योदय भाष्य (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त), २. सांख्य-सिद्धान्त, ३. सांख्यदर्शन का इतिहास, ४. वेदान्तदर्शन का इतिहास, ५. दि एज् ऑफ शंकर (इंग्लिश), ६. कौटलीय अर्थशास्त्र (हिन्दी रूपान्तर), ७. नय-चन्द्रिका, सम्पादन (कौटलीय अर्थशास्त्र की आंशिक प्राचीन संस्कृत टीका), ८. वाग्भटालंकार, संस्कृत हिन्दी व्याख्या। इनके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का संपादन किया है।

***

अपूर्व दार्शनिक पं० उदयवीर शास्त्री

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

विद्वत्-जगत् में पं० उदयवीर जी की ख्याति उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ 'सांख्य दर्शन के इतिहास' के कारण हुई। यह कालजयी ग्रन्थ १९५० में प्रकाशित हुआ था और उस पर लेखक को हरजीमल डालमिया डालमिया पुरस्कार मिला, बाद में तो पुरस्कारों की झड़ी सी लग गई। सांख्य दर्शन के इतिहास के बाद उन्होंने इसी शास्त्र पर दो ग्रन्थ और लिखे- सांख्य सिद्धान्त में कपिल-प्रोक्त इस दर्शन के मन्तव्यों की विस्तृत समीक्षा थी, जबकि सांख्यदर्शन के विद्योदय भाष्य में उन्होंने कपिल-रचित इस सूत्रात्मक ग्रंथ की विशद टीका लिखी थी। इसके बाद उन्होंने अवशिष्ट पांचों दर्शनों पर 'विद्योदय' नाम से पाण्डित्यपूर्ण भाष्य लिखे। अंतिम मीमांसादर्शन का भाष्य वे पूरा नहीं कर सके। इस भाष्य पर कोई भी आर्यविद्वान् पूरा भाष्य नहीं लिख पाया। पं० आर्यमुनि का आर्यभाष्य छः अध्याय पर्यन्त है, पं० तुलसीराम स्वामी मात्र पच्चीस सूत्रों का भाष्य लिख सके। उदयवीर जी का भाष्य अपूर्ण है, जबकि इसी मीमांसा शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने भी....पर्यन्त भाष्य लिखा और दिवंगत हो गये। केवल गयाशंकर शर्मा का गुजराती भाष्य पूरा मिलता है, किन्तु वह मात्र शब्दानुवाद ही है।

मैं जब पाली (राजस्थान) के गवर्नमेंट कालेज में था, एक सज्जन ने मुझे शास्त्री जी द्वारा रचित ये सभी भाष्य (मीमांसा के अतिरिक्त) पठनार्थ दिये और इनके स्वाध्याय से मैंने इन शास्त्रों के कथ्य को हृदयंगम किया, यद्यपि इससे पहले भी मैं अपने विद्यार्थी काल में अन्य आर्य विद्वानों के भाष्य पढ़ चुका था। शास्त्री जी से प्रत्यक्ष भेंट हेतु मैं जोधपुर के ठेकेदार स्व० केशरसिंह सांखला के साथ गाजियाबाद उनके निवास पर गया। उस समय हम दोनों सार्वदेशिक सभा की वार्षिक बैठक में भाग लेने आये थे और दिल्ली से गाजियाबाद दूर नहीं था। दिल्ली गेट गाजियाबाद के भीतर शास्त्री जी के किराये के मकान को तलाशने में हमें दिक्कत नहीं हुई। यहाँ हमने उन्हें अपनी बैठक में पुस्तकों के ढेर के बीच बैठे सारस्वत साधना में तल्लीन देखा। दीर्घकाल तक हम उनके अध्ययन-लेखन तथा शोध-कार्यों का रोचक विवरण उनके श्रीमुख से सुनकर अपूर्व तृप्ति पाते रहे। विद्वज्जनों की ऐसी रसमयी ज्ञान-चर्चा सुनने का लाभ भी भाग्यशालियों को ही मिलता है, अन्यथा निरर्थक वार्तालाप में समय गुजारने वालों की संख्या संसार में कौन सी कम है?

मैं १९६९ में अजमेर के गवर्नमैण्ट कालेज में आ गया। अगले ही वर्ष मैं परोपकारिणी सभा का सभासद् तथा संयुक्त- मंत्री चुन लिया गया। शास्त्री जी को मैंने अपनी शोधकृति 'संस्कृत भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन' का आलेख १९६६ के ऋषि मेले के अवसर पर अजमेर में ही दिखाया था तथा उनके सुझाव प्राप्त किये थे।

उस समय वे पं० भगवद्दत्त जी के साथ आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के हीरक जयन्ती के उत्सव में भाग लेने अजमेर आये थे और पं० युधिष्ठिर मीमांसक के अलवर गेट स्थित निवास पर ठहरे थे। मीमांसक जी ने इन विद्वानों के उनके घर पर ठहरने को 'घर बैठे गंगा का आना' कहा था, क्योंकि ऐसे शास्त्राभ्यास-निरत विद्वानों का आतिथ्य-सत्कार भी सबको सुलभ नहीं होता। इसके बाद शास्त्री जी भी परोपकारिणी सभा के सदस्य चुन लिये गये और सभा के वार्षिक अधिवेशनों में उनसे अजमेर में नियमित भेंट होती रही। मैंने अपनी शोधकृति में उनके शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके द्वारा लिखित शोधपत्रों का भी उल्लेख किया था। उन्होंने 'तिलकोपज्ञा आर्या' शीर्षक एक लेख लिखकर बताया कि किस प्रकार लोकमान्य तिलक जैसे विश्रुत विद्वान् ने स्वरचित एक श्लोक को ईश्वरकृष्ण-रचित 'सांख्यकारिका' की ७०वीं कारिका बताया। यह स्पष्ट ही सत्य का अपलाप था। शास्त्री जी ने अपने अन्य शोध-निबंधों की जानकारी मुझे दी, जिसे मैंने अपने शोध प्रबंध में उल्लिखित किया।

परोपकारिणी सभा में जब शास्त्री जी का आना होता था तो देर तक उनसे वार्तालाप करने का अपूर्व अवसर मिल जाता था। शास्त्री जी के लड़का नहीं था, उनके मात्र पुत्रियां ही थीं। उनके एक दामाद प्रो० गुलाबसिंह सेंगर मेरे सहकर्मी रहे थे, जब वे श्री महाराज कुमार कालेज जोधपुर में गणित विभाग में थे और मैं हिन्दी विभाग में नियुक्त होकर नया-नया कालेज शिक्षा-सेवा में आया था। शास्त्री-दम्पती को पुष्कर तीर्थ दिखाने का दायित्व जब सभा के विगत मंत्री श्रीकरण शारदा ने मुझे सौंपा तो मैंने पुष्कर में गाइड के रूप में उनके साथ रहकर वहाँ के दर्शनीय स्थानों का पुनरवलोकन किया।

अत्यन्त वार्धक्य के कारण शास्त्री जी को अपना निवास भी बदलना पड़ा। अब वे गाजियाबाद छोड़कर अपनी बड़ी विधवा पुत्री के पास अजमेर आ गये। उनकी इस पुत्री के पति सेना में उच्च अधिकारी रहे थे। शास्त्री जी जबतक गाजियाबाद रहे, विरजानन्द वैदिक शोध-संस्थान के स्वामी विज्ञानानन्द जी (जन्मना मुस्लिम) ने उनके जीवन-यापन का दायित्व उठाया था। अब ये स्वामीजी भी दिवंगत हो चुके थे और शास्त्री जी के समक्ष आर्थिक कठिनाइयां आ गयी थीं। यह अच्छा रहा कि गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली के दिवंगत संचालक श्री विजयकुमार ने मेरे अनुमान से एक अच्छी राशि देकर शास्त्री जी के सभी ग्रन्थों के प्रकाशनाधिकार प्राप्त कर लिये और उन्होंने इन ग्रन्थों को एक सुन्दर ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित भी किया।

शास्त्री जी से अन्तिम मुलाकात अजमेर में उनकी पुत्री के निवास पर हुई। मेरे साथ प्रो० धर्मवीर तो थे ही, अमेरिका के प्रोफेसर लेवेलिन भी थे, जो अजमेर आये हुए थे। हम जब गुलाबबाड़ी स्थित उनके निवास पर पहुँचे तो देखा कि श्रीमती शास्त्री रोग-शैय्या पर हैं तथा वृद्ध शास्त्री जी तथा उनकी बेटी उनकी सेवा में संलग्न हैं। पर्याप्त समय तक हम लोग साहित्य-चर्चा का आनन्द लेते रहे। प्रो० लेवेलिन को भी इसमें दिव्यानन्द की प्राप्ति हुई। इसके कुछ समय बाद पहले श्रीमती शास्त्री तथा बाद में खुद शास्त्री जी का निधन हो गया। यह अच्छा रहा कि अपने जीवनकाल में शास्त्री जी ने अपनी विस्तृत आत्मकथा लिखकर प्रकाशित करा दी। इससे उनके छात्रकाल तथा लेखनकाल के अनेक अलभ्य रोचक संस्मरण शब्दबद्ध हो गये। इनमें आर्यसमाज के दिवंगत विद्वानों की अनेक दुर्लभ गाथाएं सुरक्षित हैं।

***

('आर्यजगत्' से साभार)

पता- ८/४२३ नन्दनवन, जोधपुर (राजस्थान)

> **द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।**
> **प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान्॥**
>
> राजन्! ये दो प्रकार के पुरुष स्वर्ग के भी ऊपर स्थान पाते हैं- शक्तिशाली होने पर भी क्षमा करनेवाला और निर्धन होने पर भी दान देने वाला।

आचार्य पं० सत्यव्रत शास्त्री : एक व्यक्ति, एक संस्था

-डॉ० अश्विनी पाराशर

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के द्वारा सन् १९०७ ई० में हुई थी। स्वामी जी का सपना था कि एक ऐसा आर्ष शिक्षाकेन्द्र स्थापित हो, जहाँ भारतीय संस्कृति, ज्ञान एवं वाङ्मय के विधिवत् शिक्षण की समुचित व्यवस्था हो एवं ब्रह्मचारियों को निःशुल्क भोजन भी उपलब्ध हो। भौगोलिक दृष्टि से हरिद्वार-पंचपुरी के ज्वालापुर कस्बे के दक्षिण-पश्चिम में गंग नहर के किनारे बसे इस गुरुकुल के साथ, स्वामी जी के उसी सपने को साकार करती भारतीय परंपरा और आर्ष शिक्षा-दृष्टि के स्मृति-आलेख रूप में अभी भी गए समय के कितने ही संदर्भ जुड़े हुए हैं। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के सपनों को साकार करता यह गुरुकुल अब जब शताब्दी पूरी कर रहा है तो इस दीर्घावधि के ऐसे अनेक पुरातन पृष्ठों का सहसा खुल जाना स्वाभाविक है, जिन पर समय ने अपने हस्ताक्षरों के साथ एक इबारत सी टांक दी है। इसी इबारत में एक नाम पं० सत्यव्रत जी शास्त्री का भी है।

गुरुकुल के विधिवत् प्रारम्भ होने पर छात्र के रूप में प्रवेश लेने वाले छात्रों में प्रथम बैच में जहाँ उदयवीर शास्त्री तथा विश्वनाथ जी आदि रहे और वहीं दूसरे बैच में पं० सत्यव्रत जी शास्त्री, पं० काशीनाथ जी तथा पं० हरिदत्त शास्त्री आदि रहे। ग्राम रूमपी, तहसील धामपुर, जिला बिजनौर (तब संयुक्त प्रांत) में जनवरी सन् १९०० ई० में एक साधारण गौड़ ब्राह्मण परिवार में जन्में इस बालक ने एक प्रकार से लगभग १९०७-८ से जो गुरुकुलीय बाना धारण किया, वह जीवन पर्यन्त साधे रखा। शिक्षा के संस्कार आपको अपने चाचा पं० वासुदेव जी शर्मा से मिले। वह आर्यसमाज के प्रतिष्ठित प्रचारक एवं गुरुकुल महाविद्यालय के परम सहायक और निःशुल्क शिक्षा के प्रचारक थे। पं० जी जीवन-पर्यन्त विद्यालय की सेवा करते रहे। उन्हीं की प्रेरणा से बालक सत्यव्रत का प्रवेश गुरुकुल में कराया गया, ताकि वह भारतीय आर्य-संस्कारों में ढलकर राष्ट्र की सेवा में अपना योगदान कर सके और एक संस्कारी जीवन जी सके।

सन् १९१९ में इन्होंने गुरुकुल से विधिवत् स्नातक होकर विद्याभास्कर उपाधि प्राप्त की और गुरु-आदेश का पालन करते हुए गुरुकुल में ही अध्यापन वृत्ति को अपनाकर कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया। इसमें एक प्रसंग यह है कि बनारस की शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आप असल में साहित्याचार्य करना चाहते थे। इसी भाव से वह एक रोज पंडितराज जगन्नाथ का रसगंगाधर पढ़ रहे थे कि तभी आचार्य शुद्धबोध जी तीर्थ ने इनके हाथ में जब यह पुस्तक देखी तो क्रुद्ध हो उठे और बोले, 'यही क्यों, अब तो वात्स्यायन का कामसूत्र ही पढ़ना बाकी रह जाएगा' और यह सुन कर युवा सत्यव्रत ने कानों को हाथ लगाते हुए भूल स्वीकार की और साहित्याचार्य करने का विचार ही त्यागते हुए व्याकरणाचार्य करने का मन बना लिया। आचार्य शुद्धबोध जी के इस कथन ने इनकी जीवन-दिशा ही बदल दी। ऐसा प्रभाव होता था उन दिनों गुरु-कथन का। इसके बाद अष्टाध्यायी और सिद्धान्तकौमुदी के अध्ययन-अध्यापन को ही इन्होंने अपना जीवन-उद्देश्य बना लिया। गुरुकुल में ही आचार्य पं० छेदीप्रसाद जी 'वैयाकरणी' के सान्निध्य ने भी व्याकरण के प्रति आपकी रुचि को पर्याप्त संवर्धन प्रदान किया।

यही कार्य करते हुए आप विवाह-बंधन में बंधे। इस संदर्भ में एक रोचक किन्तु सत्य-प्रसंग यह है कि अकबराबाद (जिला बिजनौर) निवासी पं० मुरारीलाल शर्मा को अपनी ज्येष्ठ पुत्री कृष्णावती के विवाह के लिए सुयोग्य वर के रूप में जब युवा सत्यव्रत के बारे में ज्ञात हुआ तो वह इसके लिए सीधे इनके गुरु आचार्य शुद्धबोध तीर्थ एवं नरदेव शास्त्री से मिले। इन्हीं से यह भी जाना कि 'सत्यव्रत यूं तो भला, सच्चरित्र एवं हर प्रकार से सुयोग्य है, पर पं० जी ! सोच लीजिए, लड़का स्वभाव से थोड़ा क्रोधी है। ऐसा न हो कि आप बाद में कहें, हमने बताया नहीं। वैसे, ऐसा संस्कारी लड़का आपको दुर्लभ ही मिल पाएगा' और स्वभावगत तमाम ऊहापोहों के बावजूद सन् १९२४ में आपका श्री० कृष्णावती के साथ विवाह हो गया।

विवाह के छः माह बाद ही इनके पिता पं० न्यादर दत्त जी का देहान्त हो गया। पिता की असमय मृत्यु से आप पर पारिवारिक दायित्वों का भार आ पड़ा। आगे शिक्षा पूरी करने का चाव मन के मन में ही रह गया। इसी संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि इसी तनाव के कारण ही आप अपनी व्याकरणाचार्य की परीक्षा का अंतिम वर्ष पूरा नहीं कर पाए। यद्यपि बाद में आपने पंजाब वि.वि. की शास्त्री परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की एवं उस बैच में सर्वप्रथम आए, लेकिन व्याकरणाचार्य परीक्षा पूरी न कर पाने का मलाल तो आपको जीवनभर बना ही रहा।

आप गुरुकुल में सेवारत रहते हुए, लगभग सभी उच्च पदों पर कार्य सम्पादित करते हुए भी सदा स्थानापन्न ही रहे। यद्यपि वर्ष १९३२ से १९३७ तक तथा १९४१ से १९५२ तक सभा के उपमंत्री रहे और जिम्मेदारी पूर्वक अपना निर्वाह किया। इस दौर में ही पं० हरिदत्त शास्त्री के मुख्याधिष्ठाता पद पर कार्य करते हुए (क्योंकि वह उस समय कानपुर डी०ए०वी० कालेज में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे) शास्त्री सत्यव्रत जी ने ही स्थानापन्न मुख्याधिष्ठाता के रूप में कार्य किया। स्थानापन्न रूप में मुख्याधिष्ठाता एवं आचार्य पद पर कार्य करते हुए आप गुरुकुल के शैक्षणिक दायित्वों के प्रति सदा सचेत, सक्रिय एवं ईमानदार प्रहरी की भांति समर्पित भाव से जुड़े रहे। कहा जा सकता है कि ईश्वर भी किसी व्यक्ति के भाग्य में अनजाने में ही सही, एक अधूरापन टांक देता है। पं० सत्यव्रत जी शास्त्री के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। बहरहाल जिन्दगी की गाड़ी सरकने लगी।

लगभग सभी लोग यह बात जानते थे कि शास्त्री जी स्वभाव के क्रोधी थे, लेकिन साथ ही वह निर्मल हृदय के धनी भी थे और सिद्धान्तप्रिय तथा अनुशासनप्रिय भी थे। गुरुकुल के छात्रों में ये मिथक लोकप्रिय हो गया था कि चाहे किसी के समक्ष कोई भी स्वच्छन्दता बरत लो, पर शास्त्रीजी की खड़ाऊं की आवाज सुनने के बाद ध्यान रहे, कभी भी किसी नियम-विधान का उल्लंघन करने की सोच भी मत लेना, समझ लो- उनकी मर्जी के बिना कहीं कोई पत्ता भी नहीं हिल सकता था। उनके इन्हीं गुणों के कारण गुरुकुल की अनुशासनिक व्यवस्था के संचालन में वह सदा अपरिहार्य अंग होते चले गये। ये बात दूसरी है कि उनकी इसी क्षमता ने उन्हें अपने ही समवर्गियों में चर्चा का पात्र भी बना दिया, हालांकि ये भाव मुखर रूप से प्रकट करने का अवसर या साहस तो सहकर्मियों को कभी नहीं हो पाया पर गुरुकुल की अंतरंग-सभा या विद्या-सभा की बैठकों में अक्सर ऐसे मनोभाव प्रकट करने का, पीठ-पीछे मन की निकालने का जब भी अवसर आया तो उसका पूरा लाभ उठाया गया और इसका प्रमाण यही है कि शास्त्री जी को तीन बार गुरुकुल से शिक्षण के लिए अन्यत्र आजीविका के द्वार खटखटाने पड़े। एक बार तो १९५३ में उनके अपने ही सहपाठी डॉ०सूर्यकान्त शास्त्री के सभा-प्रधान बन जाने पर जब बदले निजाम में गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता के पद पर श्री देवीचरण त्रिपाठी आ गये तो मित्रता के बावजूद प्रशासनिक व्यवस्था में काफी फेर-बदल अनुभव करते हुए स्वाभिमानी शास्त्री जी ने वैचारिक मतभेद की दशा में आगे कार्य करना कठिन जानकर जुलाई १९५३ में एक बार फिर आचार्य पद से स्वतः त्यागपत्र दे दिया। शास्त्री जी इस समय आचार्य हरिदत्त शास्त्री के स्थानापन्न के रूप में आचार्य पद का कार्यभार संभाले हुए थे।

गुरुकुल से त्याग-पत्र देकर शास्त्री जी घर लौट गए तो उनके सामने गृहस्थी के पालन-पोषण की गंभीर समस्या आ खड़ी हुई। लेकिन किसी ने कहा है कि उद्यमी व्यक्ति के लिए अपने स्वाभिमान की की रक्षा के रास्ते निकल ही आते हैं। अतः निःसंकोच भाव से समय गुजारने के लिए उन्होंने प्राइवेट-ट्यूशन के साथ साथ उस दौर में कक्षा दसवीं- बारहवीं के लिए 'प्रबंध-पराग' नाम से एक निबंध-संग्रह की रचना की। इसके लिए उस समय वह रात को देर तक अपनी पाण्डुलिपि तैयार करते रहते थे। एक अकादमिक लेखक के रूप में शास्त्री जी की यह पहली पुस्तक थी। यों इससे पहले भी गुरुकुल के मुखपत्र भारतोदय में आपने सम्पादकीय-दायित्व भी बड़ी कुशलता से निभाया। शास्त्री जी की एक पुस्तक गायत्री-सन्देश गायत्री मंत्र के विभिन्न ग्यारह अर्थों की व्याख्या विवेचना के साथ १९५७ में प्रकाशित हुई। फिर उपासना-विधि प्रकाशित हुई। इस तरह अपने संघर्ष के दिनों का रचनात्मक उपयोग आपने संस्कृत साहित्य के अध्ययन एवं लेखन में किया, लेकिन

गुरुकुल के प्रति उनके सहज-स्वाभाविक मोह और वहां स्वयं को सदा अपने परिवार में अनुभव करने के भाव के कारण १९५७ में कविराज पं० हरिशंकर शर्मा के सभा प्रधान बनने के बाद स्थितियां अनुकूल होने पर शास्त्री जी ने फिर गुरुकुल में आना स्वीकार कर लिया और एक बार फिर उनकी ससम्मान घर वापसी के रास्ते खुले। अब की बार वह आश्रम के मुख्य संरक्षक और वेद-विभाग के रीडर के रूप में नियुक्त हुए। ज्ञात हो कि सामवेद उनका प्रिय वेद था, किन्तु ऋग्वेद में भी उनको कम सिद्धि नहीं थी।

१९५९ में गुरुकुल महाविद्यालय की स्वर्ण जयन्ती मनाई गयी और गुरुकुल का पचास-वर्षीय इतिहास प्रकाशित हुआ। विद्यासभा के मंत्री के रूप में इस इतिहास के सम्पादन-प्रकाशन में शास्त्री सत्यव्रत जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस जयन्ती के दायित्व में व्यस्त शास्त्री जी को उस समय लोग 'मेला आफिसर' तक पुकारने लगे थे।

अपने विद्यार्थियों के प्रति तो वह सदा ही एक आत्मीय अभिभावक के रूप में जाने जाते रहे। अनुशासन-मिश्रित प्रेम से पगे थे ही, क्योंकि शायद वह जानते थे कि यहाँ गुरुकुल में वह केवल उनके लिए आचार्य ही नहीं, बल्कि अभिभावक भी हैं। कभी ऐसा अवसर आया कि कोई ब्रह्मचारी शास्त्री जी की कड़ी डांट से क्षुब्ध होकर भोजन के समय भोजनशाला में नहीं आया तो शास्त्री जी को यह समझते देर नहीं लगी कि फलां ब्रह्मचारी को आज उन्होंने उसकी गलती पर डांट-फटकार दिया था तो वह खाने पर न आकर अपनी नाराजगी दर्शा रहा है। बस यह देख शास्त्री जी ने एक दूसरे ब्रह्मचारी को यह कह कर उसे बुलाने भेजा कि 'शास्त्री जी ने कहा है कि आप भोजन करने चल रहे हैं या वे स्वयं आएं आपको बुलाने के लिए।' इतना सुनने के बाद किस ब्रह्मचारी की मजाल कि सीधा न हो जाए। वास्तव में सत्यव्रत जी शास्त्री का पूरा जीवन गुरुकुल के प्रति समर्पित रहा। ब्राह्ममुहूर्त में स्वयं उठाकर ब्रह्मचारियों को दैनंदिन कार्यों से निवृत्ति के लिए भेजना, बाद में यज्ञशाला में यज्ञ के लिए सब की उपस्थिति, दैनिक यज्ञ, तत्पश्चात् प्रातराश तथा फिर पाठशाला। नित्य बारह बजे दोपहर को भोजनावकाश और फिर मध्याह्नोत्तर में सायंकालीन कक्षाएं। अपने छात्रों का ही नहीं, बल्कि शास्त्री जी तो गुरुकुल के कर्मचारियों के लिए भोजन की पर्याप्त मात्रा अलग से रखवाने और ब्रह्मचारियों के भोजन कर लेने के बाद ही वह मुक्त होकर अपने घर लौटकर भोजन करते थे।

समर्पित भाव से गुरुकुल की सेवा करते हुए अप्रैल १९६८ को शास्त्री जी पूर्ण अवकाश प्राप्तकर अपने मूल निवास धामपुर, जिला बिजनौर (उ०प्र०) आ गये। अपनी आयु के शेष दिन अपने कनिष्ठ पुत्र अरुण एवं उसके परिवार के साथ सुखपूर्वक व्यतीत करते हुए अन्ततः २८ अगस्त १९८९ को गो-लोक वासी हुए। उनकी अंतिम इच्छा यह थी कि एक तो मरणोपरान्त उनकी आंखें किसी दृष्टिहीन के लिए दान कर दी जाएं और समय रहते किसी नेत्रबैंक को सूचित कर दिया जाए, ताकि उनकी आंखों का यथाशीघ्र सदुपयोग हो सके तथा दूसरी बात यह कि उनकी अस्थियां तो गंगा में ही प्रवाहित की जाएं, पर अवशिष्ट राख गुरुकुल के खेतों में बिखेर दी जाए, ताकि जिस गुरुकुल में उनका इतना लम्बा जीवन बीता, उनकी देह की राख उसी पुण्य भूमि में विलीन हो जाए। उनके पुत्रों ने ऐसा ही किया।

इस तरह गुरुकुल में शिक्षा पाए, वहीं जीवन के अधिकांश को बिताने वाले शास्त्री पंचतत्त्व के रूप में आज भी गुरुकुल भूमि में व्याप्त हैं। एक आदर्श शिक्षक और इतिहास-पुरुष के रूप में अपने शिष्यों के बीच सदा गुरु जी के रूप में ख्यात शास्त्री सत्यव्रत जी अपने सहज और सादे व्यक्तित्व के कारण गुरुकुल के उन कुछ लोगों में अपनी विशिष्ट पहचान के साथ याद किए जाते रहेंगे, जिन्हें सही अर्थ में संस्था का कर्णधार कहा जा सकता है। स्वामी दर्शनानन्द जी के आर्ष-शिक्षा के केन्द्र के सपने को जीवन्त बनाए रखने में प्राण-पण से समर्पित शास्त्री जी का सक्रिय योगदान सदैव अविस्मरणीय रहेगा।

***

पता- १६१, कादम्बरी, सै०-९, रोहिणी, दिल्ली- ११००८५

आचार्य श्री पं० रामावतार शास्त्री के कुछ संस्मरण

- डॉ० हरिश्चन्द्र आत्रेय (पुत्र)

१. माताजी का निधन- सन् १९३७ में जेल से बीमार लौटने के बाद गांधीजी की प्राकृतिक चिकित्सा में चल रही मेरी माताजी का, मेरे मामा श्री अभयदेव जी, आचार्य गुरुकुल कांगड़ी के निवास पर, निधन हो गया।

अगले दिन सुबह ४ बजे पिताजी ने मुझे सोते से जगाया और सूचना दी कि तुम्हारी माताजी का देहावसान हो गया है। तुम जाकर उन्हें देख सकते हो, लेकिन तुम्हें रोना नहीं है। मैंने भी पिताजी की इस आज्ञा का पूर्णतः पालन किया।

यह घटना पिताजी के अलौकिक आत्मबोध तथा व्यावहारिक अध्यात्म का परिचायक है।

२. आत्मसुख से वंचित- सन् १९३९ में आर्यसमाज ने निजाम हैदराबाद के विरुद्ध सत्याग्रह चलाया था। मैं उस सत्याग्रह में भाग लेना चाहता था। उस समय मैं महाविद्यालय ज्वालापुर में विद्यार्थी था। रावजी (आचार्य नरदेव शास्त्री) ने मेरे पिताजी की सहमति के बिना मुझे सत्याग्रह में जाने की अनुमति नहीं दी थी। मैं सारी रात रावजी की कुटिया के सामने अनशन करके बैठा रहा, फिर भी रावजी की अनुमति मुझे नहीं मिल पायी। उसी दिन संयोगवश पिताजी का एक पोस्टकार्ड मुझे मिला। उसमें किसी और संदर्भ में कुछ सुझाव दिए गए थे। अन्त में एक सूचना थी कि तुम इस विषय में जैसा उचित समझो वैसा कर सकते हो। मैंने इस वाक्य के ऊपर का भाग काटकर रावजी को पत्र ले जाकर दे दिया। इसके बाद मुझे सत्याग्रह में जाने की अनुमति मिल गयी।

सत्याग्रह में जाने से पहले रावजी ने प्रत्येक सत्याग्रही से, उनके सत्याग्रह में जाने की सूचना उनके पिता को पत्र द्वारा दी गयी थी।

मेरे इस सूचना-पत्र को पाकर पिताजी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आए और अपनी अनुमति के बिना उनके एकमात्र पुत्र को सत्याग्रह में भेज देने का विरोध किया। रावजी ने मेरा दिया वह कटा हुआ पत्र पिताजी को दिखाया। पर पिताजी का तर्क था कि ऊपर के सन्दर्भ को जाने बिना उसे स्वीकृति कैसे समझ लिया गया। इस पर रावजी ने सुझाव दिया कि अभी वह सत्याग्रही जत्था बम्बई ही पहुँचा है, मैं तार देकर आपके पुत्र को वापिस बुलाये देता हूँ।

इस पर पिताजी का उत्तर था कि यह आप दूसरी गलती करेंगे, क्योंकि सत्याग्रह में जाने का मैं विरोधी नहीं हूँ। किन्तु अपने पुत्र को सत्याग्रह में भेजने का आत्मसुख जो मुझे प्राप्त होना चाहिए था, आपने मुझे उस सुख से वंचित कर दिया है।

३. शुद्ध आत्मा की आवाज- पिताजी (श्री रामावतार शास्त्री) कार्यवश आगरा जाने के लिए खुर्जा जंक्शन से ट्रेन में सवार हुए। कुली ने उन्हें इंजन के पास सबसे अगले डिब्बे में बैठा दिया। कुछ देर बाद उन्होंने निर्णय किया कि मुझे अगले डिब्बे में नहीं बैठना चाहिए और वे अपना सामान खुद उठाकर पीछे के डिब्बे में जाकर बैठ गए। दो-तीन स्टेशन पार करने के बाद गाड़ी का एक्सिडेंट हो गया, जिसमें अगला डिब्बा चकनाचूर हो गया और उसमें बैठे कई यात्री हताहत हो गए। यह पिताजी की शुद्ध आत्मा की प्रेरणा थी, जिसके वे धनी थे।

४. आजादी पाने का मंत्र- सन् १९४२ में ९ अगस्त को गिरफ्तार किए जाने पर गाँधीजी ने नारा दिया था "करो या मरो"। मैं उस समय बी०एच०यू० (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) का विद्यार्थी था। मैं और मेरे कुछ साथी निर्णय नहीं कर पाए थे कि हमें उसमें भाग लेना चाहिए या नहीं।

संयोगवश उन दिनों पिताजी डी०ए०वी० कालेज बनारस के अपने किसी मित्र के यहाँ ठहरे हुए थे। मैं और मेरे कुछ साथी पिताजी की राय जानने के लिए उनके पास पहुँचे। वहाँ पिताजी से काफी देर शंका-समाधान हुआ। अन्त में पिताजी ने एक वाक्य में अपना निर्णय दे दिया जो वाक्य मुझे आज भी याद है। वह वाक्य था 'व्यक्तिगत स्वार्थों का हनन किए बिना देश को आजादी नहीं मिल सकती।'

इसके बाद वे मुझे स्वतंत्रता-अभियान में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए बनारस ही छोड़कर घर रतनगढ़ चले गए थे।

१९ अगस्त १९४२ तक जब तक सेना में आकर हमें बी०एच०यू० से निकाल बाहर नहीं किया, हमने अनेक देशभक्ति से पूर्ण अभियान चलाए। पिताजी के निर्मोह होने का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है।

***

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्॥

जो धनी होने पर भी दान न दे और दरिद्र होने पर भी कष्ट सहन न कर सके- इन दो प्रकार के मनुष्यों को गले में मजबूत पत्थर बाँधकर पानी में डुबा देना चाहिए।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥

अकेले स्वादिष्ट भोजन न करे, अकेला किसी विषय का निश्चय न करे, अकेला रास्ता न चले और बहुत से लोग सोये हों तो उनमें अकेला न जागता रहे।

डॉ० हरिदत्त शास्त्री

डॉ० हरिदत्त शास्त्री का जन्म लगभग १८९८ ई० में आगरा में हुआ। इनके पिता का नाम पं०भीमसेन शर्मा तथा माता का नाम रामप्यारी था। इनके दो छोटे भाई और एक बहिन थी, जिनमें एक छोटे भाई श्री विश्वनाथ तथा बहिन विजया का दुर्दैववशात् युवावस्था में ही देहान्त हो गया था। एक छोटे भाई पं० शिवदत्त जी शास्त्री थे, जिन्होंने सर श्रीराम हा०सै० स्कूल दौराला (मेरठ) में संस्कृत अध्यापक पद पर सेवा की और वहाँ से सेवा-निवृत्त हुए।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री का विवाह श्रीमती कमला जी के साथ हुआ, जिनसे इनके एक पुत्र भवभूति शर्मा तथा दो पुत्रियाँ हुईं। श्री भवभूति जयपुर के एक इण्टर कालेज में सेवारत थे।

डॉ० हरिदत्त शास्त्री में- 'न करणाद् स्वादु विभिदे कुमारः, प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्' के अनुसार पिता के गुणों का पुञ्ज बहुगुण होकर संक्रान्त हो गया था। इनका बाल्यकाल गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में ही व्यतीत हुआ, क्योंकि उस समय पं० भीमसेन शर्मा महाविद्यालय में ही सेवारत थे। कुछ समय तक इन्होंने गुरुकुल सिकन्दराबाद में भी विद्याध्ययन किया। पुनः अन्त में महाविद्यालय ज्वालापुर में ही आकर पं० काशीनाथ जी तथा स्व० शुद्धबोध जी तीर्थ से विद्याओं का अध्ययन किया था।

इसके बाद छोटी अवस्था में ही इन्होंने कलकत्ता की तीर्थ परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। पञ्जाब की शास्त्री परीक्षा भी इन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। शास्त्री जी की गणना संस्कृत के आशुकवियों में की जाती थी। साथ ही धाराप्रवाह संस्कृत बोलने का भी इन्हें अद्भुत गौरव प्राप्त था।

एक बार सन् १९१५ ई० में जब पं० मदनमोहन जी मालवीय का ज्वालापुर महाविद्यालय आगमन हुआ तो उस समय शास्त्री जी महाविद्यालय में छात्र रूप में ही थे, किन्तु इन्होंने महाविद्यालय की ओर से मालवीय जी का संस्कृत में अभिनन्दन किया, जिसे सुनकर मालवीय जी अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने इनकी कवित्व-शक्ति एवं विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं पारितोषिक प्रदान किया।

शिक्षा

महाविद्यालय ज्वालापुर की स्नातक परीक्षा के अतिरिक्त डॉ० शास्त्री जी ने साहित्यरत्न (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग), शास्त्री (पंजाब वि०वि०), आयुर्वेदाचार्य (निखिल आयुर्वेद विद्यापीठ लाहौर सन् १९३१), व्याकरणाचार्य- राजकीय संस्कृत महाविद्यालय बनारस (सन् १९३९), वेदान्ताचार्य, एम०ए० संस्कृत तथा हिन्दी (आगरा विश्वविद्यालय) क्रमशः सन् १९४७ तथा १९४५ में तथा पी-एच०डी० की उपाधि आगरा विश्वविद्यालय से सन् १९५६ से प्राप्त की। इसके अतिरिक्त इन्होंने वेद, न्याय, तर्क, मीमांसा, काव्य, सांख्ययोग, वेदान्त, साहित्य आदि की तीर्थ परीक्षाएं सन् १९२७ से १९४२ ई० तक उत्तीर्ण की।

इसके अतिरिक्त डॉ० शास्त्री ने बहुत से ग्रन्थों की रचना की। उनके द्वारा निर्मित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है-

संस्कृत-काव्यकार (इतिहास), नाट्यशास्त्र के दो अध्याय (आलोचना), ऋक्-सूक्तसंग्रह, मीमांसा-परिभाषा।

शिवमहिम्न स्तोत्र। खण्डनखण्डखाद्य की आलोचना।

विशेष- इसी ग्रन्थ पर शास्त्री जी ने डी०लिट्० के लिए अपना निबन्ध आगरा विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया था, किन्तु वह स्वीकृत नहीं हो सका।

मूलरामायण (प्रथम काण्ड)

परिभाषेन्दु-परिष्कार

काशिका (४ अध्याय) टीका

पारस्कर गृह्य सूत्र-टीका

साहित्यदर्पण, संस्कृत टीका

चम्पूकाव्य की आलोचना

पारस्कर गृह्यसूत्र की हिन्दी टीका

काव्य-मीमांसा (हिन्दी टीका १५ अध्याय)

इन्होंने कुछ हिन्दी तथा संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया-

१. दिवाकर- हिन्दी साप्ताहिक सन् १९३७ ई० से १९४२ ई० तक, आर्यसमाज आगरा से प्रकाशित।

२. कालिन्दी- संस्कृत मासिक पत्रिका, संस्कृत महाविद्यालय आगरा से सन् १९३५ से १९४२ ई० तक।

३. भारतोदय- संस्कृत सचित्र मासिक पत्र लगभग १९५० से अप्रैल १९८० ई० तक महाविद्यालय ज्वालापुर।

इन्होंने अपने जीवनकाल में सात शिक्षण संस्थाओं में सेवा कार्य किया-

१. सन् १९२५ से १९२८ ई० तक मुख्याध्यापक गुरुकुल रायकोट, लुधियाना।

२. १९२८ ई० से १९२९ ई० तक मुख्याध्यापक गुरुकुल पञ्चकुला, शिमला।

३. सन् १९३० ई० से १९३२ ई० तक मुख्याध्यापक गुरुकुल सिकन्दराबाद।

४. सन् १९३३ ई० से १९४२ ई० तक आचार्य महाविद्यालय ज्वालापुर।

५. सन् १९४३ से १९५२ ई० तक अवैतनिक आचार्य महाविद्यालय ज्वालापुर।

६. सन् १९४२ ई० से १९५२ ई० तक प्रवक्ता संस्कृत, बलवन्त कालेज आगरा।

७. सन् १९५३-१९६६ ई० तक अध्यक्ष संस्कृत विभाग दयानन्द कालेज कानपुर।

शास्त्री जी ने कुछ संस्थाओं के प्रबन्धक के रूप में भी सेवा की-

१. सन् १९५२-१९६६ ई० तक संस्कृत विभाग का प्रबन्धक, डी०ए०वी० कालेज कानपुर।

२. सन् १९५५ से १९५७ ई० तक प्रधान गुरुकुल सिकन्दराबाद।

३. सन् १९४१ से १९५७ ई० तक मुख्याधिष्ठाता महाविद्यालय ज्वालापुर।

४. सन् १९५७ से १९६६ ई० तक आचार्य महाविद्यालय ज्वालापुर।

इनके निर्देशन में बहुसंख्यक छात्रों ने मेरठ आगरा आदि विश्वविद्यालयों से पी-एच०डी० की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं।

आचार्य डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री शरीर से दुबले-पतले, कद मध्यम, गौरवर्ण, हंसमुख चेहरा, सुन्दर आकृति, सरल प्रकृति, आकर्षक व्यक्तित्व-सम्पन्न थे। दुर्दैववशात् उनके अन्तिम जीवनकाल में उन्हें कुष्ठ रोग हो गया था। जिसमें उनके हाथों तथा पैरों का अधिकांश भाग प्रायः नहीं रहा था। प्रारम्भ में इसकी चिकित्सा भी बहुत की गयी, किन्तु रोग बढ़ता ही गया। उनके स्वभाव में लापरवाही थी, किन्तु आलस्य तथा अकर्मण्यता का नाम नहीं था। वे प्रायः कभी अपने काम के

लिए, तो कभी छात्रों के हित के लिए अथवा कभी संस्था के हित के लिए इधर-उधर घूमते हुए देखे जाते थे। अपनी वृद्धावस्था में भी वे एक स्थान पर टिक नहीं पाते थे। उनके स्वभाव में स्पष्टवादिता तथा निरभिमानिता थी। वे किसी से दबते नहीं थे और नहीं कभी दीनता प्रकट करते थे। दब्बूपन और चाटुकारिता से उन्हें नफरत थी। शास्त्रार्थ की शैली में वे पूर्ण दक्ष थे। स्मरण शक्ति व प्रतिभा प्रबल थी। वे परिहासप्रिय थे। जब उन्हें कोई विशुद्ध और धाराप्रवाहिक संस्कृत बोलने वाला मिल जाता था तो उनकी प्रसन्नता का पार नहीं रहता था।

उन्हें यावज्जीवन महाविद्यालय की हित-चिन्ता रही। विभिन्न समयों में मुख्याध्यापक, आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता पद पर रहकर तथा अपने अन्तिमकाल में कुलपति पद पर रहकर महाविद्यालय की सेवा करते रहे। स्व० आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ के पश्चात् १९६२ ई० से शास्त्री जी ही गुरुकुल के कुलपति रहे। महाविद्यालय के अतिरिक्त इनका गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय तथा गुरुकुल वृन्दावन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।

शास्त्री जी ने आर्यसमाज के लिए अनेक शिष्यरत्न प्रदान किये। इनके शिष्य तथा प्रशिष्यों की परम्परा बहुत व्यापक है। उस परम्परा में कुछ विशेष उल्लेखनीय हैं-

स्व० आचार्य वाचस्पति शास्त्री (आगरा), डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, स्व० प्रकाशवीर शास्त्री, स्व० ओम्प्रकाश शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी (खतौली), स्व० क्षेमचन्द्र 'सुमन' (दिल्ली), स्व० डॉ० राजेन्द्र शुक्ल (दिल्ली), स्व० डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित (मुजफ्फरपुर, बिहार), डॉ० गौरीशंकर आचार्य (वर्तमान प्रधान), डॉ० कर्णसिंह (मेरठ), स्व० डॉ० चन्द्रभानु अकिंचन आदि अनेक शिष्य शैक्षिक, साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों में संलग्न हैं।

शास्त्री जी एक सुयोग्य शास्त्रार्थ-महारथी भी थे। संस्कृत में गद्य एवं पद्य दोनों में शास्त्रार्थ कर लेते थे। संस्कृत में पद्यबद्ध शास्त्रार्थ में इन्होंने एक बार प्रकाण्ड पौराणिक विद्वान् श्री स्वामी करपात्री जी को हराया था। आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर वाराणसी में "मूर्ति-पूजा वेद विरुद्ध" है विषय पर शास्त्रार्थ में इन्होंने आर्यविद्वानों का नेतृत्व किया। इनकी वाणी में ओज और गाम्भीर्य था।

२५ मई १९८० ई० को अचानक डॉ० शास्त्री अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर ईश-प्रिय हो गये।

***

> जब तक एक मत, एक हानि लाभ,
> एक सुख-दुःख परस्पर न माने तब
> तक उन्नति होना बहुत कठिन है।
>
> (ऋग्वेद)

विद्वत्ता एवं सादगी की प्रतिमूर्ति

डॉ० श्री हरिदत्त जी शास्त्री

- डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रसिद्ध स्नातकों के श्रद्धेय डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। आपकी विनम्रता एवं सादगी के साथ जो विद्वत्ता का समागम दृष्टिगत होता था, वह विद्वानों के प्रायः दुर्लभ ही होता है।

१९६४ की गर्मियों में मैं सर्वप्रथम उनसे कानपुर में मिला था। उन दिनों वे कानपुर के ही डी०ए०वी० कालेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष थे तथा आर्यसमाज मेस्टन रोड में एक छोटे से कमरे में अकेले ही रहते थे। जब पहली बार मैंने अपने पिताजी के साथ उनका दर्शन किया तो यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि वे ही डॉ० हरिदत्त जी शर्मा हैं, जो संस्कृत के प्रख्यात आशुकवि एवं प्रकाण्ड विद्वान् हैं। पहले मैंने सोचा कि यह व्यक्ति आर्यसमाज का कोई चपरासी है, क्योंकि गर्मी के उन दिनों में वे केवल एक मैली सी धोती पहने हुए थे तथा आधी धोती अपने कन्धे पर रखे हुए थे। जब मेरे पिताजी ने कहा कि अरे! पण्डितजी को पैर छूकर नमस्ते करो- तब मुझे समझ में आया कि जिन डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री से हमलोग मिलने आए हैं, वे यही परमविद्वान् मनीषी शास्त्री जी हैं।

मैं उन दिनों वाराणसी के पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के यहाँ ही आश्रम में रहकर अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि का अध्ययन कर रहा था। मैं रहने वाला तो कानपुर का हूँ, अतः मेरे पिताजी से वे भलीभांति परिचित थे तथा उनसे उनकी मुलाकात प्रायः होती रहती थी।

मुझे याद है कि सन् १९६९ में जब वाराणसी में स्वामी दयानन्द सरस्वती के काशी शास्त्रार्थ की शताब्दी मनायी जा रही थी तो पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थ करने की संभावना उन दिनों व्यक्त की। तभी किसी ने कहा कि वाराणसी के पण्डित लोग पद्यमय शास्त्रार्थ की बात भी कर सकते हैं। उस समय शास्त्रार्थ-शताब्दी के मुख्य संयोजक श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री ने कहा कि यदि पद्यबद्ध शास्त्रार्थ की चर्चा या मांग होने की संभावना हो तो तत्काल फोन करके पं० हरिदत्त जी शास्त्री को बुला लिया जाय। अगले ही दिन श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री वाराणसी के डी०ए०वी० कालेज के उस प्रांगण में दिखाई पड़ने लगे, जहाँ शास्त्रार्थ शताब्दी का वह विशाल पण्डाल बना था तथा जो समारोह का मुख्य स्थल था।

डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री की प्रसिद्धि केवल मात्र संस्कृत भाषा की आशुकविता के कारण ही नहीं थी, प्रत्युत वे व्याकरण एवं वेद के भी उद्भट विद्वान् थे। जब मैं १९७० में एम०ए० करने कानपुर के डी०ए०वी० कालेज में प्रविष्ट हुआ तो वे तब तक कालेज से अवकाश प्राप्त कर चुके थे, परन्तु रहते वे उसी आर्यसमाज मेस्टन रोड के ही एक कमरे में थे। उनकी लिखी वेद-व्याख्या की पुस्तक "ऋक्सूक्तसंग्रह" उन दिनों भी एम०ए० प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में निर्धारित थी। एक दिन मैंने उनसे कहा कि पण्डितजी आपने 'सोम्य' शब्द के निर्वचन में 'यत्' प्रत्यय लिखा है, जब कि यहाँ 'य' प्रत्यय "सोममर्हति यः" इस सूत्र से होना चाहिए तो उन्होंने तत्काल कहा कि मुझे ध्यान है, गलत छप रहा है। आगे के संस्करणों में ठीक कर दिया जाएगा। उन्होंने बड़ी ही सरलता से अपनी भूल को स्वीकार कर लिया जो कि विद्वानों में दुर्लभ ही दृष्टिगत होता है।

मेरे साथ उनके जीवन के अनेक रोचक संस्मरण हैं। एक बार वे कन्नौज (फर्रुखाबाद) में एक विवाह संस्कार को सम्पन्न कराने के लिए पुरोहित के रूप में गए थे। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, अतः मुझे भी साथ ले गए थे, यह

कहकर कि मैं बैठा रहूँगा तथा तुम ही संस्कार करवाना। मैं उन दिनों एम०ए० में पढ़ रहा था तथा मेरा स्वयं भी अभी तक विवाह नहीं हुआ था। मैंने सोचा कि इतने बड़े विद्वान् की उपस्थिति में मुझे विवाह कराना होगा, अतः संस्कारविधि को कई बार विवाह-प्रकरण का सांगोपांग पारायण किया। कुछ निश्चिन्त भी था कि यदि कमी होगी तो पण्डित जी तो साथ में बैठे ही हैं।

अर्धरात्रि को जब संस्कार प्रारम्भ हुआ तो दोनों पक्षों की ओर से कुछ वितण्डा हो गया। इसी बीच कन्या पक्ष के किसी व्यक्ति ने मुझे इंगित करके कहा कि- हे पण्डित जी ! जब आपका ही अभी विवाह नहीं हुआ है तो आप कैसे विवाह कराने बैठ गए हो ? उस रोषमय वातावरण में डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री ने उत्तर दिया कि "अरे भाई इस लड़के का भले ही विवाह न हुआ हो, परन्तु यह विवाह क्यों नहीं करा सकता ? मैं जानता हूँ कि इसने कई अन्त्येष्टि संस्कार भी संपन्न करा लिए हैं, भले ही इसकी अन्त्येष्टि अभी तक नहीं हुई है।" उनके इस कथन के साथ ही सारा वातावरण परिवर्तित हो गया।

पण्डित जी की विनोद-प्रियता और सादगी के साथ ही उनकी विद्वत्ता को देखकर साधारण व्यक्ति भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। आर्यसमाज मेस्टन रोड के साप्ताहिक सत्संगों में उन दिनों उनका प्रवचन सुनने के लिए अनेक ऐसे संस्कृतप्रेमी भी आते थे, जिनका आर्यसमाज से कभी कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता था। तत्कालीन आगरा विश्वविद्यालय के संस्कृत के पाठ्यक्रम को सुव्यवस्थित करने का श्रेय उनको ही जाता है। उन दिनों कानपुर का डी०ए०वी० कालेज आगरा विश्वविद्यालय के सबसे बड़े विद्यालयों में माना जाता था, जिनकी एम०ए० कक्षाओं में छात्रसंख्या भी बहुत होती थी। श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री की प्रेरणा से ही श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री ने महाविद्यालय से विद्याभास्कर की उपाधि प्राप्त करने तथा सांसद बनने के बाद कानपुर के डी०ए०वी० कालेज के माध्यम से ही आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० (संस्कृत) की उपाधि प्राप्त की थी।

उनके अतिसाधारण परिधान को देखकर ही एक बार दिल्ली में आर्य-महासम्मेलन में विद्वानों एवं विशिष्टजनों के लिए भोजन की जो विशेष व्यवस्था की गई थी, वहाँ से किसी व्यक्ति ने उन्हें हठात् उठा दिया। बाद में जब श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री ने उन्हें देखा तो आदरपूर्वक वहाँ ले आए। इसे देखकर वह व्यक्ति स्तब्ध रह गया, क्योंकि उसे भी नहीं मालूम था कि यही वह सुप्रसिद्ध संस्कृत के विद्वान् डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री हैं, जिनकी पुस्तकें उसने एम०ए० की कक्षाओं में पढ़ी हैं।

अस्तु, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की इस शताब्दी की पवित्र वेला में हम उनका पुण्य स्मरण करते हुए कृतज्ञता का अनुभव करते हैं।

***

पता- बी-२९ आनन्दनगर (जेल रोड) रायबरेली

मनुष्यों को चाहिए कि सत्पुरुषों की ही सेवा और सुपात्रों को ही दान दिया करें। (यजुर्वेद)

आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री

आचार्य नन्दकिशोर जी का जन्म सन् १९१० ई० एवं श्रावण बदि त्रयोदशी बुधवार को अग्निगोत्रीय ब्राह्मण वंश में हुआ था। इनके पिताजी का नाम श्री उमराव सिंह एवं माताजी का नाम श्रीमती भागीरथी देवी था। ये तीन भाई थे, श्री नन्दकिशोर, श्री वागीश्वर एवं श्री चन्द्रकान्त। इनके पिताजी आर्यसमाज के अनुयायी एवं समाज के कुशल कार्यकर्ता थे। दैनिक यज्ञ, सन्ध्या, ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का स्वाध्याय-यह उनकी दिनचर्या के अंग थे। उनके घर पर सदैव उपदेशक एवं संन्यासियों का आवागमन बना रहता था। इसी संगति का प्रभाव एवं गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति में दृढ़ आस्था के कारण उन्होंने अपने तीनों ही पुत्रों को गुरुकुलीय शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। अपने ज्येष्ठपुत्र श्री नन्दकिशोर को १९१९ में उपनयन संस्कार कराके स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुल विरालसी में प्रविष्ट करा दिया। श्री नन्दकिशोर शरीर से दुर्बल होते हुए भी, बचपन से ही अति- मेधावी थे। अपने परिश्रम एवं गुरुओं की कृपा से आपने चार वर्षों में ही गुरुकुल विरालसी में अपना अध्ययन समाप्त करके सन् १९२३ में गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में प्रविष्ट हो गये। यहाँ पर आठ वर्ष पर्यन्त उन्होंने तन्मयता से अध्ययन करते हुए वेद एवं वेदाङ्गों में प्रवीणता प्राप्त कर ली। १८ मार्च, १९३० में वे स्नातक बने तथा २० मार्च १९३० से ही गुरुकुल महाविद्यालय में ही अध्यापक बन गये। इनके पिताजी का इनको आशीर्वाद था कि, 'तुम इसी संस्था में कार्य करते हुए सर्वोच्च पद पर आसीन होगे।' तदनुसार ही इसी गुरुकुल में अध्यापक, मुख्याध्यापक, आचार्य, मुख्याधिष्ठाता, स्नातकोत्तर कालेज के प्रधानाचार्य, कुलसचिव आदि पदों पर कार्य करते हुए उन्होंने सैंतालीस वर्ष पर्यन्त निरन्तर सेवा कार्य किया।

आचार्य नन्दकिशोर जी का जीवन प्राचीनकाल के गुरुकुलों के आचार्यों के समान आदर्शमय था। उसमें कहीं दुराव नहीं, छिपाव नहीं, बालकों में बालक, युवकों में युवक, वृद्धों में वृद्ध एवं तन, मन, वचन से कभी किसी को कष्ट न देने की प्रवृत्ति, सौम्य आकृति, वाणी में मधुरता, मन में साधुता, असीम सहिष्णुता, हृदय की कोमलता, पर-दुःख- कातरता- ये उनके स्वभावज गुण थे। वे सदैव मधुरभाषी रहे। कभी किसी के प्रति उन्होंने कठोर शब्दों का प्रयोग नहीं किया। गुरुकुल के छात्रों पर उनका पुत्रवत् स्नेह रहता था। अपराध हो जाने पर भी कभी कठोर दण्ड का विधान नहीं करते थे। जो कुछ उनको मिल जाता, उसी में सन्तुष्ट रहते। एक बार अन्य लोगों के कहने पर उन्होंने सन् १९५४ में अम्बाला के डी०ए०वी० कालेज के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद के लिए आवेदन पत्र भेज दिया। कुछ ही समय के पश्चात् सपरिवार निःशुल्क आवास-व्यवस्था के साथ ५०० रुपये मासिक पर नियुक्ति-पत्र आ गया, परन्तु वे गये नहीं। बात यह हुई कि आचार्य नरदेव शास्त्री और पं० काशीदत्त जी ब्रह्मचारियों के साथ उनके पास आये। ताला और कुञ्जी उन्हें देकर कहा कि 'महाविद्यालय में अपने हाथ से ताला लगा दीजिए और जहाँ चाहें चले जाइये।' कोमल-हृदय के आचार्य नन्दकिशोर कभी किसी के स्नेह और आदर को ठुकरा न सके। यहाँ अत्यल्प वेतन लेकर भी अपने जीवन के अन्त समय तक कार्य करते रहे। इतना ही नहीं, अपने उस वेतन में से भी निर्धन छात्रों की सदा सहायता करते रहते थे।

आचार्य नन्दकिशोर जी स्वभाव से बड़े ही शान्त, गम्भीर, सहिष्णु एवं मनस्वी थे। वे व्याकरण एवं दर्शनशास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान् एवं सफल अध्यापक थे। उन्होंने न्याय-कुसुमाञ्जलि की हिन्दी व्याख्या लिखी थी। साथ ही सर्वदर्शन-संग्रह की हिन्दी टीका, तर्कभाषा की हिन्दी व्याख्या एवं महाभाष्य के पस्पशाह्निक की हिन्दी व्याख्या लिखी थी। उनके कोई सन्तान नहीं थी। एक कन्या हुई थी, वह भी दिवंगत हो गयी। ग्रन्थों की रचना को ही वे अपनी सन्तति मानते थे। वस्तुतः ज्ञानार्जन के प्रति आसक्त होने पर भी वे तीनों प्रकार की एषणाओं के प्रति अनासक्त थे। विरक्त होने पर भी वे विद्यानुरागी थे। इस बात को उन्होंने अपने ४७ वर्ष के अध्यापनकाल में पूर्णतया सिद्ध कर दिया था। जिस जिज्ञासु छात्र की शंकाओं का कहीं अन्यत्र समाधान नहीं मिलता था, उनके पास आकर वह सन्तुष्ट होकर ही लौटता था। उनके पुराने शिष्यों में बहुत से

शिक्षा के क्षेत्र में उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं। उनके सभी शिष्य, विशेषतया प्रबुद्ध शिष्य, उनकी विद्वत्ता की मुक्त-कण्ठ से आज भी प्रशंसा करते हैं। उनके जैसे स्वाध्यायशील व्यक्ति आज के युग में बहुत कम मिलते हैं। उनके जैसे विद्यानुरागी कम ही सुलभ होते हैं। वस्तुतः उनके जैसे व्यक्तियों को ही लक्ष्य करके किसी कवि ने कहा है-

सृजति तावदशेषगुणाकरं
पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदपि तत् क्षणभङ्गि करोति चेद्,
अहह ! कष्टमपण्डितता विधेः॥

अर्थात् भगवान् पहले तो पृथ्वी के भूषण-स्वरूप सम्पूर्ण गुणों से युक्त इस धरा पर किसी पुरुषरत्न को उत्पन्न करता है और फिर शीघ्र ही उसे उठा भी लेता है, तो इसे उस विधाता की नासमझी ही कहा जा सकता है।

आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री सचमुच ही देव-स्वरूप थे। उनके देवत्व का अनुभव उनके सान्निध्य में आने पर अधिक और अधिकतर होता चला जाता था। शास्त्रीय चर्चा में ही उनके शास्त्रीय ज्ञान की गहराई एवं उनकी बहुज्ञता का परिचय मिलता था।

सचमुच ही उनके भीतर व्याकरण, वेदान्त, न्याय, सांख्य-योग, काव्य और कलाओं का एकत्र ऐसा दुर्लभ संगम हो गया था। प्रकृति से जितने वे सरल लगते थे, अध्यापन, लेखन और प्रवचन में वे उतने ही गम्भीर बन जाते थे। ऐसे थे हमारे आचार्य श्री नन्दकिशोर शास्त्री। उन्हें पाकर यह कुलभूमि धन्य हुई और धन्य हुई वह देवभूमि। सबको समेटने वाले उस काल के आगे किसका वश चला है।

***

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम्॥

किसी धनुर्धर वीर के द्वारा छोड़ा हुआ बाण सम्भव है एक को भी मारे या न मारे। मगर बुद्धिमान् द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर सकती है।

डॉ० सूर्यकान्त

संस्कृत साहित्याकाश के सूर्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, डॉ० सूर्यकान्त जी का जन्म जिला सहारनपुर उ०प्र० के सरसावा डाकखानान्तर्गत सैदपुरा नामक ग्राम में १ जनवरी १९०१ ई० को श्री भीखनलाल जी के घर हुआ। इन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से सन् १९१९ ई० में विद्याभास्कर की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। इसी बीच पञ्जाब विश्वविद्यालय से शास्त्री परीक्षा प्रथम श्रेणी में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पर प्राप्त करते हुए सन् १९१९ में ही उत्तीर्ण की।

पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर से संस्कृत विषय में एम०ए० १९२८ ई० में प्रथम श्रेणी तथा वि०वि० में प्रथम स्थान प्राप्त करते हुए डी०लिट् की उपाधि प्राप्त की। पुनः १९३७ ई० में आक्सफोर्ड वि०वि० से डी०फिल् की उपाधि प्राप्त की।

शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त इन्होंने सन् १९२० में गाँधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया। सन् १९२१ से १९२६ तक जामिया मिलिया इस्लामिया कालेज दिल्ली में कार्य करते रहे। सन् १९२९ में ओरियण्टल कालेज, में अंग्रेजी विभाग में प्रवक्ता पद पर कार्य किया।

सन् १९३० से १९३५ ई० तक इन्होंने हिन्दी व संस्कृत विभाग में डी०ए०वी० कालेज लाहौर में प्रवक्ता पद पर कार्य किया। पुनः सन् १९३७ से १९४६ ई० तक पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर में संस्कृत विभाग में रीडर पद पर रहे। सन् १९४८ से १९५१ ई० तक पञ्जाब वि०वि० ओरियण्टल कालेज, जालन्धर में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष तथा प्रिंसिपल रहे।

सन् १९५२ से १९६३ तक बनारस विश्वविद्यालय के कालेज ऑव इन्डोलाजी में प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष एवं प्रिंसिपल रहे। सन् १९६३ से १९६५ अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष पद पर कार्य किया। सन् १९६६ से तीन वर्ष तक कुरुक्षेत्र वि०वि० में संस्कृत विभाग के प्रोफेसर रहे। आपने ७० से अधिक पुस्तकों की रचना की है। महाविद्यालय को आप जैसे विद्वान् स्नातक पर गर्व है।

***

> स आत्मनापत्रपते भृशं नरः
>
> स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
>
> अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः
>
> स तेजसा सूर्य इवावभासते॥
>
> जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रता से युक्त होने के कारण कान्ति में सूर्य के समान शोभा पाता है।

डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह शास्त्री

डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह का जन्म मैनपुरी के एक छोटे से ग्राम नगला मकरन्द में दिसम्बर १९०१ ई० में हुआ था। इसे भी एक घटना मात्र ही समझिये कि उनका जन्म दिसम्बर में शनिवार को हुआ, और १२ दिसम्बर १९६६ में बीमार पड़े और शनिवार मार्च ११, १९६७ को परलोक वासी हुए। उनके पिता डा० बलदेवसिंह चौहान जो किसी समय सेना में सिपाही थे। रिटायर होने पर कट्टर आर्यसमाजी तथा लोककवि के रूप में विख्यात हुए। डॉ० नरेन्द्रदेव जी की प्रारम्भिक शिक्षा पास के ही एक प्राइमरी स्कूल में हुई। क्योंकि पिता कट्टर आर्यसमाजी थे, अतः अतः अपने पुत्र को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में, जो निःशुल्क शिक्षा का केन्द्र था, छोड़ आये। वहाँ कुछ वर्षों की तपस्या और अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् ये घर लौट आये। यहाँ आने पर उनका विवाह आर्यसमाजी विचारधारा के अनुयायी डॉ० भूपसिंह की पुत्री शान्तिदेवी से हो गया। इस विवाह की यह विशेषता थी कि पण्डित के स्थान पर वर-वधू ने स्वयं विवाह के मन्त्रों का उच्चारण किया। विवाह के उपरान्त ये मैनपुरी के क्रिश्चियन स्कूल में, जो बाद को इण्टर कालेज हो गया, अध्यापक हो गये। यहीं रहते हुए उन्होंने पंजाब की शास्त्री, हाईस्कूल, इण्टर और बी०ए० परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। सन् १९३४ में इनकी नियुक्ति आगरा के बी०आर० कालेज में हो गयी। उस समय यह इण्टर कालेज ही था। यहीं से उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय की संस्कृत और हिन्दी में एम०ए० परीक्षा प्रथम स्थान प्राप्त करके उत्तीर्ण की। १९४२ में आधे वेतन पर दो वर्ष का अवकाश लेकर, वे डी०फिल्० करने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय चले गये। वहाँ उन्होंने डॉ० पी०के० आचार्य के निर्देशन में 'इण्डियन एपिक्स' विषय लेकर शोधकार्य किया और डी०फिल्० उपाधि प्राप्त की।

इलाहाबाद से आने के बाद उन्हें अन्य शिक्षा-संस्थाओं ने भी अपने यहाँ स्थान देना चाहा। इलाहाबाद के उप-कुलपति डॉ० अमरनाथ झा भी उन्हें वहीं रखना चाहते थे। इस आशय का एक पत्र भी उन्होंने लिखा था। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में डॉ० जाकिर हुसैन उपकुलपति थे। साक्षात्कार के समय वे भी उपस्थित थे और डॉ० नरेन्द्रदेव जी से बहुत प्रभावित हुए थे। आगे चलकर जब डॉ० हुसैन कलकत्ता में पहुँच गये थे, तब भी उन्होंने एक पत्र लिखकर कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर आने के लिए कहा था, परन्तु वे नहीं गये। बी०आर० कालेज में डॉ० रामकरण सिंह (प्राचार्य) के साथ कुछ ऐसे सम्बन्ध थे कि वे कहीं अन्यत्र उच्चतर पदों पर गये नहीं। एक बार सागर विश्वविद्यालय से भी संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष पद के लिए उनसे कहा गया, किन्तु वहाँ भी ये नहीं गये। इन स्थानों पर न जाने के लिए उनका तर्क भी बड़ा विचित्र और हास्यास्पद था। कलकत्ता न जाने के लिए उनका कहना था, कलकत्ता बहुत बड़ा शहर है। बड़े शहर मुझे पसन्द नहीं और वहाँ मँहगाई भी बहुत है। वहाँ की जल-वायु भी सुनते हैं, बहुत खराब है। सागर न जाने के लिए उन्होंने तर्क दिया, मैं तो सुबह-शाम घूमने का अभ्यासी हूँ। सागर में साँप बहुत पाये जाते हैं, अतः कोई दुर्घटना हो सकती है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिक अधिवेशनों में वे सदा भाग लेते रहते हैं। वहाँ की प्रबन्धकर्त्री सभा के अध्यक्ष और मन्त्री भी रहे थे। उनके रिटायरमेण्ट के बाद भी श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने, जो ज्वालापुर में उनके छात्र रहे थे, उन्हें पत्र लिखे कि वे वहाँ पर शोधविभाग की स्थापना कर रहे हैं, अतः वे वहाँ के अध्यक्ष पद पर आ जाएँ। श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने उन्हें हरिद्वार मेजा भी दिया था और वे गये भी थे, परन्तु इसके पहले कि वे वहाँ आकर कार्य सम्भालते, उनका देहावसान हो गया।

डॉ० नरेन्द्रदेव के छात्रों की संख्या बहुत अधिक है। उनमें से कुछ के नाम हैं- डॉ० विजयपाल सिंह (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस), डॉ० पुष्पा हजेला (अलीगढ़ विश्वविद्यालय), डॉ० राजेन्द्रप्रसाद शर्मा (राजस्थान),

डॉ० नत्थन सिंह (बड़ौत, मेरठ), डॉ० ब्रजकिशोर सिंह (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, बी०आर० कालेज, आगरा), डॉ० अवनीन्द्र कुमार (दिल्ली विश्वविद्यालय), डॉ० कवठेकर (विक्रम विश्वविद्यालय), डॉ० इन्द्रपाल सिंह (नागपुर विश्वविद्यालय) आदि।

बी०आर० कालेज, आगरा की सेवा से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् वे मैनपुरी में स्टेशन रोड कालोनी में 'शान्तिनिकेतन' नामक भवन (पत्नी के नाम पर) बनवाकर रहने लगे। यहाँ वे दत्तचित्त होकर लेखनकार्य में संलग्न हो गये। यहाँ उन्होंने 'वेदान्तसार' की टीका और 'भारतीयदर्शन का इतिहास' पुस्तकें लिखीं, जो प्रकाशित हो चुकी हैं। भारतीयदर्शनशास्त्र, जिसे उन्होंने अपने पिता डा० बलदेव सिंह को समर्पित किया था, वह डॉ० हरिदत्त शास्त्री, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डी०ए०वी० कालेज, कानपुर के नाम से छपी थी। यह विचित्र घटना थी। डॉ० हरिदत्त शास्त्री इनके बालसखा थे और डॉ० हरिदत्त शास्त्री के पिता पं० भीमसेन शर्मा ने इन दोनों को ज्वालापुर महाविद्यालय में पढ़ाया था। वे डॉ० हरिदत्त शास्त्री को अपने भाई से भी अधिक मानते थे। डॉ० हरिदत्त शास्त्री ने अपना पी-एच०डी० का प्रबन्ध इनके निर्देशन में ही लिखा था। उन्हें डी०ए०वी० हाईस्कूल आगरा से लाकर राजपूत कालेज के अपने ही विभाग में प्रवक्ता के पद पर इन्होंने ही नियुक्त कराया था। किन्तु पता नहीं क्यों और कैसे डॉ० हरिदत्त शास्त्री ने इस पुस्तक के लेखक के स्थान पर अपना नाम डलवाया। कुछ भी हो, वे जब मेरठ गये तो वहाँ उन्हें इस षड्यन्त्र का पता चला। वहाँ से आने के बाद वे बहुत ही दुःखी दीखते थे। तीसरे दिन उन्होंने पत्नी को यह राज बताया और उसी रात वे हृदय-पीड़ा से आक्रान्त हो गये। मृत्यु से कुछ दिन पूर्व जब डॉ० रघुनाथसिंह उनसे मिलने के लिए आगरा के सरोजिनी नायडू अस्पताल में गये तो उन्होंने कहा, "शास्त्री जी, आप पुस्तक के लिए इतने दुःखी क्यों होते हैं? ठीक होकर आप और बहुत सी पुस्तकें लिख सकेंगे"। इस पर पिता जी ने उत्तर दिया था, "डॉक्टर साहब, मुझे दुःख व चिन्ता पुस्तक की नहीं, दुःख केवल इस बात का है कि मेरे एक आत्मीय एवं अभिन्न मित्र ने मेरे साथ ऐसा धोखा किया और, मैं पण्डित जी (डॉ० हरिदत्त शास्त्री) के विरुद्ध कचहरी के दरवाजे कभी खटखटाऊँगा नहीं"।

मलिक मुहम्मद जायसी, अलंकार तथा छन्द-विषय पर ग्रन्थ लिखने की उनकी तीव्र इच्छा थी। उनके पास विद्वानों के पत्र विभिन्न विषयों पर लिखने के लिए आते रहते थे। पर, पता नहीं, क्या सोचकर, इसी बीच इन्होंने अपनी आत्मकथा लिखनी आरम्भ कर दी और वह भी दुर्भाग्यवश अधूरी रह गयी।

मैनपुरी में वे १२ दिसम्बर, १९६६ को हृदय के भयंकर दर्द से पीड़ित हुए। यही दौरा फिर १९ जनवरी १९६७ को हुआ और वे ८ फरवरी, १९६७ को सरोजिनी नायडू अस्पताल में चिकित्सा के लिए भरती हो गये। यहीं ११ मार्च, १९६७ को उनका देहावसान हो गया। एक महान् आत्मा इस संसार से सदा के लिए विदा हो गयी। उनकी इच्छा सरल बोधगम्य शैली में गूढ़ एवं मार्मिक विषयों पर लिखने की थी। नीरस विषयों को विद्यार्थी के लिए सरल बनाना वे खूब जानते थे। इस पद्धति को उन्होंने एक लम्बे अध्यापन के अनुभव से प्राप्त किया था।

***

> जो मांगनेवाले के लिए यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्ति को प्राप्त होते हैं। (यजुर्वेद)

डॉ० गौरीशंकर आचार्य

कोमलता, कठोरता, दृढ़ता, नम्रता, उग्रता, गम्भीरता, हँसमुखता, बालसुलभ सरलता- यदि इन सब गुणों को आप एक ही स्थान एवं एक ही व्यक्ति में समाहित देखना चाहें तो आपसे मेरा अनुरोध है कि आप आचार्य गौरीशंकर जी से अवश्य मिलें। कुछ क्षणों के परिचय के पश्चात् ही आप यह अवश्य अनुभव करेंगे कि वस्तुतः आप अस्थि, मज्जा, रक्त, मांस आदि के पुञ्जीभूत किसी सामान्य मानव से नहीं, अपितु असाधारण किसी देवोपम विशिष्ट व्यक्तित्व-सम्पन्न व्यक्ति से मिल रहे हैं। वहाँ आपको शिशु की सरलता एवं निश्छल हास मिलेगा। यदि आपने यौगिक साधना पद्धति, योग के चमत्कार, आयुर्वेद के महत्त्व एवं आयुर्वेदीय औषधियों की अद्भुत गुणकारिता, गायत्री, गीता, गौ- इन तीनों के महत्त्व एवं उपयोगिता, भारतीय-दर्शन की गम्भीरता आदि विषयों में से किसी एक की भी चर्चा छेड़ दी तो फिर सरलता के स्थान पर देखेंगे अतिशय गम्भीरता। फिर भी आप उठना नहीं चाहेंगे। मन करेगा कि प्रवचन चलता ही रहे और आप बैठे-बैठे सुनते रहें। कुछ ऐसे ही परस्पर विरोधी गुणों का एकत्र समन्वय हुआ है, इस व्यक्ति में, जिसे सामान्यतया लोग 'आचार्यजी' कहकर पुकारते हैं।

आचार्य जी का जन्म राजस्थान के बीकानेर खण्ड के 'भादरा' नामक उपनगर में सन् १९१५ ई० में हुआ था। पिता पं० जगनाराम जी बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध नगर सरदार-शहर में वकालत करते थे। अपने युग के प्रसिद्ध वकील थे। लक्ष्मी की सदय दृष्टि थी, खूब पैसा कमाया और दिल खोलकर खर्च भी खूब किया। माता और पिता दोनों ही बड़े धार्मिक एवं साहित्यिक विचारों के थे और हैं। आचार्य जी के पिताजी तो अब नहीं रहे, किन्तु पूजनीया माताजी की सेवा करने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने का सौभाग्य उन्हें आज भी प्राप्त है।

आचार्य जी की प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में हुई। स्नातक बनकर विद्याभास्कर की उपाधि प्राप्त की। इसके साथ ही ज्ञानप्राप्ति की भूख शान्त नहीं हुई। पञ्जाब विश्वविद्यालय लाहौर से शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की, आज के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से (उस समय के संस्कृत कालेज, बनारस) साहित्य- शास्त्री, कलकत्ता से सांख्ययोगतीर्थ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदान्ताचार्य (अद्वैत) एवं एम०ए०, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

आचार्य जी अपने छात्र-जीवन में अत्यधिक प्रतिभावान् रहे हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् १९३२ में श्रीमद्भगवद्गीता पर एक निबन्ध-प्रतियोगिता आयोजित की गयी थी, जिसमें किसी भी स्तर का कोई भी छात्र भाग ले सकता था। आपने उसमें प्रथम स्थान प्राप्त किया। परन्तु पुरस्कार में जो धनराशि मिली उसे आपने छात्रों के संस्कृत-पुस्तकालय के लिए दान कर दी। इससे आपकी उदारता की बहुत प्रशंसा हुई। आपने वेदान्ताचार्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया, इसलिए भी आपको बहुत सम्मान मिला।

आचार्य जी जहाँ शिक्षा के क्षेत्र मे अग्रणी रहे हैं, राजनीति के क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र में भी बहुत प्रतिष्ठा मिली है। उस समय के बीकानेर राज्य में आप प्रथम शिक्षा-मन्त्री रहे। राजस्थान की सुप्रसिद्ध संस्था गान्धीविद्यामन्दिर, सरदारशहर के तो आप संस्थापक रहे और वर्षों तक वहाँ की प्रबन्धकर्त्री सभा के प्रधान रहे। स्वेच्छा से छोड़ देने पर भी आप उसके आजीवन संस्थापक सदस्य हैं। जयपुर का विशाल गोपाल- भवन आपके ही सत्प्रयत्नों का मूर्तिमान् रूप है। इनके अतिरिक्त बीकानेर में आपने साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की, श्री गंगानगर में एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय की स्थापना भी आपके सत्प्रयास से सम्भव हो सकी। साथ ही आप राजस्थान आयुर्वेद- विकास बोर्ड, प्राकृतिक-चिकित्सा-परिषद् आदि संस्थाओं के अध्यक्ष एवं मन्त्री रहे। राजस्थान गोशाला-संघ के आप दस वर्ष तक अध्यक्ष रहे हैं।

इतना सब होते हुए भी, आचार्य जी का व्यक्तित्व एक सन्त का व्यक्तित्व है। उनकी दैनिक दिनचर्या में आठ-सात घण्टे तो गायत्री-जप और ईश्वर-ध्यान में व्यतीत होते हैं। यौगिक-साधना और स्वाध्याय का क्रम भी चलता रहता है। आपका कहना है कि गायत्री मन्त्र के बहुसंख्य पुरश्चरण एवं यौगिक साधना के परिणामस्वरूप ही आपको आध्यात्मिक एवं सत्यज्ञान की अनुभूति होती रहती है। बहुधा भविष्य में घटने वाली घटनाओं का ज्ञान पहले ही हो जाता है। कभी-कभी तो घटने वाली घटनाओं की निश्चित तिथि भी आपको मालूम हो जाती है। यह तो आपका व्यक्तिगत जीवन है। आप अपने सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत आचरण को कभी अवरोध नहीं बनने देते। आप जहाँ स्वभाव से अतिसरल हैं, वहाँ कुशल प्रशासक भी हैं। आपकी लगन और कुशल प्रशासन का ही परिणाम है कि सरदारशहर का गान्धी विद्या-मन्दिर अत्यल्प समय में अत्यधिक उन्नति कर सका। आपके सरल और सौम्य व्यक्तित्व का ही प्रभाव है कि- पं० जवाहरलाल नेहरु, श्री लालबहादुर शास्त्री, श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री कुम्भाराम आर्य, डॉ० कालूलाल श्रीमाली आदि महानुभाव आपका सम्मान करते रहे हैं और आज भी, यद्यपि आप सक्रिय राजनीति से दूर हैं, फिर भी राजस्थान के राजनीतिक क्षेत्र में आपकी बहुत प्रतिष्ठा है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई है। यहाँ के तपःपूत आचार्यों के जीवन की आप पर छाप पड़ी है। आप अपने को सदा ही यहाँ का बहुत ऋणी अनुभव करते हैं। यही कारण है कि विपरीत परिस्थितियों में भी आप यहाँ की उन्नति चाहते हैं और उसके लिए हर सम्भव प्रकार से सहायता करना चाहते हैं। आप स्नातक बनने के बाद से ही इस संस्था से किसी न किसी रूप में सदा ही सम्बद्ध रहे हैं। आप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के १२ वर्ष प्रधान तथा ५ वर्ष कुलपति रहे हैं।

***

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ।।

पुरुष में शील ही प्रधान है, जिसका यही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन, धन और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।।

सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है, सफाई से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

श्री नारायण-मुनिश्चतुर्वेदः

काया से कृश, किन्तु अगाध मनोबल से युक्त एक त्याग एवं तपोमय व्यक्तित्व को हम 'श्रीनारायण मुनिश्चतुर्वेदः' के नाम से जानते हैं। आपका पूर्व आश्रम का नाम आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी था। आपके पिता श्री हरप्रसादजी, पितामह श्री शिवप्रसाद जी तथा प्रपितामह श्री रामप्रसाद जी चारों वेदों के उद्भट विद्वान् थे। वसिष्ठ गोत्र से सम्बद्ध आपके वंश में वेदाध्ययन की परिपाटी चली आ रही है। धर्मपिता श्री बाबू दौलतराम जी (तारबाबू रुड़की) ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में आपकी यथोचित शिक्षा का प्रबन्ध किया। श्री पं० भीमसेन जी के कुशल निर्देशन में आप शीघ्र ही व्याकरण, साहित्य, दर्शन, वेद आदि विषयों में पारंगत हो गये। विद्याभास्कर, आयुर्वेदभास्कर, साहित्याचार्य, एम०ए० आदि अनेक परीक्षाएं आपने उच्च अंकों में उत्तीर्ण कीं। आपकी प्रतिभा विविध क्षेत्रों में प्रसृत हुई है। व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि के अतिरिक्त आयुर्वेद में भी आप को विशेष योग्यता प्राप्त की। आपकी काव्यरचना तथा भाषणशैली अद्वितीय थी। आपने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में ही उच्चकोटि के गद्यपद्यात्मक साहित्य का सृजन किया है।

आपने भाषणों, लेखों, शास्त्रार्थों तथा विविध यज्ञानुष्ठानों द्वारा वैदिक विचारधारा के प्रसार के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया है। हैदराबाद के सुप्रसिद्ध सत्याग्रह में जोधपुर के जत्थे के नेतृत्व का श्रेय भी आपको प्राप्त हुआ। जेल में अनेक यातनाओं को सहते हुए भी कभी संकल्प से विरत नहीं हुए। अन्ततः विजयश्री का वरण कर ही वापस लौटे। अनेकों संस्थाओं के द्वारा प्रभूत धनराशि तथा अगणित अभिनन्दन-पत्र आपको प्राप्त हुए। वह समस्त धनराशि आपने निजी उपयोग में न ला कर गुरुकुल महाविद्यालय को समय-समय पर अर्पित किया करते थे। अपने निःस्पृह स्वभाव के कारण आप अपनी मातृसंस्था गुरुकुल महाविद्यालय में विभिन्न उच्च पदों पर कार्य करते हुए निर्वाहमात्र के लिए अत्यन्त स्वल्प दक्षिणा स्वीकार करते रहे तथा शेष धनराशि महाविद्यालय को ही अर्पित करते रहे। आपने एक लाख रुपये के लगभग एकत्रित दानराशि अपनी मातृसंस्था को अर्पित की। यज्ञ, संस्कार तथा वेद-प्रवचनों के द्वारा जो धनराशि उन्हें जनता द्वारा श्रद्धापूर्वक दक्षिणा में प्राप्त होती थी। उसके ब्याज से प्राप्त २००रुपये मासिक की धनराशि को वे निर्धन छात्रों को दिया करते थे।

आपने अनेकों संस्थाओं में समय-समय पर सफलतापूर्वक अध्यापन कार्य किया। अपनी मातृसंस्था महाविद्यालय (ज्वालापुर) की सेवा में उन्होंने जीवन का पर्याप्त भाग व्यय किया है। महाविद्यालय की संकटापन्न अवस्था में उन्होंने आचार्य पद का भार वहन करके उसे उन्नति की ओर अग्रसर किया। आपके सुपुत्र डॉ० आनन्दवर्धन ने भी महाविद्यालय में चिकित्सा-विभाग में सेवा की। आपकी स्तुतिशतकम्, पुष्पकशतक, श्रुतिसुधा, मन्त्रप्रसाद, पं० प्रकाशवीर शास्त्री यशः-प्रशस्ति तथा सांस्कृतिक-विचार आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। महाविद्यालय में अध्यापन तथा विभिन्न स्थानों पर वेद-प्रचार से बचे हुए समय में वे ग्रन्थप्रणयन में रत रहते थे। आपने गायत्रीदर्शन तथा सार्वभौम-वैदिक-दर्शन, इन दो ग्रन्थों का भी प्रणयन किया।

***

> इस संसार में जैसे सुपात्र को देने से कीर्ति होती है
> वैसी कीर्ति और किसी उपाय से नहीं होती। (ऋग्वेद)

पद्मश्री आचार्य डॉ० कपिलदेव द्विवेदी : जैसा मैंने देखा जाना

- डॉ० अवनीन्द्र कुमार, पूर्व संस्कृत-प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय

कहावत है- "होनहार बिरवान के होत चीकने पात", पर मैं इससे आंशिक रूप में ही सहमत हूँ, मेरा विचार है कि दुनियां के जितने भी बड़े-बड़े उल्लेखनीय अनुसंधान कार्य आदि हुए हैं, उन्हें उन्हीं कुछ कर्मठ, लगनशील, अभावग्रस्त लोगों ने सम्पादित किया है, जिन्हें कुछ करने की लालसा थी और जिनके पास उन्हें करने के साधन नाममात्र को भी नहीं थे, सिवाय इच्छाशक्ति के। सदा संघर्षों से जूझते हुए ही उन्होंने अपने लिए मार्ग बनाया और साधारण लोगों के बीच असाधारण स्थान बनाया। उनका कार्य बोला, वे नहीं और लोग उनकी ओर देखने को बाध्य हुए। इतना अवश्य है कि उनकी क्षमता का असाधारणत्व आरम्भ से ही उनकी कहानी बताता रहा है।

पद्मश्री आदरणीय आचार्य कपिलदेव द्विवेदी उन्हीं अङ्गुलिगण्य विद्वानों में से एक हैं, जिनकी कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा ने उन्हें देखने के लिए विवश किया। १० वर्ष की युवावस्था में, जबकि भौतिक जगत् के सारे आकर्षण अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, एक युवक ने २ वेदों को सस्वर स्मरण (कण्ठस्थ) कर द्विवेदी उपाधि को अपनी मेधा से अर्जित किया।

बचपन में कठोर श्रम एवं साधना की नियमित घुट्टी ने ८८ वर्ष के युवक में वही संस्कार आरोपित कर दिए हैं कि ८० से अधिक विविध-विषयों पर लिखे ग्रन्थों के होने पर भी इस प्रकार विद्या-संग्रह में लीन रहते हैं, जैसे किसी पद के लिए आवेदन करना या साक्षात्कार देना है। "क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत्"- जैसे उनके जीवन का मन्त्र है।

विद्वान् तो बहुत हो सकते हैं और हैं भी, लेकिन परार्थहितचिन्तन-रत कुछ ही होते हैं। मुझे स्मरण आ रहा है- एक विश्वविद्यालय से एक शोध-प्रबन्ध (पी-एच०डी०) परीक्षणार्थ मेरे पास आया था, अनुसन्धित्सु एक अध्यापक थे, उन्हें मेरे परीक्षक होने का ज्ञान हो गया। आदरणीय डॉ० द्विवेदी से उन्होंने यह वृत्त कहा। उन्होंने तुरन्त मुझे फोन दूरभाष द्वारा उसकी संस्तुति की। मैंने उनसे बात करते हुए ही शोध-प्रबन्ध के पृष्ठों को उलटा पलटा और कहा कि आप आश्वस्त रहें, मैं शीघ्र ही अपना प्रतिवेदन भेज दूंगा। पर इस मूर्ख (अनुसन्धित्सु) ने तो आपको कृतज्ञता-प्रकाशन भी नहीं किया। कहने लगे, जाने दीजिए, विस्मरण हो गया होगा। आप इसे न सोचकर इसका शीघ्र कल्याण कर दें। एक और प्रसंग मुझे स्मरण आ रहा है। अभी एकाध वर्ष पूर्व ही आपके पुत्र के सहकर्मी का पुत्र दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए आया। उन्होंने उसे मेरा कुछ परिचय दे दिया। समय आने पर उसके छात्रावास-निवास-सम्बन्धी व्यवस्था में मैंने कुछ सहायता की। उसे सफलता मिली। उसने जब यह वृत्त अपने पिता को सुनाया तो उन्होंने आदरणीय डॉ० द्विवेदी से कहा। उन्होंने अविलम्ब मुझे दूरभाष पर सहस्रशः धन्यवाद और आशीर्वचन कहे। सचमुच आदरणीय डॉ० द्विवेदी में सौजन्य और वैदुष्य का मणिकाञ्चन योग है।

मेरी एक और धारणा है कि बिना सौजन्य के कोई विद्वान् हो ही नहीं सकता। जिसने "विद्या ददाति विनयम्" को नहीं पढ़ा, उसने तो विद्या को अ, आ, इ, ई ही नहीं पढ़ी। डॉ० द्विवेदी किसी भी शोध के विषय हो सकते हैं। मैं अल्पमति उसी अन्धे के समान हूँ, जिसने हाथी के किसी अंग का स्पर्शकर उसे ही पूरा हाथी मान लिया है। वे आगामी दिसम्बर में ८८ वर्ष पूर्णकर रहे हैं। प्रभु उन्हें विंशोत्तरी शतायु बनायें, जिससे हम सभी लम्बे समय तक उनके शुभाशीः से सनाथित रहें। सन्त ऑगस्टीन के इन शब्दों से मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ-

"The heights by great men, reached and kept,
were not attained by sudden flight.
But they, while their companions slept,
were toiling upward in the night."

पता- आर०पी० १९, मौर्य एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली ११००३४

पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी : एक परिचय

- डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी, प्राध्यापक-संस्कृत, का०न०रा०स्ना० महा० ज्ञानपुर (भदोही)

गुरुकुल महाविद्यालय के यशस्वी स्नातक पद्मश्री सम्मान से विभूषित, स्वाधीनता संग्राम सेनानी, प्रख्यात संस्कृत विद्वान् डॉ० कपिलदेव द्विवेदी का जन्म ६ दिसम्बर सन् १९१८ को गहमर (गाजीपुर) में हुआ। आपके पिता का नाम स्व० श्री बलरामदास तथा माता का नाम श्रीमती वसुमती देवी है। श्री बलरामदास उत्तर प्रदेश के ग्राम गहमर के पट्टी-चौधरी राव के जाने माने सम्मानित व्यक्तित्व के धनी, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं गहमर में कांग्रेस के जन्मदाता थे। आज भी उन्हें गाँव में गाँधी बाबा के नाम से याद किया जाता है। डॉ० कपिलदेव द्विवेदी की प्रारम्भिक शिक्षा कक्षा ४ तक गहमर में हुई। तत्पश्चात् आपके पिताश्री ने अपनी प्रतिज्ञानुसार आपको सन् १९२८ में ९ वर्ष की अवस्था में स्वामी दर्शनानन्द द्वारा स्थापित निःशुल्क शिक्षा के केन्द्र गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) में प्रविष्ट करा दिया। डॉ० द्विवेदी ने माता-पिता के आशानुरूप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) से गुरुकुल शिक्षा पद्धति से विद्याभास्कर तथा साहित्यरत्न की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की। गुरुकुल में रहते हुए आपने २ वेद यजुर्वेद और सामवेद कण्ठस्थ किये। तत्पश्चात् आपने एम०ए० संस्कृत पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। हिन्दी में एम०ए० काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में डी०फिल् की उपाधि १९४९ में प्राप्त की। आपका जीवन सादा एवं नियमित है और श्रेष्ठ उपलब्धियों से परिपूर्ण है।

छात्र-जीवन में ही हैदराबाद में निज़ाम के विरुद्ध सन् १९३९ में स्वाधीनता संग्राम के अंग आर्य-सत्याग्रह में भाग लेकर आपने अपने पिता श्री बलरामदास के कदमों को जीवन्त रखते हुए २२ मार्च १९३९ को दो सौ साथी सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तारी दी। आपको दो वर्ष की सामान्य एवं ६ मास की कठोर सजा हुई। गुलबर्गा जेल में आप एक माह रहे एवं हैदराबाद जेल में ५ मास रहे। जेल में इतनी सख्ती एवं कड़ाई के बीच भी आप एवं आपके साथी 'आर्यसमाज की जय एवं वैदिक धर्म की जय' का उद्घोष करने से चूकते नहीं थे। जेल में रहकर आपने सत्यार्थप्रकाश, महाभारत का शान्तिपर्व, ईश आदि २८ उपनिषदें एवं गीतारहस्य को पढ़कर एक बड़ी उपलब्धि प्राप्त की। आपका विवाह १९५३ में श्रीमती ओम्शान्ति के साथ सम्पन्न हुआ। आपकी पत्नी का निधन २८ दिसम्बर १९७३ को प्रातः ५ बजे हुआ। यह आपके लिए वज्राघात के समान था। पूरे परिवार का दायित्व आप पर आ गया। उस समय सभी बच्चे अध्ययनरत थे। आपने सभी का सही मार्गदर्शन किया। आपके ५ पुत्र व २ पुत्री हैं। आपके ४ पुत्र तथा दो पुत्रवधू पी-एच०डी० उपाधि प्राप्त हैं। आपके ४ पुत्र उच्च पदों पर आसीन हैं तथा एक व्यवसाय में संलग्न है।

जहाँ बहुभाषाविद् डॉ० द्विवेदी संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी के उच्चकोटि के विद्वान् हैं, वहीं आपने जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी विदेशी भाषाओं सहित अनेक भारतीय भाषाओं मराठी, बंगला, उर्दू तथा पाली-प्राकृत में भी विशेष योग्यता प्राप्त की हुई है। आप संस्कृत भाषा, भाषाविज्ञान, संस्कृत व्याकरण, वेद एवं भारतीय दर्शन के एक आधिकारिक विद्वान् हैं।

आप अगस्त १९५० में सेंट एण्ड्रयूज कालेज गोरखपुर, में संस्कृत विभाग में अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। आप नवम्बर १९५४ तक वहाँ कार्यरत रहे। आपने नवम्बर १९५४ में ठा० देवसिंह बिष्ट स्नातकोत्तर महाविद्यालय नैनीताल में सहायक प्रोफेसर संस्कृत के पद पर कार्यभार ग्रहण किया। मार्च १९६५ में आपका स्थानान्तरण नैनीताल से काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर (भदोही) में हो गया। आप ज्ञानपुर में संस्कृत-विभागाध्यक्ष के साथ इस कालेज के उपप्राचार्य एवं प्राचार्य भी रहे। अगस्त १९७७ में ज्ञानपुर से आपका स्थानान्तरण प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोपेश्वर (चमोली) हो गया। इसी पद से आपने ३० जून १९७८ को राजकीय सेवा से अवकाश प्राप्त किया। राजकीय सेवा से निवृत्त होने के पश्चात् मातृसंस्था गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, में कुलपति पद पर १९८०-१९९२ तक कार्य किया।

डॉ० द्विवेदीजी न केवल भारतवर्ष के उच्चकोटि के विद्वानों में परिगणित हैं, अपितु संसार के प्रमुख विद्याविदों, भाषाविदों तथा वेदविदों में आपकी गणना की जाती है। आप संस्कृत भाषा के सरलीकरण पद्धति के उद्भावक एवं प्रवर्तक माने जाते हैं। संस्कृत भाषा को लोकप्रिय बनाने में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान है। आपने वेदामृतम् ग्रन्थमाला के माध्यम से वेदों को जन सामान्य तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। आपके द्वारा रचित और प्रकाशित पुस्तकों की संख्या ७० से भी अधिक है। आपके मौलिक संस्कृत ग्रन्थ हैं- आत्मविज्ञानम् (संस्कृत महाकाव्य), भक्ति कुसुमांजलिः (गीतिकाव्य), राष्ट्रगीतांजलिः (गीतिकाव्य), शर्मण्याः भाग्यविदः, शान्तिस्तोत्रम् एवं महाप्रयाणम् (शोक गीतिकाव्य), गीतांजलिः (गीतिकाव्य), संस्कृत कवि हृदयम् (काव्य), जयतु सुभारती आदि। आपके मौलिक शोधग्रन्थ हैं- The Essence of the Vedas. A Cultural Study of the Atharva Veda अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र, देववाणी-वैभव, साधना और सिद्धि, वेदों में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं शिक्षाशास्त्र, वेदों में राजनीति-शास्त्र, वैदिक दर्शन, वेदों में विज्ञान, वेदों में आयुर्वेद, वैदिक देवों का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, भाषाविज्ञान, वेदामृतम्-भाग १. सुखी जीवन, २. सुखी गृहस्थ, ३. सुखी परिवार, ४. सुखी समाज, ५. आचार शिक्षा, ६. नीति शिक्षा, ७. वेदों में नारी, ८. वैदिक मनोविज्ञान, ९.यजुर्वेद -सुभाषितावली, १०. सामवेद-सुभाषितावली, ११. अथर्ववेद सुभाषितावली, १२.ऋग्वेद-सुभाषितावली। संस्कृत व्याकरण, अनुवाद और निबन्ध पर आपकी रचनाएं- संस्कृत व्याकरण एवं लघुसिद्धान्त कौमुदी, प्रौढरचनानुवाद-कौमुदी, रचनानुवाद-कौमुदी, प्रारम्भिक रचनानुवाद-कौमुदी, संस्कृत-प्रभा, संस्कृत शिक्षा (भाग १ से ५), संस्कृत निबन्धशतकम्, लघुसिद्धान्त-कौमुदी (संज्ञा एवं सन्धि प्रकरण), लघुसिद्धान्त-कौमुदी (समास एवं विभक्ति प्रकरण)। आपके आलोचनात्मक ग्रन्थ हैं- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचरितम्, प्रतिमानाटकम्, किरातार्जुनीयम् (सर्ग-१), किरातार्जुनीयम् (सर्ग-४), कठोपनिषद् (अध्याय-१), शिशुपालवधम् (सर्ग-४)। अनूदित ग्रन्थ (हिन्दी अनुवाद)- संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका (मैकडानल), काले हायर संस्कृत ग्रामर (एम.आर.काले), संस्कृत साहित्य का इतिहास (वी. वरदाचारी)। संपादित ग्रन्थ- श्री मोहनलाल मोहित (मारीशस) अभिनन्दन ग्रन्थ, आत्मकथा : महात्मा नारायण स्वामी, विश्वशान्ति-महायज्ञ-विधि, वैदिक उपासना-विधि, प्रभुभक्ति के गीत, कृष्णपर्व माहात्म्य, महमर गौरव। अन्य ग्रन्थ हैं- शकुन्तला-नाटक (हिन्दी नाटक), संस्कृत रत्नावली, संस्कृत गद्यतरंगिणी, संस्कृत गद्यमंजरी, संस्कृत गद्य-नवनीतम्, संस्कृत कौमुदी, वैदिक संध्या अग्निहोत्र, आर्य समाज एण्ड इट्स मिशन, संस्कृत मुक्तावली, रामकथा और नए प्रतिमान आदि।

डॉ० द्विवेदी ने भारतीय संस्कृति, संस्कृत तथा वेदों के प्रचारार्थ सन् १९७६, १९८९, १९९०, १९९१ एवं १९९३ में विदेशों की यात्राएँ कीं। आप इंग्लैण्ड, जर्मनी, इटली, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड, हालैण्ड, अमेरिका, कनाडा, सूरीनाम, गुयाना, सिंगापुर, मारीशस, केनिया, नैरोबी, तंजानिया आदि देशों की कई बार यात्राएँ कर चुके हैं। १५० से अधिक व्याख्यान अपनी यात्राओं में दिए, आपने संस्कृत और भारतीय संस्कृति की पताका फहरायी।

संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए भारत सरकार ने सन् १९९१ में 'पद्मश्री' अलंकरण से विभूषित किया। आपको १९९२ में उ०प्र० संस्कृत संस्थान द्वारा संस्कृत साहित्य में विशिष्ट योगदान हेतु २५ हजार रुपये का 'विशिष्ट पुरस्कार' प्रदान किया गया। आपको उ०प्र० हिन्दी संस्थान से १९९३ में वेदों में आयुर्वेद पर बीरबल साहनी पुरस्कार से, दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा १९९७ में अखिल भारतीय संस्कृत मौलिक रचना पुरस्कार संस्कृत महाकाव्य आत्मविज्ञानम् रचना पर, वेद पण्डित गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा १९९१ में, वेदपण्डित पुरस्कार अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन द्वारा १९९५ में, वेद-वेदाङ्ग पुरस्कार आर्यसमाज सांताक्रुज मुम्बई द्वारा २००० में, उ०प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा वेदों में विज्ञान पुस्तक पर के०एन० माल पुरस्कार २००४ में, हजारी प्रसाद द्विवेदी अनुशंसा पुरस्कार १९८८ अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन ग्रन्थ पर उ०प्र० हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा, आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरस्कार (१९९१) गुरुकुल

कांगड़ी विश्वविद्यालय , हरिद्वार द्वारा, संस्कृत वर्ष सम्मान, सम्पूर्णानन्द सं० वि०, वाराणसी (२०००), राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्राब्दि सम्मान (२३.०९.२०००) सहस्राब्दि विश्व हिन्दी सम्मेलन, नई दिल्ली द्वारा, वैदिक विद्वान् पुरस्कार (१९९९) सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली द्वारा, विद्या मार्तण्ड स्वामी धर्मानन्द स्मृति पुरस्कार (५०००रू०) १९९८, आर्य वानप्रस्थ एवं विरक्त आश्रम ज्वालापुर हरिद्वार द्वारा । उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान द्वारा पुरस्कृत रचनाएं हैं- अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन (१९५२), संस्कृत व्याकरण (१९७२), संस्कृत निबन्धशतकम् (१९७७), राष्ट्रगीतांजलिः (१९८१), भक्तिकुसुमांजलिः (१९९०) । वेद एवं संस्कृत साहित्य के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान् के रूप में विभिन्न संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत व सम्मानित किया गया है । इनमें प्रमुख हैं- सूरीनाम के राष्ट्रपति द्वारा अभिनन्दन (१९९०), मारीशस के राष्ट्रपति द्वारा अभिनन्दन (१९९१), लन्दन यूनिवर्सिटी (ओरियन्टल विभाग)(१९८९), फ्रैंकफर्ट यूनिवर्सिटी (१९८९), ईस्टवेस्ट यूनिटी यूनिवर्सिटी, न्यूयार्क (१९९०), टोरन्टो यूनिवर्सिटी (१९९००), सूरीनाम यूनिवर्सिटी (१९९०), गुयाना यूनिवर्सिटी (१९९०), आर्यसमाज शताब्दी समारोह, नई दिल्ली (१९७५), महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी, अजमेर (१९८३), आर्यसमाज शताब्दी समारोह, कलकत्ता (१९८५), विन्ध्य गौरव सम्मान, विन्ध्य महोत्सव समिति (१९९९), 'ज्ञानगिरि' सम्मान प्रशासनिक अध्ययन संस्थान मुजफ्फरपुर (१९.०२.१९९१) द्वारा । हाल ही मे आपको रत्नप्रकाश मेमोरियल ट्रस्ट गोरखपुर द्वारा 'रत्नप्रकाश सम्मान २००६' से अलंकृत किया गया है । भारतीय विद्याभवन बंगलौर द्वारा आपको गुरु गंगेश्वरानन्द वेदरत्न पुरस्कार (एक लाख रुपये) २००५ से भी अलंकृत किया गया है । विभिन्न संस्थाओं द्वारा आपको समय-समय पर अनेक बार सम्मानित किया गया है । विदेशों में भी आपको अनेक बार सम्मानित किया गया है ।

सम्प्रति आप विश्वभारती अनुसन्धान परिषद् , ज्ञानपुर के निदेशक पद पर रहते हुए अपनी सारस्वत साधना में पूर्ण मनोयोग से संलग्न हैं ।

***

पता- प्रोफेसर कालोनी, ज्ञानपुर (भदोही)

डॉ० श्रुतिकान्त

गुरुकुल महाविद्यालय के वर्तमान मुख्याधिष्ठाता डॉ० श्रुतिकान्त जी का जन्म जिला मुजफ्फरनगर के मिर्जापुर नामक ग्राम में ९ सितम्बर, १९२२ ई० को श्री पीताम्बरसिंह जी के घर हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल महाविद्यालय में ही हुई।

इन्होंने यहाँ से विद्याभास्कर (स्नातक) तथा बनारस और पञ्जाब विश्वविद्यालय से शास्त्री १९४० ई० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पुनः आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० हिन्दी (१९४९) और संस्कृत (१९५२ ई०) में तथा पी-एच० डी० की उपाधि- भारतीय देव-भावना एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में उसका विकास-विषय पर विद्वत्तापूर्ण शोध-प्रबन्ध लिखकर, १९७० ई० में प्राप्त की। यह ग्रन्थ प्रकाशित हो गया है।

अध्ययनोपरान्त मानव-भारती, देहरादून में कुछ समय कार्य करने के पश्चात् सन् १९४६ से सन् १९५६ तक हिन्दू-कालेज मुरादाबाद में, पुनः सन् १९५६ से १९८० तक पञ्जाब सरकार के शिक्षा-विभाग में हिन्दी-प्रवक्ता पद पर रहे।

राजकीय शिक्षा-सेवा में रहने के कारण इन्हें- गवर्नमेण्ट कालेज धर्मशाला, गवर्नमेण्ट कालेज टाडा, उडमुड़, गवर्नमेण्ट कालेज गुरुदासपुर और गवर्नमेन्ट कालेज रोपण में प्रवक्ता पद पर रहते हुए हिन्दी-अध्यापन का श्रेय प्राप्त हुआ।

इनके परिवार का सम्बन्ध इस संस्था के साथ आरम्भ काल से ही रहा है। संस्था के सर्वप्रथम प्रधान श्री महाराजसिंह (मानकपुर) इनके ही वंश के थे। इनके पिता श्री पीताम्बर सिंह तथा अग्रज श्री केशवचन्द्र डिप्टी कलक्टर (रिटायर्ड) अन्तरंग सभा के सदस्य रहे हैं। इनके दूसरे अग्रज श्री आत्माराम शास्त्री एम०ए० यहीं के स्नातक थे। उनका जीवन देश-सेवा में व्यतीत हुआ।

साहित्य सेवा

इनकी रचनाओं में-

१. आधुनिक हिन्दी व्याकरण तथा रचना,

२. हिन्दी साहित्य और उसके अङ्ग,

३. साहित्य-विमर्श,

४. भारतीय देव-भावना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य आदि प्रसिद्ध हैं।

इनकी पुस्तकें उच्च कक्षाओं में समादृत हैं। अंग्रेजी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है और धारा-प्रवाह अंग्रेजी में भाषण करने में कुशल हैं। इनकी पारस्परिक व्यवहार की समाहारात्मक, समवेत जनाभिनन्दनीय मधुरालापिभाषण-शैली प्रशंसनीय है।

***

> देना प्रसन्नता करने वाला है।
>
> ऋग्वेद

गुरुकुल ज्वालापुर के आदर्श छात्र : आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन

– श्री शिवकुमार गोयल

साहित्यमनीषी, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन विविध आयामी व्यक्तित्व के धनी थे। वे स्वाधीनता सेनानी थे, पत्रकार थे, साहित्यकार तथा समाज-सुधारक थे। वे राष्ट्रीयता के सच्चे उद्घोषक थे। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अपना जीवन ही समर्पित कर दिया था।

श्री सुमन जी का जन्म १६ सितम्बर सन् १९१६ (आश्विन कृष्ण, षष्ठी संवत् १९७३) को हापुड़ तहसील के बाबूगढ़ नामक ग्राम में भारद्वाज गोत्रीय सारस्वत ब्राह्मण श्री हरिश्चन्द्र तथा श्रीमती भगवानी देवी के पुत्र के रूप में हुआ था।

बालक क्षेमचन्द्र ने प्रारम्भिक शिक्षा बाबूगढ़ छावनी की प्राइमरी पाठशाला में प्राप्त की। गुरुकुल महाविद्यालय (ज्वालापुर) के उपदेशक कर्मवीर ठाकुर संसारसिंह एक दिन आर्यसमाज का प्रचार करते हुए बाबूगढ़ आए। उन्होंने १२ वर्षीय क्षेमचन्द्र की प्रतिभा को परखा तथा पं० हरिश्चन्द्र जी को सुझाव दिया कि इसे गुरुकुल (ज्वालापुर) में प्रवेश दिला दो। मार्च १९२८ में १२ वर्षीय क्षेमचन्द्र को ज्वालापुर ले जाकर गुरुकुल में प्रवेश दिला दिया गया। सन् १९३९ में विद्याभास्कर की स्नातकीय उपाधि प्राप्त करने तक वे वहीं विद्याध्ययन करते रहे।

श्री सुमन जी गुरुकुल ज्वालापुर में सुविख्यात वैदिक विद्वान् स्वाधीनता-सेनानी तथा भारतीय संस्कृति के मूर्तरूप आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ जी के श्री चरणों में बैठकर अध्ययन किया था। उन्हें सुविख्यात विद्वान् स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी तथा सम्पादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा जैसी विभूतियों का सान्निध्य भी प्राप्त हुआ था। अत्यन्त सात्त्विक व भारतीयता के वातावरण में उन्हें राष्ट्रीयता तथा भारतीयता के संस्कार प्राप्त हुए।

सुमन जी कुछ ही दिनों में आचार्यों का आशीर्वाद प्राप्त करने में सफल हो गए। वे गुरुकुल के छात्रों की 'आर्य-किशोर सभा' के मंत्री मनोनीत किए गए। हस्तलिखित पत्रिका 'किशोरमित्र' के सम्पादन का दायित्व भी उन्हें सौंपा गया।

सन् १९३३ में रहरा (मुरादाबाद) ग्राम निवासी युवक प्रकाशवीर ने भी गुरुकुल (ज्वालापुर) में प्रवेश लिया। उस समय उनका नाम 'प्रकाशचन्द्र' था। आगे चलकर इन प्रकाशचन्द्र ने ही 'प्रकाशवीर शास्त्री' के नाम से आर्यसमाज के प्रचार तथा राजनीति में अग्रणी रहकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित की। प्रकाशवीर शास्त्री जी समय-समय पर यह स्वीकार करते थे कि जहाँ आचार्य श्री नरदेव शास्त्री जी जैसे महान् गुरुवर से उन्हें मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, वहीं अग्रज के नाते सुमन जी से भी उन्हें व्याख्यान देने तथा कविताएं आदि लिखने में प्रोत्साहन मिलता रहा।

गुरुकुल में मिले राष्ट्रीयता के संस्कार

एक दिन मैंने आचार्य सुमन जी से किए गए साक्षात्कार में जब उनसे प्रश्न किया कि आपको राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वाधीनता-संग्राम में सक्रिय होने तथा लेखन में प्रवृत्त होने की प्रेरणा कैसे मिली तो उन्होंने बताया-

मैं गुरुकुल (ज्वालापुर) में अध्ययन करता था। हमारे गुरुदेव आचार्य नरदेव शास्त्री 'वेदतीर्थ' जी का अनेक राष्ट्रीय नेताओं से सम्पर्क था। वे लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महाराज के अनन्य भक्त थे। वे तिलक जी द्वारा सम्पादित 'केसरी' पत्र मंगवाया करते थे।

आचार्य जी केसरी के लेखों का स्वयं तो अध्ययन करते ही थे- कभी-कभी विद्यालय की कक्षा शुरु होने से पूर्व प्रार्थना के समय 'केसरी' में प्रकाशित लेखों व समाचारों के महत्वपूर्ण अंश छात्रों को सुनाया करते थे। 'केसरी' के लेखों

व समाचारों को पढ़कर, सुनकर तथा पूज्य आचार्य जी (नरदेवजी) के श्रीमुख से भारत राष्ट्र के तथा स्वाधीनता महत्त्व का सन्देश-उपदेश सुनकर मेरे हृदय में उथल-पुथल मचने लगी। मैं स्वाधीनता के लिए चलाए जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति रखने लगा।

आचार्य जी राष्ट्रवाद के प्रखर प्रहरी थे

श्री सुमन जी ने बताया- 'वर्ष १९३३ की बात है। मैं केवल १७ वर्ष का था। एक दिन गुरुजी (आचार्य नरदेव जी) ने हम छात्रों को महान् क्रान्तिकारी वीर सावरकर जी की जीवनी पढ़ने को दी। वे बोले - 'इस महान् क्रान्तिकारी ने अपनी जवानी कालापानी में कोल्हू चलाते हुए गला डाली थी। ये हाल में नजरबन्दी से मुक्त किए गए हैं। इनके जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए।' अगले ही वर्ष उन्होंने हमें सावरकर जी द्वारा लिखे १८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-समर ग्रंथ की प्रति दी। आचार्य जी ने बताया कि इसका गुप्त रूप से प्रकाशन लाहौर में शहीद भगतसिंह ने कराया था। भगतसिंह ने यह पुस्तक श्री पुरुषोत्तमदास टंडन को दी थी। टंडन जी ने मुझे भेंट की है। इसे पढ़कर स्वाधीनता-सेनानियों के संघर्ष के बलिदानों की घटनाओं से प्रेरणा मिलेगी।

हम सब इस अमर ग्रंथ को पढ़कर बहुत प्रेरित हुए।

सुमन जी ने बताया कि आगे के वर्षों में आचार्य जी के आमंत्रण पर महान् क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जी तथा राष्ट्रवादी नेता डॉ० बालकृष्ण शिवराम मुंजे गुरुकुल पधारे। उनका व्याख्यान सुनकर सान्निध्य प्राप्त कर बहुत प्रेरणा मिली। लाला लाजपतराय, महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी, नेहरू जी, गांधीजी आदि के भी दर्शनों का सौभाग्य मिला। पूज्य गुरुजी (आचार्य जी) के इन सब विभूतियों से निकट के सम्बन्ध थे।

सुमन जी ने बताया- 'गुरुकुल (ज्वालापुर) में साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा भी हमारे गुरुजनों में थे। वे साहित्य का अध्ययन कराने के साथ साथ गुरुकुल की मासिक पत्रिका 'भारतोदय' का सम्पादन भी करते थे। सब इन्हें 'सम्पादक जी' कहकर पुकारा करते थे। शर्मा जी का व्यक्तित्व अत्यन्त महान् था। 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी उनके परम मित्र थे। नाथूराम शर्मा शंकर तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त भी 'संपादक जी' के पास आया करते थे। गुरुकुल में उनका सान्निध्य प्राप्त कर मुझ जैसे छोटी आयु के किशोर में लेखन व पत्रकारिता के अंकुर उगने लगे। लोकमान्य तिलक तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपना आदर्श मानकर मैं मन ही मन पत्रकार बनने के सपने संजोने लगा था।

गुरुकुल के हम कुछ छात्र मिलकर हस्तलिखित पत्रिका 'सुधांशु' नाम से निकालते थे। 'किशोरमित्र' का भी मैंने सम्पादन किया। यह पत्रकारिता में प्रवेश का शुभारंभ कहा जा सकता है।

सुमन जी ने बताया ' गुरुकुल की प्रबन्ध-समिति के मंत्री श्री शीतलाप्रसाद विद्यार्थी ने सहारनपुर से 'आर्य' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया था। मेरी पहली रचना 'आर्य' में प्रकाशित हुई थी।'

श्री विद्यार्थी जी ने सुमन जी को 'आर्य' के सम्पादन में सहयोग करने सहारनपुर बुला लिया। कुछ वर्ष बाद जाने-माने पत्रकार श्री हरिशंकर शर्मा द्वारा सम्पादित 'आर्यसंदेश' (आगरा) में इन्हें कार्य करने का सौभाग्य मिला। बाद में सुमन जी 'आर्यसंदेश' के सहायक सम्पादक बन गए। श्री हरिशंकर शर्मा के चरणों में बैठकर उन्होंने पत्रकारिता का ज्ञान प्राप्त किया। सुमन जी ने कुछ दिन मंडी धनौरा (मुरादाबाद) से प्रकाशित 'शिक्षा-सुधा' पत्रिका का सम्पादन भी किया।

कई पत्र-पत्रिकाओं में कार्य करने के बाद अक्तूबर १९४१ में सुमन जी लाहौर जा पहुँचे। उर्दू 'मिलाप' उन दिनों लाहौर का प्रमुख अखबार था। महाशय खुशहालचन्द्र खुर्सन्द (महात्मा आनंद स्वामी सरस्वती) उसके सम्पादक थे। जब 'मिलाप' का हिन्दी संस्करण प्रकाशित हुआ तो श्री लेखराम को सम्पादन का दायित्व सौंपा गया। श्री लेखराम ने सुमनजी को 'हिन्दी मिलाप' के सम्पादकीय विभाग में नियुक्त कर लिया।

लाहौर में गिरफ्तारी

लाहौर के मैक्लाराम रोड के एक मकान में सुमन जी, लेखराम जी तथा नरेन्द्र मालवीय एक साथ रहते थे। सुमन जी की लिखी एक कविता को आपत्तिजनक करार दिया गया।

सन् १९४२ का आन्दोलन शुरू हो चुका था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक छात्र इसमें सक्रिय थे। महामना मालवीय जी महाराज के आह्वान पर अनेक शिक्षक भी सक्रिय हो गए थे। हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० के०एन० गैरोला, काशी के संस्कृत कालेज के छात्र केवलानन्द अज्ञेय, प्रो० राधेश्याम आदि पुलिस का वारण्ट जारी होते ही काशी से लाहौर जा पहुँचे। इन्द्र विद्यावाचस्पति जी के पुत्र जयंत वाचस्पति भी लाहौर में रह रहे थे। 'मिलाप' के सम्पादक श्री लेखराम स्वयं कट्टर राष्ट्रवादी विचारों के थे। उन्होंने अपने मकान में इन सबको रहने की अनुमति दे दी।

केवलानन्द अज्ञेय बागपत (मेरठ) क्षेत्र के निवासी थे। उनकी एक टांग कटी हुई थी। वे 'आचार्य दीपंकर' के नाम से जाने जाते थे। काशी पुलिस ने उनकी गिरफ्तारी पर इनाम भी घोषित किया हुआ था।

किसी प्रकार पुलिस के हाथों यह सूत्र लग गया कि यह बड़ा मकान आन्दोलनकारियों का अड्डा है। आचार्य दीपंकर एक टांग होने के कारण खुफिया पुलिस की निगाह में आ गए और एक रात भी सी०आई०डी० इन्स्पेक्टर महाराज कृष्ण के नेतृत्व में पुलिस वालों ने मकान पर छापा मारा। आचार्य दीपंकर को गिरफ्तार कर लिया गया।

२३ मार्च (१९४३) को पुलिस ने लेखराम जी व सुमन जी को भी गिरफ्तार कर लिया। हिन्दी के कवि हरिकृष्ण प्रेमी व जयन्त वाचस्पति भी लाहौर में गिरफ्तार कर लिए गए।

दो माह तक लाहौर में पुलिस हवालात में रखे जाने के बाद सुमनजी आदि को फिरोजपुर जेल भेज दिया गया।

फिरोजपुर जेल में सुमनजी को डॉ० युद्धवीर सिंह (दिल्ली), चौधरी ब्रह्मप्रकाश, बृजकृष्ण चांदीवाला, उड़ीसा के बीजू पटनायक, चन्द्रशेखर आजाद के साथी नंदकिशोर निगम, लेखक जयंत जैमिनी कौशिक बरुआ, गोपीनाथ अमन, मीर मुश्ताक अहमद आदि के साथ रहने का अवसर मिला।

सुमन जी ने बताया कि फिरोजपुर जेल में मेरे कवि-हृदय से राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत काव्य प्रस्फुटित हुआ। उन कविताओं का संकलन आगे चलकर 'बन्दी के गान' शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। 'कारा' नाम से खण्डकाव्य भी जेल में ही लिखा गया।

गाँव में नजरबन्द

२३ अगस्त १९४४ को सुमन जी को जेल से रिहाकर बाबूगढ़ (मेरठ) उनके गाँव भेज दिया गया। उन्हें गाँव में ही नजरबंदी में रहने के आदेश दिए गए। २५ अगस्त १९४४ से १७ मई १९४५ तक उन्हें गाँव में नजरबंद रहना पड़ा।

१५ अगस्त १९४७ को देश स्वाधीन हुआ तो सुमन जी कह उठे–

'आज प्राण पुलकित हैं, सबके जन-जन में उल्लास नया

कोटि-कोटि वीरों की बलि से, शोषण का साम्राज्य गया।

सुमन जी स्वाधीनता मिलते ही पूरी तरह समर्पित भावना से साहित्य-सृजन में जुट गए। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के तेजस्वी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक कविताएं लिखीं जो १९४६ में 'लाल किले की ओर' शीर्षक पुस्तक के रूप में संकलित हुईं। सुमन जी ने चीन की चुनौती, हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत, पुस्तकों का सम्पादन किया। सन् १९६६ में प्रकाशित उनकी लिखी पुस्तक 'नारी तेरे रूप अनेक' बहुत चर्चित हुई।

सुमन जी ने कांग्रेस का इतिहास, आजादी की कहानी, हमारा संघर्ष, हिन्दी साहित्य-नए प्रयोग, नए भारत के निर्माता, जीवन-ज्योति, अमरदीप, हिन्दी के यशस्वी पत्रकार, नेताजी सुभाष, आधुनिक हिन्दी साहित्य, चमकते जीवन महकते संस्मरण, जाने अनजाने, अगस्त क्रान्ति जैसी लगभग ७० पुस्तकों का सृजन कर हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अनूठा योगदान किया ।

सुमन जी ने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य देश-विदेश के हजारों दिवंगत हिन्दी-सेवियों के सचित्र जीवन परिचय का संकलन करके उन्हें 'दिवंगत हिन्दी सेवी' नाम से दो खण्डों में प्रकाशित कराकर किया । इस अनूठे कार्य के लिए जैसे उन्होंने अपने को पूर्ण समर्पित कर डाला था ।

सुमन जी को अनेक राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए । उनकी ५०वीं वर्षगांठ पर उन्हें भव्य अभिनंदन ग्रंथ भी भेंट किया गया था । सुमन जी स्वयं में एक संस्था थे । साहित्य-संस्कृति तथा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया हुआ था ।

२३ अक्तूबर १९९३ को, विजयदशमी से एक दिन पूर्व सुमन जी अन्य दिवंगत हिन्दी सेवियों का साहित्यिक श्राद्ध करते-करते स्वयं दिवंगत हो गए । गुरुकुल (ज्वालापुर) को अपने ऐसे आदर्श छात्र पर सदैव गर्व रहेगा ।

***

पता- भक्त रामशरणदास भवन
पीपलपट्टी, पिलखुवा,
गाजियाबाद (उ०प्र०)

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ।।

जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म- इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है ।

आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन'

- डॉ० इन्दु सेंगर

आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का जन्म १६ सितम्बर १९१६ ई० को उत्तर प्रदेश के मेरठ जनपद (अब गाजियाबाद) की हापुड़ तहसील के बाबूगढ़ नामक ग्राम में हुआ था। बाबूगढ़ भारत की चार विशेष घुड़सवार फौजों की छावनियों में से एक रहा है। ये छावनियाँ 'रिमाउण्ट डिपो' कहलाती थीं। इनमें बाबूगढ़ (इण्डिया) के पते से ही पत्राचार होता था।

सुमन जी के पिता श्री हरिश्चन्द्र सारस्वत बाबूगढ़ की छावनी में सैनिक अश्वशाला के निरीक्षक थे। सरकारी सेवा से जो समय बचता था, उसमें वे पौरोहित्य किया करते थे। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि संस्कृत-शिक्षा से रहित होते हुए भी वे पौरोहित्य में बड़े-बड़े धुरन्धरों के छक्के छुड़ा देते थे।

सुमन जी के परिवार में उनके बड़े भाई श्री सखीराम शर्मा को छोड़कर और कोई पढ़ा लिखा नहीं था। आपके सुकुमार जीवन के ५-६ वसन्त माँ की ममतामयी बाँहों में झूलते हुए गुजर गये। फिर एक दिन वह आया कि बगल में बस्ता दबाये हाथ में तख्ती लिये आप ग्राम की पाठशाला में पढ़ने जाने लगे। यह सन् १९२४ ई० की बात है।

जिस समय 'साइमन कमीशन' का अंगद-चरण महाभारत में जम चुका था, उस समय आप पापहारिणी जाह्नवी के किनारे महामहिम दर्शनानन्द सरस्वती की चरण-छाया में पोषित शिक्षाकेन्द्र गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में उच्च शिक्षा ग्रहण के लिए प्रविष्ट हुए। यह सन् १९२८ ई० की बात है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के कारण सन् १९३२ ई० में आपने सर्वप्रथम महाविद्यालय के छोटे ब्रह्मचारियों की आर्यकिशोर सभा के हस्तलिखित मासिक मुखपत्र 'किशोरमित्र' के 'दीपमालिका अंक' का सम्पादन किया था। यह आपकी प्रतिभा का ही चमत्कार था कि इस अंक के कुशल संपादन, सौन्दर्य एवं सौष्ठव से प्रभावित होकर अनेक विद्वानों ने मुक्तकंठ से इस अंक की प्रशंसा की थी। उक्त अंक की अनेकशः विद्वानों द्वारा सराहना किये जाने का सुपरिणाम यह हुआ कि आपकी साहित्यिक चेतना का उदीयमान सूर्य अपनी तेजस्वी रश्मियों को साहित्य-जगत् में प्रकाशित करता हुआ आलोकित होने लगा और उसी वर्ष वसन्तोत्सव के पावन पर्व पर आपने एक और रत्न हिन्दी-जगत् को दिया था। यह था हस्तलिखित 'सुधांशु' मासिक पत्र, जो अविरत कीर्ति अर्जित करता हुआ कई वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। उस युग में 'सुधांशु' ने हिन्दी-जगत् को अनेक ऐसे विशेषांक प्रस्तुत किए, जिनकी पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न, श्री द्वारिकाप्रसाद 'सेवक', श्री ईश्वरदत्त मेधार्थी और पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ आदि विद्वानों ने उन्मुक्त हृदय से प्रशंसा की थी।

उपर्युक्त पत्रों की भांति ही आपने महाविद्यालय के संस्कृत एवं हिन्दी विभागों के बड़े ब्रह्मचारियों की विद्वत्कला परिषद् के मासिक मुखपत्र 'विद्वत्कला' का भी सफल सम्पादन किया था।

सन् १९३६ ई० में आपकी गुरुकुलीय शिक्षा पूर्ण हो गयी। उसी समय शीतलप्रसाद 'विद्यार्थी' ने शान्ति प्रेस, सहारनपुर से 'आर्य' नामक एक सामाजिक-क्रान्तिकारी सचित्र साप्ताहिक पत्र निकालने का विचार सुमन जी के समक्ष प्रस्तुत किया। सुमन जी ने उनके अनुरोध पर, उस पत्र का एक वर्ष तक सुचारु-रूपेण सम्पादन किया, परन्तु आर्थिक समस्याओं के कारण वह पत्र बन्द हो गया। उसी वर्ष आप ५ फरवरी, १९३८ को आयोजित आर्यकिशोर सभा के रजत-जयन्ती महोत्सव के स्वागताध्यक्ष मनोनीत किए गए। आपने इस महोत्सव में पूर्ण मनोयोग से कार्य किया। इसी वर्ष हरिद्वार में होने वाले कुम्भ मेले के अवसर पर आपने ८ अप्रैल, १९३८ को एक विराट् हिन्दी कवि सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसकी अध्यक्षा श्रीमती द्रौपदी देवी थीं।

मई, सन् १९३८ में सुमन जी का विवाह हो गया और वे जीविकोपार्जन की चिन्ता से घिर गये। परिणामतः जनवरी, १९३९ में 'आर्य-सन्देश' के सम्पादकीय विभाग में आगरा चले गये। यह पत्र आर्थिक कठिनाइयों के कारण केवल दो मास तक चलकर ही बन्द हो गया। फलतः मार्च, १९३९ से आप 'आर्यमित्र' में चले गये। उस समय आपका वेतन बारह रुपये मासिक था। अक्तूबर, १९३९ ई० में अमेठी राज्य के राजकुमार रणञ्जय सिंह ने अपने खर्चे पर आपको 'मनस्वी' मासिक का सम्पादन करने के विषय में विचार-विमर्श करने के लिए बुलाया और चालीस रुपये मासिक पर नियुक्ति की सूचना देते हुए ८ नवम्बर, १९३९ को इस प्रकार लिखा- "आप यहाँ शीघ्र से शीघ्र चले आइये, क्योंकि 'मनस्वी' के प्रकाशन में बहुत विलम्ब हो रहा है। आपके लिए चालीस रुपये मासिक का प्रबन्ध हो जायेगा।" सुमन जी वहाँ चले तो गये, परन्तु वहाँ का वातावरण और क्रियाकलाप उन्हें रास नहीं आए और गर्मियों में राजकुमार के, विजगापट्टम् की समुद्र-यात्रा पर जाने के बाद उनकी अनुपस्थिति में तार द्वारा अपने त्याग-पत्र की सूचना देकर माण्डी धनौरा (मुरादाबाद) से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'शिक्षा सुधा' में पहुँच गए। दिसम्बर, १९४० में आपने वहाँ से भी त्यागपत्र दे दिया। अक्तूबर, १९४१ में आप हिन्दी-भवन, लाहौर में साहित्यिक-सहायक होकर चले गये। यहाँ पर आपकी भेंट प्रसिद्ध नाटककार और कवि उदयशंकर भट्ट और हरिकृष्ण 'प्रेमी' से हुई, जिनकी प्रेरणा से आप सम्पादन-कार्य के साथ-साथ लेखन-कार्य की ओर भी प्रवृत्त हो गए। उन दिनों हिन्दी की रत्न, भूषण, प्रभाकर आदि परीक्षाओं की सहायक पुस्तकें तैयार करने का श्रेय सुमन जी ने ही प्राप्त किया था।

लाहौर में रहते हुए सुमन जी हिन्दी 'मिलाप' में उसके सम्पादक श्री लेखराज के साथ काम करने लगे। सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सुमन जी का निवास क्रान्तिकारी नेताओं और कार्यकर्ताओं की शरण-स्थली बन गया। उन क्रान्तिकारियों में पत्रकार, अध्यापक, राजनीतिक और छात्र-छात्राएं शामिल थे। पुलिस को इस बात का सुराग मिल गया और एक दिन वह आया कि पुलिस ने उनके घर को चारों ओर से घेर लिया। तलाशी में आचार्य दीपंकर पुलिस के हाथ लगे, क्योंकि वे विकलांग थे, इसीलिए पुलिस को उन्हें पहचानने मे देर नही लगी। इसी कारण सुमन जी भी पुलिस की आँखों में खटकने लगे और कुछ दिनों बाद उन्हें भी नजरबन्द कर लिया गया। इस प्रकार जून, १९४५ तक स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में सक्रिय भाग लेने के उपरान्त जुलाई, १९४५ ई० में आप दिल्ली आकर जम गये।

मार्च, १९५६ मे आपके जीवन में ऐसा मोड़ आया कि आप 'साहित्य अकादमी' नई दिल्ली की सेवाओं से जुड़ गए। यहाँ पर लगभग २४ वर्ष प्रकाशन एवं कार्यक्रम अधिकारी के पद पर कार्य करने के उपरान्त अक्तूबर, १९७९ से आपने दस खण्डों में प्रकाश्य 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' नामक आकर-ग्रन्थ के प्रणयन द्वारा हिन्दी के संवर्धन तथा विकास का वास्तविक इतिहास प्रस्तुत करने का जो महत्वपूर्ण अभियान प्रारम्भ किया, वह वास्तव में आपकी साहित्यिक साधना की चरम परिणति है। यदि आपने इस योजना की परिकल्पना न की होती, तो अतीत के अन्धकार में विलुप्त होते जा रहे हिन्दी के हजारों लेखकों, मनीषियों, सेवकों और साधकों के बारे में हम अनभिज्ञ ही बने रहते। इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अभी तक दो खण्ड ही प्रकाशित हुए थे कि उन्हें श्वास-रोग ने दबोच लिया और लगभग १० वर्ष की लम्बी बीमारी के बाद २३ अक्तूबर, १९९३ की रात्रि को ८.५० पर वे स्वयं भी दिवंगत हिन्दी-सेवियों की सूची मे सम्मिलित हो गए। हिन्दी-साहित्य का एक विशाल जलयान, जो अनेकशः बहुमूल्य रत्नों से लदा हुआ था, काल के महासागर में जल-समाधि ले गया।

व्यक्तित्व- सुमन जी को स्वदेशी और खादी से प्रेम था, उनमें किसी फसली-नकली की मिलावट नहीं थी। मझोला कद, स्वच्छ सादा लिबास, छरहरा बदन, सदाबहार पुष्प की भाँति सदैव मुस्कान बिखेरता हुआ चेहरा और उस पर अंकित काला तिल। उन्नत मस्तक, चिन्तनशील आँखें मिलने वाले पर अनायास ही अपना सम्मोहक पाश डाल देती थीं। उस पर भी खादी का कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा अथवा धोती, शेरवानीनुमा लम्बा कोट, सिर पर खादी की नुकीली टोपी और पैरों

थे प्रायः शु । यदा कदा साहित्यिक अनुष्ठानों में श्वेत खादी के परिधान धारण कर लेते थे । यद्यपि जीवन का काफी सफर वे तय कर चुके थे, फिर भी वे थके नहीं थे । वे अदम्य साहस, पौरुष और कर्मण्यता की प्रतिमूर्ति थे । अपनी राह के पत्थर हटाकर चलने का बल उनमें था । वे कायर नहीं बहादुर थे । उनकी निष्ठा, स्फूर्ति, सजीवता, मस्ती एवं फक्कड़पन, औदार्य और नाकगड्डुता तथा आत्माभिमान अनुकरणीय है । आतिथ्य-सत्कार उनके जीवन का विशिष्ट अंग था । बड़ा और छोटा प्रत्येक साहित्यकार उनका आतिथ्य प्राप्त कर सकता था । प्रत्येक अतिथि के सम्मान की ललक उनके कमरे में सुशोभित कबीर की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत करती हैं

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय ।

मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।।

ये पंक्तियाँ सुमन जी की संतोष-वृत्ति का प्रमाण है । यही कारण है कि सुमन जी का अपना एक आदर्श था, चरित्र था । उनका अहम् किसी द्वेष का कायल नहीं था । वे विनोदप्रिय थे । साहित्यिक परिवेश से हटकर दैनिक एवं व्यावहारिक जीवन में व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास उनकी मस्ती के परिचायक थे । उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था, जब कोई सत्य का मर्दन करके उनके अहम् और स्वाभिमान पर चोट पहुँचाने का प्रयास करता था, तो उनका क्रोध तुलसी के परशुराम से कम नहीं होता था । हाँ, दिल के वे एकदम साफ थे । कोई गलती हो जाय, उनसे क्षमा माँग लो । सुमन जी के यहाँ सर्वदा के लिए माफ । उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में उन्हीं की पंक्तियाँ सार्थक सिद्ध होती हैं- "मैं अपने साहित्यिक जीवन में प्रारम्भ से ही अध्ययनशील रहा हूँ । संघर्ष को अपना मूल ध्येय मानता हूँ । वास्तव में निरन्तर संघर्ष करते रहने की भावना तथा अनवरत अध्ययन करते रहने की लालसा ने ही मुझे कर्म-पथ पर बढ़ने की अदम्य प्रेरणा दी । जिन कार्यों को कोई भी न कर सके, ऐसे कार्यों में सहज ही हाथ डालने की मेरी आदत-सी हो गई है । लेखन, अध्ययन, चिन्तन और मनन के दैनिक कार्य से जब जी उकता जाता हूँ तो जन-सेवा की पावन मंदाकिनी में अवगाहन करके मैं अपने में ताजगी लाता हूँ । कबीर का फक्कड़पन, रहीम का स्वाभिमान और तुलसी की परोपकार-परायणता मेरे जीवन के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं ।"

रचना-संसार- माँ भारती के मन्दिर में जिन कृतियों का पावन नैवेद्य लेकर सुमन जी ने अनन्यार्चना की, उनमें मौलिक और सम्पादित दोनों ही प्रकार की कृतियाँ सम्मिलित हैं । मौलिक कृतियों की संख्या तीन दर्जन से ऊपर और सम्पादित कृतियों की संख्या पाँच दर्जन से भी अधिक है । उनका रचना-संसार इस प्रकार है-

मौलिक रचनाएँ

काव्य- मल्लिका (१९३३), बन्दी के गान (१९३५), कारा (१९३५) और अंजलि (अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध)।

समीक्षा- हिन्दी साहित्य नये प्रयोग (१९४९), साहित्य-सोपान (१९५०), साहित्य-विवेचन (१९५२), हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति (१९५८), साहित्य विवेचन के सिद्धान्त (१९५८), आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९६०), हिन्दी साहित्य को आर्यसमाज की देन (१९७०), स्वातंत्र्योत्तरी हिन्दी कविता (१९७१), मेरठ जनपद की साहित्यिक चेतना (१९७७), शोध और सन्दर्भ (१९८५), चिन्तन और चर्चा (१९८६), नई पीढ़ी के कवि, कृतियाँ और कला (दोनों अप्रकाशित) ।

इतिहास- हमारा संघर्ष (१९४६), कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास (१९४७), आजादी की कहानी (१९४९), हम स्वाधीन हुए (१९८७), अगस्त क्रान्ति (१९९६) ।

जीवनी- नेताजी सुभाष (१९४६), नये भारत के निर्माता (१९४८), जीवन-ज्योति (१९६२), अमरदीप (१९६८), यशस्वी पत्रकार (१९८६), भारत के कर्णधार (१९९६) ।

संस्मरण- रेखाएँ और संस्मरण (१९७५), जाने-अनजाने (१९८९), चमकते जीवन : महकते संस्मरण (१९९०), मेरे प्रिय : मेरे आराध्य (१९९३)।

निबन्ध- प्रभाकर निबन्धावली (१९४८), सुमन-सौरभ (१९५०), कुछ अपनी : कुछ पराई, प्रासंगिक लेख (दोनों अप्रकाशित)।

संदर्भ ग्रन्थ- दिवंगत हिन्दी-सेवी (१० खण्डों में प्रकाश्य)- प्रथम खण्ड (१९८१), द्वितीय खण्ड (१९८३)।

बाल-साहित्य- ये भी बोलते हैं (१९८१), खिलौने वाला (१९८४), इतना तो सीखो ही (१९९३)।

सम्पादित एवं संकलित रचनाएँ

काव्य- लाल किले की ओर (१९४६), गांधी भजनमाला (१९४८), हिन्दी के लोकप्रिय कवि : नीरज (१९६०), हिन्दी के लोकप्रिय कवि : रामावतार त्यागी (१९६१), हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत (१९६१), आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत (१९६२), चीन को चुनौती (१९६२), सरल काव्य संग्रह (१९६४), हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत (१९६५), नारी तेरे रूप अनेक (१९६६), वन्दना के स्वर (१९७५)।

भाषा-परिचय- उर्दू और उसका साहित्य (१९५२), तामिल और उसका साहित्य (१९५२), तेलुगू और उसका साहित्य (१९५३), मराठी और उसका साहित्य (१९५३), मलयी और उसका साहित्य (१९५३), बंगला और उसका साहित्य (१९५३), अवधी और उसका साहित्य (१९५४), भोजपुरी और उसका साहित्य (१९५४), संस्कृत और उसका साहित्य (१९५५), गुजराती और उसका साहित्य (१९५६), प्राकृत और उसका साहित्य (१९५६)।

कहानी- गल्प-माधुरी (१९४८), मनोरंजक कहानियाँ (१९५०), पारिवारिक कहानियाँ (१९५१)।

एकांकी- नीर-क्षीर (१९४९), एकांकी संग्रह (१९५८)।

निबन्ध- राष्ट्रभाषा हिन्दी (१९४८), गद्य सरोवर (१९५१), निबन्ध भारती (१९५७), सरल गद्य (१९६१)।

जीवनी-संस्मरण- जैसा हमने देखा (१९५०), पं० पद्मसिंह शर्मा (१९५१), साहित्यिकों के संस्मरण (१९५२), जीवन-स्मृतियाँ (१९५२), नेताओं की कहानी : उनकी जुबानी (१९५२), बापू और हरिजन (१९५३), भारतीय आत्माएँ (१९७५)।

अभिनन्दन-ग्रंथ- डॉ. एन० चन्द्रशेखर नायर अभिनन्दन ग्रंथ (१९७९), निष्काम-साधक (१९८४), समर्पित यायावर : राजेन्द्र शर्मा (१९८५)।

स्मृति-ग्रंथ- आत्मशिल्पी कमलेश (१९७६), आगुव्रती तापस : गोपीनाथ अमन (१९८८), चाँदकरण शारदा जन्म-शती-ग्रंथ (१९८८)।

स्मारिकाएं- भारतीय साहित्य : आदान प्रदान (१९७०), स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज (१९७३), राजभाषा हिन्दी : प्रगति और प्रयोग (१९७५), राजभाषा हिन्दी : प्रगति के बढ़ते चरण (१९७६)।

सम्पादन-सहयोग- प्रेरक साधक (बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन-ग्रंथ), बाबू वृंदावन दास अभिनन्दन ग्रंथ, स्वामी रामानन्द शास्त्री अभिनन्दन ग्रंथ, हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम, मेरठ जनपद : एक सर्वेक्षण, समर्पण और साधना, जानकी देवी बजाज अभिनन्दन ग्रंथ, महाकवि शंकर अभिनन्दन ग्रंथ तथा हीरालाल दीक्षित अभिनन्दन ग्रंथ।

पत्र-पत्रिकाएं- आलोचना (त्रैमासिक), मनस्वी (मासिक), शिक्षा-सुधा (मासिक), आर्य (साप्ताहिक), आर्य सन्देश तथा आर्यमित्र (साप्ताहिक), हिन्दी-मिलाप (दैनिक) आदि।

भूमिका लेखन- सुमन जी ने अपनी साहित्यिक-यात्रा में अन्य साहित्यकारों द्वारा विभिन्न विषयों में लिखित लगभग सौ पुस्तकों की भूमिकाएं लिखी हैं। इनके अतिरिक्त स्वयं लिखित कतिपय पुस्तकों की भूमिकाएं भी उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर सुमन जी के कृतित्व को निम्नलिखित रूपों में मूल्यांकित किया जा सकता है-

१. **राष्ट्रीय संचेतना एवं जीवन की पुकार के कवि-** अपनी काव्य-रचनाओं में सुमन जी ने विरही साधक एवं राष्ट्रीय चेतना के कविरूप में अनुभूतियों का सम्प्रेषण किया है, जिनमें से प्रथम दो रचनाएं मुक्तक और तृतीय रचना इतिवृत्तात्मक खण्डकाव्य है। डॉ. विमल कुमार जैन के शब्दों में ''यह खण्डकाव्य एक जागृति का काव्य है, जिसका महानतम सन्देश है मातृ-भू पर सर्वस्व लुटा देना। इस प्रकार इसके भाव तो सुन्दर हैं ही, भाषा भी मनोज्ञ एवं परिमार्जित है, जिसमें नैसर्गिक आलंकारिक छटा ने सौष्ठव को और भी परिवर्धित किया है।'' आपके अप्रकाशित काव्य-संग्रह 'अंजलि' की भूमिका में कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने लिखा है- ''कविता को अपनी जागीर कहकर, बाँध कर रखने का जो अभ्यास हम करते हैं, उसमें शब्दों की क्लिष्टता, कल्पनाओं की दुरूहता और सबसे अधिक हमारे जीवन के हमारे काव्य से दूर से दूर रहने और होते जाने वाले स्वभाव का हम इतना पोषण करते हैं कि हमारी 'कहन, काव्य का आनन्द देने वाली होने के बजाय कूट प्रश्नों की बुझौवल-सी हो जाती है। क्षेमचन्द्र सुमन ने यह पथ नहीं पकड़ा।''

२. **तटस्थ समीक्षक-** सुमन जी ने अपनी साहित्य-सम्बन्धी कृतियों द्वारा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भी सर्वदा नूतन क्रान्ति का श्रीगणेश किया। उनका 'साहित्य विवेचन' अकेला ही ग्रंथ हिन्दी में ऐसा है, जिसकी महत्ता शीर्षस्थ विद्वानों ने स्वीकार की है। इस ग्रंथ के सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने- "आपने पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों ही दृष्टियों से साहित्य-विवेचन का कार्य कर दिखाया है.... पुस्तक की उपादेयता के बारे में तो कोई सन्देह है ही नहीं...." लिखकर अपनी जो आस्था प्रकट की है, उसको डॉ० नगेन्द्र के इस अभिमत से और भी बल मिलता है- "इसमें भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही काव्यशास्त्रों को अपने विश्लेषण का आधार बनाकर साहित्य के नवीन और प्राचीन सभी रूपों का विवेचन किया है..। मैं समझता हूँ, गद्य-गीत, रेखाचित्र और रिपोर्ताज का विवेचन सबसे पहले इसी ग्रंथ में हुआ है।" डॉ० सत्येन्द्र ने जहाँ इस पुस्तक को सिद्धान्त, उदाहरण और इतिहास की त्रिवेणी कहा है, वहाँ प्रख्यात आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान ने इसकी उपादेयता सिद्ध करते हुए लिखा है- ''यह पुस्तक एक साधारण विद्यार्थी और मर्मज्ञ अध्येता दोनों के साहित्यिक ज्ञान की पीठिका बन सकती है।"

३. **राजनैतिक इतिहासकार-** सुमन जी एक सच्चे राजनैतिक इतिहासकार थे। इतिहास सम्बन्धी उनकी कृतियाँ इस बात का ज्वलन्त प्रमाण हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'हमारा संघर्ष' में सन् १९४२ के आंदोलन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास' में कांग्रेस का जन्म, विकास, संघर्ष, अगस्त-आन्दोलन और खून की होली आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। 'आजादी की कहानी' में सन् १८५७ ई० से लेकर १९४७ ई० तक की क्रान्तिकारी लड़ाई का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

४. **जीवनी साहित्य के अग्रणी लेखक-** आचार्य सुमन जीवनी-लेखक के रूप में हिन्दी के सर्वाग्रणी साहित्यकार थे, जिन्होंने 'नेताजी सुभाषचन्द्र बोस' नामक जीवनी की प्रथम पुस्तक लिखकर हिन्दी साहित्य को नई दिशा दी। २४० पृष्ठों में प्रकाशित यह कृति उत्कृष्ट शैली में लिखी गई है। इसके साथ ही ३२ स्वतंत्रता सेनानियों की जीवनियों का एक संकलन 'नये भारत के निर्माता' नाम से तैयार करके सुमन जी ने पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, महात्मा गांधी, जयप्रकाश नारायण और सरदार भगतसिंह जैसे राष्ट्रनिर्माताओं की जीवन-गाथा का यथार्थ चित्रण किया है।

५. **मधुर संस्मरण लेखक-** 'रेखाएं और संस्मरण' का पारायण करने से ज्ञात होता है कि सुमन जी को अनेक साहित्यकारों, मनीषियों और विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था, जिनसे सुमन जी ने अपने जीवन में प्रचुर प्रेरणा और प्रभाव

ग्रहण किया। इतना ही नहीं, सुमन जी ने इस प्रेरणा और प्रभाव को इतनी तन्मयता से आत्मसात् किया कि वे स्वयं अपने प्रिय और आराध्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठापित हो गये तथा स्वयं भी एक ज्योतिपुरुष बन गए। इस कृति पर प्रकाश डालते हुए इन्दौर से प्रकाशित 'नई दुनिया' (१० अक्तूबर, १९७६) ने लिखा था- "सुमन जी ने इस पुस्तक में लगभग ३० साहित्यकारों के संस्मरण दिए हैं। रोचक होने के साथ-साथ यह पुस्तक हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों के विषय में सामयिक जानकारियाँ भी प्रदान करती है, जो कि हिन्दी साहित्य के गम्भीर पाठकों और सामान्य विद्यार्थियों दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। सुमन जी स्वयं साहित्यस्रष्टा और साहित्य-यात्रा के जागरूक परिद्रष्टा रहे हैं। वे जानकारियों के जीते जागते भण्डार हैं। यह तथ्य उनकी इस पुस्तक से और उसमें प्रकाशित अनेक महत्त्वपूर्ण पत्रों, दस्तावेजों और तथ्यों से प्रकट होता है।"

६. जागरूक निबन्धकार- निबन्ध के क्षेत्र में सुमन जी का निबन्धकार एक विशेषज्ञ का जामा पहनकर अपने ईर्द-गिर्द सीमाओं का निर्माण नहीं करता, बल्कि मुक्त पक्षी की भाँति उड़ता हुआ कभी इस वृक्ष पर तो कभी उस वृक्ष पर बैठता है और उसका पत्ता-पत्ता छान मारता है। सब तरफ का चक्कर लगाकर वह जहाज के पक्षी की भाँति बार-बार अपने मूल विषय, भाषा और संस्कृति तथा साहित्य पर आ जाता है। जोखिम उठाने से वह कभी भयभीत नहीं होता। यथानुभव लेखन उसका धर्म है। भय और प्रलोभन उसकी तूलिका का स्पर्श तक नहीं कर पाते, अपितु कठिन दुस्साध्य और असम्भव कार्यों में हाथ डालना उसकी आदत है। यही बात उनकी भाषण शैली में दिखाई पड़ती थी। वे एक कुशल वक्ता थे। श्रोता उनके भाषण बड़े मनोयोग से सुनते थे।

७. हिन्दी साहित्य के क्रान्तिकारी इतिहासकार- सुमन जी द्वारा लिखी जाने वाली 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' ग्रन्थमाला ने सुमन जी को हिन्दी-साहित्य के यशस्वी इतिहासकारों की परम्परा में जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ के कारण ही सुमन जी का स्थान विशिष्ट रूप से एक क्रान्तिकारी इतिहासकार के रूप में स्थापित हुआ। ध्यातव्य है कि इस ग्रंथ के लिए पूर्णत: प्रामाणिक एवं उपादेय सामग्री जुटाने के लिए उन्होंने सारे देश की कई बार ७०-७५ हजार कि०मी० की यात्राएं की थीं। हिन्दी साहित्येतिहास-लेखन की परम्परा जो क्रमश: 'गार्सां द तासी' से लेकर श्री शिवसिंह सेंगर, डॉ० ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, श्री रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास का ही पिष्टपेषण हो रहा था। 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' ग्रन्थमाला से हिन्दी-साहित्य के इतिहास को नयी दिशा मिली है। हिन्दी साहित्य का इतिहास अब करवट बदलने लगा है। स्वनामधन्य इतिहासकार जो लकीर के फकीर बनकर हिन्दी-मन्दिर में मठाधीश बने बैठे थे, आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन ने अपने उक्त ग्रन्थ में अनेक नूतन मान्यताओं को उद्घाटित करके उनकी आँखें खोल दीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वर्तमान स्वनामधन्य इतिहासकारों ने उनकी शोधपरक नूतन मान्यताओं का उतने उन्मुक्त हृदय से स्वागत नहीं किया, जितने साहस के साथ उन्हें स्वागत करना चाहिए था। कारण स्पष्ट है कि उन्हें अपने पैरों के नीचे की नकली जमीन ही असली दिखाई दे रही थी। तथापि हिन्दी-जगत् में इस ग्रन्थ का अप्रत्याशित आदर हुआ। श्री वियोगी हरि 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' के प्रथम खण्ड की भूमिका में लिखते हैं- "जिस कार्य को शिवसिंह सेंगर, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि साहित्यकारों ने हाथ में लिया था, वह बीच में कुछ शिथिल-सा हो गया। उस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए देखकर स्वभावत: बड़ा सन्तोष और आनन्द होता है। हिन्दी-जगत् के जाने-माने सुलेखक श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने जब दिवंगत हिन्दी-सेवियों के कीर्ति-गान का संकल्प किया, तो हम सबके मन प्रफुल्लित हो गए। संकल्प यह महान् ज्ञान-यज्ञ का है। विशुद्ध भावना, ऊँचा साहस और अथक परिश्रम इस यज्ञ की पुनीत सामग्री है। अकेले ही सुमन जी ने इस सामग्री को जुटाया। दिवंगत हिन्दी-सेवियों का स्मृति-श्राद्ध करते हुए पुण्य सलिला गंगा में मानो वे अवगाहन कर रहे हों और दूसरों को भी इस पावन पर्व पर पुण्य लूटने का आमंत्रण दे रहे हैं।"

इस सन्दर्भग्रन्थ के प्रकाशन की महत्ता और सुमन जी के अथाह ज्ञान पर प्रकाश डालते हुए डॉ० महावीर अधिकारी ने अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं- "श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' साहित्य के एक जीवन्त सन्दर्भग्रन्थ हैं । ऐसे हजारों हिन्दी सेवी हैं, थे और रहेंगे, जिनके बारे में वे इतना जानते हैं, जितना कि देश के सभी विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक कुल मिलाकर जानते होंगे, लेकिन उनका नाम 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' लेखन के समय किसी को याद नहीं आता । बेहतर हो कि शिक्षा-संस्थानों से जुड़े इतिहासकारों के घृणित नामों का, हम स्मरण न करें ।"

इस अनूठे कार्य की प्रशंसा करते हुए आलोचक श्री राजनाथ शर्मा लिखते हैं- "जो कार्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जैसी प्रसिद्ध संस्थाएँ करने का साहस न जुटा सकीं, उसे सुमन जी ने अकेले केवल अपने बलबूते पर करके दिखा दिया है ।" श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखते हैं- "श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने इस पुस्तक में इतिहास के अज्ञात अंधेरों में गायब हो गये हिन्दी के असंख्य रचनाकारों को फिर से जीवित कर दिया है और उनका नाम ऐसे शिलालेख के रूप में उकेर दिया है जो लम्बे समय तक अमिट रहेगा ।" दिवंगत हिन्दी-सेवी के द्वितीय खण्ड का लोकार्पण करते समय २२ जून, सन् १९८३ को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह ने इस ग्रन्थ की महानता एवं उपादेयता इस प्रकार व्यक्त की थी- "मैं समझता हूँ कि सुमन जी ऐसे महापुरुष हैं जिन्होंने वह काम किया है, जो हमारे देश के शिक्षा-मंत्रालय को, हमारे देश की यूनिवर्सिटियों को आज से २५ वर्ष पहले शुरू कर देना चाहिए था ।" 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' में उद्घाटित नूतन तथ्यों के सामने पिष्टपेषित हिन्दी-साहित्य के इतिहास की अनेक मान्यताएं दम तोड़ती नजर आती हैं ।

सुमन जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन में जिस क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया था, उसी क्रान्तिकारी व्यक्तित्व ने हिन्दी-जगत् में व्याप्त ऐतिहासिक-अराजकता को समाप्त करने के लिए हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की एक नई क्रान्ति का प्रारंभ किया था ।

इस क्षेत्र में सुमन जी एक चलते फिरते विश्वकोश थे । कोई भी जिज्ञासु उन्हें फोन करके किसी भी साहित्यिक शंका का समाधान कर सकता था ।

८. **सम्पादन कला के महारथी एवं पारखी**- सुमन जी सम्पादन कला के महारथी थे । वे इस कला में पूर्ण निष्ठावान् थे । वे सम्पादन के साथ-साथ कभी-कभी ऐसा चमत्कार भी उपस्थित कर दिया करते थे, जिससे उनकी शैलीगत प्रखरता का उत्कर्ष आभासित होता था । सुमन जी द्वारा सम्पादित 'नारी तेरे रूप अनेक' नामक महत्त्वपूर्ण काव्य-संकलन के लिए उनके अनुरोध पर प्रख्यात मनीषी और विचारक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने २२.१०.१९६३ के पत्र में स्पष्ट रूप से यह लिखते हुए- "भेज तो रहा हूँ, परन्तु बहुत उत्साह नहीं है । बहुत अच्छी तरह देख लीजिए । काम लायक जंचे, तभी छापियेगा । लिखा तो बहुत दिनों से रखा था, पर भेजने में हिचक हो रही थी । अब आपके पत्रों की मार से घबरा गया हूँ। देर के लिए क्षमा करें । यह 'मन्द: कवियश:प्रार्थी' का अच्छा नमूना है" । जब 'बोली काव्य के मर्मज्ञ' शीर्षक अपनी लम्बी चमत्कारिक गद्य-भूमिका भेजी तो सुमन जी ने उसे मात्र विराम, पूर्ण-विराम-यति-गति के अनुसार कविता का रूप देकर अनुमोदन के लिए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी को भेजा और उनसे अनुरोध किया कि यदि भूमिका इस रूप में छपे तो पाठकों को आपकी काव्य-चातुरी का आस्वाद लेकर प्रसन्नता होगी । इस पर आचार्य द्विवेदी जी ने "आपने उसे कविता बना दिया अच्छा किया" लिखकर अपनी सहमति प्रकट की थी । यह उद्धरण सुमन जी की सम्पादन-कला का अच्छा उदाहरण कहा जा सकता है ।

सुमन जी की अन्यतम साहित्यिक सेवाओं को दृष्टि में रखकर ही सन् १९६६ ई० में राजधानी ही नहीं, प्रत्युत समस्त हिन्दी जगत् में फैले हुए उनके अनेक शुभैषियों और मित्रों ने मिलकर उनके ५०वें जन्मदिवस पर उनका जो भव्य-भीना

अभिनन्दन किया था, वह जितना नयनाभिराम था, उतना ही अभूतपूर्व भी । उस अवसर पर आपको तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के कर-कमलों द्वारा 'एक व्यक्ति : एक संस्था' नामक जो विशद अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था, उससे आपके बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है ।

पत्रकारिता के क्षेत्र में की गई आपकी उल्लेखनीय सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए आपको जहाँ 'पश्चिम बंगनागरी प्रचारिणी सभा' ने सन् १९७६ में 'पत्रकार-शिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी, वहाँ १३ अप्रैल, १९८५ को 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' ने भी गाजियाबाद में सम्पन्न अपने ३२वें अधिवेशन के अवसर पर आपको सर्वोच्च मानद उपाधि 'साहित्य-वाचस्पति' प्रदान करके आपकी साहित्यिक सेवाओं का सम्मान किया था । सन् १९८४ के गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने आपको 'पद्मश्री' की सम्मानोपाधि से अलंकृत किया था । इसी वर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने भी आपको 'विद्या-वाचस्पति' (डि० लिट्०) की उपाधि प्रदान कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस किया था । मानव-संसाधन-मंत्रालय ने आपको २००० रुपये मासिक की 'अमेरेटस फेलोशिप' प्रदान करके आपकी साहित्यिक यात्रा को गति देने का प्रयास किया था ।

इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यिक संस्थाओं ने आपको अनेक मानद उपाधियों से विभूषित किया था । हिन्दी-अकादमी, दिल्ली ने आपको 'विशिष्ट साहित्यकार-पुरस्कार' से, भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने २० अप्रैल, १९८७ को 'भारतेन्दु पुरस्कार' से और उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की ओर से दीर्घकालीन सेवाओं के लिए हिन्दी-दिवस, १९९० के अवसर पर इक्कीस हजार रुपये के 'संस्थान सम्मान' से पुरस्कृत एवं अभिनन्दित किया था ।

सुमन जी दिल्ली परिवहन निगम, नागर विमानन सेवा और जल-भूतल परिवहन मंत्रालय की हिन्दी सलाहकार समितियों के भी सदस्य मनोनीत किए गए थे । आपके साहित्यिक अवदान का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आपसे सम्बन्धित अब तक क्रमशः श्री क्षेमचन्द्र सुमन : व्यक्ति और साहित्यकार', 'आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन : व्यक्तित्व और कृतित्व' और आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का सम्पादकीय वैशिष्ट्य' नामक तीन शोध-प्रबन्धों पर विभिन्न विश्वविद्यालयों के शोधार्थियों ने पी-एच०डी० की उपाधियाँ प्राप्त कर ली हैं । हिन्दी साहित्य के लिए की गई आपकी सच्ची तपःनिष्ठा हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदा-सर्वदा के लिए अमर एवं स्मरणीय रहेगी । आप सच्चे अर्थों में हिन्दी के एक ऐसे मनीषी थे, जो दिवंगत साहित्यकारों का पुण्य श्राद्ध कर उनकी तपःगाथा को अपने 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' ग्रंथ में सदा-सर्वदा के लिए अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कृत-संकल्प थे ।

***

पता- ३०/१०६, गली नं० ७, विश्वास नगर,

शाहदरा, दिल्ली- ११००३२

फोन- २२३८१३१२, ९९११९९०६३४

आचार्य क्षेमचंद्र सुमन

- डॉ० राष्ट्रबन्धु

साहित्यकार की हैसियत से हिन्दी के माध्यम से हिंदुस्तान की सेवा करने वाले क्षेमचंद्र सुमन अकेले ही चलने वाले थे, जिनको 'एक व्यक्ति एक संस्था' सही शीर्षक से सम्मानग्रंथ सादर भेंट किया गया था। 'दिवंगत हिंदी सेवी' शीर्षक से सुमन जी ने हजारों स्मरणीय व्यक्तियों का परिचय दस बड़े खंडों में तैयार किया था। इसके लिए वे बहुत जागरूक रहते और प्रायः पत्राचार करके विवरण और चित्र प्राप्त करते थे। सारे देश के हिंदी साहित्यकारों और हितैषियों का इतिवृत्त जो वे लिख गए वैसा कार्य किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया।

हिंदी दिवस पर रायबरेली की एक भेंट में अनुभव हुआ कि उनमें असाधारण अपनत्व था। सन् १९७८ में वे पधारे, मेरे घर और पिताजी से मिले। मेरे पिताजी से उनकी बातें हुईं, बाबूगढ़ (जन्म स्थान मेरठ, सन् १९१६) सहारनपुर व मुजफ्फरनगर के बहुत से लोगों के विषय में। उत्तर प्रदेश क्या सारे देश का इतिहास उनकी जिह्वा पर था। सारा देश उन्हें प्रिय था और वे साक्षात् जानकारियों के भंडार (एनसाइक्लोपीडिया) थे। एक दिन मुझे डॉ० रूपसिंह चंदेल के साथ आचार्य सुमन के घर जाने का सौभाग्य मिला। किसी व्यवस्थित पुस्तकालय के दर्शन यहाँ हुए। यहाँ दुर्लभ पुस्तकें पत्रिकाएं और साहित्यकारों के पत्र देखने को मिले। इतना विशाल और व्यवस्थित संग्रहालय एक व्यक्ति की आश्चर्यजनक उपलब्धि थी। सुमन जी स्वतंत्रता संग्राम-सेनानी थे और खादी का परिधान उन्हें प्रिय था। उन्हें सन् १९४३ से १९४५ तक कारावास का दण्ड दिया गया था। उन्होंने कबीर की तरह स्पष्टवादिता निभाई। अपने लेखन का प्रारंभ उन्होंने कविता से किया और 'मल्लिका', 'बन्दी के गान' और 'कारा' काव्य रचे। गद्य में उनकी इतिहास पुस्तकें हैं- 'हमारा संघर्ष' 'कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास', 'आजादी की कहानी', 'हम स्वाधीन हुए'। उन्होंने 'नेताजी सुभाष नए भारत के निर्माता', 'जीवन ज्योति', 'अमरदीप' पुस्तकें लिखीं। संस्मरण पुस्तकों के नाम हैं- रेखाएं और संस्मरण जाने अनजाने, चमकते जीवन, महकते संस्मरण। बच्चों के लिए उन्होंने दो पुस्तकें लिखीं, ये भी बोलते हैं, खिलौने वाला।

समीक्षा ग्रन्थों में- 'हिन्दी साहित्य- नए प्रयोग, साहित्य सोपान, साहित्य विवेचन, साहित्य विवेचन के सिद्धान्त, हिन्दी साहित्य और उनकी प्रगति आदि हैं। निबंध रचनाओं में प्रभाकर निबंधावली, सुमन सौरभ प्रसिद्ध हैं। सुमन जी संपादक के रूप में चर्चित रहे हैं। उनके लोकप्रिय काव्यसंकलन हैं- लालकिले की ओर, गाँधी भजन माला, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत। वे पुस्तकों और अभिनंदन ग्रंथों के संपादक, अनेक उपाधियों के धनी थे और उन्हें अनेक संस्थाओं के अतिरिक्त सन् १९८४ में पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन का साहित्यिक योगदान साहित्य जगत् को सदैव गौरवान्वित करता रहेगा।

(दैनिक जागरण, १९.७.०५ से साभार)

***

> जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए।
>
> (महर्षि दयानन्द)

प्रतिभा के धनी डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन'

-आचार्य पं० हरिसिंह त्यागी, विद्याभास्कर, एम.ए., साहित्याचार्य (शास्त्रचूड़ामणि)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रतिभापूर्ण श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, श्री डॉ० हरिदत्त शास्त्री, श्री डॉ० सूर्यकान्त, श्री रामावतार शास्त्री, श्री विश्वनाथ शास्त्री, श्री उदयवीर शास्त्री, श्री नन्दकिशोर शास्त्री, श्री सत्यव्रत शास्त्री (धामपुर), डॉ० गौरीशंकर आचार्य, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आदि विद्वानों की ही परम्परा में डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन' भी प्रतिभा के धनी, कवि-शिरोमणि, साहित्य-सेवी, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी के महान् विद्वान्, दार्शनिक, आशुकवि, अनेकानेक उपाधियों से विभूषित, कुशल व्यावहारिक व्यक्तित्व के आगार माने जाते थे। वर्तमान काल में उन जैसा प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व मिलना अत्यन्त कठिन है।

श्री डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन' का जन्म सन् १९१८ ई० में ग्राम कुरड़ी, जनपद मुजफ्फरनगर-निवासी श्रीमती मनोदेवी की कोख से हुआ। इनके पिता श्री गंगाराम त्यागी ने तेजस्वी एवं आह्लादक अपने पुत्र का नाम 'चन्द्रभानु' रखा। उस समय इनके पिता रुड़की नगर के बेसिक स्कूल में प्रधानाध्यापक के पद को अलंकृत कर रहे थे। दुर्भाग्य से श्री गंगाराम त्यागी आठ मास के पुत्र (चन्द्रभानु) को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये। माता श्रीमती मनोदेवी अपने पुत्र को लेकर जनपद सहारनपुर के घुड़ियाला ग्राम अपने पीहर में रहकर पुत्र का पालन-पोषण करने लगी। बालक 'चन्द्रभानु' को आठ वर्ष की आयु में उनके मामाजी ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट कराया। गुरुकुल की पुण्यभूमि में प्रथम कक्षा से चतुर्दश कक्षा पर्यन्त अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके तथा प्रावीण्य प्राप्त करते हुए प्रखर पाण्डित्यपूर्ण काव्य-कला-कौशल को प्राप्त कर सन् १९३९ ई० में 'विद्याभास्कर' उपाधि से विभूषित 'अकिंचन' इस उपनाम को अपने नाम के साथ श्री चन्द्रभानु ने जीवन पर्यन्त जोड़े रखा। उस समय महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्यापन कार्य में निम्न विद्वान् कार्यरत थे-

श्री पं० काशीनाथ शास्त्री (वाराणसी), आचार्य श्री शुद्धबोध तीर्थ, श्री पं० पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य (बिजनौर), श्री पं० नरदेव शास्त्री, श्री पं० छेदीप्रसाद व्याकरणाचार्य (वाराणसी), श्री विश्वनाथ शास्त्री (लुधियाना), श्री पं० सत्यव्रत शास्त्री (धामपुर, बिजनौर), श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री (नागल, सहारनपुर), श्री धनपाल शास्त्री, श्री पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी (रुड़की), श्री पं० रामदत्त शास्त्री (रहरा, मुरादाबाद), श्री पं० भगीरथ शास्त्री।

श्री चन्द्रभानु 'अकिंचन' अपने विलक्षण गुरु-चरणों में रहते हुए विद्यार्जन कर विद्या-विचक्षण, काव्य-कला-कोविद, वाग्वैभव-विभूषित, शस्त्र-शास्त्र-विशारद, गुरुजन-सेवासक्त होते हुए, हाकी क्रीड़ा में प्रवीण, साथियों का मनोरंजन करने में कुशल, सहाध्यायियों के विश्वासपात्र एवं प्रगाढ़ मित्रत्वपूर्ण, काव्य-कला में हास्य, करुण, रौद्र, वीर, शृंगार आदि रसों का वर्णन करने वाले, अपने ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ-बंधुओं में श्रद्धेय श्री चन्द्रभानु 'अकिंचन' सन् १९३९ ई० में श्री वाचस्पति, जगदीश, वागीश्वर, प्रकाशचन्द्र आदि के साथ गुरुकुल ज्वालापुर से स्नातक हुए। इनके अन्य साथियों में शिवदत्त, हितपाल, कपिलदेव, रामचन्द्र, श्रुतिकान्त आदि प्रमुख हैं।

डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन' हिन्दी-साहित्य के प्रख्यात कवि भी थे। उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए-

कलियों में बीता है बचपन किसी का, काँटों में रोता है यौवन किसी का।
कलियाँ हैं सूखी, भौंरे हैं रोते, खाली हैं नीड़ सब छोड़ गये तोते।।
हँसती बसन्ती ऋतु है किसी की, चुप-चुप सिसकता है उपवन किसी का।।

उनकी 'काले तन की' कविता इतनी प्रसिद्ध थी कि कवि-सम्मेलनों में लोग इनकी कविता को अवश्य सुनते थे-

> तुम कहते हो मेरा तन काला !
> वह मानव बड़ा भला होता है, जिसका होता है तन काला ।
> शिवजी का खप्पर काला, काली उनकी मृग-छाला ।।
> भृंगी भृंगी भी काले, कौशल्यानन्दन थे काले ।
> राधा का प्यारा था काला, तुम कहते हो मेरा तन काला ।।

कार्यक्षेत्र में उतरकर अनेक विद्यालयों में श्री 'अकिंचन' जी ने अध्यापन-कार्य किया। सबसे पहले गुरुकुल नारसन में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया । आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए० उत्तीर्ण करके डिबाई (बुलन्दशहर) के माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक-पद को अलंकृत किया । उसके पश्चात् जिला सहारनपुर में बाजोरिया इंटर कालेज में प्रवक्ता-पद पर कार्य किया । तदनन्तर पूना नगर (महाराष्ट्र) में वक्तृत्व-पद प्राप्त करके अपनी माता श्रीमती मनोदेवी के आग्रहवश उस सेवा को छोड़कर घर आ गये। तत्पश्चात् श्री 'अकिंचन' जी मेरठ नगर में स्थित नानकचन्द डिग्री कालेज में संस्कृत विभागाध्यक्ष-पद पर नियुक्त होकर अध्यापन कार्य करते हुए प्रचुर काल तक सेवा करते रहे ।

सन् १९७३ ई० में श्री 'अकिंचन' जी मेरे पास महाविद्यालय ज्वालापुर आये। दैवयोग से श्री सुभाषचन्द्र त्यागी उस समय महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख्याधिष्ठाता पद को अलंकृत कर रहे थे । उसी समय मैं भी महाविद्यालय-सभा के द्वारा नियुक्त होकर सन् १९७२ से १९७५ तक संयुक्त मुख्याधिष्ठाता पद पर भी कार्यरत था । मेरे समक्ष उन्होंने अपनी समस्या प्रस्तुत की कि 'मेरठ विश्वविद्यालय मेरठ के कुलपति ने मुझे पोस्ट ग्रेजुएट कालेज गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर अथवा लाला लाजपतराय डिग्री कालेज साहिबाबाद की 'प्रिंसिपलसिप' सौंपने को कहा है । मैं इनमें से कौन सा पद स्वीकार करूँ।' मैंने उन्हें महाविद्यालय में ही सेवा करने का आग्रह किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया । उन्होंने पद्मश्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' प्रधान-सभा-महाविद्यालय ज्वालापुर से मिलकर पोस्ट ग्रेजुएट कालेज गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के 'प्रिंसिपल-पद' को अलंकृत किया । इस बीच उन्होंने महाविद्यालय ज्वालापुर के मुख्याधिष्ठाता-पद को भी समय-समय पर अलंकृत किया । दुर्भाग्य से किन्हीं विशेष कारणों वश महाविद्यालय-सभा को पी०जी० कालेज १९७६ में समाप्त करना पड़ा, किन्तु तत्काल डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन' गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रो-वाइस चांसलर पद पर नियुक्त कर लिए गए ।

उनके स्वभाव में उच्च स्थान प्राप्ति की अभिलाषा सदैव बनी रहती थी और उसे वे प्राप्त भी कर लेते थे । वे इस नीतिवाक्य को प्रायः कहा करते थे कि-

> नाभिषेको न संस्कारो सिंहस्य क्रियते मृगैः ।
> विक्रमार्जित-सत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ।।

मैं समझता हूँ कि निम्न उक्ति उनके जीवन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है, वह है-

> को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा ।
> यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।।

बहुत शोक की बात है कि सितम्बर १९८१ में दिल्ली में श्री डॉ० 'अकिंचन' जी स्वर्गवासी हो गये । ऐसे महान् प्रतिभा के धनी कविवर डॉ० चन्द्रभानु 'अकिंचन' को मैं गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की शताब्दी के शुभ अवसर पर याद कर श्रद्धासुमन समर्पित करता हूँ ।

***

श्री हरिसिंह त्यागी साहित्याचार्य

– विजय त्यागी

सादगी पसंद, निरभिमानी, राग-द्वेष से कोसों दूर, भारतीय संस्कृति के पुजारी, सरस्वती के आराधक, सत्यवादी, मृदुभाषी, हँसमुख, देवभाषा के प्रखर पण्डित, वयोवृद्ध-ज्ञानवृद्ध, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) के यशस्वी स्नातक, विद्याभास्कर आचार्य पं० हरिसिंह त्यागी शिक्षा के क्षेत्र में आजीवन तन-मन-धन से समर्पित एक ऐसी दिव्य विभूति के रूप में जाने जाते हैं, जिन्हें सम्पूर्ण शिक्षा-जगत् आज भी उनके द्वारा की गयी शैक्षणिक-सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है।

आचार्य जी का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा-क्षेत्र से ही जुड़ा रहा है। यत्र-तत्र-सर्वत्र गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति के माध्यम से संस्कृत, संस्कृति, सभ्यता एवं संस्कारों का प्रचार-प्रसार करने में आपने अपने इस जीवन में अहर्निश विशेष भूमिका निभाई है और समाज का मार्ग प्रशस्त किया है।

आचार्य श्री पं० हरिसिंह त्यागी का जन्म ग्राम सिसौना, तहसील चाँदपुर, जनपद-बिजनौर (उ०प्र०) में १५ अक्टूबर सन् १९२४ ई० को श्री हरस्वरूपसिंह जी त्यागी के घर हुआ। आपकी माता परमेश्वरी देवी एक सरल भारतीय नारी थीं। महर्षि दयानन्द के अनुयायी एवं आर्यसिद्धान्तों से प्रभावित आपके माता-पिता ने आपको आर्यसमाज की सुप्रसिद्ध शिक्षासंस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) में सन् १९३५ ई० में 'रजत जयंती' महोत्सव के शुभ-अवसर पर प्रविष्ट कराया। गुरुकुल में रहकर आपने तपश्चर्यापूर्वक वेद, धर्म, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, निरुक्त आदि समस्त प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन किया। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, विधान-सभा (देहरादून क्षेत्र) के सदस्य आचार्य श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (रावजी), आचार्य नन्दकिशोर शास्त्री, आचार्य भूदेव शास्त्री, आचार्य डॉ० हरिदत्त शास्त्री, आचार्य भगीरथ शास्त्री, आचार्य सत्यव्रत शास्त्री (धामपुर वाले), आचार्य रामदत्त शास्त्री एवं श्री छेदीप्रसाद व्याकरणाचार्य जैसे भारत के गौरवशाली गुरुजनों के श्रीचरणों में बैठकर विद्याध्ययन करने का सौभाग्य आपको उपलब्ध हुआ और गुरुजनों की भाँति अपने जीवन को भी सार्थक बनाने का आपने पूर्ण प्रयत्न किया।

आपने गुरुकुल ज्वालापुर की सर्वोच्च परीक्षा उत्तीर्ण करके स्नातकोपाधि 'विद्याभास्कर' सन् १९४६ ई० में प्राप्त की। सर्वप्रथम जुलाई सन् १९४६ में म्योर हाईस्कूल नहटौर (बिजनौर) में संस्कृत/हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए। जैन हाईस्कूल नहटौर में हिन्दी-संस्कृत अध्यापक पद पर नियुक्त होकर शिक्षण कार्य किया। सन् १९५८ में अपनी मातृसंस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की सेवा में शिक्षक पद पर आ गये। सन् २००१ तक निरन्तर विद्यादान करते हुए आपने अपने जीवन का अमूल्य समय गुरुकुलीय सेवा में समर्पित किया है। गुरुकुल ज्वालापुर में बिताये चार दशकों से भी अधिक समय में आपने गुरुकुल के अधिकांश वरिष्ठ-पदों को भी अलंकृत किया।

सन् २००१ में सेवा-निवृत्ति के पश्चात् एक विशाल शिक्षण-संस्था 'महर्षि कणाद विद्यापीठ सिसौना (बिजनौर)' के नाम से सन् २००३ में स्थापित की।

आचार्य जी की प्रसिद्ध प्रकाशित रचनाएँ हैं- १. वैदिक सूक्ति सुधा; (१९९१), २. हरदीपिका (२००१)।

आज के इस आधुनिक युग में आचार्य जी जैसा त्यागी, तपस्वी, संयमी, व्यक्तित्व वाला पुरुष मिलना अत्यन्त दुर्लभ है।

***

आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री

(आर्ष पाठविधि के पुरोधा तथा पातंजल योगधाम के संस्थापक)

–श्री नरदेव आर्य

स्वनामधन्य श्री आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री, जिन्होंने गुरुकुल 'दयानन्द वेद-विद्यालय' की स्थापना की, जो आज गुरुकुल गौतमनगर के नाम जाना जाता है, वह आज एक वटवृक्ष के रूप में खड़ा हुआ है।

आचार्य जी दिल्ली के निकट नांगलोई ग्राम के निवासी थे। उनके पिताजी आर्य विचारों से ओतप्रोत थे। उन्होंने अपने पुत्र को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्ययन हेतु भेजा। अध्ययन करने के पश्चात् उनके हृदय में लालसा थी कि मैं आर्ष पाठविधि द्वारा पढ़ाने के लिए एक गुरुकुल की स्थापना करूं।

उन्होंने लगभग १९३६ में गुरुकुल की स्थापना की, जिसमें निःशुल्क आर्षपाठ विधि द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाने लगा।

निगम-बोध घाट पर यमुना नदी के किनारे 'दयानन्द वेद विद्यालय' नाम से गुरुकुल की स्थापना की। उस समय गुरुकुल में केवल एक छप्पर पड़ा हुआ था और सामने यज्ञशाला थी। कुछ समय तक गुरुकुल यहाँ चलता रहा।

समय बीतता गया। कुछ समयोपरान्त दानवीर श्री भद्रसेन जी पटवारी ने महरौली रोड़ मस्जिद मौठ ग्राम के निकट गुरुकुल के लिए भूमि दान दी। धीरे-धीरे कमरे बनने आरम्भ हो गये। सर्वप्रथम जल की समस्या के लिए कुएं की आवश्यकता थी। यहाँ पर अक्सर पानी खारा निकलता था। कोई कोई कुआं मीठे जल का होता था, वहाँ से महिलाएं पानी भरकर ले जाती थीं। बहुत विधि-विधानपूर्वक कुएं की नींव रखी गई और पानी मीठा निकला। सभी कार्य सुचारु रूप से चलने लगा। लगभग ३०–४० विद्यार्थी इस समय गुरुकुल में थे।

आचार्य जी अहर्निश गुरुकुल की सेवा में लगे रहते थे। उनकी पत्नी श्रीमती लीलावती देवी अध्यापिका थीं। उसी से उनका भरण-पोषण चलता था। सन् १९३८-३९ में हैदराबाद सत्याग्रह हुआ। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने उसमें भाग लिया। हम उस समय छोटे थे, अतः हम सभी सत्याग्रहियों को स्टेशन पर विदाई देने जाते रहे। आज नारायण स्वामी जत्था लेकर जा रहे हैं, फिर खुशहालचन्द खुर्सन्द, पं० धुरेन्द्र नाथ शास्त्री, महाशय कृष्ण जी आदि सभी को हम विदाई देने जाते थे।

तब जितने भी कार्यक्रम दिल्ली में होते थे, उन सभी में गुरुकुल के विद्यार्थी भाग लेते थे। यज्ञ आदि कराने भी यत्र-तत्र सभी जगह जाते थे। दिल्ली के बाहर भी चारों वेदों द्वारा ब्रह्मचारी यज्ञ कराते थे। दिल्ली की सभी गतिविधियों मे ब्रह्मचारी भाग लेते थे। इस समय गुरुकुल अच्छी दशा में था। गुरुकुल में सामग्री आदि भी बननी आरम्भ हो गई थी।

आर्यसमाज से संबंधित सभी लोग गुरुकुल में आते रहते थे। रामगोपाल शालवाले, लाला ज्योतिप्रसाद तथा आर्षपाठ विधि से संबंधित गुरुकुल वाले जैसे पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा स्वामी ब्रह्मानन्द जी एटावाले सभी का आपस में सामंजस्य था और यदाकदा आते ही रहते थे।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता के बाद हैदराबाद दिवस मनाया गया। झगड़ा होने की आशंका थी, अतः सभी ब्रह्मचारियों ने पूर्णतः तैयारी की और जुलूस में सम्मिलित हुए। जैसे ही जुलूस फतेहपुरी पहुँचा, कुछ मन फिरों ने अल्लाह हो अकबर के नारे लगाये और युद्ध आरम्भ हो गया। हम तो उस समय छोटे ही थे, अतः हमको आसपास के घरों में छिपा दिया और ब्रह्मचारियों ने सभी उद्दण्डों को मारकर भगा दिया। उस समय सभी पीले चोले वाले प्रसिद्ध हो गये।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता के बाद सत्यार्थप्रकाश महासम्मेलन बृहद् रूप में कम्पनी बाग में उल्लासपूर्वक मनाया गया। सम्पूर्ण भारतवर्ष के आर्यसमाजों तथा गुरुकुलों ने इस महासम्मेलन में आहुति दी।

सम्मेलन में हमारे गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने सस्वर वेदपाठ किया, चार ब्रह्मचारी थे, जिनमें से मैं भी एक था।

इस समय एक अन्य विद्वान् पण्डित थे, जिनके विषय में मैं न लिखूँ तो अन्याय होगा। स्वनामधन्य पं० व्यासदेव शास्त्री 'शास्त्रार्थ-महारथी' वह दीवान हाल में ही रहते थे, परन्तु अल्पावस्था में ही वह काल के गाल में चले गये। पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० रामचन्द्र देहलवी शास्त्रार्थ-महारथी आदि बहुत से विद्वान् त्यागी तपस्वी थे, जिनका नाम आज भी हम बड़ी श्रद्धा से लेते हैं।

लगभग इसी समय करपात्री जी ने यमुना तट पर शतकुण्डी यज्ञ कराया, जिसमें बड़े-बड़े वेदों के पंडितों को आमंत्रित किया गया। वेदों के विद्वान् दाक्षिणात्य पंडितों ने इस यज्ञ में भाग लिया और उन्होंने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। हमारे गुरुकुल के सभी विद्यार्थी गये, उनके प्रत्युत्तर में हमारे यहाँ से भी संस्कृत में उत्तर दिया गया, फिर हम लोगों ने परीक्षा ली।

एक १४ वर्ष का विद्यार्थी था। उसको यजुर्वेद कंठस्थ था। पूछा गया, उसने मंत्र पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसी प्रकार किसी को ऋग्वेद कंठस्थ था, किसी को अथर्ववेद। इस प्रकार शतकुण्डी यज्ञ का समापन हुआ। गुरुकुल अपनी अच्छी स्थिति में चल रहा था। इसी समय एक और विपत्ति आ गई। परन्तु धन्य है उस महामानव को जो अपने पथ से विचलित नहीं हुआ और अपने मार्ग पर अग्रसर होता चला गया। '**सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता**' को चरितार्थ किया।

इस समय महायुद्ध आरम्भ होने की आशंका थी और गुरुकुल की सुरक्षा भी परमावश्यक थी। इस स्थिति में यह गुरुकुल सिम्भावली स्टेशन के समीप नहर के किनारे चुकलाना नाम के एक ग्राम में स्थानान्तरित हो गया।

एक जमींदार थे, उनकी कोठी में यह गुरुकुल स्थानान्तरित हुआ। कुछ काल पश्चात् किन्हीं दानवीर ने भूमि प्रदान की, उसी में गुरुकुल स्थापित हुआ।

कई साल रहने के बाद गुरुकुल पुनः अपने स्थान पर दिल्ली में चला गया। गुरुकुल इस समय अच्छी स्थिति में चल रहा था। आर्यसमाज के अग्रणी विद्वान् सभी गुरुकुल में आते रहते थे। जैसे मैं लिख चुका हूँ ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, हरिदत्त जी सप्ततीर्थ, स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी, इन सबका आपस में सामंजस्य था। सभी आर्ष पाठविधि के दीवाने थे। परीक्षायें भी होने लगीं और इसके लिए एक परीक्षा बोर्ड भी बना लिया गया।

मैं सन् १९४७ या ४८ में वहाँ से निकल आया। गुरुकुल में आर्ष पाठविधि द्वारा अध्ययन किया था। जिसकी बाहर कोई मान्यता नहीं थी। पढ़ा हुआ तो था ही, मैंने एक वर्ष महाविद्यालय ज्वालापुर में रहकर बनारस की संस्कृत की परीक्षाएं पास कीं। तदनन्तर मैंने हाईस्कूल किया और रेलवे में ३७ वर्ष सेवा करके सेवानिवृत्त हूँ।

उस समय श्री नरदेव शास्त्री जी भी वहीं रहते थे। उनकी कुटिया अलग बनी हुई थी। इस समय वह गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता थे। यदाकदा आते रहते थे, अपनी कुटिया में विश्राम करते थे। श्रद्धालु लोग आते थे, सेवा में कुछ फल आदि भी लाते थे। नरदेव शास्त्री, जिनको रावजी के नाम से सभी जानते थे, बड़े तेजस्वी और विनोदप्रिय थे। सभी सामान ब्रह्मचारियों में बांट देते थे। एक दिन मुझे बुलाया और मेरा नाम पूछा। मैंने नाम बतलाया तो कहने लगे तुम अपना नाम बदल लो। मैंने कहा मैं क्यों बदलूं आप ही बदल दो। वह उस समय विधायक थे। तत्पश्चात् गुरुकुल के आचार्य विश्वश्रवा जी

को सौंपकर आचार्य जी ने संन्यास लिया और स्थान-स्थान पर दुर्गम स्थानों पर जाकर खोजपूर्ण महर्षि दयानन्द का आत्मचरित्र 'योगी का आत्मचरित्र' नाम से छपवाया।

गुरुकुल दयानन्द वेद विद्यालय भी जो आजकल गुरुकुल गौतमनगर नाम से जाना जाता है, आचार्य हरिदेव जी के आचार्यत्व में पुष्पित पल्लवित हो रहा है और एक बीज जो आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री ने बीजारोपण किया था, आज वटवृक्ष की तरह खड़ा हुआ है। सैकड़ों विद्यार्थी उसकी मधुर छाया में विश्राम कर रहे हैं।

वास्तव में गुरुकुल झज्जर भी उन्हीं की देन है। आचार्य भगवानदेव जी (स्वामी ओमानन्द जी) ने जब गुरुकुल झज्जर की स्थापना की तो उनके पास कोई आचार्य नहीं था। भगवानदेव जी ने आचार्य जी से प्रार्थना की, एक अष्टाध्यायी महाभाष्य का विद्वान् हमें दे दीजिए, जो हमारे गुरुकुल का आचार्यत्व करें। आचार्य जी ने आचार्य विश्वप्रिय जी शास्त्री को उन्हें दिया। कई वर्षों तक उन्होंने गुरुकुल के आचार्यत्व का निर्वहन किया। आज गुरुकुल झज्जर भी अपनी यौवनावस्था में है।

इस प्रकार आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन आर्ष पाठविधि हेतु समर्पित कर दिया।

कौन कहता है आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री 'सच्चिदानन्द योगी' जीवित नहीं है। वह सदा सर्वदा रहेंगे। ''**कीर्तिर्यस्य सजीवति**'' वह सदा अमर हैं।

पातंजल योगधाम की स्थापना

आचार्य जी की योग में बड़ी रुचि थी, उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर यौगिक क्रियाएं सीखीं और ज्वालापुर में नहर के तट पर "पातंजल योगधाम" की स्थापना की।

'पातंजल योगधाम' आजकल स्वामी दिव्यानन्द जी की अध्यक्षता में चल रहा है और आज वटवृक्ष की तरह खड़ा हुआ है। वहाँ बहुत से साधक लोग योग की साधना कर रहे हैं। इस प्रकार आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन ऋषि के मिशन के लिए समर्पित कर दिया।

***

पता- प्रधान, आर्यसमाज मानसरोवर,
लखनऊ

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते॥

धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे; क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजा को छोड़ती है।

मेरे अभिन्न मित्र, श्री प्रकाशवीर शास्त्री

- डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

ज्वालापुर एक विरासत है, स्वामी दयानन्द के उद्‌बोधन द्वारा प्रज्वलित भारत को सौंपी हुई एक मशाल है, एक ऐसी मशाल है जो दासता के तमपथ को साहस एवं स्वाभिमान से आलोकित करने में सक्षम है। इस साहस, स्वाभिमान और शौर्य के प्रतीक थे मेरे अभिन्न मित्र प्रकाशवीर शास्त्री, जो गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के अन्तेवासी और स्नातक थे। उन्होंने ज्वालापुर के हृदय में दीप्त-प्रदीप्त शिक्षा और संस्कृति की ज्योतिर्मय मशाल को सारे देश में ले जाने की विलक्षण सामर्थ्य का परिचय दिया। लोकसभा में उनका निर्वाचन एक ऐतिहासिक घटना थी, जैसे कि हैदराबाद आंदोलन में प्रकाशवीर की प्रकाशप्रेरित एवं वीरतापूर्ण भागीदारी। पहली ही मुलाकात में मेरी और उनकी मित्रता स्थापित हो गई।

मुझे उस दिन की विभीषिका याद है जब क्रूर काल ने प्रकाशवीर शास्त्री को भारतमाता की गोद से छीन लिया। तब मैंने लिखा था 'क्रूर काल यह तेरा छल है।' जिस दिन प्रकाशवीर गए, भारतीय संस्कृति का आंगन सूना हो गया। उनकी यादगार में कई ग्रंथ हमने प्रकाशित किए, जिनमें उनके वक्तव्य हैं। ज्वालापुर का यह सपूत माँ सरस्वती का वरद पुत्र था, वाक् और अर्थ उनकी वाणी में संयुक्त और सम्पृक्त थे। उनका सोच और उनका जीवन राष्ट्र-प्रेम से ओत-प्रोत था। वैदिक संस्कृति का यह सुदर्शन राजकुमार एक ओजस्वी आर्य अश्वारोही के रूप में हमारे समकालीन सार्वजनिक कुरुक्षेत्र में आया तो उसके हाथों में ज्वालापुर की शिक्षा और दीक्षा का शस्त्र और शास्त्र था। प्रकाशवीर शास्त्री के साथ और ज्वालापुर के जो स्नातक हमारे मित्र बन गए, उनमें शिवकुमार शास्त्री भी थे।

ज्वालापुर गुरुकुल महाविद्यालय ने एक समारोह में मुझे न्यायवाचस्पति की उपाधि दी और दिवंगत राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर को साहित्य-वाचस्पति की उपाधि। मेरे भाषण की साहित्यिक सरसता पर चुटकी लेते हुए दिनकरजी ने मुझे संबोधित करते हुए कहा, 'आपको साहित्य-वाचस्पति की उपाधि मिलनी चाहिए, न्याय की अपेक्षा मुझे आपसे ज्यादा है, इसलिए हम लोग साहित्य और न्याय का विनिमय कर लें।

***

पता- बी-८, साउथ एक्सटेंशन, भाग- २,

नई दिल्ली - ११००४९

पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

अद्भुत वक्ता, दूरदर्शी नेता तथा विलक्षण राजनीतिज्ञ पं० प्रकाशवीर शास्त्री का सार्वजनिक जीवन उनकी शिक्षा की समाप्ति के साथ ही आरम्भ हो गया था। वे मुरादाबाद जिले के रहने वाले थे और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से उन्होंने विद्याभास्कर तथा शास्त्री की परीक्षाएं उत्तीर्ण की थीं। बहुत बाद में उन्होंने डी०ए०वी० कालेज कानपुर से संस्कृत में एम०ए० भी किया। उपदेशक के रूप में वे अपने युवाकाल में ही लोकविश्रुत हो गए। छरहरी काया, गौरवर्ण, लम्बा शरीर, शास्त्री जी आधी बांहों का कुर्ता और धोती में 'युवा पण्डित' लगते थे। एक उत्तरीय उनके कंधों की शोभा वृद्धि करता। कालान्तर में वे पूरी बांहों का कुर्ता पहनने लगे। शरीर भी भर गया।

वे जोधपुर की आर्यसमाजों में तो उपदेशक के रूप में बहुत पहले ही आने लगे थे। विशेष रूप से वे आर्यसमाज सरदारपुरा के उत्सवों पर प्रायः आया करते। पं० बाल दिवाकर हंस (आर्यवीर दल के कार्यकर्ता) उन दिनों इसी समाज में रहते थे। हंस की माताजी इस नगर के समीपवर्ती उपनगर नागौरी बेरे की कन्या पाठशाला में अध्यापिका थी। हंस जी की बहिन यशोदा कुमारी से शास्त्री जी का विवाह जोधपुर में ही सम्पन्न हुआ। संस्कार कराने वालों में उनके विद्यागुरु पं० हरिदत्त शास्त्री तथा राजस्थान के आर्य थे।

शास्त्रीजी की वक्तृत्व शक्ति अद्भुत थी, अपूर्व थी। व्याख्यान देने में उनकी बराबरी में केवल अटलबिहारी वाजपेयी का ही नाम लिया जाता था। वे प्रायः देश के सामने उपस्थित सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक समस्याओं पर धारा प्रवाह बोलते। 'ओं यतो यतः समीहसे' मंत्र के उच्चारणपूर्वक उनका भाषण आरम्भ होता। शुरु में इतना धीरे बोलते कि समीप बैठने वालों को भी समझने में दिक्कत होती, धीरे-धीरे उनकी वाग्-वैखरी तीव्र से तीव्रतर होती जाती और अस्खलित वाणी में उच्चरित उनकी सरस्वती श्रोता-समाज को आश्चर्यचकित कर देती, लोग विस्मय विमुग्ध हो जाते, वक्ता द्वारा प्रवाहित की गई वाग्धारा में बहने लगते और तब आता व्याख्यान का अन्त, जो इस प्रकार होता 'यह सब होने पर एक दिन सारे विश्व के मानव एक साथ बोलेंगे- 'भारत माता की जय' और वाणी का प्रवाह बन्द हो जाता। शास्त्री जी अपना आसन ले लेते। सुनने वाले सोचते, वाणी का यह प्रवाह मन्द क्यों हो गया ?

देश के समस्त प्रान्तों की आर्यसमाजें अपने उत्सवों में इन्हें आमंत्रित करतीं और उन्हें अपने बीच पाकर कृतार्थ अनुभव करतीं। उत्सव में आने की उनकी दो शर्तें होतीं- १०१ रु० दक्षिणा तथा सेकण्ड क्लास में यात्रा। तब की यह राशि आज दस हजार के लगभग होती तथा तब की द्वितीय श्रेणी वर्तमान ए०सी० श्रेणी के रेलयान की सुविधा देती। उस समय वातानुकूलन की व्यवस्था बेशक नहीं थी। प्रारम्भ में वे आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के वैतनिक उपदेशक रहे, बाद में स्वतंत्र रूप से धर्म-प्रचारार्थ सर्वत्र जाते। उत्तर प्रदेश के बाद हैदराबाद (दक्षिण) की आर्यसमाजों में उनकी अधिक मांग की जाती।

आर्यसमाज में उनके विशिष्ट साथी, सहयोगी और हमसफर थे- आंध्र-केसरी पं० नरेन्द्र जी, आर्यवीर दल के प्रमुख संचालक पं० ओम्प्रकाश त्यागी, लाला रामगोपाल शालवाले तथा आगरा के पं० वाचस्पति शास्त्री। यों उनका सभी विद्वानों, नेताओं तथा उपदेशकों से सौहार्द तथा स्नेह था। आर्य उपदेशकों की समस्याओं को लेकर वे इतने गम्भीर थे कि उन्होंने लखनऊ तथा हैदराबाद में आर्य उपदेशक सम्मेलन आयोजित किए। कन्हैयालाल मुंशी (उ०प्र० के गवर्नर) तथा पं० जवाहरलाल नेहरु को आर्यसमाज के मंच पर लाए तथा उनके आर्यसमाज विषयक उद्गार सुने। वे उपदेशकों के सच्चे हितचिन्तक थे। जब वे संसद्-सदस्य थे, एक बार मेरे साथ आर्यसमाज देहरादून के उत्सव में आए। उत्सव की समाप्ति पर मंत्री को एकान्त में कहा- "मैं तो सांसद के रूप में निश्चित मानदेय प्राप्त करता हूं, किन्तु पं० शिवकुमार शास्त्री तो उपदेशक

वृत्ति से ही जीवन यापन करते हैं, इन्हें दक्षिणा देने में उदारता बरतें।' उस समय मैं देहरादून से दिल्ली शास्त्री जी के साथ कार-टैक्सी में लौटा। रास्ते में पुरकाजी कस्बे की आर्यसमाज ने हमारे जलपान की व्यवस्था की और यात्रा में शास्त्रीजी से उनके सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन के अनेक रोचक किस्से सुने।

अजमेर में प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले ऋषि मेलों में हम उन्हें आमंत्रित करते। १९७६ में मेरी पुस्तक 'ऋषि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द' का लोकार्पण उन्हीं के द्वारा किया गया। बाद में हमने उन्हें परोपकारिणी सभा का सदस्य चुना और उनकी सम्मति से अगले वर्ष स्वामी सत्यप्रकाश जी को सदस्य मनोनीत किया। शीघ्र दिवंगत हो जाने के कारण...।

शास्त्रीजी का राजनैतिक जीवन १९५८ से आरम्भ हुआ, जब उन्होंने मौलाना आजाद की मृत्यु से खाली हुई गुड़गांव की सीट से स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में चुनाव लड़ा और पं० मौलिचन्द्र शर्मा (जनसंघ के संस्थापकों में से एक, सनातन धर्म के महोपदेशक पं० दीनदयाल शास्त्री के पुत्र तथा बाद में कांग्रेस में रहे) को पराजित कर संसद् में गए। लोकसभा में उनकी प्रभावशाली वक्तृता तथा अपूर्व तर्कशक्ति से उनके समसामयिक तीन प्रधानमंत्री (जवाहरलाल, लालबहादुर तथा इन्दिरा गांधी) सदा प्रभावित रहे। वे बाद में भी हापुड़, बिजनौर तथा गाजियाबाद से चुनाव जीतते रहे। वे पूरी तैयारी के साथ संसद् में बोलते और अपने पक्ष में प्रमाणों, युक्तियों और आंकड़ों की झड़ी लगा देते। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था और उपयुक्त शब्दराशि मुक्ता-मणियों की भांति उनके कण्ठ से निसृत होती थी। आपातकाल की कठिन घड़ियों में उन्होंने लोकसभा तथा राज्यसभा में तब विद्यमान सभी आर्यसदस्यों को एकत्र कर इन्दिरा गांधी से रूबरू कराया। परोक्षतया उन्हें अहसास कराया कि आर्यसमाज की ताकत को कोई कम न आंके। किन्तु आपातकाल की समाप्ति पर देश के मूड को वे शायद नहीं समझ सके और कांग्रेस के टिकट से १९७७ का चुनाव लड़ बैठे और हार गए। हमने उन्हें महर्षि दयानन्द-निर्वाण-स्मारक न्यास का अध्यक्ष निर्वाचित किया था, वे उसकी बैठक में अजमेर आए और मेरे घर पर अल्पाहार लेते हुए मैंने शास्त्री जी से पूछा, "शास्त्रीजी, आपसे यह भूल कैसे हुई कि आप कांग्रेस में चले गए और चुनाव हार बैठे?" शास्त्री जी ने अट्टहास करते हुए कहा, भारतीय जी, हम तो पहले भी विरोधी पक्ष में थे (अर्थात् कांग्रेस के शासनकाल में) और अब भी विरोधी पक्ष में हैं। (अब जब जनता पार्टी का राज्य है और कांग्रेस प्रतिपक्ष में है।) उनकी इस वाक्चातुरी द्वारा...।

सांसद रहते हुए उन्होंने आर्यसमाज के हित के अनेक काम किए। पार्लियामेण्ट की गैलरी में (केन्द्रीय कक्ष में नहीं) स्वामी दयानन्द का चित्र उनके प्रयत्नों से ही लगा। कौन सा चित्र लगे, इसके लिए उन्होंने मुझसे पत्राचार किया और मैंने उन्हें जबलपुर के न्याय-आयुक्त कृष्णराव गोलवलकर के घर पर खींचा गया कुर्सी पर आसीन, पगड़ी तथा धोती धारण किए श्री महाराज का चित्र वहाँ लगाने की सम्मति प्रदान की। शास्त्री जी ने गोहत्या-निषेध, राष्ट्रभाषा हिन्दी, कश्मीर समस्या, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, पाकिस्तान जैसे अनेक सामयिक प्रश्नों पर संसद् में प्रभावशाली वक्तृताएं दीं, जो संसद् की रिपोर्टों में सुरक्षित हैं। सांसद बनने पर उन्होंने व्यापक विदेश भ्रमण किया। मेरे प्रति उनका स्नेह जीवन-पर्यन्त रहा। आपातकाल के दौरान जब मैं अजमेर में गवर्नमेण्ट कालेज में प्राध्यापक था, किसी दुष्ट प्रकृति के पुरुष ने मेरी अकारण लिखित शिकायत मेरे अधिकारियों को कर दी। यद्यपि यह मामला शीघ्र ही समाप्त हो गया किन्तु जब मैंने शास्त्री जी के दिल्ली निवास (१, कैनिंग लेन) पर उनसे इस प्रसंग की चर्चा की तो उन्होंने मुझे आश्वस्त किया और राजस्थान के तत्कालीन शिक्षामंत्री खेतसिंह राठौर से कह कर उस अध्याय को समाप्त करने की बात कही। ऋषि के हस्तलेखों का माइक्रो-फिल्म और लेमिनेशन उन्होंने सरकार से कहकर रियायती दर से करवाया।

पं० प्रकाशवीर शास्त्री ने कम आयु पायी। वे अपनी योग्यता, वाग्मिता तथा सूझबूझ का अधिक परिचय दे पाते और आर्यसमाज के मानचित्र को विश्व के क्षितिज पर अधिक प्रभावी ढंग से प्रस्तुत कर पाते यदि उन्हें कुछ वर्ष और मिलते। गुरुकुलों की आर्थिक सहायता के लिए आयोग की स्थापना में उनका ही हाथ था। जयपुर से दिल्ली जाते समय दिल्ली मेल की दुर्घटना ने एक बहुमूल्य जीवन हमसे छीन लिया। यह खबर रेडियो ने दी।

पता- ८/४२५, नन्दनवन, जोधपुर (राजस्थान)

प्रकाशवीर शास्त्री : एक अंतरंग परिचय

– श्री विश्वनाथ

प्रकाशवीर शास्त्री जी को पहली बार सुनने का अवसर मुझे १९५४-५५ में दिल्ली में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर चांदनी चौक में, फव्वारे के पास ग्राउण्ड में रात्रि के समय मिला था। उन दिनों उनके ओजस्वी भाषणों और उनकी अद्भुत भाषणशैली की धूम मचनी प्रारम्भ हुई थी। मैं भीड़ की अन्तिम पंक्ति में यह सोच कर खड़ा था कि कुछ देर उन्हें सुन कर लौट जाऊँगा, परन्तु उनके भाषण ने तो ऐसा मंत्रमुग्ध किया कि लगभग एक घंटा मैंने खड़े रहकर, मानो सम्मोहित होकर, उनका भाषण सुना। उनकी वाणी में सरस्वती का निवास था, वाक्यविन्यास बहुत सुन्दर और शब्द धाराप्रवाह अजस्र गति से निकल रहे थे। विषय का प्रतिपादन उन्होंने इतने प्रभावी ढंग से किया कि सभी श्रोता अपने अपने स्थान पर विमुग्ध होकर बैठे रहे। उन्हें सुनते समय मुझे सहसा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का ध्यान हो आया, जिन्हें गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के वार्षिक अधिवेशन में कुछ वर्ष पहले 'वेदों में विज्ञान' विषय पर बोलते सुना था। उन दिनों हिन्दी शब्द-सामर्थ्य के विषय में मेरी धारणा अच्छी नहीं थी। मैं यह मानता था कि वैज्ञानिक विषय पर अंग्रेजी में ही प्रामाणिक ढंग से बात की जा सकती है। हिन्दी के प्रति मेरी हीनभावना समाप्त हुई डॉ० अग्रवाल के भाषण से, जिसमें उन्होंने शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया था, बिना अंग्रेजी का एक शब्द बोले। 'वेदों में विज्ञान' पर इतनी सहज सरल शैली में व्याख्या की कि मेरी तरह अन्य श्रोता भी अभिभूत हुए होंगे। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की तरह प्रकाशवीर जी को भी माँ शारदा का वरदान प्राप्त था। उस रात के उनके भाषण की स्मृति आज तक मन में बसी है।

कालान्तर में प्रकाशवीर जी के निकट आने का, उनके साथ काम करने का, उनकी कार्यशैली को देखने का अवसर मिला। ऊँचा कद, गौर वर्ण, तेजस्वी चेहरा, शुभ्र सफेद खादी का परिधान और उस पर उनकी विशिष्ट भाषण शैली और भाषा पर पूरा अधिकार। इतने सारे गुण एक ही व्यक्ति में विरले ही देखने को मिलते हैं। सोचता हूँ कि उनके पास ऐसा कौन सा मंत्र था जिससे वे पहली बार ही मिलने पर दूसरे व्यक्ति को अपना बना लेते थे। उनके साथियों और मित्रों का दायरा बहुत विशाल था। सभी अपनी जगह उनके साथ अपना विशेष अंतरंग सम्बन्ध मानते थे। उनकी इस सर्वप्रियता का भेद यही था कि वे प्रत्येक छोटे बड़े व्यक्ति को अत्यन्त आदर, विश्वास और प्रेम देते थे। उनकी सरल मुस्कान और सहज स्नेह सबको वश में कर लेता था। अपनी बात कहूँ, कई बार सोचता था कि मुझे शास्त्री जी इतना अधिक आदर और स्नेह क्यों देते हैं? मैंने तो उनके लिए कुछ विशेष नहीं किया। सम्भवतः यही मनःस्थिति उनके अन्य परिचितों की भी होगी।

वे सम्बन्ध बनाने में विश्वास रखते थे। जिस व्यक्ति या परिवार से एक बार नाता जुड़ता उसे सहेज कर रखते और उसका संवर्धन करते। प्रसिद्ध उद्योगपति मोहन मीकिन्स के डायरेक्टर कर्नल वेदरत्न की अचानक वायुयान दुर्घटना में दुःखद मृत्यु हो जाने पर (उनके शोक-संतप्त परिवार के निकट सम्पर्क में तो थे ही) जब यह प्रसंग आया कि उनकी स्मृति में कोई स्मारक बनाया जाए, तो शास्त्री जी ने उनके परिवार को यह सुझाव दिया कि साहित्य से अधिक स्थायी कोई स्मारक नहीं होता और यदि वेदों के प्रचार-प्रसार में संकल्पित धनराशि लगाएँ तो उससे अच्छा धन का उपयोग नहीं हो सकता। विचार-विनिमय के फलस्वरूप यह निश्चय हुआ कि चारों वेदों का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया जाए और उसके निमित्त धनराशि देने का संकल्प किया गया। संयोग से दिवंगत पुण्यात्मा का नाम भी वेदरत्न था। उन दिनों डॉ० जी०एल० दत्ता, डी०ए०वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान थे। डीएवी के विशाल परिवार और उनके छात्रों में उनके प्रति बड़ी सम्मान की भावना थी। मुझे वह दिन स्पष्ट याद है जब डॉ० दत्ता, प्रकाशवीर शास्त्री और मैं एक दो अन्य साथियों को साथ लेकर मेजर कपिलमोहन के पूसा रोड स्थित निवास पर इस प्रसंग में गये थे और उन्होंने तत्काल १० लाख रुपये की राशि इस कार्य के लिए दी थी और वेद प्रतिष्ठान की नींव डाली गयी थी। साथ ही कपिलमोहन जी ने यह भी कहा था कि 'मैं तो इस विषय में

कुछ जानता नहीं हूँ । प्रकाशवीर शास्त्री जी विद्वान् हैं, उनका आदेश है जिसका पालन कर रहा हूँ । वे जैसे चाहें, इस धनराशि का उपयोग करें।' आज यदि चारों वेदों का सरल शुद्ध अंग्रेजी में अनुवाद, बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रकाशित होकर १८ खण्डों में उपलब्ध है, तो उसका अधिकांश श्रेय प्रकाशवीर शास्त्री जी को जाना चाहिए । यह महत्त्वपूर्ण कार्य डी०ए०वी० के तत्त्वावधान में 'वेद प्रतिष्ठान' के अन्तर्गत सम्पन्न हुआ है । वेदों के अंग्रेजी अनुवाद में दिवंगत स्वामी सत्यप्रकाश जी और श्री सत्यकाम विद्यालंकार ने वर्षों श्रम किया । आज के युग में जहाँ अंग्रेजी का प्रभुत्व है, वेदों को मानव-समाज के लिए सुलभ किया है । एक प्रत्यक्षदर्शी के नाते मुझे याद है कि किस तरह एक-एक संस्कृत शब्द पर गहराई से विचार-विमर्श करने के बाद उसके अंग्रेजी शब्द का चुनाव किया जाता था । मेरी सम्मति में प्रकाशवीर जी का यह एक बड़ा योगदान है, उनका अविस्मरणीय और अमूल्य स्मारक भी ।

मेरी पूज्या माताजी हम चारों भाइयों के भरे-पूरे समृद्ध परिवार की मोह-ममता छोड़कर आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार में स्थायी निवास के लिए चली गई थीं और उन्होंने वहाँ वानप्रस्थ ले लिया । उन्हीं दिनों उनका प्रकाशवीर जी से परिचय हुआ । माताजी उन्हें सहज रूप से पुत्रवत् स्नेह देने लगीं और यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर गहरा होता गया । जब पहली बार प्रकाशवीर जी लोकसभा चुनाव के लिए प्रत्याशी के रूप में खड़े हुए थे तो माताजी ने हमें पत्र लिखा कि वे उनके चुनाव अभियान में काम करने के लिए ज्वालापुर से एक महीने के लिए चुनाव दौरे पर जा रही हैं, तो हमें कुछ ठीक नहीं लगा था । हमें उनके स्वास्थ्य की चिन्ता थी । आयु भी उस समय उनकी अधिक थी, परन्तु माताजी जो संकल्प लेती थीं, उस पर, दृढ़ रहती थीं । उस समय हमारे मन में यह बात आई कि यह प्रकाशवीर जी के विलक्षण व्यक्तित्व का ही आकर्षण है और उनके प्रति माताजी का सहज वात्सल्य । इसी प्रसंग में एक घटना का जिक्र करना चाहूँगा । यह बात माताजी ने तो नहीं बताई थी, परन्तु प्रकाशवीर जी ने स्वयं अपने एक भाषण में कहा कि किस प्रकार चुनाव के दिनों में माताजी ने उन्हें एक डायरी भेंट की, जिसे घर जाकर खोलने पर पाया कि उसमें १००-१०० रुपये के अनेक नोट रखे थे, साथ ही एक चिट पर उनकी सफलता के लिए कामना करते हुए उनको आशीर्वाद भी दिया था । उन दिनों रुपये की कीमत आज से कई गुना अधिक थी।

अन्त में मुझे वह दुःखदायी शाम नहीं भूलती, जब रायपुर से लौटते हुए रेल दुर्घटना में प्रकाशवीर जी का प्राणान्त हुआ था और मैं भी अन्य लोगों के साथ दिल्ली रेलवे स्टेशन पर उनके पार्थिव शरीर को लेने गया था । उनका अचानक निधन आर्यजगत् और हिन्दी संसार के लिए वज्रपात के समान था । अगले दिन सुबह केनिंग लेन स्थित उनके निवास पर हजारों व्यक्तियों की भीड़ लगी हुई थी, जो उन्हें अन्तिम श्रद्धांजलि देने पहुँचे थे ।

एक ऐसे समय उनका प्राणान्त हुआ, जब वे एक व्यक्ति न रहकर एक संस्था बन गये थे और मात्र अपने भव्य व्यक्तित्व, निर्मल चरित्र तथा ओजस्वी भाषणों के बल पर संसद् में उंगलियों पर गिने जाने वाले प्रभावशाली सांसदों में माने जाते थे । विपक्ष में रहते भी तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू उनका बहुत सम्मान करते थे । लोकसभा में हिन्दी के वर्चस्वी पक्षधर के नाते उन्हें राममनोहर लोहिया और सेठ गोविन्ददास के साथ सदा याद किया जाएगा । आर्यसमाज को तो पूरी तरह समर्पित थे ही, दिन-रात उन्हें आर्यसमाज के प्रचार की धुन रहती थी । उनकी पुण्य स्मृति को नमन ।

***

पता- उपप्रधान, डी०ए०वी० कालेज (मैनेजिंग कमेटी), नई दिल्ली

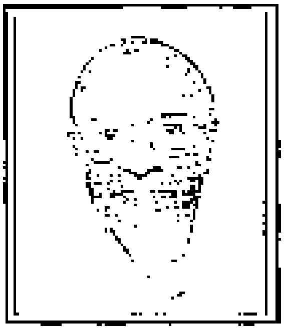

भारतीयता के प्रबुद्ध प्रहरी : श्री प्रकाशवीर शास्त्री

- श्री शिवकुमार गोयल

प्रखर सांसद और आर्यसमाजी नेता श्री प्रकाशवीर शास्त्री भी गुरुकुल ज्वालापुर के आदर्श छात्रों में अग्रणी रहे थे। शास्त्री जी जीवनपर्यन्त गुरुकुल तथा आचार्य नरदेव शास्त्री 'वेदतीर्थ' जी तथा अन्य आदर्शों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते रहे।

३० दिसम्बर सन् १९२३ को मुरादाबाद जनपद की तहसील हसनपुर के ग्राम रहरा में चौ० दिलीपसिंह त्यागी के पुत्र के रूप में जन्मे 'प्रकाशचन्द्र' को मात्र ११ वर्ष की आयु में सन् १९३३ की वैशाखी के दिन गुरुकुल ज्वालापुर में प्रवेश दिलाया गया। गुरुकुल में उन दिनों एक और 'प्रकाशचन्द' नामका छात्र था। अत: आचार्य जी ने एक दिन नवागन्तुक छात्र प्रकाशचन्द्र से कहा 'आज से तुम्हारा नाम 'प्रकाशवीर' कर दिया गया है। इन्हीं प्रकाशवीर ने आगे चलकर अपनी अनूठी प्रतिभा एवं वक्तृत्व शैली के कारण हिन्दी के प्रखर वक्ता के नाते अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। प्रकाशवीर किशोरावस्था में ही गुरुकुल में साहित्यिक गतिविधियों में रुचि लेने लगे थे।

गुरुकुल में प्रवेश लेते ही प्रकाशवीर जी का अपने से वरिष्ठ छात्र क्षेमचन्द्र सुमन से सम्पर्क होता गया। सुमनजी गुरुकुल के छात्रों की 'आर्यकिशोर सभा' के मंत्री थे। वे हस्तलिखित पत्रिका 'किशोरमित्र' तथा 'सुधांशु' का सम्पादन करते थे। आर्यकिशोर सभा की गोष्ठी में सुमन जी का भाषण सुनकर प्रकाशवीर जी को भाषण करने की इच्छा जागृत हुई। शास्त्री जी ने एक बार साक्षात्कार में मुझे बताया था मैं भ्राता क्षेमचन्द्र सुमन जी के पास पहुँचा। उनसे प्रार्थना की कि मुझे एक भाषण लिखकर दें। मैं उसका अध्ययन करके मासिक गोष्ठी में भाषण करना चाहता हूँ। सुमनजी ने अगले ही दिन मुझे तत्कालीन राजनीति पर जोरदार लेख लिखकर दे दिया। सुमन जी ने सफल वक्ता बनने का गुर बताते हुए कहा 'पहले अपने भाषण को कंठस्थ करो। एकान्त में खड़े होकर भाषण करने का अभ्यास करो। हिचकिचाहट को पास न फटकने देना।'

प्रकाशवीर जी गुरुकुल के जंगल मे चले गए। खेतों में अकेले खड़े होकर उन्होंने बोलने का अभ्यास शुरू कर दिया और एक दिन जब गोष्ठी में उन्होंने धारावाहिक भाषण दिया तथा क्षेमचन्द्र सुमन और आचार्य जी ने उनकी पीठ थपथपाते हुए कहा- 'आगे चलकर प्रभावी वक्ता के रूप में ख्याति अर्जित करोगे।'

२८ दिसम्बर सन् १९३७ से २९ दिसम्बर तक मेरठ में आर्य प्रतिनिधि-सभा उत्तर प्रदेश का 'स्वर्णजयन्ती समारोह' आयोजित किया गया था। इसमें प्रदेश के गुरुकुलों व विद्यालयों के छात्रों की भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। १५ वर्षीय प्रकाशवीर को जब सफल वक्ता के रूप में प्रथम पुरस्कार मिला तो आचार्य नरदेव शास्त्री 'वेदतीर्थ' जी ने उन्हें भरपूर आशीर्वाद दिया था।

सन् १९३९ में हैदराबाद के नवाब ने हिन्दुओं की धार्मिक गतिविधियों पर रोक लगाने का दुस्साहस किया। पूरे देश के हिन्दू समाज में इससे आक्रोश व्याप्त हो गया। आर्यसमाज, हिन्दू महासभा तथा अन्य संगठनों ने निजाम के विरुद्ध सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती (पूर्वनाम महाशय खुशहालचन्द्र खुरसन्द- सम्पादक 'मिलाप' लाहौर) के नेतृत्व में देशभर के आर्यसमाजियों ने सत्याग्रह किया। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारी छात्रों के जत्थे में शामिल होकर १६ वर्षीय प्रकाशवीर हैदराबाद पहुँचे। सत्याग्रह कर अपनी गिरफ्तारी देकर राष्ट्रभक्ति-धर्मभक्ति का परिचय दिया।

सिन्ध सरकार ने सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबंध लगाया। शास्त्री जी ने १६ नवम्बर १९४६ को उसके विरोध में सत्याग्रह कर गिरफ्तारी दी। सन् १९४८ में गुरुकुल से स्नातक बनने के बाद प्रकाशवीर शास्त्री ने दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर

आर्यसमाज के प्रचार का कार्य शुरू किया। उन्हें पूरे देश में आर्यसमाज के समारोहों में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाने लगा। देखते ही देखते वे अग्रणी ओजस्वी वक्ता तथा प्रखर युवा राष्ट्रनेता के रूप में विख्यात हो गये।

देश के प्रथम शिक्षामंत्री मौलाना आजाद का निधन हुआ तो गुड़गांव (हरियाणा) की लोकसभा सीट खाली हुई। कांग्रेस ने जनसंघ से त्यागपत्र देने वाले विख्यात समाजसेवी पंडित मौलीचन्द शर्मा को गुड़गांव से लोकसभा का उपचुनाव लड़ाने का निर्णय लिया। नेहरू जी स्वयं चाहते थे कि पं० मौलीचन्द शर्मा सांसद बनें। जनसंघ, हिन्दू महासभा तथा रामराज्य परिषद् ने आर्यसमाज के ओजस्वी प्रकाशवीर शास्त्री को निर्दलीय प्रत्याशी घोषित कर दिया। पंडित मौलीचन्द शर्मा सुविख्यात सनातनधर्मी महोपदेशक व्याख्याता वाचस्पति पंडित दीनदयालु शास्त्री के सुपुत्र थे। इसके बावजूद कांग्रेस की गोहत्या जारी रखने की नीति से क्षुब्ध सनातनधर्मियों ने भी प्रकाशवीर जी का खुलकर समर्थन किया। आर्यसमाज के हजारों कार्यकर्ता गुड़गांव जा पहुँचे। प्रकाशवीर जी ने जब मौलीचन्द्र शर्मा जैसी भारी भरकम हस्ती को पराजित कर विजयश्री पाई तो उन्हें भारी ख्याति मिली।

शास्त्री जी ने लोकसभा में अपने पहले भाषण में राष्ट्रभाषा हिन्दी को उचित स्थान न दिए जाने पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा- 'जब हम अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो गए हैं तो अंग्रेजी भाषा की गुलामी क्यों ओढ़े हुए हैं ? भाषा की आजादी के बिना कोई भी देश सच्चे अर्थों में स्वाधीन नहीं माना जा सकता। अंग्रेजी की जगह हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया जाना चाहिए।'

शास्त्री जी के पहले भाषण को सुनकर सभी वरिष्ठ सांसद मंत्रमुग्ध हो उठे थे।

प्रकाशवीर जी ने ही सबसे पहले संसद् में आकाशवाणी में अंग्रेजी से पहले हिन्दी में समाचार प्रसारित किए जाने की माँग की थी। उन्होंने ही कई राज्यों में हिन्दी को प्रमुखता दिए जाने का मामला उठाया था।

सन् १९६२ में शास्त्री जी हापुड़-गाजियाबाद लोकसभा क्षेत्र से चुने गए थे। वे २ कैनिंग लेन (नई दिल्ली) की कोठी में रहा करते थे। मुझे अनेक वर्षों तक उनके साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। देश के अनेक लब्धप्रतिष्ठ राजनेता तथा हिन्दी-सेवी उनके निवास स्थान पर आते रहते थे। सुविख्यात विधिवेत्ता डॉ० लक्ष्मीमल्ल सिंघवी, राष्ट्रकवि डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर', मैथिलीशरण गुप्त, डॉ० धर्मवीर भारती, बाबू गंगाशरण सिंह, अक्षयकुमार जैन, विष्णु प्रभाकर, अज्ञेयजी, श्री शंकरदयाल सिंह, यशपाल जैन, सदृश अनेक साहित्यिक विभूतियों से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे।

शास्त्री जी गोरक्षा के प्रति समर्पित थे। गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध के लिए वे हर क्षण सक्रिय रहे। इसी प्रकार जम्मू-कश्मीर को आतंकवाद-अलगाववाद से मुक्ति दिलाने के लिए वे सदैव धारा ३७० को हटाए जाने तथा वहाँ भूतपूर्व सैनिकों को बसाए जाने की मांग समय-समय पर संसद् में किया करते थे। सन् १९७४ में उन्हें श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने जनसंघ के सदस्य के रूप में राज्यसभा के लिए निर्वाचित कराया।

शास्त्री जी अंग्रेजों ही नहीं, अपितु अंग्रेजों द्वारा दी गई तमाम निरर्थक परम्पराओं को खत्म होते देखना चाहते थे। एक बार सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) के एक कालेज में उन्हें दीक्षान्त समारोह के लिए बुलाया गया। मैं उनके साथ था। कालेज में जब उन्हें परम्परागत काला गाउन पहनने को दिया गया, तो उन्होंने इन्कार कर दिया तथा अपने साथ ले जाया गया पीला पटका गले में पहन लिया। उन्होंने उस समय कहा था कि हमें अंग्रेजों की नकल बिल्कुल बंद कर देना चाहिए। वे जन्मदिवस पर केक काटने या मोमबत्तियाँ जलाने के भी विरोधी थे।

आज कश्मीर घाटी में पाकिस्तान-समर्थक आतंकवादी खुलकर खेल रहे हैं। शास्त्री जी दूरदर्शी नेता थे, अतः उन्होंने २४ अप्रैल १९६४ को लोकसभा में एक प्रस्ताव पेशकर कश्मीर से ३७० धारा हटाने तथा वहाँ पूर्व सैनिक परिवारों को बसाने तथा उद्योग स्थापित करने का रचनात्मक सुझाव दिया था। कश्मीर के प्रश्न पर बोलते हुए उन्होंने लोकसभा में कहा

था–'यदि हम शेख अब्दुल्ला और अन्य पाकिस्तान–समर्थक तत्वों को खुश करने में लगे रहे तो एक दिन हमारे लिए मुश्किल खड़ी हो जायेगी। अतः हमें वोटों का लालच त्यागकर ३७० धारा को दृढ़तापूर्वक हटाना ही होगा।' १८ नवम्बर १९६६ को उन्होंने लोकसभा में सम्पूर्ण गोवंश की हत्या पर प्रतिबन्ध लगाने का विधेयक प्रस्तुत किया था।

शास्त्री जी महर्षि दयानन्द के साथ साथ वीर सावरकर, भाई परमानन्द तथा सरदार पटेल को अपना मार्गदर्शक मानते थे। उनका कहना था कि यदि सरदार पटेल कुछ वर्ष और गृहमंत्री रह जाते तो वे हैदराबाद की तरह कश्मीर समस्या का स्थायी निदान कर जाते। कश्मीर-समस्या का हल नेहरू जी की ढुलमुल नीति पर चलकर नहीं पटेल की दृढ़ नीति पर चलकर किया जा सकता है। १ दिसम्बर १९६७ को उन्होंने बलात् धर्म–परिवर्तन पर रोक लगाने का विधेयक प्रस्तुत किया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए शास्त्री जी केवल भाषणों तक सीमित नहीं रहे। वे स्वयं भी जीवन में हिन्दी के प्रयोग का पालन करते रहे। अंग्रेजी में आए निमंत्रण-पत्र वाले कार्यक्रमों का वे हमेशा बहिष्कार करते थे। वे जगह-जगह जाकर लोगों को धिक्कारते थे कि वे हिन्दी–भाषी होकर भी विवाह व पुण्य संस्कारों के अंग्रेजी में निमंत्रण–पत्र क्यों छपवाते हैं ? उन्होंने हजारों व्यक्तियों से हिन्दी का ही प्रयोग कराने का संकल्प कराया था।

उन्होंने सरकार से हिन्दी की संवाद-समितियों को अंग्रेजी की संवाद–समितियों के बराबर अनुदान देने का आग्रह समय–समय पर किया। वे हिन्दी के तपस्वी पत्रकारों का बहुत सम्मान करते थे। शास्त्री जी प्रायः पत्रकारों, साहित्यकारों और राजनेताओं को राष्ट्रीय एकता का अलख जगाने की प्रेरणा दिया करते थे। वे वोटों के लिए तुष्टीकरण की नीति को राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। उनका कहना था कि तुष्टीकरण की घातक नीति ने ही राष्ट्र का विभाजन कराया, नागालैण्ड और अन्य राज्य बनाए। इसी ने पंजाब तथा असम क्षेत्र में अलगाववाद को पनपाया। यदि अब भी इस नीति को नहीं छोड़ा गया, तो कहीं देश पुनः विभाजित न हो जाए ?

शास्त्रीजी ने इस्राइल, जापान, अमेरिका, इंग्लैण्ड, इण्डोनेशिया आदि अनेक देशों का भ्रमण कर वहाँ रहने वाले भारतीयों को अपनी वैदिक हिन्दू संस्कृति तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आस्था बनाए रखने का आह्वान किया था।

शास्त्रीजी ने 'राष्ट्रहत्या या गोहत्या', 'मेरे सपनों का भारत', संध्या, धधकता कश्मीर, कश्मीर की बलिवेदी पर, जैसी अनेक पुस्तकों की रचना की।

सन् १९७५–७६ में शास्त्री जी ने मेरठ, कानपुर, वाराणसी तथा नैनीताल में 'आर्यसमाज स्थापना शताब्दी' समारोहों का आयोजन कराया था। वेदों के अंग्रेजी भाषा में अनुवाद का श्रेय भी शास्त्री जी को ही है।

शास्त्रीजी को राष्ट्रपति जी ने हिन्दी की सेवा के लिए सम्मानित भी किया था।

शास्त्री जी जयपुर में एक विवाह समारोह में भाग लेकर दिल्ली लौट रहे थे कि २३ नवम्बर १९७७ को रेल दुर्घटना में उनका निधन हो गया।

शास्त्री जी गुरुकुल महाविद्यालय तथा उसके आचार्यों के प्रति सदैव कृतज्ञता ज्ञापन किया करते थे। उनका सपना था कि गुरुकुलों की जगह-जगह स्थापना कर प्राचीन वैदिक शिक्षा-प्रणाली के माध्यम से इस धर्मप्राण भारत की युवा पीढ़ी को भारतीयता तथा भारतीय संस्कारों की शिक्षा देकर आदर्श राष्ट्रनिष्ठ बनाया जाए।

***

पता- भक्त रामशरणदास भवन, बीचपट्टी, पिलखुवा,

गाजियाबाद (उ०प्र०)

वाग्देवी के वरदपुत्र - पं० प्रकाशवीर शास्त्री

- श्री रामनाथ सहगल, मंत्री, वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

श्री प्रकाशवीर शास्त्री की ओजपूर्ण वक्तृता की कीर्ति जब उत्तर प्रदेश की सीमाओं को लांघकर भारत में व्याप्त होने लगी तब सन् ५५-५७ से दिल्ली के आर्यसमाजों के समारोहों में भी श्री शास्त्री जी का शुभागमन प्रारम्भ हुआ। मैंने सर्वप्रथम श्री शास्त्री जी के दो भाषण, एक का शीर्षक था "देश को स्वतंत्रता दिलाने में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का योगदान" और दूसरा 'गोरक्षा' विषय पर सुने। इन दो भाषणों ने दिल्ली में हलचल पैदा कर दी और सारे समारोह में जिधर चले जाइये श्री शास्त्री जी के भाषणों की ही चर्चा थी। गोरक्षा वाले भाषण के अन्त में एक मनोरंजक घटना घटी जो अब तक स्मृति-पटल पर अंकित है। शास्त्री जी का यह भाषण आर्यसमाज दीवान हाल में रात्रि के समय था। उस सभा के अध्यक्ष श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी थे। विज्ञापनों में श्री शास्त्री जी का विषय 'वैदिक धर्म' छपा हुआ था। इस विषय की जानकारी श्री शास्त्री जी को किसी ने दी नहीं और अध्यक्ष द्वारा नाम घोषित होने पर श्री शास्त्री जी ने गोरक्षा पर भाषण दिया। भाषण क्या था, कोई जादू था। सारी जनता मंत्र-मुग्ध हो कर सुनती रही। भाषण में कांग्रेस सरकार की तीखी आलोचना थी। अतः एक कांग्रेसी को और तो कुछ सूझा नहीं, उसने बौखला कर श्री देहलवी जी से पूछा- विज्ञापनों में श्री शास्त्री के भाषण का विषय 'वैदिक धर्म' छपा हुआ तो क्या यह भाषण उसी पर हुआ है। श्री देहलवी जी ने हंसते हुए उत्तर दिया 'जी हां' श्री शास्त्री जी ने अपने विषय पर ही भाषण दिया है। भाषण का विषय से सम्बन्ध दो प्रकार से होता है। एक साक्षात् और दूसरा परम्परा से। तो गोरक्षा विषय वैदिक धर्म से परम्परा से सम्बद्ध है। इसलिए श्री शास्त्री जी ने वैदिक धर्म का ही प्रतिपादन किया है।

इस उत्तर को सुनकर जनता में हंसी का ठहाका लगा और देहलवी जी की अनोखी सूझ की लोग सराहना करने लगे।

मेरे मन में श्रद्धा के अंकुर तो श्री शास्त्री जी के लिए तभी पैदा हो गये थे, किन्तु उनको पल्लवित होने का समय तब आया जब श्री शास्त्री जी ने पंजाब के हिन्दी आन्दोलन के बाद मौलाना आजाद की मृत्यु होने पर आर्यसमाज की ओर से गुड़गांव का उपचुनाव लड़ा। साधनों की दृष्टि से कांग्रेस के उम्मीदवार की और शास्त्री जी की कोई तुलना नहीं थी। एक प्रकार से दिए और तूफान का मुकाबला था। किन्तु आर्यसमाजियों में श्री शास्त्री जी के प्रति इतनी निष्ठा थी कि मई के महीने की भीषण गर्मी में आर्य- समाजी पैदल, साइकिलों पर और स्कूटरों पर गांव-गांव में फैल गये और श्री शास्त्री जी को शानदार विजय दिलायी।

मैंने भी आर्यसमाज के एक सैनिक के नाते और श्री शास्त्री जी का श्रद्धालु भक्त होने के कारण भी, इस चुनाव में रात- दिन एक कर दिए। इसी अवसर पर श्री शास्त्री जी का और मेरा परिचय हुआ और भविष्य में जीवन के अन्त तक वह घनिष्ठ ही होता चला गया।

श्री शास्त्री जी के प्रत्येक निर्वाचन सन् ६२, ६७, ७२ में अपने कार्यालय से अवकाश लेकर मैंने महीनों काम किया। निर्वाचन के समय में श्री शास्त्री जी का बुद्धि-कौशल और व्यवस्था-निपुणता देखने योग्य होती थी। एक ओर हैदराबाद से आकर प्रकाश आर्य पेन्टर का पड़ाव पड़ जाता था, जो रात-दिन पोस्टर, बैनर, चित्र और चुनाव चिह्न तैयार करने में लगे रहते थे। एक टीम दीवारों पर स्टेन्सिल लिखने वालों की जुट पड़ती थी। शास्त्री जी के मित्र और भक्त वक्ता और संगीत-कलाकार सारे निर्वाचन क्षेत्र में फैल जाते थे। तैयारी से यह चुनाव किसी एक व्यक्ति का न होकर एक पार्टी लीडर का प्रतीत होता था। बिजनौर जैसे जिले के रहने वाले मुसलमान रईस, जो केन्द्र में मिनिस्टर भी थे, के सामने श्री शास्त्री जी का विजयी होना कोई साधारण बात नहीं थी। बिजनौर में यह प्रसिद्ध था कि प्रकाशवीर शास्त्री के तो भाषणों में वोट बरसते हैं। इसे कोई कैसे हरा सकता है? श्री शास्त्री जी के साथ मिलकर आर्यसमाज की सेवा का भी जो सुयोग प्राप्त हुआ, उसे मैं अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग समझता हूँ।

मैं कई वर्ष तक लगातार आर्य केन्द्रीय सभा का मंत्री रहा। मेरे दैनिक कार्यक्रम का यह भी एक अंग था कि मैं दिन में एक बार श्री शास्त्री जी को मिल अवश्य लेता था। मेरे पहुँचते ही आर्य केन्द्रीय सभा के समारोह कैसे सफल और प्रभावशाली बनाये जायें, यह चर्चा भी अवश्य होती थी। राजनीतिक क्षेत्र के बड़े से बड़े व्यक्ति को श्री शास्त्री जी केन्द्रीय सभा के समारोहों में ले जाते थे और उससे आर्यसमाज के प्रभाव और प्रचार को बड़ी शक्ति मिलती थी। प्रत्येक गृहमंत्री, श्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री गुलजारी लाल नन्दा, श्री लालबहादुर शास्त्री और श्री यशवन्त राव चौहाण केन्द्रीय सभा के समारोहों में आये। श्री लालबहादुर शास्त्री को आर्यसमाज की ओर से ५१ हजार रुपये की थैली भेंट की गई। श्री चौहाण को एक सोने की तलवार और ५१ हजार की थैली भेंट की गई। श्री डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के समय राष्ट्रपति भवन के हाल में आर्यसमाज का एक शानदार आयोजन हुआ। सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन भी आर्यसमाज के कार्यक्रम में पधारे। श्री मोरारजी देसाई को आर्यसमाज मन्दिर, हनुमान रोड में बुलाया गया। इसका श्रेय श्री शास्त्री जी को जाता है।

मेरठ, कानपुर और वाराणसी के तीन शताब्दी समारोह भी श्री शास्त्री जी के लगातार प्रयत्न, सूझबूझ और उच्चकोटि की कार्यक्षमता के परिचायक थे। मुझे इन समारोहों के जुलूसों की व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया था।

श्री प्रकाशवीर शास्त्री के काम करने का ढंग निराला था। वे प्रत्येक कार्य का यश और गौरव अपने साथियों को देकर बहुत प्रसन्न होते थे। आर्यसमाज के हित की चिन्ता प्रत्येक समय उनके मस्तिष्क में रहती थी। इस प्रसंग में एक बात की चर्चा करना जरूरी समझता हूँ। इमर्जेन्सी के समय प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी सौराष्ट्र के दौरे पर जा रही थीं, क्योंकि वहाँ सूखे के कारण अकाल पड़ा हुआ था। यह जानकारी श्री शास्त्री जी को मिली और उनके मन में विचार आया कि प्रधानमंत्री जी को किसी प्रकार टंकारा लाकर ऋषि जन्म-स्थान को दिखाकर उसे आर्यसमाज के लिए प्राप्त किया जा सके तो उत्तम हो। श्री शास्त्री जी मुझे साथ लेकर प्रधानमंत्री निवास पहुँचे और प्रधानमंत्री के कार्यक्रम में टंकारा सम्मिलित कराया और ऋषि जन्मगृह पर यज्ञ की व्यवस्था करके प्रधानमंत्री के हाथ से आहुति दिलायी। ऋषि का जन्म-स्थान राष्ट्रीय स्मारक का रूप धारण करे यह प्रेरणा प्रधानमंत्री को दी। इसमें प्रधानमंत्री जी ने बड़ी रुचि दिखाई और शास्त्री जी को कहा कि आप दिल्ली चलकर इस सम्बन्ध में मुझसे मिलें। श्री शास्त्री जी ने दिल्ली आते ही एक पत्र प्रधानमंत्री जी के नाम लिखा कि टंकारा में ऋषि का जन्म-स्थान सरकार अपने अधिकार में लेकर उसे राष्ट्रीय स्मारक बनावे। इस पत्र पर लोकसभा और राज्यसभा के १०० सदस्यों के हस्ताक्षर कराकर प्रधानमंत्री सचिवालय को भेज दिया, किन्तु आगे चलकर परिस्थितियां ही बदल गईं और अचानक श्री शास्त्री जी भी संसार से चले गये। उस अनोखे व्यक्ति की स्मृति अब भी बिजली की तरह से चमक कर चित्त को प्रकाशित करती रहती है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह ऐसी महान् आत्माओं को भारत में बार-बार जन्म दे।

(टंकारा समाचार के दिसम्बर २००५ से साभार)

***

> ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। (महर्षि दयानन्द)

श्री प्रकाशवीर शास्त्री : मेरे प्रेरणा-स्रोत

- डॉ० सुरेन्द्र सिंह कादियाण

पं० प्रकाशवीर जी का नाम मैंने सर्वप्रथम सन् १९६२-६३ में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' में पढ़ा था, जिसे मेरे मामा जी (दिवालहेड़ी, देवबन्द, सहारनपुर) मंगाया करते थे। बाद में सन् १९६६ के बाद उनके दर्शन देश के लाखों श्रोताओं की तरह मैंने भी सार्वजनिक मंचों पर किए। दिल्ली नागरिक परिषद् के तत्वावधान में हर वर्ष ३१ अक्टूबर को लालकिले के प्रांगण में सरदार पटेल की जयंती समारोह बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। सर्वश्री प्रकाशवीर जी, कंवरलाल गुप्ता, ताराचंद खण्डेलवाल, वीरेन्द्र प्रभाकर आदि महानुभाव इस परिषद् के स्तम्भ थे और इस समारोह में हर वर्ष देश के मान्य नेता आमन्त्रित होते थे। इन अवसरों पर प्रकाशवीर जी के मुखर भाषणों का रसास्वादन मैंने भी लिया। आर्यसमाज के मंचों पर भी उन्हें बहुबार सुनने का अवसर मुझे मिला। विशेषकर मेरठ और कानपुर में उनके निर्देशन में आयोजित किए गए, आर्यसमाज शताब्दी-समारोहों में मैंने उनकी व्यवस्था कुशलता और प्रभाव को देखा। उन्हीं दिनों मैंने 'आर्यमित्र' के लिए कुछ लिखा जो उसमें छपा। 'आर्य-मर्यादा' उनके पास नियमित रूप से जाता था। जिसमें प्रायः मेरे लेख प्रकाशित होते रहते थे। मेरे नाम से तो वे परिचित थे, लेकिन उनसे निकट सम्पर्क तब हुआ जब आर्यसमाज के मनीषी विद्वान् स्व० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के सम्मान में एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना बनी। उन्हें अभिनन्दन-समिति का अध्यक्ष बनाया गया था और मैं उसका संयोजक था। इस समिति में आर्यजगत् की अन्य महान् विभूतियों में सर्वश्री स्व० पं० रघुवीर सिंह शास्त्री (पूर्व सांसद एवं उप-कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी), स्व० स्वामी ओमानन्द सरस्वती, पूर्व राज्य रक्षामन्त्री प्रो० शेरसिंह, हिन्दी जगत् के सुप्रसिद्ध हस्ताक्षर स्व० क्षेमचन्द्र सुमन आदि भी थे। लगभग ७०० पृष्ठों का यह अभिनन्दन ग्रन्थ आर्यजगत् में काफी चर्चित रहा था, लेकिन अभिनन्दन समारोह से पूर्व ही प्रकाशवीर जी इस संसार से विदा ले चुके थे। इस सिलसिले में उनसे कई बार माननीय श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री के साथ उनसे मिलने का अवसर मिला। एक बार नारनौल से दिल्ली तक मैं उनके साथ कार में आया। रास्ते में आर्यसमाज को लेकर लम्बी चर्चा उनसे हुई। इसी दौरान 'जमाअत इस्लामी' पर मैंने एक पुस्तक लिखी, जिसकी भूमिका पं० प्रकाशवीर जी ने ही लिखी थी, लेकिन धनाभाव में वह पुस्तक अभी तक प्रकाशित न हो सकी। उनके निधन का समाचार जब मैंने ट्रान्जिस्टर पर सुना तो मैं कनॉट प्लेस के आसपास ही किसी काम से आया हुआ था। तत्काल उनके निवास एक कैनिंग लेन पहुँचा तो आर्यजगत् की अनेक विभूतियों को वहाँ शोक-मग्न बैठे पाया। उनमें वे चेहरे भी दिखाई दिए जो आजीवन उनसे विरोध पाले रहे और अब आत्मीयता दिखाने पहुँचे थे। उन्हें देखकर शास्त्री जी के बारे में मेरी यह राय बनी कि वास्तव में वे अजात-शत्रु थे। उनसे भले ही किसी ने वैर-विरोध पाला हो, लेकिन वे हमेशा अपने विरोधियों के प्रति भी सहज और निष्कपट हृदय रहे। वे विरोधी अपना अहं त्यागकर यदि उनके मार्गदर्शन में कार्य करते, उनके अनुभवों का लाभ उठाते तो निश्चय ही आर्यसमाज को बहुत आगे ले जा सकते थे।

प्रकाशवीर जी के जीवन के अनेक स्वर्णिम अध्याय हैं, जिनका स्वाध्याय कर हम भावी पथ का निर्माण कर सकते हैं। गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) में पढ़ते हुए ही वे हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने पहुँचे थे। फिर वे आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के धर्मोपदेशक बन वैदिक प्रचार में लग गए। तत्पश्चात् गुड़गाँव के संसदीय क्षेत्र से विजयी होकर लोकसभा में पहुंचे। वे उद्भट्ट वक्ता ही नहीं, एक सफल लेखक भी थे। लोकसभा में जितना उन्होंने बोला, उससे कहीं अधिक समाचार-पत्रों पत्रिकाओं, स्मारिकाओं में उन्होंने लिखा। इस सामग्री को संकलित कर यदि प्रकाशित किया जाए तो उससे जहाँ आर्यसमाज की गरिमा बढ़ेगी तो दूसरी ओर भावी पीढ़ियां प्रेरणा भी ले सकेंगी। इस पुष्कल सामग्री को देखने से पता लगता है कि प्रकाशवीर जी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न इंसान थे। उनका जीवन ही नहीं, चिंतन भी बहु-आयामी था। सभा

चाहे शिक्षाविदों की हो, राजनीतिकों की हो, समाजियों की हो, काव्य-गोष्ठी हो या मुशायरा हो, गोरक्षा आन्दोलन हो, वे अपनी प्रतिभा की छाप अवश्य छोड़ जाते थे। उनमें सबसे बड़ी खूबी यह थी कि निर्दलीय सांसद की स्थिति में भी वे अधिक मुखर होकर जिए, सभी दलों के लोग उनकी बात को ध्यान से सुनते थे। प्रधानमंत्री चाहे जवाहरलाल जी रहे हों, लालबहादुर शास्त्री रहे हों या इन्दिरा गांधी रही हों, उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे भारतीय क्रान्ति दल, जनसंघ, कांग्रेस के भीतर भी घुसे, लेकिन ठहर नहीं सके, क्योंकि वे आर्यसमाजी पहले थे और राजनीतिज्ञ बाद में थे। जिस सत्यनिष्ठा, बेलागपन, निर्भीकता और दलीय राजनीति से ऊपर उठकर वे सोचते और बोलते थे, किसी भी राजनीतिक दल के लिए सहन कर पाना कठिन था। राजनीतिक दल उनकी प्रतिभा का दोहन तो करना चाहते थे, लेकिन उनके मार्गदर्शन में काम नहीं करना चाहते थे। कश्मीर-प्रकरण पर उनका चिंतन अत्यन्त ही स्पष्ट, गहन और गम्भीर था, जिसे उन्होंने संसद् में ही नहीं, बल्कि अनेक लेखों में भी समय-समय पर प्रकट किया, लेकिन उनकी बात को समझा नहीं गया, उनकी चेतावनी पर कान नहीं धरे गए, उनकी भविष्यवाणियों की अनदेखी की गई और आज नतीजा हम सभी के सामने है।

राष्ट्रीयता और मानवता को प्रकाशवीर जी ने साथ-साथ जिया था, इसलिए आर्यसमाजियों वाली कट्टरता उनमें नहीं थी, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि वे आर्य-समाज की विचारधारा के प्रति उदासीन थे अथवा उसे छोड़कर चले थे। यदि ऐसा होता तो वे मेरठ, कानपुर और वाराणसी में आर्यसमाज-शताब्दी-समारोहों को वह भव्य रूप कदाचित् न दे पाते जो उन्होंने दिया। गुरुकुल कांगड़ी या टंकारा ट्रस्ट से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था, लेकिन वे पं० नेहरू, इन्दिरा गांधी, मोरारजी देसाई जैसे नेताओं को अक्सर वहाँ ले जाते थे। हरिद्वार और गढ़-गंगा जैसे तीर्थों पर उन्होंने आर्यसमाजों की स्थापना कराई। आर्यसमाज के जलसे-जुलूसों पर प्रायः उन्हें आमंत्रित किया जाता था और वे वहाँ जाते भी थे। उनका मानना यह था कि आर्यसमाज के अतीत में जो तेवर रहे हैं, वे जमाने की बदलती रफ्तार, बदलते रंग को देखते हुए बदलने चाहिएं।

उनका कहना था कि आज का युग तुलनात्मक अध्ययन का युग है, अकाट्य तर्कों व तथ्यों का युग है, सम्प्रदायवाद की अपेक्षा मानवतावाद की ओर झुकाव का युग है, जोश और होश में संतुलन स्थापित कर अपनी बात कहने-लिखने का युग है, राष्ट्रवाद और विश्ववाद में निकटता स्थापित होने का युग है, अतः युग की इन अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए आर्यसमाज को अपनी परम्परागत प्रचार शैली में बदलाव लाना होगा। वे स्वदेशी के कट्टर समर्थक थे। कम्युनिस्टों, पूंजीपतियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों की बढ़ती राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों पर उनकी पैनी नजर बराबर टिकी रही और वे उनके विरुद्ध मुखर होकर लिखते व बोलते रहे। कश्मीर और भारत-पाक सम्बंधों पर उन्होंने बहुत लिखा जो पुस्तक रूप में (कश्मीर और भारत-पाक संबन्ध, संपादन राजेन्द्र त्यागी) भी छप चुका है। गोहत्या को वे राष्ट्र-हत्या मानते थे। इस सम्बन्ध में भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी। उनके स्वप्नों का भारत क्या था, इसी विषय पर लिखी अपनी पुस्तक में उन्होंने इस पर विशद प्रकाश डाला है।

प्रकाशवीर शास्त्री जी के विचारों और उनके द्वारा दिखाए मार्ग पर यदि आर्यसमाज चल निकले तो निश्चय ही आर्यसमाज में आया बिखराव दूर हो सकता है और वह अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ सकता है। आर्यसमाज में गुटबाजी उनके समय में भी थी, लेकिन उन्होंने इस गुटबाजी को स्वस्थ प्रतियोगिता के रूप में भुनाने का धर्म निभाया, न कि किसी विरोधी नेता का चरित्र-हनन करने की ओछी नीति अपना कर अपना स्वार्थ साधा। इस नीति के अपनाने के कारण ही उनका कद विरोधी नेताओं की तुलना में हमेशा ऊंचा रहा, भले ही आर्यसमाज की शिरोमणि सभा में वे न जा पाये हों। जिस बड़प्पन के वे धनी थे, उस बड़प्पन के आगे उनके विरोधी नेताओं को भी झुकते पाया गया। ये बड़प्पन ही उनके जीवन की कुल जमा पूंजी थी, जिसकी वजह से वे भुलाए नहीं भूलते और आज भी ससम्मान याद किए जाते हैं।

(वैदिक सार्वदेशिक, १२.१.२००६ से साभार) — संपादक, वैदिक सार्वदेशिक

आर्यसमाज के महान् नेता, अद्वितीय राष्ट्रनायक पं० प्रकाशवीर शास्त्री

१. प्रकाशवीर शास्त्री जब केवल १४ वर्ष के थे, तब उन्होंने वाराणसी में वर्ष १९३७ में आयोजित भाषण प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

२. प्रकाशवीर जी ने केवल १६ वर्ष की किशोर अवस्था में हैदराबाद के निजाम पर हिन्दुओं पर किए जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध १९३९ में संचालित आर्यसत्याग्रह में ६ माह तक जेल यातनाएं सहीं।

३. प्रकाशवीर जी ने केवल १७ वर्ष की आयु में जो कविता लिखी, वह श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा सम्पादित 'शिक्षा-सुधा' पत्रिका में प्रकाशित हुई।

४. पं० प्रकाशवीर शास्त्री ने १९५६ में केवल ३३ वर्ष की आयु में पंजाब में एक ऐसे हिन्दी सत्याग्रह का सफल संचालन किया जो अब तक के हिन्दी इतिहास में अभूतपूर्व है।

५. वे प्रथम आर्यनेता थे जो निर्दलीय प्रत्याशी के नाते १९५८ में गुड़गांव में लोकसभा उपचुनाव में उस समय के सर्वाधिक सशक्त सत्तारूढ़ राजनीतिक दल के प्रभावी प्रत्याशी को हराकर, विजयी होकर संसद् में पहुँचे। इस चुनाव में हिन्दू महासभा ने उनका सक्रिय समर्थन किया।

६. वे प्रथम नेता थे जिन्होंने १९५८ में संसद् में पहुँचते ही आकाशवाणी में हो रही हिन्दी की उपेक्षा को बन्द कराकर हिन्दी समाचारों को अंग्रेजी समाचारों से पहले प्रसारित कराने में सफलता प्राप्त की। दोनों भाषाओं का समय भी समान किया गया जो आज तक निरन्तर स्थापित है।

७. वे प्रथम नेता थे, जिन्होंने १ रुपये से १०० रुपये तक के करेंसी नोटों पर हिन्दी, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं को अंग्रेजी से ऊपर स्थान दिलाया।

८. वे प्रथम आर्यनेता थे, जिन्हें स्वामी दयानन्द के हस्तलेखों को भारत के अभिलेखागार द्वारा माइक्रोफिल्म का रूप देने तथा पाण्डुलिपियों का लेमिनेशन कराने का श्रेय प्राप्त है।

९. वे प्रथम आर्यनेता थे जिन्होंने १९६१ में संसद् में गाय को राष्ट्रीय प्राणी घोषित कर गोहत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने की मांग की।

१०. वे प्रथम आर्यनेता थे जिन्होंने १९६३ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन संसद् में अयोध्या का श्रीराम जन्मभूमि परिसर, मथुरा का श्रीकृष्ण जन्मभूमि परिसर तथा काशी में भगवान विश्वनाथ परिसर हिन्दुओं को सौंपने की मांग रखी।

११. वे प्रथम आर्यनेता थे जिन्होंने आर्यसमाज के उपदेशकों के कर्तव्यों व अधिकारों का निर्धारण करने के लिए अखिल भारतीय आर्य उपदेशक सम्मेलन का संगठन किया और हैदराबाद व लखनऊ में इसके अधिवेशन आयोजित किए। लखनऊ अधिवेशन में पं० जवाहरलाल नेहरु भी उपस्थित रहे।

१२. वे प्रथम आर्य-सांसद थे जिन्होंने लोकसभा में अन्य महापुरुषों के साथ आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द का भव्य चित्र लगवाने में सफलता प्राप्त की।

१३. पं० प्रकाशवीर शास्त्री प्रथम नेता थे जिन्होंने संयुक्त राष्ट्र की अनुसूची की तीन भाषाओं में हिन्दी को सम्मिलित किए जाने की मांग प्रस्तुत की।

१४. वे प्रथम नेता थे जिनके प्रयास से देश के कई न्यायालयों ने अपने निर्णय हिन्दी में देने प्रारम्भ किए। इनमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली आदि प्रमुख हैं।

१५. वे प्रथम आर्यनेता थे जिनके प्रयत्न से दिल्ली में सरदार पटेल जयन्ती समारोह का विराट् आयोजन प्रारम्भ हुआ।

१६. वे प्रथम आर्यनेता थे जिनके प्रयत्न से वेदों का अंग्रेजी-भाष्य प्रकाशित किया गया था।

१७. वे प्रथम आर्यनेता थे जिन्होंने महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज से जुड़ी तिथियों पर केन्द्र सरकार से डाक टिकट प्रसारित कराया।

१८. वे प्रथम आर्यनेता थे जिन्होंने १९३९ के हैदराबाद आर्यसत्याग्रह में जेल-यातना सहने वाले व्यक्तियों को स्वाधीनता संग्राम सेनानी का स्तर केन्द्र सरकार से दिलवाया तथा पेंशन व निःशुल्क रेलयात्रा की सुविधाएं प्रदान कराईं।

१९. वे प्रथम कुशल संगठनकर्ता थे जिनके नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में मेरठ (१९७३), कानपुर (१९७४) तथा वाराणसी (१९७६) में आर्यसमाज शताब्दी-समारोहों का विराट् आयोजन किया गया, जिनमें भारत के राष्ट्रपति भी उपस्थित रहे।

२०. वे प्रथम आर्यनेता थे जिनके भगीरथ प्रयत्न से प्रादेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा भवन, ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ, गुरु विरजानन्द कुटी, मथुरा तथा आर्यसमाज मन्दिर, गंगातट, हरिद्वार के विशाल भवनों का निर्माण सम्पन्न हुआ।

२१. वे प्रथम शिक्षा-सेवी थे जिनके प्रयत्न से चांदपुर जिला बिजनौर में डिग्री कालेज स्थापित हुआ तथा बिजनौर जनपद के धामपुर महाविद्यालय व मुरादाबाद जनपद के चंदौसी महाविद्यालय मे बी०एड० कक्षाएं प्रारम्भ हो सकीं।

२२. वे ऐसे अद्वितीय साहित्यकार थे, जिनकी लिखी- 'धधकता कश्मीर', 'मेरे सपनों का भारत', 'कश्मीर की वेदी पर', 'गोहत्या राष्ट्रहत्या' व 'संध्या सरोज' जैसी पुस्तकों ने राष्ट्रवादी व देशभक्त कार्यकर्ताओं में नवीन ऊर्जा का संचार किया।

२३. वे प्रथम राजनेता थे जिन्होंने हिन्दी को राष्ट्रभाषा ही नहीं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए प्रबल प्रयत्न किए तथा जो दिल्ली प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर विराजमान रहे तथा जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी सेवा के लिए राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन-पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

२४. वे ऐसे प्रथम नरवीर थे, जो बिना किसी सरकारी पद पर रहते हुए १९६२, १९६५ व १९७१ के भीषण युद्धों में सीमा क्षेत्रों का भ्रमण, शहीद सैनिकों के गांव-घर की यात्रा तथा रक्षा-प्रयासों के निमित्त आयोजित कार्यक्रमों में सक्रिय सहयोग देने में अहर्निश संलग्न रहे।

२५. वे ऐसे प्रथम राजनेता थे, जिनके प्रयत्नों से मुरादाबाद जनपद में गंगा किनारे तिगरी से लेकर गवां तक विशाल बांध बनाया गया, जिससे सैकड़ों ग्राम प्रतिवर्ष होने वाली बाढ़ की विभीषिका से बच सकें।

२६. ३० दिसम्बर १९२३ को ग्राम- रहरा, तहसील- हसनपुर, जनपद- मुरादाबाद (उ०प्र०) में जन्मे महाशय दिलीप सिंह त्यागी के पुत्र प्रकाशचन्द्र गुरुकुल ज्वालापुर में प्रविष्ट हुए तो प्रकाशवीर बना दिए गए और फिर २३ नवम्बर १९७७ तक जीवन पर्यन्त वे पण्डित प्रकाशवीर शास्त्री के नाम से विख्यात रहे। वे प्रथम श्रेणी के प्रकाश थे, धर्मवीर थे, शास्त्रज्ञ पण्डित थे, वे अगणित रूप में अनन्य व अद्वितीय थे। सरदार पटेल के शब्दों में वे हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के अग्रगण्य नेता थे।

***

(टंकारा समाचार से साभार)

डॉ० गणेशदत्त शर्मा

- डॉ० रामकिशोर शर्मा

जन्म एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि- डॉ० गणेशदत्त शर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जनपद में स्थित ग्राम भवन बहादुर नगर (बी०बी० नगर) के एक कृषक परिवार में हुआ। आपके पूज्य पितामह स्व० श्री पं० नानकचन्द शर्मा (नम्बरदार) स्वतंत्रता-सेनानी थे, जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान छः माह का कठिन कारावास 'बाँदा' जेल में भोगा था। आपके पिताश्री स्व० श्री पं० हरिशरण शास्त्री गुरुकुल सिकन्दराबाद के स्नातक व संस्कृत के विद्वान् थे। डॉ० शर्मा के पिता व पितामह दोनों ही 'निजाम-हैदराबाद' की हिन्दू-विरोधी नीति तथा हिन्दू जनता के उत्पीड़न के विरुद्ध आयोजित आर्यसमाज के सत्याग्रह में जेल गए थे। इस भाँति संस्कृत-संस्कृति एवं राष्ट्रीयता के संस्कार आपको विरासत में मिले हैं।

शिक्षा- डॉ० गणेशदत्त की प्राथमिक शिक्षा अपने गाँव के ही सरकारी स्कूल में हुई। तत्पश्चात् गांव में ही सन् १९४७ ई० में स्थापित 'स्वतंत्र भारत इण्टर कॉलिज' से कक्षा छः पास करने के बाद आपको 'गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार)' में प्रविष्ट करा दिया गया। गुरुकुल में निरन्तर ११ वर्ष तक अध्ययन करते हुए आपने यहाँ की विद्याभास्कर तथा 'संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी' की शास्त्री परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। सर्वप्रथम आप 'दयानन्द एंग्लोवैदिक मिडिल स्कूल ग्वालियर' में एक वर्ष संस्कृत-अध्यापक व एक वर्ष प्रधानाध्यापक रहे। तत्पश्चात् एन.ए.एस कालिज मेरठ के संस्थागत छात्र रहते हुए सन् १९६४ में आपने आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए० पास किया और उसी वर्ष उक्त महाविद्यालय में ही संस्कृत प्रवक्ता पद पर नियुक्त हो गए। आपने श्री बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय मेरठ से संस्कृत वि०वि० वाराणसी की साहित्याचार्य भी की। उपर्युक्त ए.एन.एस. पोस्टग्रेजुएट कालिज में सेवा करते हुए आपने आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की। आपका शोध विषय था- "ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व"। उल्लेखनीय है कि डॉ० गणेशदत्त शर्मा को सन् १९७३ के दीक्षान्त समारोह में राष्ट्रकवि श्री डॉ० रामधारी सिंह दिनकर जी के कर-कमलों द्वारा पी-एच.डी. उपाधि से अलंकृत होने का सौभाग्य मिला।

कार्यक्षेत्र- एन.ए.एस. कालिज मेरठ में प्रवक्ता पद से रीडर व अध्यक्ष पदों पर पदोन्नत होते हुए आपने वहाँ २० वर्षों तक सेवा-कार्य किया और अक्टूबर १९८४ में 'उच्चशिक्षा आयोग इलाहाबाद' से चयन होकर आपकी नियुक्ति लाजपतराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय साहिबाबाद के प्राचार्य पद पर हो गई। फिर यहीं से आप ३० जून २००० को सेवानिवृत्त हुए। जुलाई-अगस्त २००२ में आप हिन्दू यूनिवर्सिटी आफ अमेरिका ओरलैण्डो (फ्लोरिडा) यू.एस.ए. में विजिटिंग प्रोफेसर रहे।

अपनी उपर्युक्त लगभग ३८ वर्ष की सारस्वत यात्रा के दौरान डॉ० शर्मा ने देश-विदेश की सैकड़ों राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत संगोष्ठियों में भाग लेकर अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए, जिनमें अधिकांश प्रकाशित हैं। आपके निर्देशन में लगभग ४० शोधछात्र शोधकार्य कर चुके हैं। मेरठ विश्वविद्यालय की संस्कृत पाठ्यक्रम समिति व शोधसमिति के संयोजक रहते हुए आपने बी०ए० जनरल कोर्स में संस्कृत को स्थान दिलाया। आप मेरठ विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव कमेटी व एकेडेमिक काउन्सिल के सदस्य तथा स्पोर्ट्स काउन्सिल के चेयरमैन भी रहे।

प्रकाशित पुस्तकें- संस्कृत व हिन्दी के लेखन व भाषण में डॉ० गणेशदत्त शर्मा की समान गति है। आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं-

१. 'ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व' शोधकृति (उ०प्र०संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत)

२. 'निबन्धपारिजातम्' (मौलिक संस्कृत निबन्ध)

३. 'भारत में धर्म और संस्कृति' (धर्म और संस्कृति के जनरल कोर्स हेतु)

४. 'सामान्यसंस्कृत' (संस्कृत जनरल कोर्स बी०ए० में निर्धारित)

५. 'स्वप्नवासवदत्तम्' (हिन्दी-संस्कृत व्याख्या, टिप्पणी सहित)

६. 'वैदिकचिन्तन की धाराएं' (वैदिक दर्शन की नवीनतम पुस्तक)

७. 'विवेकानन्दचरितामृतम्' (संस्कृत महाकाव्य हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद सहित)। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त काव्य का लोकार्पण दि० ६ जून २००५ में भारत के उपराष्ट्रपति म०म० भैरोंसिंह शेखावत जी ने किया था।

विदेश यात्राएं– डॉ० शर्मा ने जून १९७७ में फ्रांस, मई १९७९ में जर्मनी, अक्टूबर १९८४ में फिलाडेल्फिया (यू०एस०ए०), अगस्त १९८७ में हालैण्ड, जुलाई २००० में न्यूजर्सी (यू०एस०ए०), जुलाई २००२ में बोस्टन (यू०एस०ए०), जुलाई २००४ में मैरीलैण्ड (यू०एस०ए०) में आयोजित विश्व-संस्कृत-सम्मेलनों व वेद-सम्मेलनों में भाग लिया और उनमें अपने शोधपत्र प्रस्तुत करके भारत का गौरव बढ़ाया। जुलाई २००३ में आपने त्रिभुवन विश्वविद्यालय काठमाण्डू (नेपाल) में आयोजित विश्वसम्मेलन में भाग लिया।

विविध आयाम– डॉ० शर्मा एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी हैं। अपने सतत क्रियाशील शैक्षिक जीवन में वे आर्यसमाज, सनातनधर्म, विद्याभारती, संस्कृतभारती, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिन्दी भवन व साहित्यालोक आदि अनेक साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक, व राष्ट्रीय संस्थाओं से जुड़े रहकर वहाँ अनेक पदों का दायित्व वहन करते हुए अपना योगदान करते रहे। आप मेरठ विश्वविद्यालय संस्कृत अध्यापक परिषद् के पहले सचिव और फिर अध्यक्ष भी रहे। श्री बिल्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय मेरठ के उपसचिव रहे। अपनी मातृसंस्था गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्यासभा के मन्त्री रहे। महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान उज्जैन तथा उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी लखनऊ के सदस्य रहे।

यह लिखते हुए मुझे गर्व का अनुभव हो रहा है कि दि० ९ फरवरी २००७ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में आयोजित अन्तर्राष्ट्रिय वेद-वेदाङ्ग विद्वत् सम्मेलन के अन्तर्गत डॉ० गणेशदत्त शर्मा को "अन्तर्राष्ट्रिय विद्यारत्नाकर सम्मान" से अलंकृत किया गया है।

***

पता- सेवानिवृत्त रीडर (संस्कृत), एन०ए०एस० कालिज, मेरठ।
सदस्य विद्वत्परिषद्, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

सब स्त्री-पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को
वेद पढ़ने का अधिकार है।

(महर्षि दयानन्द)

अनुकरणीय व्यक्तित्व के धनी- डॉ० राजेन्द्र शुक्ल

- डॉ० रघुवीर वेदालंकार

डॉ० राजेन्द्र शुक्ल महाविद्यालय ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातकों में तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के सुयोग्य अध्यापकों में से थे। एक कुशल अध्यापक के साथ-साथ डॉ० शुक्ल के कुछ गुण ऐसे थे जो अभी भी उनकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। वे मेरे अध्यापक रहे हैं। अतः मेरे लिए उनके विषय में कुछ कहना कठिन नहीं है। डॉ० शुक्ल का प्रमुख गुण था छात्रों के प्रति सघन आत्मीयता तथा उनकी सहायतार्थ सर्वदा उद्यत रहना। यह आत्मीयता पारिवारिक घनिष्ठ सम्बन्धों का रूप भी धारण कर लेती थी। कुछ अध्यापकों को अपने महाविद्यालय के या अपने ही शोधछात्र कुछ अधिक प्रिय होते हैं, किन्तु डॉ० शुक्ल इस भेदभाव से ऊपर थे। वह किसी भी महाविद्यालय का छात्र या किसी भी प्रोफेसर का शिष्य हो, शुक्ल जी उसकी सहायतार्थ सर्वदा उद्यत रहते थे। वे छात्रों को टरकाते नहीं थे, अपितु आत्मीयतापूर्वक उनका मार्गदर्शन करते थे। ऐसा करने में न उन्हें कभी खिन्नता का अनुभव हुआ तथा न ही समयाभाव का। शुक्ल जी का मानस ऐसा करके प्रसन्न ही होता था। मैंने उन्हें सदा ऐसा ही पाया। न केवल छात्रों के प्रति ही, अपितु अपने मित्रों के प्रति भी डॉ० शुक्ल का यही व्यवहार था और इसीलिए वे छात्रवृन्द के साथ-साथ अपने सहचरवृन्द में भी सभी के आदरणीय थे।

ऐसा करके भी डॉ० शुक्ल के मन में न तो कभी अहं भाव पनपा तथा न ही अपनी इस दिनचर्या में उन्होंने कभी कष्ट का अनुभव किया। मैंने उन्हें सदा प्रसन्न-वदन देखा तथा अपने आप ही पहले ही पूछ बैठते थे 'कहो भाई क्या हाल हैं'। ऐसी आत्मीयता के निश्छल स्वर सर्वत्र सुनाई नहीं पड़ते। डॉ० शुक्ल ने एक प्रकार से छात्र-अध्यापक तथा छोटे-बड़े के भेद को मिटा दिया था। सबके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना आपका वैशिष्ट्य था।

इन सबके अतिरिक्त मुझे जिस घटना ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, वह इस प्रकार है-

मैं दिल्ली में एम०ए० का छात्र था। डॉ० साहब उन दिनों माडल टाउन, दिल्ली में रहते थे। मुझे उन्होंने माडल टाउन में ही किसी के घर विवाह-संस्कार कराने को कहा। मैं संस्कार कराकर शुक्ल जी के घर लगभग १० बजे रात में लौटा। आते ही बोले- चलो, भैया पहले खाना खा लो। डॉ० साहब भी मेरे साथ ही खाने बैठे। मैंने आश्चर्य से पूछा कि अभी आपने भी नहीं खाया। आश्चर्य इसलिए कि मैं तो छात्र था। उन्हें मेरे से पहले अपने समय पर भोजन कर लेना चाहिए था, किन्तु वे मेरी प्रतीक्षा करते रहे। मेरे प्रश्न का जो उत्तर उस समय शुक्ल जी ने दिया, वह उनकी महानता को सूचित करता है। डॉ० साहिब इतना ही बोले- 'भैया, हम गृहस्थ हैं' यह उत्तर अति संक्षिप्त होते हुए भी कितना विस्तृत एवं कर्तव्य-बोधक है, आप इसका अनुमान कर सकते हैं। मुझे अभी भी यह उत्तर वैसा ही स्मरण है जैसे कि कल की ही बात हो। गृहस्थ धर्म के प्रति हमें कितना सचेष्ट होना चाहिए, डॉ० शुक्ल इसके अनुकरणीय उदाहरण हैं। ऐसे सरल, सहज, सहृदय, आत्मीय, हितकारी गुरु को सादर नमन।

***

पता- उपाचार्य, रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

श्री बलजित् शास्त्री

- आनन्द चौहान

गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने श्री बलजित् शास्त्री के रूप में समाज को एक ऐसा अद्‌भुत व्यक्तित्व दिया जिसने शिक्षा, समाज सेवा, राजकीय सेवा, आर्यसमाज, परिवार सुधार आदि सभी क्षेत्रों में अद्‌भुत कार्य कर गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का नाम उज्ज्वल किया।

जिला बिजनौर के अस्करीपुर ग्राम में गुरुकुल के परम सहयोगी स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती (पूर्व नाम पं० ऋषिराम) के घर में जन्म लेकर प्रारम्भिक शिक्षा के बाद गुरुकुल गए तो सुयोग्य स्नातक बनकर ही निकले।

उनकी पुरुषार्थ की आदत, वक्तृत्व कला व सेवा भावना का निखार गुरुकुल में दिखने लगा था। आप आचार्य नरदेव शास्त्री जी (राव जी) के प्रिय शिष्यों में थे जब राव जी बीमार हुए थे तो बलजित् जी ने उनकी अनथक सेवा की इसका उल्लेख राव जी ने अपनी आत्मकथा में भी किया है।

गुरुकुल के बाद कुछ दिन होशियारपुर में रहे। वहाँ श्री सन्तराम बी०ए० के साथ जात पात तोड़क मण्डल के मंत्री रहे। प्रत्येक रविवार को अपने छात्रों को साथ लेकर हरिजन बस्ती/गांवों में जाकर यज्ञ करते या आर्यसमाज का प्रचार करते। उसके बाद १९४० में डी०ए०वी० कॉलिज जालन्धर आने पर आपके कार्यक्षेत्र का विस्तार हुआ। वहाँ संस्कृत के प्राध्यापक व चीफ वार्डन रहते हुए छात्रों में संस्कार व चारित्रिक विशेषताओं का संचार किया। आज भी उनके विद्यार्थी उन्हें अति सम्मान से याद करते हैं। श्री बलजीत शास्त्री ने देखा कि छात्रावास के विद्यार्थियों में माँस भक्षण का बहुत प्रचलन है, तो एक दिन भाषण देते समय छात्रों को भावनाओं में बाँधकर बोले कि 'आप सब पंजाब के शेर हो, पर काम गीदड़ों का करते हो।' यह सुनना था कि सन्नाटा छा गया, फिर बोले बोले- शेर दूसरे का मारा माँस नहीं खाता तो आप क्यों खाते हो ? यदि शेर ही हो प्रतिज्ञा करो कि यदि माँस खायेंगे तो स्वयं मारकर, उसी समय सैकड़ों युवकों ने माँस-भक्षण न करने की शपथ ले ली। उनके रहते हुए छात्रावास में कभी हड़ताल नहीं हुई, कोई विद्यार्थी बीमार हो तो ऐसा हो नहीं सकता था कि शास्त्री जी उसके पास न हों। जब कभी हॉस्टल में लाइट चली जाती तो कोई-कोई छात्र हल्ला करता था तो उसका नाम लेकर उसे शान्त करते थे। आप प्रत्येक छात्र की आवाज तक पहचानते थे। महर्षि दयानन्द के आदेशों पर अमल करते हुए आपने १ जनवरी १९३९ में जात-पाँत तोड़कर कन्या गुरुकुल देहरादून (काँगड़ी) की सुयोग्य स्नातिका, लाहौर में बच्चों वाली समाज के प्रधान, दानवीर सेठ लाला रोशनलाल जी की सुपुत्री वेदवती विद्यालंकृता (बाद में गुरुकुल से विद्यालंकार व आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए०) से विवाह किया। इस जात-पाँत को तोड़कर, बिना दहेज के, गुरुकुल के दो स्नातकों के आदर्श विवाह की चर्चा समाचार पत्रों में कई दिन हुई।

हैदराबाद सत्याग्रह में आपके पिताजी पं० ऋषिराम तो जेल चले गए और आपको जत्थे भेजने के काम में लगाया गया। वहाँ आपने अपनी संगठन क्षमता का परिचय दिया।

देश के बंटवारे के दुर्भाग्यपूर्ण समय में पूरा डी०ए०वी० कालेज व हॉस्टल रिफ्यूजी कैंप में बदल दिए गए। चीफ वार्डन होने के कारण व आपकी सेवा भावना को देखकर आपको रिफ्यूजी कैंप का कमाण्डर बना दिया गया। वहाँ जो पाकिस्तान से कटे-फटे, घायल, बीमार, लुटे-पिटे दुःखी लोगों से भरी ट्रेनें आती थीं उन सबको सम्भालना एवं उनके लिए दवा, ईलाज, खाने-रहने की व्यवस्था करने आदि में २४-२४ घण्टे लगातार आपने काम किया। हैजा के मरीजों के कैम्प में आने से वहाँ भी हैजा फैल गया, लगातार उन रोगियों की सेवा करने से आपके परिवार में भी हैजा फैल गया और आपने अपना एक सुन्दर पुत्र उसमें गँवाने के बाद भी रिफ्यूजी भाई-बहिनों की सेवा में कोई कमी नहीं रखी। इस लगातार भाग-दौड़ व बिना सोये काम करने से आपके सिर के अधिकांश बाल थोड़े दिनों में ही सफेद हो गए थे। आपके साथ

आर०एस०एस० व आर्य समाज के समर्पित युवकों की टीम थी जिसमें से से कुछ युवक अपने बी०ए० अन्तिम वर्ष की परीक्षा नहीं दे सके थे उनको श्री बलजित् शास्त्री के सर्टिफिकेट के आधार पर (नियमानुसार) बी०ए० की डिग्री प्रदान की गई। उस समय के भारत के गवर्नर जनरल की पत्नी लेडी माउण्टबैटन जो स्वयं सब रिफ्यूजी कैम्पों को देख रही थीं, उन्होंने शास्त्री जी का काम देखकर लिखा– 'Excellent work done by Shri Baljeet Shastri'। हॉस्टल में आपका घर भी एक छोटा कैम्प बन गया था। वहाँ आपकी पत्नी श्रीमती वेदवती जी ने सबको बड़े प्यार से रखा।

पंजाब में आपकी ख्याति बढ़ती गई। इसकी खबरें उत्तर प्रदेश में भी फैल रही थीं। एक दिन उत्तर प्रदेश सरकार के वरिष्ठ मंत्री श्री गोविन्द सहाय जी ने आपके पिता पं० ऋषिराम से कहा कि बलजित् शास्त्री को अब उ०प्र० का भी ध्यान रखना चाहिए और इनकी नियुक्ति सरकार में एक वरिष्ठ पद पर कर दी गयी। १९४९ में प्रथम नियुक्ति सीतापुर में हुई तथा केवल ११ महीने के कार्यकाल में अपनी कर्मठता, सेवा व प्यार के कारण इतने प्रसिद्ध हो गए कि ट्रान्सफर होने पर विशाल जनसमुदाय जुलूस रूप में जिलाधीश के पास पहुँचा कि इनको नहीं जाने देंगे। वहाँ के अखबार आपको रोकने की अपील से भर गए। परन्तु अपने कर्तव्य को समझने वाले श्री शास्त्री ने कहा कि आदेश का पालन ही मेरा कर्तव्य है व १९५१ में मेरठ आ गए।

मेरठ बहुत बड़ा जिला था। स्वतंत्रता का उद्घोषक था। राजनीतिक रूप से अति जागरूक था, यहाँ आपको और बड़ा कार्यक्षेत्र मिला व आप शासकीय कार्य के साथ-साथ समाजसेवा में जुट गए। मेरठ से भी आपको अत्यन्त स्नेह मिला। आज़ादी अभी मिली ही थी। चौधरी चरण सिंह, श्री कैलाश प्रकाश, श्रीमती कमला चौधरी, श्री विष्णुशरण दुबलिश आदि के साथ काम किया। इसी समय विनोबा जी के भूदान यज्ञ के सम्पर्क में आए। भारत सरकार की विशेष योजना के तहत आपने ५०० किसानों को साथ लेकर भारत भ्रमण किसान स्पेशल ट्रेन से ४० दिन भारत भ्रमण किया। उस समय के उनके वरिष्ठ साथी श्री भवानी शंकर कहते थे कि हमारे बलजित् शास्त्री कर्म के लिए इतने तत्पर रहते हैं कि यदि ट्रेन रुक जाये तो यह धक्का लगाने लगेंगे और ईश्वर की इन पर इतनी कृपा है कि ट्रेन चल पड़ेगी। श्री भवानी शंकर कहते थे कि यदि बलजित् शास्त्री मेरे आस पास न हों तो मुझे घबराहट होने लगती है।

मेरठ में शासकीय कार्य करते हुए आपने ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठ व कर्मठता का अभूतपूर्व उदाहरण छोड़ा। मेरठ के हर काम में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। प्रसिद्धि इतनी थी कि यदि बलजित् शास्त्री, मेरठ लिखकर पत्र भेज दो तो मिल जाता था। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी से स्नेह मिला। मेरठ के ग्राम-ग्राम में घूमकर राजकीय योजनाओं का प्रचार किया। छोटे बड़े, अमीर-गरीब सबसे भ्रातृत्व-भाव से मिलते थे। एक बार उनके अनन्य मित्र श्री बी०एन० अरोड़ा ने पूछा कि शास्त्री जी आप साधारण से साधारण व्यक्ति के लिए भी खड़े क्यों हो जाते हो तो बोले- 'मुझे तो प्रत्येक में ईश्वर की मूरत दिखती है।' मेरठ में हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते रहते थे। एक बार कर्फ्यू के समय वरिष्ठ अधिकारियों ने आपको एक महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए भेजा साथ में पुलिस गार्ड दे दिए, तो आपने कहा कि यह मेरा शहर है। यहाँ सब मेरे अपने हैं, मुझे कोई खतरा नहीं है। यह बात अधिकारियों को पसंद नहीं आई क्योंकि शहर में लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे, फिर भी शास्त्री जी की जिद के सामने बड़े बेमन से उन्होंने इजाजत दे दी। वही हुआ जिसका डर था- मेरठ शहर की एक तंग गली में जीप के सामने से लगभग १५०-२०० दंगाइयों की भीड़, हथियारों से लैस आ गई। ड्राइवर सरदार इकबाल सिंह डर से काँपने लगा। परन्तु गुरुकुल के ईश्वर-विश्वासी स्नातक बोले- "बिल्कुल मत डरो, धीरे-धीरे आगे बढ़ते रहो", और जादू हो गया। भीड़ के पास आने पर उनके लीडरों ने कहा कि अरे जाने दो यह तो बलजित् शास्त्री हैं, यह तो हमारे अपने हैं। भीड़ हट गई, रास्ता दे दिया।

मेरठ में भौला की झाल गाँव, जहाँ गुरुकुल प्रभात आश्रम है वहाँ के एक बहुत उग्र क्रान्तिकारी हुए थे, जो अंग्रेज हुकूमत को नुकसान पहुँचाने के लिए कुछ भी कर सकते थे, बिजली की चलती लाइन को काटने के तो वो विशेषज्ञ थे। अतः

उनका नाम ही लन्दन-तोड़ पड़ गया था । बी०डी० लन्दन-तोड़ एक छोटा अखबार निकालते थे और सरकार व अधिकारियों को नंगी गालियाँ लिखा करते थे, कहते थे हमने इस तरह की आजादी नहीं चाही थी । वही लन्दन-तोड़ एक दिन चिल्ला कर बोले कि बलजित् शास्त्री तूने मेरा नियम तोड़ दिया, मेरी कलम अटक गई, तू कैसा अधिकारी है कि मैं तेरे खिलाफ कुछ नहीं लिख पाता ।

मेरठ के एक और प्रसिद्ध सम्पादक हिन्दुस भाई श्री बी०स० विनोद हुए हैं, कट्टर हिन्दूवादी, राष्ट्रवादी थे । सदा मोटा खद्दर पहना । उन्होंने 'प्रभात' अखबार में जो सच लगा वही लिखा । निर्भीक आलोचना की, दर्जनों बार हत्या की धमकी से भी वे नहीं रुके । किसी से कोई फायदा नहीं उठाया । पत्रकार के रूप में एक तपस्वी थे । श्री शास्त्री के सेवानिवृत्त होने पर वही विनोद जी अपने 'प्रभात' में लिखते हैं- 'आज हमारे देश को बलजित् शास्त्री जैसे निष्पक्ष अधिकारियों की आवश्यकता है, जो २० साल से मेरठ में हैं और कोई भी उनकी असली जाति नहीं जानता । बलजित् सिंह नाम व चौधरी चरण सिंह से निकटता के कारण लोग उन्हें भी जाट मानते हैं । शास्त्री होने के कारण उन्हें ब्राह्मण माना जाता है । पंजाब में रहने तथा पंजाबी भाषा पर अधिकार के कारण उन्हें पंजाबी मानते हैं । मेरठ के बनियों में रिश्तेदारी के कारण उन्हें वैश्य समझा जाता है । कोई नहीं जानता कि यह राजपूत हैं ।'

मेरठ से इंगलिश् का एकमात्र अखबार Indian Scene निकलता था । इसके सम्पादक श्री डी०आर० सिंघल अपनी बढ़िया इंगलिश् व बेबाक आलोचना के लिए जाने जाते थे । उन्होंने शास्त्री जी की सेवानिवृत्ति के अवसर पर लिखा- "The unforgettable work and contribution by Shri Baljit Shastri during his tenure is such a unique phenomenon which perhaps will not be and can not be repeated in future."

होली के त्योहार पर जब अधिकांश अफसरों व प्रतिष्ठित नागरिकों को तीखी व चुभने वाली उपाधि मिलती थीं । तब शास्त्री जी को "अजातशत्रु" व "सबके भले" आदि उपाधि मिलती थीं ।

मेरठ के प्रसिद्ध नौचन्दी मेले में, भारत सरकार का मण्डप बनाने वाले ठेकेदार ने किसी कारणवश सरकार पर मुकदमा कर दिया । मेरठ के प्रसिद्ध वकील श्री विद्यार्थी ठेकेदार जी के वकील थे । सरकार की तरफ से बलजित् शास्त्री को गवाही के लिए आया देखकर श्री विद्यार्थी ने कहा कि जज साहब मैं शास्त्री जी से जिरह नहीं कर सकता, मुझे पता है कि यह हर हाल में सच बोलेंगे । आप इनके बयान पर जो फैसला देंगे, मुझे मंजूर होगा । ठेकेदार जी ने कहा आप हमारे वकील हो। यह क्या कर रहे हो ? तो विद्यार्थी जी बोले कि क्षमा करें मैं आप द्वारा दी फीस वापिस कर दूंगा पर मैं शास्त्री जी की ईमानदारी पर शक नहीं कर सकता ।

फील्ड मार्शल मानेकशा पाकिस्तान से युद्ध जीत कर आए थे । क्रान्ति व आजादी की लड़ाई के लिए प्रसिद्ध मेरठ ने उनका "नागरिक अभिनन्दन" करने का निर्णय किया । एक अजीब जुनून था अपने जरनल के दर्शन करने का । श्री मानेकशा देहली से मेरठ के लिए चले, रास्ते भर, जगह-जगह उनका स्वागत होता रहा । नौचन्दी मैदान में इनके नागरिक अभिनन्दन के स्थान पर अत्यन्त विशाल भीड़ थी, सब तरफ सिर ही सिर नजर आते थे । कहते हैं कि एक लाख की भीड़ रही होगी । प्रतीक्षा में भीड़ बेकाबू होने लगी, जो जरनल मानेकशा के अलावा किसी को सुनना नहीं चाहती थी । तभी किसी ने कहा शास्त्री जी को बुलाओ । यह समय था गुरुकुल ज्वालापुर के स्नातक की परीक्षा का । उन्होंने माइक पकड़कर सब तरफ देखा और फिर अपनी धीर-गम्भीर वाणी से प्यार भरे शब्दों में कहा "अरे मेरठ वालो यह तो आपका चरित्र नहीं है, आप तो आजादी लाने वाले हैं, आप तो शहीदों को पैदा करने वाले हैं, ऐसे कैसे मेरठ के नाम को खराब करोगे, अरे एक दो घण्टे के इंतजार से घबरा गए । हम तो अपने वीर सपूत के लिए सारी रात भी बैठेंगे" और चमत्कार हो गया, भीड़ शान्त हो गई तथा फिर जरनल मानेकशा के आने तक शास्त्री जी ने ही मंच संभाला ।

१९७२ के आर्यसमाज के मेरठ शताब्दी समारोह में आपने खूब काम किया । श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने प्रेस की पूरी जिम्मेदारी आपको दी थी और उस समय राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में आर्यसमाज के जितने समाचार जितनी प्रमुखता से आए वैसे आज तक नहीं आए । श्री प्रकाशवीर शास्त्री कहते थे कि इस समारोह की पूरी रूपरेखा जितनी स्पष्ट बलजित् को है उतनी किसी अन्य को नहीं है ।

आप कभी भी किसी पद की इच्छा नहीं रखते थे, फिर भी वर्षों आर्य केंद्रीय सभा मेरठ के प्रधान सर्वसम्पति से रहे । कई वर्ष पश्चिमी उत्तर प्रदेश वेद प्रचार मण्डल के अध्यक्ष रहे । सब जानते हैं कि उत्तर प्रदेश की आर्यसमाजों में मूल निवासी और पंजाबी भाईयों के बीच मत वैभिन्न के कारण झगड़े रहते थे । सभा जिसको भी निर्णायक बनाकर भेजती उसे दूसरा ग्रुप कहता यह तो बनिया है या पंजाबी है आदि । प्रकाशवीर जी ने कुछ समाजों में श्री बलजित् शास्त्री को भेजा जिन्हें दोनों ग्रुप अपना मानते थे । इस परम्परा को रखने के लिए ही उन्होंने स्वयं पुरानी आर्यसमाज सदर, मेरठ का सदस्य होते हुए अपने पुत्र आनन्द को पंजाबी बिरादरी की समाज, थापर नगर, मेरठ का सदस्य बनाया ।

समाज सुधार, परिवार सुधार, शुद्धि आन्दोलन आपके प्रिय विषय थे । 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' पर आपके भाषण, वेद मंत्रों की सरल व्याख्या, परिवार सुधार पर भाषण अत्यन्त प्रसिद्ध थे । सारे जीवन मन, वचन, कर्म से वैदिक सिद्धान्तों का पालन किया, उन्होंने सादा जीवन उच्च विचार को आत्मसात किया था । आप कहने में नहीं करने में विश्वास करते थे ।

आप आर्यसमाज के महान् उपदेशक स्वामी ऋतानन्द सरस्वती के एकमात्र पुत्र थे । दानवीर सेठ लाला रोशनलाल के दामाद थे, विदुषी स्नातिका वेदवती के पति थे । ऐसे बलजित् शास्त्री जी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य अपने विचारों, सिद्धान्तों को आगे बढ़ाना था । अन्यथा देखा यह गया है कि बड़े से बड़े व्यक्ति के अच्छे कार्य उसके साथ ही समाप्त हो जाते हैं । ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, परन्तु श्री शास्त्री ने अपने परिवार को ऐसा बनाया कि उनका जीवन दर्शन आगे बढ़े । मानवता की सेवा का संकल्प आगे बढ़े । इसके लिए उन्होंने त्याग किए, कष्ट सहे पर विचलित नहीं हुए । अपने बच्चों के विवाह बिना जात-पात के, गुण कर्म स्वभाव के अनुसार करते थे । छोटी बारात ले जाते थे और अपने घर सबको बुलाते थे ।

हमेशा कहते थे कि व्यक्ति से बिछुड़ने के बाद उसका मृत्यु दिवस नहीं जन्म दिवस मनाना चाहिए व यज्ञ के बाद खुशी से उसके गुणों की चर्चा करनी चाहिए ।

श्री बलजित् शास्त्री बड़े दूरदर्शी थे । आपके पुत्र आनन्द का विवाह देहरादून के विद्वान् , लेखक श्री यशपाल आर्य (वर्तमान में उत्तरांचल आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान) की सुपुत्री मृदुला से ३ मई १९७७ को हुआ । बारात ले चलने के लिए श्री रामगोपाल शालवाले तथा श्री प्रकाशवीर शास्त्री को देहली से देहरादून तक एक ही कार में बैठाया । श्री बलजित् शास्त्री को पता था कि यदि आर्यसमाज के यह दोनों कर्णधार एक साथ बैठेंगे तो बहुत सी भ्रान्तियाँ दूर होंगी व सम्बन्धों में सुधार आएगा । यही हुआ भी दोनों ने मिलकर काम करने का मन बनाया व आपसी रिश्तों में मधुरता बढ़ी । दुर्भाग्य से थोड़े समय बाद ही श्री प्रकाशवीर शास्त्री का ट्रेन दुर्घटना में स्वर्गवास हो गया । आर्यसमाज को इस मीटिंग का अधिक लाभ न हो सका।

जब वेदवती जी कहती थीं आपको बच्चों के विवाह की चिन्ता नहीं है तो कहते थे तुम्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं रहा क्या ? प्रयास कर तो रहे हैं बाकी सब ईश्वर करेगा, यही हुआ भी । बच्चों को अच्छे से अच्छे जीवन साथी मिले । 'आपने कर्म करो बाकी ईश्वर देखेगा' को पूरी तरह जीवन में उतारा था । सदा कहते थे "आगे पीछे प्रभु खड़े, जब मांगू तब देय" और ऐसा होता भी था ।

शास्त्री जी ने जब अपने पुत्र डॉ० अशोक चौहान का रिश्ता कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० शिवराज शास्त्री जी की प्रथम श्रेणी में संस्कृत एम०ए० अमिता जी से किया तो उनके मित्र ठाकुर नरसिंह पाल सिंह ने कहा कि शास्त्री जी मैं तो आपको कोठी, गाड़ी दिलवाता तो आपका स्पष्ट उत्तर था- मैं तो इस रिश्ते से बहुत खुश हूँ । किसी के

ख़राब पैसे से मेरा एक भी बच्चा बिगड़ जाता तो मैं उस धन का क्या करता । आप देखना मेरे संस्कारों से, ईश्वर कृपा से मेरे बच्चे सब कुछ बनायेंगे । शास्त्री जी का विश्वास ठीक निकला, आज यही अमिता जो एक बड़े सम्मिलित आर्य परिवार को साथ रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं । उनके परिवार में चार पुत्र व पुत्र वधुएं- डॉ० अशोक कुमार चौहान-डॉ० अमिता, आनन्द-मृदुला, अरुण रेणू, अजय-मल्लिका तथा तीन सुपुत्रियाँ व दामाद श्रीमती इन्दु-श्री मनजीत सिंह, प्रतिभा, मधु-श्री भानु प्रताप तथा सबके भरे पूरे परिवार हैं । आपने अपनी पत्नी लेखवती के साथ मिलकर अपने उदाहरण से, त्याग तपस्या से परिवार को ऐसे अटूट, दृढ़ संस्कार दिए हैं कि आज सब मिलकर उनके मिशन को तीव्र गति से आगे बढ़ा रहे हैं।

आपकी बड़ी सुपुत्री इन्दु का विवाह बिजनौर-गढ़वाल आर्यसभा के वर्षों प्रधान रहे चौ० शिवराज सिंह के सुपुत्र श्री मनजीत सिंह चौहान के साथ हुआ । श्री मनजीत सिंह पक्के आर्य हैं तथा ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा व कर्मठता के अद्वितीय उदाहरण हैं । श्रीमती इन्दु वर्षों आर्यसमाज की मन्त्रिणी रहीं, सदैव शिक्षा व आर्यसमाज के कार्यों में लगी रहती हैं ।

सबसे बड़े पुत्र डॉ० अशोक कुमार चौहान ने जर्मनी में बहुत बड़े औद्योगिक व्यावसायिक ए०के०सी० ग्रुप की स्थापना की, वहाँ के सबसे बड़े अनिवासी भारतीय बने, दर्जनों प्रतिष्ठित अवार्ड लिए । जर्मनी में उनके द्वारा स्थापित ग्रुप में ६००० जर्मन काम करते थे । जर्मनी में लाला रामगोपाल शालवाले द्वारा आर्यसमाज की स्थापना करवाई । श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी जर्मनी में श्री अशोक के यहाँ अपने प्रवास की बात बड़े गर्व से सुनाते थे । जब अशोक जी को लगा कि अब समय आ गया है कि मुझे अपने देश के लिए कुछ करना है तो शिक्षा से विश्व को बदलने का संकल्प लेकर अपने पूज्य दादा जी, पिताजी, व माताजी के नाम पर १९८६ में एक ट्रस्ट रितनन्द बलवेद एजुकेशन फाउण्डेशन बनाया व उसके अन्तर्गत १९९१ में एमिटी शिक्षण संस्थानों की स्थापना प्रारम्भ की । ईश्वर की कृपा, गुरुकुल के संस्कारों व डॉ० अशोक की अद्भुत उद्यमिता से आज एमिटी शिक्षण संस्थानों में ४५००० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं । एमिटी की संस्कारयुक्त, पूर्व व पश्चिम के उत्तम-उत्तम गुणों का सम्मिश्रण, ईश्वर में अटूट विश्वास की शिक्षा, छात्रों का जीवन परिवर्तित कर रही है । आज एमिटी सात राज्यों में २८ कैम्पस में फैला है । नर्सरी से लेकर पी-एच०डी० तक । मैनेजमेण्ट, लॉ, इन्जीनियरिंग, नानो टैक्नालाजी, बायो टैक्नालाजी, इन्श्योरेन्स आदि संस्थान देश के सर्वोत्तम संस्थानों में से हैं । एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, देश का प्रथम प्राईवेट विश्वविद्यालय है । नर्सरी से १०+२ तक के अति प्रसिद्ध एमिटी इन्टरनेशनल स्कूल्स डॉ० चौहान की विदुषी पत्नी डॉ० अमिता चौहान के सुयोग्य नेतृत्व में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं । डॉ० अमिता चौहान गुरुकुल की सर्वोच्च उपाधि विद्यावाचस्पति से सुशोभित हैं । यह भी एक मणिकांचन संयोग है कि श्री बलजीत शास्त्री के सुपुत्र डॉ० अशोक कुमार चौहान गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के चांसलर पद को सुशोभित कर रहे हैं, गौरवान्वित कर रहे हैं एवं गुरुकुल के संस्कार किस तरह प्रस्फुटित, प्रफुल्लित हो रहे हैं । ऐसा उदाहरण शायद ही कोई हो ·

अब डॉ० चौहान ने देश-विदेश में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए गुरुकुलों की एक शृंखला बनाने का निर्णय किया है, गुड़गाँव, देहली व छत्तीसगढ़ में भूमि भी ले ली है । उन्हें पूर्ण विश्वास है कि हमारे गुरुकुल एक बार फिर संसार का मार्गदर्शन करेंगे ।

श्री बलजित् शास्त्री केवल ६८ वर्ष की आयु में ९ मई १९७५ को स्वर्गवासी हो गए । श्री शास्त्री के सभी पुत्र, पुत्रियाँ सच्चे आर्य हैं, चारों पुत्रों का आदर्श सम्मिलित परिवार है । पौत्र-पौत्रियाँ भी विदेश के सर्वोच्च संस्थानों में पढ़ने के बाद भी नित्य यज्ञ करते हैं, शाकाहारी हैं, परिवार की परम्परा का पालन कर रहे हैं । गुरुकुल के प्रिय स्नातक बलजित् शास्त्री का पूरा परिवार उद्योग, व्यापार, शिक्षा के क्षेत्र में सफलता के साथ मानवता की सेवा में लगा है । गुरुकुल, आर्यसमाज, देश को इनसे बहुत अपेक्षाएं हैं । ईश्वर इस परिवार पर कृपा रखे व इस परिवार का गुरुकुल महाविद्यालय परिवार से स्नेह बना रहे ।

***

आचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री

-सुशील कुमार त्यागी 'अग्नि'

विद्याभास्कर, एम०ए० साहित्याचार्य

राष्ट्रीय भव्य भावनाओं से ओत-प्रोत, ओजस्वी वक्ता, कुशल प्रशासक, अनुशासनप्रिय, संस्कृत-भाषा के प्रकाण्ड विद्वान , राष्ट्रपति-पुरस्कार से सम्मानित, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री आज के इस आधुनिक युग मे गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति के संवाहक ही नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति, संस्कृत-भाषा, सभ्यता एवं संस्कारों के सम्पोषक भी हैं तथा प्रतिभा के धनी माने जाते हैं ।

इन महान् विभूति का जन्म ५ जनवरी सन् १९४९ ई० को हुआ । इनके पिता का नाम श्री पं० लक्ष्मीनारायण शर्मा तथा इनकी माता का नाम श्रीमती राजेश्वरी देवी था । इस मानव-जीवन में सुख कम और दुःख अधिक होते हैं । प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विकट संकटों का सामना करना ही पड़ता है । दुर्भाग्य से 'आचार्यश्री' को भी बाल्यावस्था में ही अपनी माता का चिर वियोग सहना पड़ा और आप जीवनभर अपनी माता के प्यार व दुलार से सदैव वंचित रहे । सर्वप्रथम आप दीनानाथ श्रीकृष्ण की क्रीडास्थली वृंदावन धाम में विद्याध्ययन हेतु चले गए । वहाँ से हाईस्कूल एवं मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की । तत्पश्चात् उच्च शिक्षा हेतु आप वृंदावन छोड़कर हरिद्वार नगरी में आ पहुँचे । हरिद्वार पहुँचकर आपने शास्त्री एवं आचार्य (नव्य व्याकरण) परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से उत्तीर्ण की । तदुपरान्त मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ से प्रथमश्रेणी में एम०ए० (संस्कृत) तथा शोध उपाधि (पी-एच०डी०) प्राप्त की । आपके शोधकार्य का विषय "बालभारत का आलोचनात्मक अध्ययन" है ।

आप सर्वप्रथम गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में सन् १९६८ ई० में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए तथा निरन्तर सन् १९७४ ई० तक प्राध्यापक-पद पर ही कुशलतापूर्वक कार्य करते रहे । तदुपरान्त आपकी योग्यता एवं दक्षता को देखते हुए महाविद्यालय ज्वालापुर की प्रबन्ध-समिति ने आपको सन् १९७४ ई० में प्राचार्य-पद पर नियुक्त किया, किन्तु उस समय महाविद्यालय ज्वालापुर विकट संकट की परिस्थितियों में गुजर रहा था । ऐसी संकट की घड़ी में गुरुकुल के सुयोग्य प्राचार्य के रूप में आपने बड़ी ही सूझबूझ से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए महाविद्यालय ज्वालापुर की विविध समस्याओं का समाधान कर गुरुकुल में सर्वप्रथम शान्ति स्थापित की । तदनन्तर गुरुकुल द्वारा संचालित विद्याभूषण (कक्षा ८), विद्यारत्न (कक्षा १०), विद्यानिधि (कक्षा १२) एवं विद्याभास्कर (स्नातक) परीक्षा को सन् १९८२ में आपने अपने प्रयासों से भारत-सरकार द्वारा क्रमशः कक्षा ८, हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट एवं बी०ए० के समकक्ष मान्यता प्राप्त कराई । तत्पश्चात् गुरुकुल की आर्थिक स्थिति को सुधारने की चेष्टा की तथा गुरुकुल को भारत-सरकार की अनुदान सूची से जिसे अज्ञात कारणों से हटा दिया गया था, उसको आपने पुनः प्रारम्भ कराया । संस्कृत विभाग की न्यूनातिन्यून छात्र संख्या को वृहदाकार कर दिया तथा आर्थिक स्थिति को ठीक करने के लिए भारत-सरकार से २८०० रुपये वार्षिक अनुदान प्रारम्भ कराया । अब यह अनुदान लाखों रुपये के रूप में गुरुकुल को प्राप्त हो रहा है । आपके ही सतत से आज यह संस्था 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग' द्वारा भी मान्यता प्राप्त हो चुकी है और आयोग से लाखों रुपये विकास अनुदान के रूप में संस्था को प्राप्त हो रहे हैं । आपने गुरुकुल का सुचारु रूप से संचालन एवं व्यवस्थापन करते हुए अनेक भवनों का निर्माण भी अपने प्रयासों से कराया है । आप महाविद्यालय ज्वालापुर के ३१ वर्षों से प्राचार्य-पद को सुशोभित कर रहे हैं तथा अहर्निश गुरुकुल की उन्नति के लिए प्रयासरत रहते हैं । महाविद्यालय ज्वालापुर के इतिहास में इतना बड़ा कार्यकाल किसी भी पूर्ववर्ती आचार्यों का नहीं रहा है । आपके ही प्रयासों का प्रतिफल है कि गुरुकुल का मेरठ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध स्नातकोत्तर विभाग जो अज्ञात कारणों से सन् १९७६ में बन्द कर दिया गया था, को सन् २००५ में हेमवतीनन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कराकर प्रारम्भ कर

दिया गया है। आज इस स्नातकोत्तर विभाग में एम०ए० संस्कृत तथा पी०जी० डिप्लोमा इन यौगिक साइंस-पाठ्यक्रम संचालित है। आज यह संस्था आपके ही प्राचार्यत्व में दिनानुदिन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो रही है और भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी अपनी कीर्ति-पताका फहरा रही है।

'आचार्यश्री' ने जहाँ शैक्षिक-कार्य किए, वहाँ सामाजिक कार्यों में भी अभिरुचिपूर्वक प्रदर्शित की है। आप जनपदीय ब्राह्मणसभा (रजि०) के पंचपुरी शाखा के वर्षों अध्यक्ष रहे हैं। आपने राष्ट्रीय सेवा योजना, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार इकाई के अध्यक्ष एवं मन्त्री, जनपद हरिद्वार के जिला स्काउट कमिश्नर, विद्यासभा महाविद्यालय ज्वालापुर के अध्यक्ष, प्रकाशवीर शास्त्री स्मारक समिति ज्वालापुर के मंत्री, विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं एजुकेशनल बोर्डों के परीक्षक, रोटेरैक्ट क्लब हरिद्वार के संरक्षक आदि पदों पर कार्यरत रहकर सामाजिक संस्थाओं की सेवाकर प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

आपने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार की मासिक पत्रिका 'भारतोदय' के सह-सम्पादक के रूप में सन् १९६८ से सन् १९८२ तक कार्य किया। तदुपरान्त सन् १९८२ से अब तक मुख्य संपादक के पद को सुशोभित कर संस्कृत साहित्य-जगत् में अभिवृद्धि कर रहे हैं। यह पत्रिका सन् १९८७ ई० में 'सर्वश्रेष्ठ पत्रिका' के रूप में केरल संस्कृत अकादमी केरल द्वारा तथा सन् १९९८ ई० में दिल्ली संस्कृत अकादमी दिल्ली सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है।

आपकी विशिष्ट उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं-

१. आप शिक्षाक्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान के लिए उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के गठित पैनल के सन् १९७९ से सन् १९८० तक उत्तर प्रदेश शासन द्वारा मनोनीत सदस्य रहे हैं।

२. आपको भारत सरकार द्वारा आयोजित वैदिक सम्मेलन (काँचीपुरम् , सन् १९८५) में, संस्कृत सम्मेलन (कुरुक्षेत्र, सन् १९८६ में, जयपुर सन् १९८७ में, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में सन् १९९२ तथा सन् १९८६ में) विशिष्ट विद्वान् के रूप में आमंत्रित किया गया।

३. भारत सरकार द्वारा सन् १९९८ में संस्कृत के शिक्षक के रूप में विशिष्ट उपलब्धि के लिए आपको राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

४. हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा आयोजित शोध-संगोष्ठियों में आपने अनेक शोध-पत्रों का वाचन किया है और पत्रकारिता सम्मेलन में मुख्य वक्ता के रूप में सम्मानित हुए हैं।

५. आप आकाशवाणी (रेडियो स्टेशन) नजीबाबाद में संस्कृतवार्ता के स्थायी वार्ताकार हैं।

६. आप एन०सी०आर०टी० के पाठ्यक्रम के संशोधन समिति के सदस्य हैं।

७.(क) जैन कवि अमरचन्द सूरि कृत 'बालभारतम् महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन' आपकी यह कृति भारत सरकार के सहयोग से प्रकाशित है।

(ख) अमर चन्दसूरि कृत ''बालभारतम् महाकाव्य की विस्तृत भूमिका एक विवेचन'' इनकी यह कृति भी भारत सरकार के सहयोग से प्रकाशित है।

मैं ऐसे परम श्रद्धेय आचार्यश्री की निरन्तर श्रीवृद्धि एवं दीर्घायुष्य की मंगल-कामना करता हूँ।

***

पता- हिन्दी प्राध्यापक, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

विद्याभास्कर श्री महेन्द्रकुमार सिंघल

-डॉ० गणेशदत्त शर्मा

गाजियाबाद जनपद के पिलखुआ कस्बे में एक निष्ठावान् आर्यसमाजी महाशय मनोहरलाल जी के यहाँ जन्मे श्री महेन्द्रकुमार सिंघल ने वर्ष १९६७ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से "विद्याभास्कर" की उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त आपने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री एवं गुरुकुल झज्जर से व्याकरणाचार्य परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कीं। मेरठ कालिज के संस्थागत छात्र रहते हुए मेरठ विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए० पास करने के उपरान्त महेन्द्रकुमार जी मारवाड़ी इण्टर कालिज पिलखुआ में संस्कृत के अध्यापक हो गये। किन्तु उन्हें शिक्षाक्षेत्र रास नहीं आया और उन्होंने औद्योगिक क्षेत्र में कदम रखा। सिंघल जी ने गुवाहाटी (आसाम) में अपनी फैक्ट्री स्थापित की और वहाँ लगभग ११ वर्ष तक सफलता से व्यापार किया तथा यह साबित करके दिखा दिया कि महाविद्यालय का स्नातक व्याकरणाचार्य व अन्य उच्च शैक्षिक उपाधियाँ प्राप्त करके व्यापार में सफलता प्राप्त कर सकता है। वर्तमान में भारत की राजधानी दिल्ली में सिंघल जी का तिरपाल बनाने व उसके विक्रय करने का व्यापार है।

श्री महेन्द्रकुमार जी की यह विशेषता है कि वह पर्याप्त शिक्षित एवं प्रचुर धनसम्पन्न होकर भी अपने मूल आधार आर्यसमाज व गुरुकुल को कभी नहीं भूले। वे गुवाहाटी में रहते हुए वहाँ के आर्यसमाज से जुड़े रहे और अनेक वर्षों तक उसके प्रधान रहे। उन्होंने सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली में गुवाहाटी का प्रतिनिधित्व किया। वे आर्य केन्द्रीय सभा गाजियाबाद के प्रधान रहे और वर्तमान में आर्यसमाज ब्रजविहार के प्रधान पद को सुशोभित कर रहे हैं। समाजसेवा सिंघल जी के स्वभाव में है, जो कि उन्हें विरासत में मिली है। वे अनेक शिक्षण-संस्थाओं से भी जुड़े रहे हैं। अपनी गुरुकुल शिक्षा से वे अपने को गौरवान्वित समझते हैं और महाविद्यालय के हितचिन्तक हैं।

***

- १०/९८, सेक्टर-३, राजेन्द्र नगर

साहिबाबाद, गाजियाबाद- २०१००५

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।

सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

तृण का आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी-

सज्जनों के घर में इन चार चीजों की कभी कमी नहीं होती।

प्रा० डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे : जीवनवृत्त

नाम	:	प्रा० डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे
जन्म	:	२३ अक्तूबर १९४९, रेणापुर, जि- लातूर (महाराष्ट्र)
शिक्षा	:	गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (हरिद्वार) से विद्याभास्कर, आयुर्वेदभास्कर (बी.ए.एम.एस.), बनारस यूनिवर्सिटी से शास्त्री, मेरठ यूनिवर्सिटी से एम.ए. हिन्दी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद से आयुर्वेदरत्न, यशवन्तराव चव्हाण मुक्त विद्यापीठ, नासिक से बी.एड., विद्यामार्तण्ड आदि ।
कार्यरत	:	जयक्रान्ति कनिष्ठ महाविद्यालय, लातूर में (हिन्दी-संस्कृत) प्राध्यापक के रूप में ।
सामाजिक कार्य	:	महाराष्ट्र कर्नाटक तथा आन्ध्र के करीब ५०० गाँवों में जीवन के २१वें वर्ष से आर्यसमाज का प्रचार प्रसार । पाँच वर्ष तक महाराष्ट्र आर्यप्रतिनिधि सभा में उपदेशक के रूप में प्रचार कार्य । कई गाँवों में आर्यसमाज की स्थापना एवं नौजवानों को आर्यसमाज में दीक्षित किया।

१५ वर्षों तक चिकित्सा कार्य करते हुए निःशुल्क चिकित्सा शिविर, पल्स पोलियो डोस के शिविर, नेत्ररोग शिविर, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा शिविरों का आयोजन ।

सन् १९८५ में राज्यस्तरीय महर्षि दयानन्द बलिदान शताब्दी सम्मेलन के संयोजक के रूप में सफल कार्य । १० हजार लोगों की उपस्थिति में लिए गए इस सम्मेलन में गायत्री महायज्ञ, नेत्ररोग शिविर, दयानन्द चित्रप्रदर्शनी, अन्तर्जातीय विवाहित दम्पतियों का सत्कार आदि नये उपक्रम आयोजित किए गए । स्वयं और परिवार में भाई-बहनों तथा बेटे-बेटियों के जातिविरहित आर्य-परिवारों में विवाह किए । अब तक २५ के करीब गुणकर्म- स्वभावानुसार विवाह कराये ।

पुरोहित के रूप में सैकड़ों संस्कार किए । १९९३ में किल्लारी (लातूर) के भूकम्प में आर्यसमाज के युवा कार्यकर्ताओं के साथ लगातार तीन मास तक राहत का कार्य किया, जिसकी सार्वदेशिक सभा ने भूरि भूरि प्रशंसा की । स्वतंत्रता सेनानी स्व० गोविन्दलालजी बाहेती अभिनन्दन समारोह के संयोजक के रूप में कार्य किया । वैदिक महासम्मेलन २००२ लातूर के संयोजक के रूप में सम्मेलन को सफल बनाया । सन् १९९८ में "हैदराबाद-मुक्ति-संग्राम स्वर्ण-जयन्ती" के संयोजक के रूप में कार्य किया तथा ५० स्वतंत्रता सेनानियों का सत्कार किया ।

डॉ० बालकृष्ण शर्मा (गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा प्रसिद्ध इतिहासज्ञ) के नाम से आर्यसमाज रामनगर में ग्रंथालय की स्थापना की । मुंबई हिन्दी विद्यापीठ मुम्बई के लातूर जिला प्रमुख के रूप में सम्प्रति कार्यरत ।

	अब तक इस केन्द्र से ५०० हिन्दी-स्नातक-निर्माण । प्रत्येक वर्ष हिन्दी दिवस एवं "हैदराबाद-मुक्ति-संग्राम एवं आर्यसत्याग्रह" के कार्यक्रम का आयोजन । इसमें सैकड़ों छात्र निबन्ध, भाषण, लेखन आदि प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं ।
लेखन कार्य :	आर्यसमाज की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में जैसे- आर्यजगत् , सार्वदेशिक, आर्यमर्यादा, राजधर्म, मधुरलोक, आर्यनीति, युगमंथन, लोकमत, संचार, एकमत, आर्यजीवन, आर्यसेवक, वैदिक गर्जना, आर्यसंदेश, दक्षिण समाचार आदि में सैकड़ों लेख प्रकाशित । पुस्तकें : 'अवतार-निर्णय' (मराठी) जिसका १०० स्कूलों में वितरण हो चुका है । "कुछ गीत कुछ संगीत", "संत तुकाराम आणि स्वामी दयानन्दांचा सुधारवाद" (मराठी), "आध्यात्मिक आनंदाचा झरा" (मराठी), "हैदराबाद मुक्तिसंग्राम का इतिहास" (हिन्दी) जो ५५० पृष्ठों का ग्रंथ है (निजाम के शरण आने तथा आर्यों का योगदान), "वेदों में पर्यावरण विज्ञान" (हिन्दी) तथा "वैचारिक मुक्तक और शेर" आदि प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं ।
सत्कार एवं पुरस्कार :	लोक-साहित्य मंच व कर्नाटक हिन्दी प्रचार सभा गुलबर्गा के द्वारा सत्कार, महाराष्ट्र राज्य के शिक्षामंत्री द्वारा मराठवाडा अन्धश्रद्धा निर्मूलन समिति औरंगाबाद की ओर से राज्यस्तरीय कार्य-गौरव पुरस्कार, जिला पुलिस अधीक्षक लातूर के द्वारा सम्मान, कर्नाटक के राज्यपाल श्री टी.एन. चतुर्वेदीजी द्वारा "हैदराबाद मुक्तिसंग्राम का इतिहास" लिखने के उपलक्ष्य में सत्कार । आर्यसमाज सान्ताक्रुज का मेघभाई आर्य साहित्य पुरस्कार २००६-७ ।
आगामी संकल्प :	हैदराबाद सत्याग्रहियों का परिचयात्मक कोश तथा आर्य-सत्याग्रह-वस्तु-संग्रहालय निर्माण का निश्चय है । पिछड़े दलित आदिवासी विभागों में आर्यसमाज के प्रचार हेतु कार्यकर्ताओं की नियुक्ति तथा नि:शुल्क आरोग्य-सेवा उपलब्ध करवाना । आर्यसमाज की पुस्तिकाओं का वितरण । आदिवासी क्षेत्रों में ईसाईकरण की प्रक्रिया को रोकने की योजना । हिन्दी तथा मराठी में वैदिक साहित्य का सृजन तथा वितरण । आर्यसमाज का व्यावहारिक पहलू लोगों के समक्ष प्रस्तुत करने का निश्चय । आर्य-युवकों एवं कार्यकर्ताओं का नागरिक सम्मान कर उन्हें प्रोत्साहित करना आदि ।

प्रेषक

भारतोदय प्रतिष्ठान

सीताराम नगर, लातूर (महाराष्ट्र)

पिन- ४१३५३१, फोन : ०२३८२-२२६०२१

डॉ० कर्णसिंह

भव्य आकृति, गौरवर्ण, कृश शरीर, स्वभाव से मधुर, वाणी से सरल, गम्भीर, भाषाविज्ञान क्षेत्र में ख्याति-प्राप्त विद्वान् , निश्छल- हृदय मित्र, छात्रवर्ग में अपनी कर्तव्यनिष्ठा के लिए विख्यात डॉ० कर्णसिंह मेरठ कालेज के संस्कृत-विभाग के यशस्वी प्राध्यापक हैं। अध्यापक के दायित्व का निर्वाह वे निष्ठा और लगन से करते आये हैं । आत्मविज्ञापन, आत्मप्रशंसा और सस्ती वाहवाही से वे सदा दूर रहते हैं । अबतक, जब-कभी भी, जो भी विषय पढ़ाने के लिए उनको दिया गया, उन्होंने लिया । सदा ही पूरी ईमानदारी से उसके साथ न्याय करना वे अपने अध्यापकीय जीवन का आवश्यक अंग मानते रहे हैं । यही कारण है कि उनके साथी-संगी एवं छात्र उन्हें स्नेह, आदर और प्रशंसा देते रहे हैं ।

डॉ० कर्णसिंह का जन्म सहारनपुर जिला के टोपरी ग्राम में १० नवम्बर, १९३५ को हुआ था । प्राइमरी-शिक्षा इनकी अपने ग्राम में ही हुई । घर की आर्थिक स्थिति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इनको आगे पढ़ाने के लिए होने वाले व्यय को सहन करने की सामर्थ्य इनके पिताजी में नहीं थी । इनको गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रविष्ट कराया गया और प्रवेश के समय दिये जाने वाले अत्यल्प धन के लिए भी ८५ रुपये में घर का एक बैल बेचना पड़ा था । ज्वालापुर भेजने के कुछ दिनों पश्चात् इनके पिताजी का देहावसान हो गया । पिताजी की मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् माताजी का भी निधन हो गया । पितृ-मातृ-विहीन शिशु कर्णसिंह ने साहस से सभी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने अध्ययन-क्रम को आगे बढ़ाया । गु०म०वि० ज्वालापुर की विद्यारत्न परीक्षा १९५० में उत्तीर्ण की । अगले ही वर्ष १९५१ में यू०पी०बोर्ड की हाईस्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । इसके बाद तो स्वावलम्बी बनकर ही उन्होंने इण्टरमीडिएट, बी०ए० और एम०ए० (हिन्दी और संस्कृत में) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । १९६७ में आपने आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की । दो वर्ष बाद १९६१ में आप मेरठ कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए और ३५ वर्ष तक अध्यापन एवं शोध निर्देशन के उपरान्त ३० जून १९९६ को अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए ।

प्रकाशित रचनाएं-

१. कामायनी पर वैदिक साहित्य का प्रभाव (पी-एच०डी० का शोध-प्रबन्ध, दिल्ली, १९७३)

२. भाषा विज्ञान, प्रकाशक साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७५ ।

३. संस्कृत वाग्योगों का विवेचनात्मक अध्ययन ।

४. वैदिक साहित्य का इतिहास ।

५. विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में निर्धारित संस्कृत-ग्रन्थों का आपने सम्पादन किया है और इन पर हिन्दी टीकाएँ लिखी हैं ।

६. बहुत से सम्मानित पत्र और शोधपत्रिकाओं में शोधलेख भी प्रकाशित होते रहे हैं ।

***

गुरुकुल होशंगाबाद के आधारस्तम्भ

आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न

- ब्रह्मचारी नन्दकिशोर

गुरुकुल होशंगाबाद, मध्यप्रदेश की स्थापना १९१२ में हुई थी। आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न १९१५ से १९५० तक गुरुकुल होशंगाबाद के आचार्य रहे। महाविद्वान् युधिष्ठिर मीमांसक जी अपने आत्मपरिचय में लिखते हैं कि मेरा यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार नर्मदा के किनारे १९२० में गुरुकुल होशंगाबाद (म०प्र०) के आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न ने किया था। आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न गुरुकुल म०वि० ज्वालापुर के स्नातक थे। उन्होंने नागपुर, दिल्ली विश्वविद्यालय, विश्वेश्वरानन्द संस्थान, साधु आश्रम होशियारपुर (पंजाब) में विभिन्न पदों पर कार्य किया था।

आचार्य रामचन्द्र विद्यारत्न गोटेगांव, नरसिंहपुर में प्रचार करने गए थे। वे गुरुकुल होशंगाबाद लौट रहे थे तो मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गयी थी। गांववालों ने उन्हें जमीन में गाड़ दिया था। तत्कालीन सभा-प्रधान पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति जी को पता चला तो लाश को जमीन से निकलवाकर वैदिक रीति से अन्त्येष्टि करवाई थी।

***

पता- होशंगाबाद (मध्य प्रदेश)

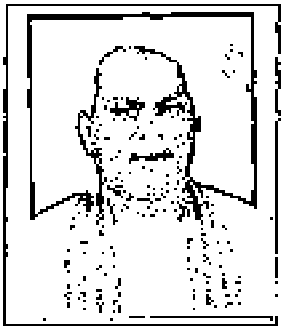

ब्रह्मचारी नन्दकिशोर 'विनीत'

- प्रस्तोता, आर्य गुरुकुल होशंगाबाद

ब्रह्मचारी नन्दकिशोर विद्यावाचस्पति, एम०ए०, एक मनस्वी युवक हैं। आप आर्यसमाज के हनुमान् हैं। सारे भारत में भ्रमण की दृष्टि से आप नारदजी हैं। आज दिल्ली में हैं, तो कल हरिद्वार में, परसों नागपुर में फिर बम्बई में। आप स्वाध्यायशील तथा चिन्तक एवं विचारक भी हैं। आप अहर्निश आर्यसमाज की उन्नति के लिए सोचते रहते हैं। नेपाल में आपने गुरुकुल की स्थापना कर दी। भारत में भी कितने ही स्थानों पर संस्थाओं के संचालन में आप अपना योगदान दे रहे हैं। पं० सत्यकेतुजी विद्यालंकार द्वारा लिखित 'आर्यसमाज के इतिहास' में भी आपने सारे भारत में घूम-घूमकर जो सामग्री डॉ० सत्यकेतुजी को उपलब्ध कराई है, वह आपका ही कार्य है। नेपाली और मराठी साहित्य के प्रकाशन में भी आपने खूब सहयोग किया है। लाला आदित्यप्रकाश आर्य, पानीपत निवासी द्वारा स्थापित 'अनीता आर्य प्रकाशन' भी आप की ही प्रेरणा का फल है।

श्री घूड़मल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट हिण्डौन सिटी राजस्थान द्वारा प्रकाशित 'गौरव ग्रन्थमाला' के आप सुप्रसिद्ध लेखक हैं। आर्ष ग्रन्थों में से आपने आर्यसमाज के दस नियमों पर दस पुस्तक लिखीं हैं। सार्वदेशिक आर्यवीर दल दिल्ली के प्रचारमन्त्री एवं आर्य प्रतिनिधिसभा मध्यप्रदेश विदर्भ के अन्तरङ्ग सदस्य हैं। इसके अतिरिक्त आप कई संस्थानों के न्यासी हैं। वैदिक धर्म प्रचारार्थ आप मॉरिशस, यू०के०, लन्दन, ओमान, जोर्डन, नेपाल, भूटान आदि की यात्राएं की हैं। वैदिक विद्वानों का साहित्य एक हजार भाग (खण्डों) में मुद्रित हो, आर्यसमाज का साहित्य देश-विदेश के विश्वविद्यालयों में शोधार्थियों के लिए उपलब्ध हो, इसके प्रयास में कई वर्षों से आप सतत संलग्न हैं।

***

श्री अमृतपाल शास्त्री, विद्याभास्कर : एक परिचय

श्री अमृतपाल का जन्म पंजाब के करनाल जिला के अन्तर्गत 'अलाहर' गाँव में १५.१०.१९२७ को श्री चौ० प्रभुदयाल जी व श्रीमती शंकरीदेवी काम्बोज दम्पती के कृषक परिवार में हुआ था। गाँव में छठी तक का राजकीय विद्यालय में शिक्षा हुई।

जब गुरुकुल में आने का विचार बना तो रात्रि को गाँव में ही एक गुरु श्री तेजसिंह जी के पास हिन्दी पढ़ने लगे और तीन मास में सामान्य हिन्दी के साथ पूरी सन्ध्या, प्रार्थना के आठ मंत्र भी कण्ठस्थ कर लिए। अपने गोत्रीय बाबा श्री पूज्य पं० केवलराम जी को गुरुकुल मे प्रवेशवार्ता के लिए गुरुकुल में भेजा गया। गुरुकुल के अधिकारियों के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध थे। वे स्वयं भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।

सन् १९३९ हैदराबाद के आर्यसत्याग्रह का वर्ष था। उत्सव की तिथि थी ७ अप्रैल से १० अप्रैल। हम यथा समय गुरुकुल पहुंच गए और अयोग्य होने पर भी बाबाजी की कृपा से प्रविष्ट हो गया। फिर अध्ययन वर्ष में (१९४८ई०) चेचक महारोग ने उन्हें ऐसे आ दबोचा कि १५-२० दिन बेहोश रहे। डाक्टरों के कहने पर हरिद्वार के चिकित्सालय पहुँचे। डाक्टरों, छात्रों, पूज्य अध्यापकों की देखरेख से व निरन्तर सेवा से स्वस्थ तो हो गया, परन्तु अध्ययन की दृष्टि से एक वर्ष व्यर्थ हो गया।

पढ़ाई पुनः आरम्भ हो चली। स्नातक वर्ष (१९५१) मार्च तक व्यवस्थित रहा। श्री डॉ० हरिदत्त जी ने मुझे महाविद्यालय में ही अध्यापन का कार्य करने के लिए प्रेरित किया और कहा कि विद्यासभा ने अनुमति दे दी है, परन्तु मैं ही कुछ कारणवश इसे स्वीकार न कर सका। २५ मार्च १९५१ को अपने वर्ष के छात्रों मे एकाकी शास्त्रिद्वय, प्रभाकर, साहित्यरत्न के साथ गुरुकुल की सम्मानित उपाधि 'विद्याभास्कर' प्राप्त कर घर आ गया। सबसे पूर्व श्री पूज्य स्वा० आत्मानन्द जी ने विरालसी के आचार्य-पद पर नियुक्त किया, परन्तु वहाँ स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण वहाँ से पूज्य आचार्य प्रियव्रत जी गुरुकुल कांगड़ी ने मुझे श्री पं० भगीरथ जी के कहने पर गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ दिल्ली भेज दिया।

इसके बाद १९५२ से १९७२ तक बीस वर्ष विभिन्न उच्च विद्यालयों में हिन्दी-संस्कृत के प्रमुख अध्यापक पदों पर कार्य करता रहा।

तत्पश्चात् संस्कृत-हिन्दी में क्रमशः मेरठ विश्वविद्यालय तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में एम०ए० करके अनेक कालेजो में सेवानिवृत्ति पर्यन्त वरिष्ठ प्राध्यापक पद पर कार्य करता रहा। सेवारत रहते हुए भी आर्यसमाज की सेवा भी निरन्तर करता रहा। अध्यापन काल में मेरे अनेक छात्र सर्वाधिक अंक लेकर उत्तीर्ण होते रहे हैं, इसी कारण मुझे अनेक प्रशंसा पत्र प्राप्त होते रहे। वाद-विवाद, भाषण, कविता, निबन्ध तथा श्लोकोच्चारण, संस्कृत-भाषण में तो मेरे छात्रों का कोई सानी नहीं हो पाता था। यह सब सफलता गुरुकुल की शिक्षा के कारण हो पाई है।

***

प्रेषक- अमृतपाल शास्त्री, जे ३२. से०-१२, नोयडा (गौतमबुद्धनगर)

डॉ० एच०सी० आत्रेय (जीवन-परिचय)

– विवेक त्यागी

स्वतंत्रतासेनानी डॉ० एच०सी० आत्रेय (डॉ० हरिश्चन्द्र आत्रेय) का जन्म रतनगढ़ के एक जमींदार परिवार में १९२१ में हुआ था। आपने गुरुकुलीय शिक्षा हरिद्वार में और मेडिकल शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में प्राप्त की।

आपने १९३९ में निजाम हैदराबाद के गुलबर्गा शहर में सत्याग्रह किया, जिसमें उन्हें १३ महीनें की सजा हुई। डॉ० आत्रेय के पिताजी, माताजी, नानाजी, मामाजी भी स्वतंत्रतासेनानी थे। जब आप १० साल के थे, नानाजी प्रतिदिन शाम को कहीं जाते थे, तब आपके पूछने पर उन्होंने बताया कि वे एक शराब की दुकान पर जाते थे और शराब पीने वालों को शराब पीने से रोकते थे, तब आप भी उनके साथ चले जाते थे। शराब पीने वाले जब उनकी बात नहीं मानते तो वे और आप दुकान के सामने लेट जाते थे और शराब पीने वाले उनके ऊपर से गुजरते थे। ऐसा करने से बहुत से लोगों पर इस बात का गहरा असर पड़ा। ऐसे जीवट और कर्मठ स्वभाव के थे उनके नानाजी।

१९४२ में गांधीजी के 'करो या मरो' के आह्वान के बाद डॉ० आत्रेय ने स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लिया। बनारस से लखनऊ साइकिल से आए और लखनऊ से डाइनामाइट लेकर साइकिल से ही बनारस लौटे और उस डाइनामाइट से वाराणसी में वरुणा नदी का रेलवे ब्रिज उड़ाया गया।

अपने साथियों के साथ शिवपुर का थाना फूंकना और इस तरह के अनेक साहसिक कार्यों में सक्रिय भाग लिया, जैसे उन्होंने रेलवे लाइन के किनारे के टेलीफोन के तार लाइन के उस पार १३६० वोल्ट की बिजली की लाइन से जोड़ दिए, जिससे सरकारी और डाकखानों के असंख्य फोन जल गए।

डॉ० आत्रेय मेरठ मेडिकल कालेज के ब्लड बैंक को रक्त उपलब्ध कराने के लिए बहुत प्रभावी प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। पूछने पर पता चला कि डॉ० आत्रेय स्वयं २७ बार अपना रक्तदान कर चुके हैं।

नेत्रदान के बारे में डॉ० आत्रेय ने १९६८ से सोचना शुरु किया। पर १९७१ में उसकी कुछ रूपरेखा बनी और यह अभियान और आन्दोलन आज तक जारी है।

डॉ० आत्रेय ने लगभग ४००० आंखें मानवता की सेवा में अर्पित की है। अन्य कई सम्बन्धियों के अलावा डॉ. आत्रेय ने अपनी पत्नी की आंखें भी राष्ट्र को समर्पित की हैं। डॉ० आत्रेय अधिकतम आंखें आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट में प्रत्यारोपण के लिए भेजते हैं।

डॉ० आत्रेय को नेत्रदान के विषय में प्राप्त सफलता का मूल्यांकन इसी एक उदाहरण से किया जा सकता है कि सन् १९८४ में एम्स में नेत्र प्रत्यारोपण के १७० आपरेशन हुए। जिसमें ११५ आंखें डॉ० आत्रेय द्वारा संकलित की गई थीं।

चार साल पहले एक एक्सीडेण्ट में डॉ. आत्रेय का सिर, गर्दन तथा कमर की रीढ़ की हड्डी में फैक्चर हो गए थे, जिनके परिणामस्वरूप उनका बांया हाथ हिलने लगा है और हर समय मुँह चलाते रहना उनकी मजबूरी हो गई है, लेकिन उनकी ८२ वर्ष की आयु और शरीर की ये असमर्थता भी डॉ० आत्रेय के नेत्रदान में बाधा नहीं बन सकी।

पिछले महीने धामपुर से नजीबाबाद जाकर प्रसिद्ध समाजसेवी डॉ० आर०एन० केला का इन्यूक्लियेशन डॉ० आत्रेय ने स्वयं किया।

हर साल की तरह इस वर्ष भी नेत्रदान पखवाड़े के अवसर पर डॉ० आत्रेय की नेत्रदान से सम्बन्धित वार्ता नजीबाबाद रेडियो पर प्रसारित हुई । इस वर्ष वार्ता का शीर्षक था 'धर्म और भूगोल की सीमा से मुक्त एक अभियान- नेत्रदान'।

जनवरी १९२२ में जन्मे डॉ० एच०सी० आत्रेय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मेडिकल स्नातक रहे हैं । उन्होंने बचपन का कुछ समय गांधी जी के साबरमती आश्रम में बिताया । वे स्वतंत्रतासेनानी भी हैं । प्रकृतिप्रेमी डॉ० आत्रेय ने अपने को फिलहाल अध्यात्मवाद और परोपकार से जोड़ रखा है । आज भी अपने आई बैंक के प्रति वे पूरी तरह समर्पित हैं । वृद्ध होने के बाद भी उनके उत्साह में कमी नहीं आई है और उनके इस पुनीत कार्य में उनका इकलौता बेटा अरुण आत्रेय एम०एस० भरपूर सहयोग दे रहा है ।

डॉ० आत्रेय को इस बात का गर्व है कि संसार के करोड़ों समर्थ व्यक्तियों के होते हुए भी ईश्वर ने नेत्रदान अभियान चलाने के लिए इन्हें ही क्यों चुना है ।

आयुर्वेद की सर्वमान्य पुस्तक 'चरक-संहिता' के हर चेप्टर के आखिर पेज में उनके शिष्य अग्निवेश ने घोषणा कर रखी है कि 'इत्युवाच भगवान् आत्रेयः' ।

डॉ० आत्रेय ने मीरा के शब्दों में अपनी बात समाप्त की, चाकर राखो जी- ईश्वर ने मुझे दृष्टिहीनों का चाकर बना दिया है और मैं इसे निभाए जा रहा हूँ ।

***

पता- द्वारा डॉ० आर०एन० आत्रेय,

एम०आई०जी० १५ एच०-डब्ल्यू ब्लाक

केशव नगर, कानपुर

> यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
>
> चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
>
> दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
>
> चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः।।
>
> यज्ञ, दान, अध्ययन और तप- ये चार सज्जनों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता- इन चारों का संतलोग अनुसरण करते हैं ।

४ हजार से अधिक अन्धों को आँख देने वाले, आधुनिक ऋषि अश्विनीकुमार

डॉ० हरिश्चन्द्र आत्रेय

वन्दनीय होता है वह दीपक जो बुझने से पहले अपने स्पर्श से दूसरे बुझे हुए दीपकों को ज्योतिर्मय कर दे। इसी दर्शन को आत्मसात् करते हुए अंधत्व निवारण महायज्ञ में अपने को सीमित-साधन, व्यावसायिक पारिवारिक समस्याओं से जूझते अनुपम योगदान करने वाले, नेत्र-कोष-प्रतिष्ठान (आई बैंक) धामपुर, जनपद- बिजनौर के संस्थापक डॉ० एच०सी० आत्रेय प्रतिवर्ष नेत्रहीनों को प्रकाशपुंज देने वाले आदर्श पुरुष हैं।

नेत्रहीनों की वेदना बहुत कम लोग महसूस कर पाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों में नगर के वयोवृद्ध स्वतंत्रता-सेनानी डॉ० एच०सी० आत्रेय हैं, जो १९७१ में धामपुर में 'आई बैंक' की स्थापना कर नेत्रहीनों में ज्योति बांट रहे हैं। उनके समर्पण और सेवा-भावना के इस अभियान में उनको ८० वर्ष की उम्र भी कोई बाधा नहीं है। नेत्रहीनों के लिए डॉ० आत्रेय ईश्वर सरीखे हैं। उनके प्रयास से अब तक लगभग चार हजार नेत्रहीनों को ज्योति मिल चुकी है।

डॉ० आत्रेय के अनुसार उत्तर प्रदेश में एकमात्र आई बैंक धामपुर द्वारा ९८ प्रतिशत आंखें आल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीच्यूट नई दिल्ली को प्रेषित की जाती हैं। डॉ० आत्रेय सर्जन नहीं हैं, परन्तु आँखें प्राप्त करने में उन्हें महारत हासिल है। उनके द्वारा भेजी गई आँखें प्रत्यारोपण की दृष्टि से उच्चकोटि की होती हैं। इस कोटि में धामपुर आई बैंक के अतिरिक्त धौलका (गुजरात), दिल्ली, श्रीलंका, यू०एस०ए० व डेनमार्क हैं।

अंधत्व-निवारण महायज्ञ में अनुपम योगदान में सीमित साधन, व्यावसायिक व पारिवारिक समस्याओं से जूझते डॉ० आत्रेय को एक ८ वर्षीय दृष्टिहीन बालक की पीड़ा ने यह करने पर विवश किया है, जो आज स्टेट बैंक गया (बिहार) में कार्यरत है। इस बालक का नाम उन्होंने गोपनीय रखा है।

जब किसी नेत्रदाता की मृत्यु के बाद नेत्र लेने उसके घर जाना होता है। मृत्यु वाले घर में मचे हा-हा कार के बीच रोते-तड़पते परिजनों को मृतक के पास से हटाकर १०-१५ मिनट एकान्त प्राप्त करना बड़ा दुष्कर कार्य होता है। अपने आत्मसम्मान की धज्जियाँ उड़ाते हुए अपशब्दों को अनसुना करके अपनी मानव सुलभ भावनाओं के उद्गार से अपने कर्तव्य को पूरा करना पड़ता है। किन्तु जिस क्षण नेत्रों की खोई रोशनी लौट आने के बाद नेत्र-प्रत्यारोपित व्यक्ति के उल्लसित अन्तर्मन से जो मूक शुभकामना नेत्रदाता के लिए निकलती है, उसका मूल्य किसी भौतिक वस्तु से नहीं आंका जा सकता।

विश्व में सबसे अधिक ३०० आंखें रोजाना श्रीलंका द्वारा दान में दिया जाता है। डॉ० आत्रेय का कहना है कि अब कुछ निजी अस्पतालों में भी आँखें प्रत्यारोपण का कार्य किया जा रहा है, जहाँ मरीजों को ३५,००० रुपये तक देने पड़ते हैं, परन्तु इस कार्य के बदले उन्हें वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन से केवल टी०ए० और डी०ए० ही मिल पाता है। उन्होंने बताया कि वर्ष २००० में जनवरी से दिसंबर तक ६२ आंखें उनके द्वारा आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट को भेजी गई। आंखें प्राप्त करने के सम्बन्ध में उनका कहना है कि ७५ प्रतिशत आँखें उन्हें जनपद से ही मिल जाती हैं, इसके अतिरिक्त सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, मथुरा आदि जिलों से भी वे आंखें प्राप्त करते हैं। आँखों को ४८ घंटे के भीतर डोनर के बायोडाटा के साथ भेजना होता है तथा नेत्र लगने के बाद मेडिकल इंस्टीट्यूट द्वारा उनके पास यूटीलाइजेशन वार्षिक रिपोर्ट रोगी के मय नाम पते सहित भेजी जाती है।

***

(अमर उजाला से साभार)

श्री वैद्य किशनसिंह, आयुर्वेदाचार्य

- डॉ० देवशर्मा आर्य

श्री वैद्य किशनसिंह का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद मुरादाबाद में परगना ठाकुरद्वारा के अन्तर्गत एक दूरस्थ गाँव सरकड़ा विश्नोई में पिता श्री पृथ्वीसिंह एवं माता श्रीमती गणेशदेवी के घर २३ मार्च सन् १९३१ को हुआ था। अपने पिता के तीन पुत्रों में यह सबसे छोटे थे। जीवन-यापन का प्रमुख आधार कृषि था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में, फिर समीपस्थ गक्खरपुर में और उसके बाद माध्यमिक शिक्षा कांठ (मुरादाबाद) में हुई।

बचपन से ही बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री किशनसिंह की चिकित्सा-व्यवसाय में अभिरुचि थी, तदर्थ निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली के तत्त्वावधान में ऋषिकेश में रहकर आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की। सरल प्रकृति वाले श्री किशनसिंह उदात्त प्रवृत्ति एवं चित्ताकर्षक व्यक्तित्व के स्वामी थे। अत्यन्त मृदु व्यवहार के साथ मनमोहक मुस्कान हर समय उनके गौरवर्ण चेहरे पर खेलती रहती थी। स्वाध्याय व संयम के धनी श्री किशनसिंह जन्म से ही आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित थे और जीवन पर्यन्त महर्षि दयानन्द के पदचिन्हों पर चलने का प्रयास करते रहे। कम आयु में ही उनका विवाह ऊमरी (बिजनौर) के जमींदार मुंशी खेमसिंह की पुत्री इन्द्रावती से हो गया था।

शिक्षा-ग्रहण करने के उपरान्त वैद्य किशनसिंह गाँव में ही चिकित्सा-व्यवसाय प्रारम्भ किया कुछ ही समय में पूरे क्षेत्र में सिद्धहस्त चिकित्सक के रूप में विख्यात हो गए। निरन्तर समाज सुधार से जुड़े कार्यक्रमों में उनकी सक्रिय भागीदारी रही। अपरिहार्य परिस्थितिवश कुछ समय उन्हें मोरना (मुजफ्फरनगर) में नौकरी करनी पड़ी। फिर गाँव में आए और घर को सँभाला। उनको परिवार के रूप में एक पुत्र और चार पुत्रियाँ प्राप्त हुईं। बच्चों की शिक्षा के लिए गाँव में गाँव वालों के सहयोग से जनता पूर्व माध्यमिक विद्यालय की स्थापना की जो आज इण्टर कालिज के रूप में विद्यमान है।

पुत्र देवशर्मा आर्य की शिक्षा के लिए उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को चुना और वहाँ पुत्र प्रवेश के साथ स्वयं भी जुड़ते चले गए। वहाँ आयुर्वेद विभाग में कार्यरत रहे। सेवा-निवृत्ति के उपरान्त भी आचार्य श्री हरिगोपाल शर्मा जी ने उन्हें अपने से अलग नहीं किया और जनसम्पर्क अधिकारी के रूप में उन्हें स्थान दिया। अहर्निश परोपकार के लिए सन्नद्ध श्री वैद्य किशनसिंह ने आजीवन विद्यार्थी बनकर एक शिष्य की भाँति जीवन-यापन किया।

तमाम उप शिक्षण संस्थाओं से जुड़े, अनेकों संस्थाओं से सम्मानित वैद्य किशन ने १६ फरवरी सन् १९९१ को चलते-चलते ब्राह्म मुहूर्त में प्रातः लगभग ५ बजे गुरुकुल में ही चिरनिद्रा को अंगीकार किया। उनके निर्जीव तन में भी परम शान्ति की चिर मुस्कान उनके चेहरे पर विद्यमान थी।

***

पता- गांधी स्मारक इण्टर कालेज
सुरजननगर-जयनगर, मुरादाबाद (उ०प्र०)

महाविद्यालय के प्रसिद्ध वैद्य-स्नातक

– संपादक

वैद्यराज विष्णुदत्त शर्मा

श्री वैद्य विष्णुदत्त शर्मा सुपुत्र वैद्य श्री रामचन्द्र शर्मा जी का जन्म ग्राम पुरकाजी, पो० खास, जिला मु० नगर (उ०प्र०) में सन् १९०३ को हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रसिद्ध गुरुओं के सान्निध्य में हुई। वे स्वतंत्रता-आंदोलन में जेल भी गये। उनको इस त्याग के लिए ताम्रपत्र से पुरस्कृत किया गया था।

उनके पिता श्री स्व० वैद्यराज रामचन्द्र शर्मा जी गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से 'आयुर्वेद भास्कर' परीक्षा उत्तीर्ण कर वहीं के आजीवन सदस्य एवं चिकित्सक रहे। वहीं रहते हुए सन् १९२० में विष्णु आयुर्वेदिक फार्मेसी कनखल की स्थापना कर चिकित्सा एवं फार्मेसी संचालन करते हुए स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कई बार जेल गये। उनका देहान्त सन् १९३७ में हुआ। उसके बाद अपने पिताश्री के उत्तराधिकारी होने के नाते श्री विष्णु आयुर्वेदिक फार्मेसी कनखल का संचालन, चिकित्सा व फार्मेसी का संचालन करते हुए वे भी स्वतंत्रता आन्दोलन में जेल गये। साथ ही गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से स्नातक डिग्री 'आयुर्वेदभास्कर' प्राप्त कर वहीं के आजीवन सदस्य तथा मंत्री आदि उच्च पदों पर आसीन रहे। वे बाल-ब्रह्मचारी, उदारमना, धार्मिक संस्थाओं जैसे ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, सनातन धर्म स्कूल कनखल, के सदस्य, श्री गांधी सेवाश्रम हरिद्वार के कोषाध्यक्ष भी रहे। उनका देहान्त सन् १९९० में ८७ वर्ष की अवस्था में हुआ।

वैद्यराज लल्लू जी

विश्वविख्यात वैद्य श्री लल्लू जी का जन्म १५-११-१९०५ ई० को बहादुरपुर, जिला बिजनौर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। जन्म से ही उन्हें आयुर्वेद के क्षेत्र में विशेष रुचि थी। अत: अपना लक्ष्य पूर्ण करने के लिए अपने पिता श्री किशनलाल जी के साथ कनखल आ गये। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्तकर स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् १९४७ में आदर्श आयुर्वेदिक फार्मेसी की स्थापना माँ गंगा के तट पर दक्ष प्रजापति मंदिर के निकट कनखल में की। यहाँ पर आयुर्वेद की समस्त औषधियों का निर्माण कर मानव-समाज की सेवा की जा रही है। इन्होंने आयुर्वेद की महत्ता एवं गुणवत्ता के कारण देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त की है।

श्री पं० रामावतार शास्त्री विद्याभास्कर

आप ग्राम 'रसनगढ़' जनपद-बिजनौर (उ०प्र०) के मूल निवासी थे। आप गुरुकुल बदायूँ से आकर गुरुकुल ज्वालापुर में प्रविष्ट हुए और वहाँ की सर्वोच्च स्नातकोपाधि 'विद्याभास्कर' सरस्थान प्राप्त की। आप संस्कृत भाषा के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे।

श्री रामावतार शास्त्री विद्याभास्कर मीमांसा तथा वेदान्ताचार्य ने अनेक मौलिक ग्रन्थ लिखे तथा अनेक ग्रन्थों का अनुवाद तथा व्याख्या भी की। उनके मौलिक ग्रन्थ हैं- 'मनुष्य जीवन का लक्ष्य' तथा 'सिद्धान्तसार' आदि।

बोधसार की टीका, पंचदशी की टीका, नारदकृत-भक्तिसूत्र, 'चाणक्य सूत्राणि' तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर वैदुष्यपूर्ण भाष्य आदि आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएं हैं।

आपके अनेक विचारोत्तेजक लेख 'आज' आदि अनेक प्रसिद्ध समाचार पत्रों में छपते रहे हैं। उन्हें सिद्धान्तसार तथा गीता की टीका 'गीता परिशीलन' पर शासकीय पुरस्कार भी मिला। इसके अतिरिक्त गीता परिशीलन के प्रकाशक ने ४०रुपये मासिक की वृत्ति का आजीवन प्रावधान किया। जो उन्हें आजीवन मिलता रहा।

उनका देहावसान १९५८ में ज्येष्ठ मास की गंगा दशहरा के दिन हो गया।

श्री डॉ० बलवीरदत्त शास्त्री

आपका जन्म सन् १९३० ई० में ग्राम प्रह्लादपुर जि० हरिद्वार में श्री पं० दीवानचन्द शर्मा वैद्य के घर हुआ। आपकी शिक्षा गुरुकुल ज्वालापुर में हुई। आप बचपन से ही प्रतिभाशाली छात्र थे। गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन के साथ-साथ आपने लेखन-कला का भी खूब अभ्यास किया। आप अपने जीवन में चिकित्सा के क्षेत्र में आगे बढ़े और अपने पिताश्री की ही भाँति आप सुप्रसिद्ध वैद्य बन ख्याति प्राप्त की।

आपने सन् १९५० में वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री, सन् १९५२ में ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार से बी०आई०एम०एस० की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। सन् १९५२ से १९६२ तक आपने हरिद्वार में ही निजी चिकित्सा का व्यवसाय किया और सन् १९६२ से १९७०, १९७५ से १९८७ तक श्री मस्तनाथ आयुर्वेदिक कालेज अस्थल बोहर रोहतक में चिकित्सालयाध्यक्ष के पद पर रहकर रोगियों की सेवा की। सन् १९७० से १९७५ तक आप गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के आयुर्वेद कालेज में आचार्य एवं चिकित्सालयाध्यक्ष- पद को भी अलंकृत किया। सन् १९७२ में वाराणसी संस्कृत-विश्वविद्यालय से 'साहित्याचार्य' की उपाधि ससम्मान प्राप्त की। सन् १९८७ से सन् १९९५ तक आप कन्या गुरुकुल खानपुर कलां जि० सोनीपत में भी चिकित्सालयाध्यक्ष पद पर कार्य किया।

आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड ज्ञाता हैं, आपने अपने जीवन में असंख्य रोगियों को स्वास्थ्यलाभ पहुंचाया है और समाज की सेवा की है।

आप आयुर्वेद के साथ-साथ संस्कृत के भी उद्‌भट विद्वान् हैं। आपके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं-

१. 'चिकित्सा-दीपिका' भाग- २, बी०ए०एम०एस० पाठ्यक्रम के लिए, २ 'कौमारभृत्य' उपर्युक्त परीक्षा पाठ्यक्रम हेतु। ३ 'सचित्र प्रसूतिशास्त्र, ४. श्री दर्शनानन्द-महाकाव्य (संस्कृत में), ५. हरिश्चन्द्र-महाकाव्य (संस्कृत में), ६. बलिदान-काव्य (संस्कृत में), ७. विवेकानन्द-शतकम् (संस्कृत में) आदि हैं।

आप एक महान् लेखक के साथ-साथ आयुर्वेदशास्त्र तथा संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आप गौड़ ब्राह्मण आयुर्वेदिक कालेज ब्राह्मणवास में भी आयुर्वेद विभागाध्यक्ष रहे हैं।

वैद्य विजयकुमार शास्त्री

डॉ० विजयकुमार शास्त्री का जन्म १८ जुलाई सन् १९३१ को अविभाजित पंजाब के लायलपुर जिले (जो अब पाकिस्तान में है) में चिन्योट के निकट 'चकझुमरा' नामक स्थान में हुआ था। जन्म के २३ दिन पश्चात् ही इनके पूज्य पिताजी का स्वर्गवास हो गया था। परिणामतः इनका पालन-पोषण इनके दादा सुप्रसिद्ध वैद्य महाशय बूड़ीराम जी, माता वैद्या पुष्पावती जी के संरक्षण में हुआ।

बचपन से ही ये शान्त, परिश्रमी, प्रसन्नचित्त तथा चिन्तनशील स्वभाव के थे। डॉ० विजय शास्त्री ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से सन् १९५८ ई० में 'आयुर्वेद-भास्कर' की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और सन् १९६० ई० में आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में रसशास्त्र के प्रोफेसर भी रहे।

---

३. गुरुकुल के आधार-स्तम्भ एवं यशस्वी स्नातक :: 215

डॉ० विजय शास्त्री ने सन् १९६० में एक योगी की प्रेरणा से योगी फार्मेसी हरिद्वार की स्थापना की, जिसका देश में आयुर्वेदीय औषधियों के निर्माण में उच्च स्थान प्राप्त है।

डॉ० विजय शास्त्री ने आजीवन वैदिक-परम्परा का सदैव पालन किया। उनके परिवार में नित्यप्रति यज्ञ का आयोजन किया जाता है।

गुरुकुल ज्वालापुर से उनका आजीवन आत्मिक सम्बन्ध रहा। वे सदा महाविद्यालय ज्वालापुर की तन मन धन से सहायता करते रहते थे। उनके द्वारा किए गए उपकारों को महाविद्यालय कभी भी नहीं भुला सकता है।

डॉ० विजय शास्त्री का निधन ८ अगस्त १९९१ को हुआ।

पं० रुद्रदत्त शर्मा संपादकाचार्य

पं० रुद्रदत्त शर्मा न केवल पत्रकार, अपितु एक उच्च कोटि के साहित्यकार भी थे। पं० रुद्रदत्त शर्मा का जन्म मार्गशीर्ष त्रयोदशी सं० १९११ वि० (१८५४ ई०) को जिला बिजनौर के 'धामपुर' नामक नगर में हुआ था। पं० रुद्रदत्त शर्मा को प्रायः विद्वत्समाज "संपादकाचार्य" के रूप में जानता है। उन्होंने विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाले अखिल भारतीय ख्यातिप्राप्त अनेक पत्रों का बड़ी कुशलतापूर्वक संपादन किया, जैसे- इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), आर्य-विनय (मुरादाबाद), भारतमित्र (कलकत्ता), आर्यमित्र (आगरा), सत्यवादी (हरिद्वार) आदि।

गुरुकुल ज्वालापुर के सुप्रसिद्ध मुखपत्र 'भारतोदय' का भी १९१५-१६ में सफलतापूर्वक संपादन किया। पं० रुद्रदत्त शर्मा की सुप्रसिद्ध कृतियाँ- नौरसिंह दारोगा, जर्मन जासूस, पुराणपरीक्षा, कंठी जनेऊ का विवाह और हिन्दी पत्रों का इतिहास आदि हैं।

पं० पद्मसिंह शर्मा ने श्री पं० रुद्रदत्त संपादकाचार्य की मृत्यु (१७ नवम्बर १९१८ ई०) पर उनके सम्बन्ध में कहा था-

जिए जब तक लिखे खबर नामे।
चल दिए हाथ में कलम थामे।।

श्री पं० रुद्रदत्त जी का पं० पद्मसिंह से साहित्यिक घनिष्ठ-सम्बन्ध था। पत्रकारिता के क्षेत्र में श्री पं. पद्मसिंह शर्मा, श्री रुद्रदत्त जी शर्मा के परम सहयोगी रहे तथा गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से भी उनका सदैव सम्बन्ध बना रहा।

***

> संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है।
>
> (महर्षि दयानन्द)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिकोत्सव पर यज्ञ करते हुए
तत्कालीन प्रधानमंत्री भारत सरकार श्री चन्द्रशेखर जी

संस्था के वार्षिकोत्सव पर दीक्षान्त भाषण करते हुए श्री चन्द्रशेखर जी, प्रधान मन्त्री, भारत सरकार

वार्षिकोत्सव के सुअवसर पर संस्था के पदाधिकारियों के मध्य
मुख्य अतिथि महामहिम वि. सत्यनारायण रेड्डी, राज्यपाल, उ.प्र.

वार्षिकोत्सव पर डा. रामकरण शर्मा (दिल्ली) को अभिनन्दन पत्र भेंट करते हुए
महामहिम श्री बी. सत्यनारायण रेड्डी (राज्यपाल उ.प्र.)

दीक्षान्त समारोह के अवसर पर छात्रों को उपाधि प्रमाण-पत्र प्रदान करते हुए
श्री बलदेव सिंह आर्य खाद्य एवं आपूर्ति मन्त्री श्री डा. श्रुतिकान्त मुख्याधिष्ठाता एवं श्री डा. कपिलदेव द्विवेदी (कुलपति)

माननीय श्री प्रमोद कुमार शर्मा शिक्षा मन्त्री उ. प्र. को सम्मानोपाधि प्रदान करते हुए
श्री डा. कपिलदेव द्विवेदी (कुलपति) बाँये एवं श्री डा. रामकृष्ण शर्मा सहा. शिक्षा सलाहकार भारत सरकार (दाँये)

बाँये से श्री वैद्य किशन सिंह, श्री घनश्याम नौटियाल, माननीय श्री प्रमोद कुमार शर्मा शिक्षा मन्त्री उ.प्र.
एवं श्री डा. रामकृष्ण शर्मा नौटियाल सहा. शिक्षा सलाहकार भारत सरकार

दर्शनानन्द जयन्ती पर पारितोषिक वितरण करते हुए बांये से श्री डा. कपिलदेव द्विवेदी कुलपति,
श्री अरुण कुमार मिश्र, मेलाधिकारी, हरिद्वार एवं श्री नरेन्द्र सिंह चौहान

बाँये से दाँये सर्वश्री डा. रामकृष्ण शर्मा, सहा. शिक्षा सलाहकार, श्री डॉ. वि. वेंकटाचलम्, कुलपति सं.सं.वि.वि.,
श्रीमती वेंकटाचलम्, श्री डा. हरिगोपाल शास्त्री प्राचार्य

वार्षिकोत्सव पर राष्ट्रीयता का संदेश देते स्वामी सत्यमित्रानन्द जी महाराज,
भारत माता मन्दिर हरिद्वार, साथ में बैठे हैं दांये से बाँये सर्वश्री डा. हरिगोपाल शास्त्री प्राचार्य,
श्री पं. हरवंश सिंह वत्स प्रधान सभा, श्री मदन कौशिक विधायक हरिद्वार

वार्षिकोत्सव के सुअवसर पर मंच पर सुशोभित अग्र पंक्ति में बैठे हुए बांये से दांये- सर्वश्री डा. हरिगोपाल शास्त्री (प्राचार्य),
योगेन्द्र सिंह चौहान एडवोकेट (मन्त्रीसभा), श्री हीरा सिंह बिष्ट परिवहन मंत्री उत्तरांचल,
मदन कौशिक (विधायक हरिद्वार), डा. विश्वपाल 'जयन्त' आधुनिक भीम

वार्षिकोत्सव पर उपाधि वितरण करते हुए माननीय श्री अशोक बाजपेयी, शिक्षा मन्त्री उ.प्र.

श्री साधु राम जी, गन्ना एवं चीनी उद्योग मन्त्री, उत्तरांचल को वार्षिकोत्सव पर सम्मानित करते हुए संस्था प्रधान श्री पं. हरवंश सिंह वत्स साथ में खड़े हैं बाँये श्री डा. रामकृष्ण शर्मा, पूर्व सहा. शिक्षा-सलाहकार (भारत सरकार) एवं मध्य में धर्म पत्नी श्री साधुराम जी

वार्षिकोत्सव पर संस्था के वरिष्ठतम स्नातक श्री पं. भूदेव शास्त्री का अभिनन्दन करते हुए
संस्था प्रधान श्री पं. हरवंश सिंह वत्स (बाँये) तथा श्री योगेन्द्र सिंह चौहान एडवोकेट मन्त्री सभा (दाँये)

स्वामी दर्शनानन्द जयन्ती में विजेता क्रीड़ा प्रतियोगियों को पारितोषिक एवं शील्ड वितरित करते हुए
जिला विद्यालय निरीक्षक हरिद्वार श्री बी. एस. मेहता

संस्था के वरिष्ठ स्नातक डा. सच्चिदानन्द शास्त्री का अभिनन्दन करते हुए
संस्थाध्यक्ष पं. हरवंश सिंह वत्स एवं मन्त्रीसभा श्री योगेन्द्र सिंह चौहान

श्री प्रो. रासा सिंह रावत सांसद/ कुलपति, वरिष्ठ स्नातक डा. सच्चिदानन्द शास्त्री का अभिनन्दन करते हुए।

संस्था के वार्षिकोत्सव पर भाषण देते हुए उत्तरांचल के प्रथम मुख्यमंत्री नित्यानन्द स्वामी

वार्षिकोत्सव के सुअवसर पर नव स्नातक पं. हेमन्त तिवारी को
शुभकामनाएं देते हुए श्री साधुराम जी, गन्ना मन्त्री, उत्तरांचल

श्री नन्द किशोर गर्ग प्रसिद्ध उद्योगपति एवं शिक्षाविद् का स्वागत करते हुए
बाँये से श्री योगेन्द्र सिंह चौहान, एडवोकेट, मन्त्रीसभा, श्री राधेश्याम कौशिक, वरिष्ठ उपाध्यक्ष, पं. हरवंश सिंह वत्स, प्रधानसभा, श्री नन्द किशोर गर्ग

संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर बाँये से श्री डा. श्याम सुन्दर दास शास्त्री, श्री डा. के. के. मिश्रा, निदेशक, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान एवं श्री डा. कृष्ण सेमवाल, सचिव, दिल्ली संस्कृत अकादमी

रासेयो की कार्यशाला में विचार व्यक्त करते हुए डा. अजय कौशिक (कुलसचिव)

श्री हरपाल सिंह साथी सांसद का स्वागत करते हुए श्री डा. अजय कौशिक, कुलसचिव

माननीय श्री डा. किशोर उपाध्याय, उद्योग राज्य मन्त्री, उत्तरांचल का अभिनन्दन करते हुए
संस्था के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री राधेश्याम कौशिक

माननीय श्री किशोर उपाध्याय, उद्योग राज्य मन्त्री, उत्तरांचल का अभिनन्दन करते
श्री डा. यशवन्त सिंह, मुख्याधिष्ठाता

आग के गोले से निकलते गुरुकुल के ब्रह्मचारी, निर्देशन दे रहे हैं श्री सत्यवीर आर्य योगाचार्य

मल्लखम्भ पर प्रदर्शन करते गुरुकुल के ब्रह्मचारी, बाँये श्री कीर्तिदेव शर्मा व्यायाम शिक्षक एवं दाँये श्री सत्यवीर आर्य योगाचार्य

आयुर्वेद-भास्कर स्नातकों के मध्य द्वितीय पंक्ति में बैठे हुए सर्वश्री डा. रवीश चन्द्र अग्रवाल, डा. हरिगोपाल शास्त्री, डा. गौरीशंकर आचार्य, श्रीमती प्रसन्नी देवी, जनस्वास्थ्य मन्त्री, हरियाणा, अशोक कुमार शास्त्री, डा. कपिलदेव द्विवेदी, हरिपाल सिंह, एडवोकेट

पाण्डुलिपि विज्ञान प्रशिक्षणार्थियों के मध्य बीच में बैठे हुए
श्री डा. हरिगोपाल शास्त्री, प्राचार्य एवं डा. गौरी शंकर आचार्य, प्रधान सभा

डॉ० देवशर्मा आर्य

नाम- देवशर्मा आर्य

पिता- श्री वैद्य किशनसिंह

माता- श्रीमती इन्द्रावती

जन्म- २-०७-१९६३

जन्मस्थान- सरकड़ा बिश्नोई (मुरादाबाद) उ०प्र०

वर्तमान स्थिति- "देवकुटीर" अफजलगढ़ रोड-जसपुर, ऊधमसिंह नगर (उत्तरांचल)

सम्प्रति- प्रवक्ता-संस्कृत, गांधी स्मारक इण्टर कालेज, सुरजननगर (मुरादाबाद)
अध्यक्ष, साहित्य सिन्धु, साहित्य-विकास समिति, जसपुर (ऊधमसिंह नगर)

सम्पादक- 'मानसी' पत्रिका

शिक्षा- विद्याभास्कर, आयुर्वेदभास्कर (स्वर्णपदक प्राप्त), आयुर्वेदाचार्य, सिद्धान्तशास्त्री, शास्त्री, व्याकरणाचार्य।

प्रकाशित साहित्य- ऋतु (कविता-संग्रह) - एक अधूरा वाक्य।

अप्रकाशित- श्रीमद्भगवद्गीता पद्यानुवाद- कहानियाँ लघु-उपन्यास-गीत संग्रह, गजल संग्रह।

सम्मान- "साहित्य-सरोज", डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन (उत्कृष्ट शिक्षक २००६)
साहित्यिक प्रतिभा के रूप में २६ जनवरी २००५ को क्षेत्रीय विधायक
श्री डॉ० शैलेन्द्र मोहन सिंघल द्वारा नागरिक अभिनन्दन।

***

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥

शूर, विद्वान् और सेवाधर्म को जानने वाले- ये तीन प्रकार के मनुष्य पृथ्वी से सुवर्णरूपी पुष्प का सञ्चय करते हैं।

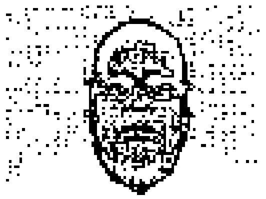

विद्याभास्कर पंडित आत्मानन्दजी शास्त्री

- पं० उमाकान्त उपाध्याय

आर्यसमाज कलकत्ता के विस्तृत कार्यक्षेत्र में पं० आत्मानन्द जी शास्त्री हर समय समर्थ सहयोगी के रूप में समाज-मन्दिर में विद्यमान रहते हैं। पं० आत्मानन्द जी का जन्म उत्कल प्रान्त के बालेश्वर जिले में देहड़दा ग्राम में सन् १९४२ ई० में हुआ था। आपके पिता श्री हरिचरणनाथजी रुद्रज ब्राह्मण-वंशीय अलेख सम्प्रदाय के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने अपने १४ वर्षीय पुत्र को अपने सम्प्रदाय के ख्यातनामा संन्यासी स्वामी रंगाचार्य को सौंप दिया। स्वामी रंगाचार्यजी आत्मानन्दजी को लेकर मेदिनीपुर आए। वहाँ आत्मानन्दजी किशालनी ग्राम के हाईस्कूल में अध्ययन करने लगे। उसी समय स्वामी रंगाचार्य ने 'ईश्वर साकार है या निराकार' विषय पर शास्त्रार्थ का आयोजन कराया। पौराणिक-पंडित मंडली के विरुद्ध स्वामी रंगाचार्य के साथ आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री शास्त्रार्थ करने के लिए पहुँचे। पं० दीनबन्धुजी वेदशास्त्री के शास्त्रार्थ और व्याख्यानों से प्रभावित होकर आत्मानन्द जी आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो गए और आर्यसमाज कलकत्ता आए। उन दिनों आर्यसमाज कलकत्ता के आचार्य पण्डित रमाकान्त जी शास्त्री थे। आचार्य जी ने किशोर आत्मानन्द के गैरिक वस्त्रों को देखकर उनसे परिचय प्राप्त किया और आचार्यजी स्वयं इन्हें पढ़ाने-लिखाने लगे। उस समय आर्यसमाज कलकत्ता के प्रधान महाशय रघुनन्दनलालजी ने आत्मानन्द जी के भोजन आवास की व्यवस्था कर दी। आचार्य रमाकान्तजी आत्मानन्दजी को नित्य संस्कृत और स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों को पढ़ाते थे और इन्हें वैदिक मिशनरी बनाना चाहते थे। आचार्य रमाकान्तजी की सिफारिश पर महाशय रघुनन्दनलालजी और आर्यसमाज कलकत्ता ने आत्मानन्दजी को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में पढ़ने को भेज दिया। गुरुकुल ज्वालापुर में पण्डित लक्ष्मीनारायणजी चतुर्वेदी की विद्वतापूर्ण स्नेहमयी छाया में इन्होंने विद्याभास्कर, शास्त्री और साहित्यरत्न की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

विद्यार्थी जीवन समाप्त कर आत्मानन्दजी कलकत्ता को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर आर्यसमाज में पौरोहित्य कार्य करने लगे। इधर सार्वदेशिक सभा आर्यसमाज के प्रचार के लिए उड़ीसा में कुछ योजना बना रही थी। उसी योजना में आत्मानन्द जी भी सन् १९७३ ई० में सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्यसमाज का प्रचार करने के लिए उड़ीसा चले गए और उड़ीसा के सुदूर अंचलों में आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। आत्मानन्द जी सन् १९७४ ई० में फिर कलकत्ता लौट आए। तबसे कलकत्ता के कई आर्यसमाजों में प्रचार करना, सत्संग कराना, पौरोहित्य करना इनके जीवन का नित्य कार्य है। आत्मानन्दजी युवक, सौम्यमूर्ति, निष्ठावान् मिशनरी के रूप में अकुंठित भाव से इस विशाल नगरी में क्रियाशील हैं।

***

पता- आर्यसमाज कोलकाता

१९ विधान सरणी, कोलकाता- ७००००६

खंड ४

आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

कुछ महापुरुषों के उद्गार

संकलन- डॉ० सविता द्विवेदी

महर्षि दयानन्द के विषय में मेरा मंतव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों व श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, विचार-स्वतंत्रता, सर्व-प्रति प्रेम, कार्य-कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। महर्षि दयानन्द तथा उनकी आर्यसमाज ने प्रजा में नवचेतना पैदा की है। राष्ट्रीय शिक्षण, स्त्री-शिक्षण तथा दलितोद्धार आदि न भुलाई जा सकने जैसी राष्ट्र की महान् सेवा की है। मुझे आर्यसमाज बहुत ही प्रिय है। -राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। हिन्दू-समाज का उद्धार करने में 'आर्यसमाज' का बहुत बड़ा हाथ है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ।

"संगठन कार्य, दृढ़ता, उत्साह और समन्वयात्मकता की दृष्टि से आर्यसमाज की समता कोई समाज नहीं कर सकता।" -नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

स्वामी दयानन्द एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ हैं, जिन्होंने असंख्य मनुष्यों को सत्य का मार्ग बतलाया है। उनके देश तथा देश की जनता पर किए गए उपकार सदैव अमर रहेंगे।

महर्षि वर्तमान अन्धकार-युग के लिए 'वैदिक सूर्य' थे। मैं अपने को उनका अनुयायी कहलाने में गर्व अनुभव करता हूँ। मैं उनके प्रशंसकों में हूँ। - भाई परमानन्द

ऋषि दयानन्द जी ने युवकों के हृदय में त्याग, परोपकार और देशभक्ति की ज्योति जगाई थी। हिन्दू जाति की जो उन्नति दिखाई दे रही है, उसका श्रेय स्वामी जी को ही प्राप्त है। भारतवर्ष के इतिहास में स्वामी जी का नाम महान् सुधारकों की पवित्र श्रेणी में स्वर्ण-अक्षरों में लिखा जाएगा। - क्रान्तिकारी लाला हरदयाल

गांधीजी राष्ट्र के 'पिता' थे। तो महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के 'पितामह' थे। महर्षि जी हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्यप्रवर्तक थे। गांधी जी उन्हीं के पदचिह्नो पर चले।

महर्षि स्वामी दयानन्द ने यह सिद्ध कर दिया कि जगत् की सब संस्कृतियों में सबसे अच्छी संस्कृति आर्यों की संस्कृति है। उन्होंने देश के सामने एक आदर्श रखा।

महर्षि दयानन्द दिव्य महापुरुष थे। उन्होंने ईसाई मत और इस्लाम के हमलों से देश की रक्षा की। आर्यसमाज देश की एकता के लिए कार्य कर रहा है। - अनन्त शयनम् आयंगर

महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था। स्वामी दयानन्द ने वेदों तथा उपनिषदों द्वारा भारत के प्राचीन गौरव को सिद्ध करके बता दिया और संसार को दिखा दिया कि भारतवर्ष दर्शन-शास्त्र तथा आध्यात्मिक विद्या की खान (भण्डार) है।

आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएं हैं और उस महान् पुरुष ऋषि दयानन्द के लिए, जिसका आज आर्य आदर करते हैं, मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है। - महान् समाजसेवी नेत्री ऐनी बेसेन्ट

स्वामी दयानन्द महान् सुधारक और प्रखर क्रान्तिकारी महापुरुष तो थे ही, साथ ही उनके हृदय में सामाजिक अन्यायों को उखाड़ फेंकने की प्रचण्ड अग्नि भी विद्यमान थी।

आध्यात्मिक व्यवस्था, सामाजिक कुरीतियां तथा राजनीतिक दासता देश को जकड़े हुए थी, तब महर्षि दयानन्द ने राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उद्धार का बीड़ा उठाया। सत्य, सामाजिक एकता और एक ईश्वर की आराधना का सन्देश उन्होंने दिया। - स्व० डॉ० एस० राधाकृष्णन् (राष्ट्रपति)

बहुत से लोग महर्षि दयानन्द को सामाजिक और धार्मिक सुधारक कहते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि में तो वे सच्चे राजनैतिक थे। उन्होंने ही इस देश में सर्वप्रथम स्पष्ट घोषणा की कि- 'चाहे कितना भी विदेशी राज्य अच्छा क्यों न हो, तो भी वह अपने स्वराज्य के बराबर नहीं हो सकता।' सारे देश में एक भाषा, खादी, स्वदेश-प्रचार, पंचायतों की स्थापना, दलितोद्धार, राष्ट्रीय और सामाजिक एकता, उत्कट देशाभिमान और स्वराज्य की घोषणा, यह सब महर्षि दयानन्द ने देश को दिया है। वर्तमान कांग्रेस का प्रत्येक अंश भगवान् दयानन्द ने ही बनाया है। - श्री विट्ठल भाई पटेल

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हें ही अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है। इन दोनों की गोद में मैं खेला हूँ। मेरा हृदय और मस्तक दोनों को उन्होंने बनाया है। मेरे गुरु एक महान् स्वतंत्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है। उन्होंने मुझे स्वतंत्रतापूर्वक विचार करना सिखाया। मेरे जीवन का जो हिस्सा अच्छा और लोगों में प्रशंसा योग्य है, वह सब आर्यसमाज की बदौलत है। आर्यसमाज ने मुझे जाति से प्यार करना सिखाया। आर्यसमाज ने मुझे कुर्बानी का मार्ग दिखलाया। आर्यसमाज ने मेरे अन्दर सत्य, धर्म और स्वतंत्रता की रूह फूंकी। आर्यसमाज ने मुझे कुर्बानी का मार्ग दिखलाया। आर्यसमाज ने मेरे अन्दर सत्य, धर्म और स्वतंत्रता की रूह फूंकी। आर्यसमाज ने मुझे संगठन का पाठ पढ़ाया।

आर्यसमाज के उपकार मेरे ऊपर अनगिनत और असीम हैं। अगर मेरा बाल-बाल भी आर्यसमाज पर निछावर हो जाय तो भी मैं उन उपकारों से उऋण नहीं हो सकता। - लाला लाजपतराय

महर्षि दयानन्द के उपदेशों ने करोड़ों लोगों को नवजीवन, नवचेतना और नव-दृष्टिकोण प्रदान किया है।

- पूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

स्वामी दयानन्द स्वाधीनता-संग्राम के सर्व-प्रथम योद्धा, हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्य-समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रहा है। आजादी की लड़ाई में आर्य-समाजियों का बड़ा हाथ रहा है। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दू जाति की रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला ग्रन्थ है।

- महान् क्रान्तिकारी वीर सावरकर

वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अंतिम पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, किन्तु इन बातों का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उन्होंने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुञ्जी प्राप्त की है, जो युगों से बन्द थे और उनसे पटे हुए झरनों का मुख खोल दिया।

- योगिराज अरविन्द घोष

स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं अपना मार्गदर्शक गुरु मानता हूँ। उनके चरणों में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया है। उनकी मुझ पर सदैव कृपा रहती है। स्वामी जी की यह इच्छा थी कि विदेशों में भी वैदिक विचारधारा का प्रचार हो। उन्होंने मुझे विदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रचार करने की प्रेरणा दी। मुझे उस स्वतंत्र विचारक का शिष्य होने में अभिमान है।

- महान् क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा

ऋषि दयानन्द जी के पश्चात् जो सफलता आर्यसमाज को मिली, उसका १/३ श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के पुरुषार्थ व धुन को जाता है। (जनज्ञान, मार्च २००६) - स्वामी श्रद्धानन्द जी

राष्ट्रीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में महाविद्यालय का योगदान

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में गुरुकुल महाविद्यालय कभी पीछे नहीं रहा। सन् १९२१-२२ में महात्मा गाँधी जी के नेतृत्व में जब असहयोग आन्दोलन चला, उस समय भी यह महाविद्यालय आगे आया। विदेशी माल, विशेषतः विदेशी वस्त्र तथा विदेशी पद्धति पर अंग्रेजी शासन की सहायता से चलने वाली शिक्षण-संस्थाओं का भी बहिष्कार किया जा रहा था। नगर-नगर में विदेशी वस्त्रों की होली तो एक सामान्य चीज बन गयी थी। जहाँ-जहाँ देश के नेता जाते थे, उनके सम्मान में पहले से ही होली जलाने के लिए विदेशी वस्तुओं का ढेर तैयार कर लिया जाता था।

विश्वविद्यालयों और कालेजों में ली जाने वाली परीक्षाओं का भी बहिष्कार किया जा रहा था। फरवरी १९२१ में वसन्त पञ्चमी के दिन महाविद्यालय में अध्यापकों और छात्रों की एक सामूहिक सभा की गयी, जिसमें गाँधीजी के आदेश का पालन करने का प्रस्ताव पास करके निश्चय किया कि बनारस की मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाएं महाविद्यालय का कोई छात्र नहीं देगा। इसके साथ ही महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता ने, जो सभा की अध्यक्षता कर रहे थे, यह घोषणा की कि 'मैं अपने शास्त्री, न्याय-व्याकरण-तीर्थ तथा जितनी परीक्षाओं के प्रमाण पत्र मेरे पास हैं, सबको लौटा दूंगा।' इस सूचना के एक सप्ताह पश्चात् ही भारतोदय के अग्रिम अंक में सभी संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों से सरकारी परीक्षाएँ न देने का आग्रह किया गया है। साथ ही छात्रों से यह भी आग्रह किया गया है कि वे स्कूल, कालेजों तथा महाविद्यालयों को छोड़कर ग्रामों में जाकर राष्ट्रीय आन्दोलन चेतना को जागृत करें। इस प्रकार जब तक असहयोग आन्दोलन चलता रहा, महाविद्यालय के अध्यापक और छात्रों ने उसमें अपना पूरा-पूरा सहयोग किया। उस समय की राष्ट्रीय संस्थाओं में गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर का स्थान बहुत ऊँचा रहा।

सक्रिय योगदान

जहाँ तक ग्रामों एवं नगरों में जाकर आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने का प्रश्न है, महाविद्यालय ज्वालापुर के आध्यापक, आचार्य, मुख्याधिष्ठाता, कुलपति प्रभृति विभिन्न पदों पर कार्य करने वाले पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने जो कार्य किया है, वह स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में सदा ही आदर के साथ स्मरण किया जाएगा। श्री शास्त्री जी के कार्य का प्रमुख क्षेत्र देहरादून जिला, गढ़वाल क्षेत्र की टेहरी रियासत और पौड़ी गढ़वाल (उस समय का ब्रिटिश गढ़वाल) रहा। शास्त्रीजी ने कितनी ही बार समस्त गढ़वाल का परिभ्रमण किया और वहाँ की जनता में चेतना जागृत की। देहरादून में उन्होंने उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस कमेटी का महाधिवेशन आयोजित किया, इस महाधिवेशन के अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरु थे। इसमें पं० मोतीलाल नेहरु, लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, जगद्गुरु शंकराचार्य, गोवर्धनपीठाधीश्वर श्री भारती कृष्णतीर्थ प्रभृति, बड़े-बड़े नेताओं ने भाग लिया। इसके स्वागताध्यक्ष श्री नरदेव शास्त्री ही थे। इसी प्रकार आर्य प्रतिनिधि सभा का महाधिवेशन भी उन्होंने देहरादून में आयोजित कराया। इसके स्वागताध्यक्ष भी शास्त्री जी ही बने थे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन भी उन्होंने ही आयोजित कराया था। इसके अध्यक्ष माधवराव सप्रे बने थे और स्वागताध्यक्ष शास्त्री जी रहे थे। जिला कांग्रेस कमेटी, यू०पी० कांग्रेस कमेटी निखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य वे वर्षों तक रहे। जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी वे वर्षों तक रहे। वे देहरादून आन्दोलन के डिक्टेटर भी रहे। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में पाँच बार उन्होंने जेलों की यात्रा की। देहरादून, मुरादाबाद, बरेली, फैजाबाद, रायबरेली और आगरा की जेलों में वे वर्षों रहे। १९५२ से १९५७ तक वे उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के सदस्य भी रहे। इस क्षेत्र के वस्तुतः वे राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों के गुरु थे। वे पूज्य गुरु के रूप में ही सदा पूजे जाते रहे।

पं० शंकरदत्त शर्मा (मुरादाबाद वाले) महाविद्यालय की प्रबन्धकत्री महासभा के कई वर्षों तक मन्त्री रहे। वे भी राष्ट्रीय आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। उन्होंने भी चार बार जेल यात्रा की। प्रथम सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में, द्वितीय १९३० के नमक सत्याग्रह में, तृतीय बार १९४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में और चतुर्थ बार १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में। इस प्रकार पं० शंकरदत्त जी चार बार जेल गये। कुल मिलाकर इनके कारावास की अवधि पं० जवाहरलाल नेहरु से एक मास अधिक रही थी।

पं० उदयवीर शास्त्री का नाम महाविद्यालय के परम यशस्वी स्नातकों में लिया जाता है। वे १९१७ में विद्याभास्कर बने और उसी वर्ष उनकी योग्यता से प्रभावित होकर महाविद्यालय की सभा ने उन्हें प्राध्यापक नियुक्त कर दिया। चार वर्ष तक श्री उदयवीर जी ने बड़ी लगन और परिश्रम से कार्य किया। उनकी योग्यता से आचार्य शुद्धबोध तीर्थ प्रभृति सभी अधिकारी अत्यधिक प्रभावित थे। सन् १९२१ में श्री उदयवीर जी लाहौर के नैशनल कालेज में संस्कृत और दर्शन के प्राध्यापक होकर चले गये। वहाँ उनके यशस्वी छात्रों में सरदार भगतसिंह भी थे। शास्त्री जी ने उन्हें पढ़ाया था। वहाँ रहते हुए क्रान्तिकारी छात्रों एवं अन्य लोगों से शास्त्री जी का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इतना ही नहीं, वर्षों तक शास्त्री जी का निवास लाहौर के क्रान्तिकारियों के लिए आश्रयस्थली रहा है। 'अण्डर ग्राउण्ड' रहकर शास्त्री जी लम्बे समय तक राष्ट्रीय आन्दोलन से सक्रिय रूप में सम्बद्ध रहे हैं। १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भूमिगत रहते हुए उन्होंने प्रचारात्मक ठोस कार्य किया है। उनका कार्यक्षेत्र मुख्यरूप से देहरादून रहा था।

इन ऊपर निर्दिष्ट महानुभावों के अतिरिक्त महाविद्यालय ज्वालापुर के अन्य अध्यापकों एवं छात्रों ने भी प्रशंसनीय कार्य किया है। महाविद्यालय की भूमि में आकर न जाने कितने क्रान्तिकारी शरण पाते रहे हैं। यहाँ से निकले कितने ही स्नातकों ने अपने-अपने क्षेत्र में सक्रिय योगदान दिया है।

***

न स सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।

हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह में महाविद्यालय का योगदान

पृष्ठभूमि

सन् १९३८-३९ की बात है। दक्षिण में 'निजाम हैदराबाद' नाम से प्रसिद्ध मुसलमान शासक द्वारा शासित एक बड़ी रियासत थी, जिसकी ९० प्रतिशत जनसंख्या हिन्दुओं की थी। उस समय के अदूरदर्शी शासक ने हिन्दुओं के ऊपर बहुत से कठोर प्रतिबन्ध लगा रखे थे। इन प्रतिबन्धों का उद्देश्य हिन्दुओं की धार्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता पर अङ्कुश लगाना था। इन प्रतिबन्धों का मुख्य लक्ष्य वहाँ की आर्यजनता थी। पाँच आर्यसमाजी युवकों की हत्या कर दी गयी थी। ४०० आर्यों को रियासत की जेलों में बन्द किया जा चुका था। लगभग ७०० आर्यों पर विविध प्रकार के दोष लगाकर मुकदमें चलाये गये थे। आर्यसमाज का कोई समाचार पत्र रियासत में न आ सकता था और न निकल सकता था। आर्यसमाज के मन्दिरों में कोई उपदेशक राज्य से आज्ञा प्राप्त किये बिना समाज में उपदेश नहीं दे सकता था। अपने निजी मकान में भी आर्यसमाज का कार्य नहीं कर सकता था। जेलों में जेलकर्मचारी हिन्दु कैदियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया करते थे।

इस प्रकार के कुछ और कारण थे। इनके निराकरण के लिए सभी प्रकार की बात-चीत का भी रियासत के अधिकारियों पर जब कोई प्रभाव नहीं हुआ तो विवश होकर देश की शेष आर्यजनता को सत्याग्रह का कार्य अपनाना पड़ा। देश के विविध भागों में बड़ी संख्या में आठ जत्थे आर्यसमाज के बड़े-बड़े नेताओं के नेतृत्व में सत्याग्रह करते हुए राज्य में प्रविष्ट हुए और बन्दी बना लिए गये।

महाविद्यालय ज्वालापुर का योगदान

इस आर्य-सत्याग्रह आन्दोलन में उस समय हमारा निःशुल्क शिक्षा का केन्द्र यह महाविद्यालय किसी भी बड़ी से बड़ी शिक्षण-संस्था से पीछे नहीं रहा। हरिद्वार से दक्षिण में हैदराबाद अति दूर होने के कारण रेलगाड़ी का किराया भी बहुत अधिक बैठता था। महाविद्यालय की आर्थिक स्थिति भी उस समय अच्छी नहीं थी। फिर भी यहाँ के कर्मचारी और बड़े छात्रों ने उस सत्याग्रह-महायज्ञ में अपनी आहुति देने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। अधिकारियों ने विचार किया कि एक वर्ष के लिए महाविद्यालय बन्द करके सभी छात्र और अध्यापक सत्याग्रह में सम्मिलित हों। परन्तु ऊपर से आदेश मिला कि 'सोलह वर्ष से कम की आयु के लोग सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हो सकते। विवश होकर छोटे ब्रह्मचारियों को छोड़ना पड़ा। अध्यापकों और छात्रों का उत्साह दर्शनीय था। महाविद्यालय ने तीन जत्थे अपने यहाँ से सत्याग्रह के लिए भेजे, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

प्रथम जत्था

१९ फरवरी १९३९ को स्वामी विवेकानन्द जी के नेतृत्व में भेजा गया। इसमें श्री भगीरथलाल जी (उपप्रधान, मंत्री सभा), श्री रणवीरसिंह (व्यायाम शिक्षक), पं० कनक सिंह (संरक्षक), श्री हितपाल शास्त्री, श्री कपिलदेव शास्त्री, ब्र० धर्मदेव, ब्र० हरिचन्द्र, ब्र० श्रुतिधर, ब्र० जगदीश, ब्र० सुखपाल, ब्र० धर्मेन्द्र, ब्र० दिनेशचन्द्र, ब्र० महावीर, ब्र० कमलीप्रसाद, ब्र० दयाराम।

द्वितीय जत्था

दूसरा जत्था पं० भूदेव शास्त्री के नेतृत्व में १९ मार्च, १९३९ को गया। इसमें निम्नलिखित व्यक्ति थे-

पं० भूदेव शास्त्री (अध्यापक), ब्र० विजयपाल, ब्र० महेशचन्द्र, ब्र० बलदेव, ब्र० प्रकाशचन्द्र, ब्र० सुदर्शन, ब्र० गोपालदत्त, ब्र० सत्यनारायण, ब्र० प्रेमनाथ, ब्र० नरसिंहदेव और ब्र० चन्द्रभानु।

---

४. आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान

तृतीय जत्था

तीसरा जत्था श्री स्वामी आनन्दतीर्थ जी के नेतृत्व में १५ जून १९३९ को गया। इसमें निम्नलिखित व्यक्ति थे-

श्री स्वामी आनन्दतीर्थ जी (नेता), पं० काशीदत्त शर्मा, पं० आशाराम शर्मा, पं० प्रभुलाल शर्मा, पं० छज्जूसिंह जी, ब्र० धीरेन्द्रकुमार, ब्र० श्रीपाल ब्र० विश्वबन्धु, पं० देवशर्मा शास्त्री, पं० प्रकाशचन्द्र कविराज, ब्र० धर्मेन्द्रनाथ, ब्र० दयानन्द, ब्र० विद्याव्रत।

इनके अतिरिक्त भी कुछ भू०पू० स्नातक मार्ग में सम्मिलित हो गये थे। इस प्रकार महाविद्यालय से सत्याग्रह में सम्मिलित हुए व्यक्तियों की कुल संख्या ७२ थी। तीनों ही जत्थों के सभी सत्याग्रहियों को क्रमशः १३-१३ मास, १८-१८ मास तथा १५-१५ मास का कारावास दण्ड दिया गया।

हैदराबाद के इस आर्य-सत्याग्रह के संचालन में महाविद्यालय के आचार्य पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था।

***

> इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
> अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।
>
> यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ- ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताए गए हैं।

> श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते।
> दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ।।
>
> शुभ कर्मों से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, प्रगल्भता से वह बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमा लेती है और संयम से सुरक्षित रहती है।

गुरुकुल महाविद्यालय का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान

- श्री विद्यासागर शास्त्री

देहरादून तथा सहारनपुर के स्वतंत्रता-आन्दोलन के प्रखर नेता तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति प्रातः-स्मरणीय श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ को नजरबन्द कर लिया। सम्भवतः समय वर्ष १९१८-१९ का था। गुरुकुल का यह काल महाशान्त-प्रशान्त युग था। श्री स्वामी शुद्धबोध जी महाराज आचार्य तथा श्री पं० भीमसेन जी (श्री हरिदत्त जी शास्त्री सप्ततीर्थ के पूज्य पिताजी) का स्वर्णिम काल था।

स्वतंत्रता-आन्दोलन में पूर्ण योगदान, क्रान्तिकारियों का समर्थन, उनकी शरणस्थली की मुख्यता गुरुकुल महाविद्यालय में थी। इसका कारण गुरुकुल सर्वथा भौगोलिक दृष्टि से पूर्ण एकान्त तथा जनसंख्या बढ़ने की आशंका से दूर था।

राजनैतिक कार्यकर्ताओं, क्रान्तिकारी व्यक्तियों, संस्थाओं तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के कर्मियों के लिए गुप्तरूप से निवास की शरणस्थली बन चुका था। इस समय प्रखर जंगल, निर्धन छात्रों का जमाव, पठन-पाठन में तत्पर अध्यापक तथा संन्यासियों का डेरा, समझ सरकार के लिए उपेक्षित तथा ओझल सा था।

एक बंगाली अध्यापक श्री रामानन्द घोष महाविद्यालय में अध्यापक थे। भारतीय इतिहास (भाई परमानन्द जी लिखित जो उस समय जब्त) पढ़ाया जाता था। वे निरन्तर स्वतंत्रता के लिए तथा सरकार-विरोधी भावना छात्रों में भरा करते थे।

उधर क्रान्तिकारी-आन्दोलन भी अपने प्रचण्ड रूप में था। यू०पी० में चन्द्रशेखर आजाद, काकोरी कांड, भगतसिंह आदि की फाँसी तथा बंगाल में क्रान्तिकारिता का बिगुल बज चुका था।

नमक कानून तोड़ने के लिए सदल-बल गान्धीजी दांडी यात्रा पर थे। इसी समय गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल महाविद्यालय के समर्पित कार्यकर्ताओं की एक गुप्त मीटिंग, महाविद्यालय के शान्तिनिकेतन में आयोजित थी। विषय था-स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रसार सहारनपुर तथा समीपस्थ क्षेत्रीय ग्रामीण परिसरों में कैसे किया जावे। समस्त क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया गया।

दांडी यात्रा (नमक कानून तोड़ना) का प्रतीक समस्त भारत में यह हो गया था कि- दो बड़े पत्थर रखकर नीचे आग जलाकर ऊपर पानी का भगोना रखकर उसमें मिट्टी घोलकर आग पर चढ़ा दिया जाता था, बस नमक कानून तोड़ने का प्रतीक था। विशाल भीड़ ऐसे समय एकत्रित रहती है, पुलिस डण्डे मारकर भीड़ को भगाते, मिट्टी सहित भगोना तोड़ते और आग पर पानी डालते।

प्रायः यह हरिद्वार में होता था। हरिद्वार में हर की पौड़ी के आसपास तथा गंगा पार सामने मीलों पक्के घाट बने हैं। आबादी की ओर जहाँ इस समय सुभाष की प्रतिमा लगी है- उस समय नहीं थी। यहीं का प्रसंग है।

गुरुकुल महाविद्यालय के प्रधान श्री रामचन्द्रजी वैद्य कनखल वाले थे। उस समय पंचपुरी में डाक्टर न था, दो प्रसिद्ध वैद्य थे, एक रामचन्द्रजी, दूसरे योगेश्वर जी। हरिद्वार में गंगा के किनारे नमक कानून तोड़ने का प्रबन्ध महाविद्यालय की ओर से था।

श्री रामचन्द्र जी वैद्य नमक कानून तोड़ने वाले थे। महाविद्यालय के समस्त छात्र भी उपस्थित रहे थे। इस क्षेत्र के श्री वैद्य जी कांग्रेस के प्रभावशाली, प्रिय एवं कुशल नेता थे। इसलिए क्षेत्रीय जनसंमर्द (भीड़) भी बहुत थी। प्रातः ९.१० बजे का समय होगा। गंगा के उसी तट पर जहाँ सुभाष-प्रतिमा अब है, यह आयोजन था। हम सब उपस्थित थे। दो पत्थर पर आग जलाई गई, भगोना भरकर आग पर रखा गया। परम्परानुसार मिट्टी घोली गई। बस, नमक कानून टूटना मान लिया

गया । भयंकर जय जयकार घोष चला । फिर क्या था, पुलिस की लाठियाँ बरस उठीं । गंगा तट था, चोट लगे, गंगा में कूदे- यह दृश्य भयंकर और कठोर था ।

सिर से निकले खून से गंगा की धार लाल होती रही । घण्टों यह स्थिति रही । गंगा की लाल धारा का यह लेखक प्रत्यक्ष साक्षी है । श्री वैद्यजी गिरफ्तार हुए । जनता तितर-बितर हुई, इन्कलाब जिन्दाबाद के नारों से हरिद्वार उद्घोषित होता रहा ।

सन् १९३२-३३ में पुलिस ने महाविद्यालय पर ताला लगा दिया । विद्यार्थियों को भगा दिया गया । अधिकारी तथा कर्मचारियों को नजरबन्द रखा गया था ।

याद रखें कि १९३१-३२ के बाद भी गुरुकुल महाविद्यालय, स्थायी या अस्थायी क्रान्तिकारियों का संक्षिप्त निवास तथा शरणस्थली रहा था ।

क्रान्तिकारियों का महाविद्यालय में आगमन, प्रवेश आदि की अद्‌भुत कथा व जानकारी अभी करालकाल के अस्पष्ट तथा उपेक्षित भावना में विलीन हैं, जो पुराने छात्रों, स्नातकों की बुद्धि में अब भी है । प्रातःस्मरणीय, स्वर्गीय श्री नरदेव जी शास्त्री का समस्त क्रान्तिकारियों से निकट सम्पर्क रहा था । पूज्यपाद के ध्वजारोहण के साथ क्रान्तिकारियों के स्वतंत्रता के लिए की गई विचित्र, भयंकर सेवाओं की अनकही कथा, अनन्त काल में विलीन हो गई । महाविद्यालय के प्रत्यक्ष कार्य, तो कुछ दिन प्रत्यक्ष में रहे, पर महाविद्यालय को परोक्ष भावनात्मक चिन्तायुत चिन्तन, क्रान्तिकारियों का गुप्तवास व्यवस्था, भारतीय क्रान्ति को सहयोग आदि की कथा के नायक इस संसार में नहीं रहे ।

देवाश्रम-वास प्रायः श्री नरदेव जी शास्त्री के नियन्त्रण, निरीक्षण तथा स्नेहपूर्ण कृपा पर निर्भर था । उपसंहार में इतना ही समझना पर्याप्त होगा कि- महाविद्यालय के १९२५ से लेकर १९३५ तक का काल राजनैतिक चेतना के लिए भारत में प्रमुख माना जाता था ।

***

पता- ६४, आर्यनगर-अलवर (राजस्थान)

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ।।

आपत्ति के समय के लिए धन बचावे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे ।

शिक्षाक्षेत्र में म०वि० का योगदान

- डॉ० गणेशदत्त शर्मा, पूर्व प्राचार्य, लाला लाजपतराय पी०जी० कालेज, साहिबाबाद

स्वामी दर्शनानन्द और शिक्षा- श्रद्धेय स्वामी दर्शनानन्द जी वेद-वेदांग-पारंगत तथा महान् दार्शनिक होने के साथ-साथ एक महान् शिक्षाविद् भी थे। वह युगद्रष्टा थे। उन्होंने इस तत्त्व का साक्षात् दर्शन कर लिया था कि- "शिक्षा किसी भी राष्ट्र की आधारशिला होती है।" स्वामी जी यह भी जानते थे कि भारत की पराधीनता व उसकी दुर्दशा के अनेक कारणों में एक प्रमुख कारण है- "यहाँ की जनता का सुशिक्षित न होना।" उनकी यह मान्यता थी कि भारत जैसे देश के लिए गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली ही सर्वाधिक उपयुक्त व सफल सिद्ध हो सकती है और उसी के अन्तर्गत देशभक्त व चरित्रवान् नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है।

स्वामी जी का संकल्प- स्वामी दर्शनानन्द जी का यह संकल्प था कि- "गुरुकुल शिक्षा के माध्यम से ऐसे युवा नागरिक तैयार किए जाएं, जो वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता तथा संस्कृत साहित्य व दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ होने के साथ ही देशभक्ति तथा भारतीय संस्कृति के संस्कारों से परिपूर्ण एवं शारीरिक व मानसिक दृष्टि से पूर्णतया स्वस्थ व सशक्त हों।" अपने इस संकल्प की पूर्ति के लिए उन्होंने अनेक गुरुकुलों की स्थापना की, जिनमें पुण्यसलिला भगवती भागीरथी के तट पर स्थापित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का स्थान सर्वोपरि है। वस्तुत: यह गुरुकुल ही स्वामी दर्शनानन्द के संकल्प को साकार करने में सफल हो सका है और आज भी शिक्षा के क्षेत्र में यह गुरुकुल अपनी सशक्त स्थिति, अपनी प्रतिष्ठा व अपनी गरिमा को बनाए हुए है।

शिक्षा क्षेत्र में योगदान- शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के योगदान की विस्तृत चर्चा से पूर्व यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अन्य संस्थाओं की अपेक्षा इसकी दो विशेषताएं सर्वोपरि हैं- नि:शुल्क शिक्षा तथा संस्कृत व संस्कारोन्मुखी शिक्षा।

नि:शुल्क शिक्षा- निर्धनता एवं पराधीनता का दंश झेल रहे भारत की दशा देखकर स्वामी दर्शनानन्द का हृदय द्रवीभूत हो गया था। अत: उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय को नि:शुल्क शिक्षा का केन्द्र घोषित किया, जिसके अन्तर्गत किसी भी छात्र से किसी भी प्रकार का शुल्क लिए बिना ऐसी उत्तम शिक्षा दी जाती थी, जैसी अन्य संस्थाएं पर्याप्त शुल्क लेकर भी नहीं दे सकीं।

संस्कृत एवं संस्कारोन्मुखी शिक्षा- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर आरम्भ से ही संस्कृत विद्या एवं संस्कारोन्मुखी अथवा मूल्य आधारित शिक्षा का महान् स्तम्भ रहा है। संस्कृत के गूढ़ ज्ञान एवं ब्रह्मचर्य के तेज से विभूषित तथा भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित महाविद्यालय के स्नातकों ने समाज व राष्ट्र को सुशिक्षित व संस्कारित तथा जागृत करने में जो योगदान किया उसको कभी भुलाया नहीं जा सकता। महाविद्यालय के इस योगदान की, समय-समय पर यहाँ पधारे भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरु, महामहिम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद व मोरारजी भाई देसाई आदि राष्ट्रीय नेताओं ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

शिक्षाविदों की साधना-स्थली- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, व्याकरण के पूर्व श्रद्धेय आचार्य शुद्धबोधतीर्थजी, पूज्य श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, श्री पं० भीमसेन जी शर्मा, आदरणीय स्वामी आनन्दबोध तीर्थ, सम्पादक-शिरोमणि पं० पद्मसिंह शर्मा, शास्त्रार्थ महारथी पं० गणपति शर्मा, पं० दिलीपदत्त उपाध्याय तथा गुरुवर पं० काशीनाथ शास्त्री आदि महामनीषियों की साधनास्थली रही है, जिन्होंने-कुलपति, उपकुलपति, सम्पादक, आचार्य, मुख्याधिष्ठाता व अध्यापक आदि पदों पर रहते हुए इस संस्था के गौरव को बढ़ाया। यद्यपि ये महानुभाव मूलत: महाविद्यालय के छात्र नहीं रहे, किन्तु इस

तपोभूमि में कार्यरत रहते हुए इन्होंने शिक्षा के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया । इस दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में इनके द्वारा किया गया योगदान भी वस्तुतः गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का ही योगदान कहा जाएगा ।

महाविद्यालय की उपाधियाँ– गुरुकुल महाविद्यालय में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए तपोनिष्ठ गुरुओं के चरणों में शिक्षा प्राप्त करके जाने वाले स्नातकों को जिन उपाधियों से विभूषित किया जाता था, उनका विवरण निम्नवत् है–

विद्याभास्कर– यह उपाधि उन स्नातकों को दी जाती थी जो कि महाविद्यालय की निर्धारित पाठविधि के अनुसार समस्त वेद-वेदाङ्ग, दर्शन, व्याकरण आदि शास्त्रों तथा समस्त साहित्य व काव्यशास्त्र आदि का अध्ययन कर, उनमें आपादमस्तक स्नान कर चुके होते थे । केवल शिक्षा ही नहीं, अपितु उसकी अंगभूत वक्तृत्वकला, भाषणकला, लेखनकला तथा उसके अतिरिक्त पत्रकारिता, राजनीति, समाजोत्थान व धर्मप्रचार आदि के क्षेत्रों में भी यहाँ के विद्याभास्करों की अपनी अलग ही पहचान होती थी । जिन्होंने अपने बहुआयामी व्यक्तित्व से विद्याभास्कर की उपाधि को सार्थक किया । उन प्राचीन स्नातकों में– "विद्याभास्कर आचार्य उदयवीर शास्त्री, डॉ० हरिदत्त शास्त्री, डॉ० सूर्यकान्त, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री वाचस्पति जी शास्त्री, श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री, आचार्य गौरीशंकर जी, पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य सत्यव्रत जी शास्त्री, आचार्य नंदकिशोर जी शास्त्री तथा नारायणमुनिश्चतुर्वेद" आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

विद्याभास्कर से इतर उपाधियाँ– विद्यानिधि, विद्यारत्न तथा विद्याभूषण हैं, जिन्हें महाविद्यालय के वर्तमान प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री के प्रयास से उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, हरियाणा व महाराष्ट्र की सरकारों ने अपने यहाँ के शिक्षा बोर्डों की क्रमशः– इण्टर, हाईस्कूल व मिडिल के समकक्ष मान्यता दे दी है, साथ ही भारत सरकार ने भी केन्द्रीय सेवाओं हेतु महाविद्यालय की उक्त सभी उपाधियों को अर्ह मान लिया है ।

आयुर्वेद-भास्कर– महाविद्यालय के छात्र की प्रतिभा, क्षमता एवं उसकी रुचि के अनुसार अपनी शिक्षा की दिशा का चयन करने की सुविधा एवं तदनुसार ही शिक्षण की व्यवस्था रही है। जो ब्रह्मचारी आयुर्वेद विषय लेकर उसका सांगोपांग अध्ययन करके निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार परीक्षा पास कर लेता था उसे आयुर्वेदभास्कर की उपाधि से अलंकृत किया जाता था।

मेरठ विश्वविद्यालय से मान्यता– सन् १९७४-७५ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का विधिवत् निरीक्षण कराकर मेरठ विश्वविद्यालय ने संस्कृत शिक्षा की केन्द्रभूत इस संस्था को मान्यता एवं सम्बद्धता प्रदान की । तदनुसार महाविद्यालय में एम०ए० (संस्कृत व हिन्दी) की कक्षाएं खोली गईं, जिनका संचालन सुचारु रूप से हुआ । इससे शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ महाविद्यालय का स्तर ऊँचा उठा, वहीं इससे छात्रों ने भी भरपूर लाभ उठाया ।

हेमवतीनंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय गढ़वाल से सम्बद्धता– हरिद्वार के उत्तरांचल राज्य के अन्तर्गत आ जाने से यह प्रयास किया गया कि अब यहाँ से भी मान्यता प्राप्त की जाए । प्रसन्नता का विषय है कि महाविद्यालय के कर्मठ प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री के अथक प्रयत्नों से अपनी इस संस्था को "हेमवतीनन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय" द्वारा संस्कृत एवं योग विषयों में स्नातकोत्तर (एम०ए०) कक्षाएं संचालित करने की मान्यता मिल गई ।

यू०जी०सी० का विकास अनुदान- प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री ने यह सगर्व सूचित किया है कि शिक्षा के क्षेत्र में महाविद्यालय की सेवा तथा इसकी क्षमता-अर्हता व भविष्य की अपेक्षाओं के आधार पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग दिल्ली (यू०जी०सी०) ने गुरुकुल महाविद्यालय को विकास अनुदान हेतु श्रेणी १२-बी में सम्मिलित कर लिया है । वस्तुतः यह एक उपलब्धि है ।

सिद्धान्त-शास्त्री- गुरुकुल महाविद्यालय के संस्थापक श्रद्धेय श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती की योजना एवं उनकी आकांक्षा के अनुरूप वैदिक धर्म प्रचार हेतु मिशनरी पैदा करने तथा विधर्मियों से लोहा लेने हेतु शास्त्रार्थ-महारथी बनाने के प्रयोजन से यहाँ एक उपदेशक विद्यालय भी चलाया जा रहा है, जिसकी स्थापना ओजस्वी वक्ता विद्याभास्कर श्री

प्रकाशवीर शास्त्री की स्मृति को चिरस्थायी बनाए रखने के लिए की गई है। उपदेशक विद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले प्रशिक्षुओं को सिद्धान्तशास्त्री की उपाधि से मण्डित किया जाता है।

शारीरिक शिक्षा-खेल-योगासन- आज के शिक्षा-शास्त्रियों ने छात्र के शारीरिक और मानसिक विकास हेतु शारीरिक शिक्षा-खेल एवं योगासनों को शिक्षा का अनिवार्य अंग घोषित कर दिया है। किन्तु इस तत्त्व का दर्शन महाविद्यालय के संस्थापक एवं इसके संचालकगण अबसे शताब्दी पूर्व ही कर चुके थे। इसीलिए आसन एवं प्राणायाम करना तथा अपनी रुचि का खेल खेलना यहाँ के ब्रह्मचारियों की दैनिकचर्या में अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया गया था।

महाविद्यालय के प्रोडक्ट्स (स्नातकगण)- किसी भी शिक्षण संस्थान के योगदान का मूल्यांकन वहाँ से शिक्षा प्राप्तकर निकले हुए व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हुआ करता है। इस दृष्टि से गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में शिक्षित एवं दीक्षित होकर निकले हुए यहाँ के स्नातकों ने शिक्षा की उन्नति एवं साहित्यश्री की वृद्धि में जो अद्भुत कार्य किए उसका सम्पूर्ण श्रेय अपनी इस मातृ-संस्था को ही जाता है।

उल्लेखनीय है कि महाविद्यालय की पुण्यस्थली में शिक्षित स्नातकगण प्रायः अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी रहे हैं और उन्होंने शिक्षा के अतिरिक्त सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक आदि क्षेत्रों में भी अपना कीर्तिमान बनाया है। किन्तु यहाँ विषय की सीमा के अन्तर्गत केवल उन स्नातकों की शैक्षिक उपलब्धियों की ही चर्चा अपेक्षित है, जिन्होंने यहाँ विधिवत् शिक्षा प्राप्त की, विद्याभास्कर आदि उपाधियाँ ग्रहण कीं और फिर अन्य विश्वविद्यालयों की आचार्य, एम०ए०, पी-एच०डी० आदि उपाधियाँ प्राप्त करके देश-विदेश के महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक, प्रोफेसर, प्राचार्य व कुलपति आदि पदों पर रहकर शिक्षण कार्य किया तथा शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करके महाविद्यालय के गौरव को बढ़ाया।

विद्याभास्कर आचार्य उदयवीर शास्त्री- आप महाविद्यालय के प्राचीनतम एवं श्रेष्ठतम स्नातकों में गिने जाते हैं। आदरणीय उदयवीर शास्त्री जी जुलाई सन् १९१० में महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए। गुरुकुल महाविद्यालय की परीक्षाओं के अतिरिक्त आपने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की वेदान्ताचार्य तथा कलकत्ता की न्यायतीर्थ व सांख्यतीर्थ परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। आपको गोवर्धन पीठ के शंकराचार्य श्री भारतीकृष्णतीर्थ जी ने "शास्त्रशेवधि" और "वेदरत्न" की उपाधियों से सम्मानित किया था। सन् १९२१ में आप "नेशनल कॉलिज लाहौर" में साहित्य एवं दर्शन के प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ आपने महान् क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह व उनके साथियों को पढ़ाया। दीर्घकाल तक आपका क्रान्तिकारियों से सीधा सम्पर्क रहा। आपने उन्हें सभी प्रकार का संरक्षण, सम्पोषण व मार्गदर्शन प्रदान किया। सन् १९२९ में साण्डर्स-वध के पश्चात् जब भगतसिंह व उसके साथी भूमिगत हो गए, तब शास्त्री जी को भी लाहौर छोड़ना पड़ा। उसके बाद लगभग १६ वर्षों तक शास्त्री जी नाहन, देहरादून, हरिद्वार व ऋषिकेश आदि अनेक स्थानों पर घूमते रहे और क्रान्तिकारियों की यथासंभव सहायता करते रहे। इसी दौरान आपने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "सांख्यदर्शन का इतिहास" पूरी की, जिस पर आपको "मंगलाप्रसाद पारितोषिक" आदि अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए। इससे पूर्व भी आप "वाग्भटालंकार" तथा "कौटिल्य अर्थशास्त्र" (हिन्दी अनुवाद) पुस्तकें लिख चुके थे।

सन् १९५१ में आचार्य उदयवीर शास्त्री को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रधानाचार्य पद हेतु आमंत्रित किया गया और वे इस पद पर प्रतिष्ठित हुए। उन्हीं के प्राचार्यत्व में लेखक (डॉ० गणेशदत्त शर्मा) को महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

सन् १९५५ में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी "शार्दूल संस्कृत विद्यापीठ बीकानेर" में प्रधानाचार्य पद पर नियुक्त हुए और सपरिवार वहाँ चले गए। वहाँ से आप १९५८ में सेवानिवृत्त हुए। तत्पश्चात् शास्त्री जी "वैदिक शोध संस्थान, संन्यास-आश्रम गाजियाबाद" में प्रतिष्ठित हुए और फिर शेष जीवन यहीं पर अपनी साहित्य-साधना में बिताया। यहीं पर रहकर आपने

---

१. आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान :: 231

न्याय, वैशेषिक, सांख्ययोग और वेदांत पर विद्योदय भाष्य लिखा। इसके अतिरिक्त सांख्य–सिद्धान्त, वेदान्तदर्शन का इतिहास तथा द एज आफ शंकर आदि ग्रंथों की भी रचना की। यह एक सुखद संयोग ही था कि जब शास्त्री जी गाजियाबाद में थे तभी १९८४ में उच्चशिक्षा आयोग इलाहाबाद से चयन होकर लेखक की नियुक्ति लाजपतराय पोस्टग्रेजुएट कालेज साहिबाबाद के प्राचार्य पद पर हुई और उनके निकट सम्पर्क में रहने का सुअवसर मिला।

उल्लेखनीय है कि सन् १९८६ में राजधानी दिल्ली के "नेशनल म्युजियम" में आयोजित एक विशाल समारोह में आचार्य उदयवीर शास्त्री जी का अभिनन्दन किया गया, जिसमें संस्कृत व प्राच्य विद्या के अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों एवं प्रसिद्ध शिक्षाविदों के अतिरिक्त अनेक राजनेता, केन्द्रीय मंत्री व सांसद उपस्थित थे। उक्त अवसर पर "ऋतम्भरा" नाम से एक बृहदाकार ग्रन्थ का प्रकाशन भी आचार्यजी की स्मृति में किया गया।

डॉ० हरिदत्त शास्त्री– आप वेद व्याकरण दर्शन आदि सकलशास्त्रपारंगत श्री पं० भीमसेन शर्मा जी के सुपुत्र थे। विद्वत्ता, लेखनपटुता, कवित्व एवं वाग्मिता– आचार्य हरिदत्त शास्त्री को आपने विद्वान् पिता से विरासत में मिली थी। आपने महाविद्यालय में अध्ययनरत रहते हुए विद्याभास्कर के अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों की अनेक परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं, जिनमें शास्त्री, व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, आयुर्वेदाचार्य तथा एकादशतीर्थ आदि उल्लेखनीय हैं। आपने आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० तथा पी-एच०डी० उपाधियां प्राप्त की। आप अनेक विद्यालयों/महाविद्यालयों में प्राध्यापक/प्राचार्य रहे। किन्तु आपने अधिकांश समय पहले बी०आर०कालिज आगरा और फिर डी०ए०वी० कालिज कानपुर के पोस्टग्रेजुएट कालिजों में संस्कृत प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा की। आप आगरा विश्वविद्यालय की संस्कृत रिसर्च डिग्री कमेटी व बोर्ड आफ स्टडीज के कन्वीनर रहे। आप अपने समय के संस्कृत जगत् के दिग्गजों में गिने जाते थे।

डॉ० हरिदत्त शास्त्री जन्मजात प्रतिभा के धनी व संस्कृत के आशुकवि थे। पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे विद्वान् एवं महापुरुष आपकी विद्वत्ता एवं प्रतिभा पर मुग्ध थे। आप शास्त्रार्थ–महारथी भी थे। अनेक बार शास्त्रार्थ में आर्यसमाज को विजय दिलायी। आप एक सिद्धहस्त कुशल लेखक थे। आप द्वारा लिखित "न्द्रक्सूक्त संग्रह" आदि पुस्तकें सदैव आगरा, कानपुर, मेरठ आदि विश्वविद्यालयों की एम०ए० परीक्षाओं में निर्धारित रहीं। आपकी अन्य पुस्तकों में खण्डनखण्डखाद्य की आलोचना, परिभाषेन्दुशेखरपरिष्कार, पारस्करगृह्यसूत्रटीका, साहित्यदर्पण (संस्कृत टीका), काव्यमीमांसा (हिन्दी टीका) तथा काशिका, मूल रामायण आदि की आंशिक टीकाएं उल्लेखनीय हैं।

आचार्य हरिदत्त जी यावज्जीवन गुरुकुल महाविद्यालय से सम्बद्ध रहे और यहाँ के आचार्य, मुख्याधिष्ठाता व कुलपति पदों का दायित्व संभाला। महाविद्यालय की विद्याभास्कर उपाधि को अनेक विश्वविद्यालयों से मान्यता दिलाने का श्रेय आपको ही जाता है।

डॉ० सूर्यकान्त– आपने सन् १९१९ में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से विद्याभास्कर की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् पंजाब–शास्त्री व तदुपरान्त पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से संस्कृत में एम०ए० पास की, जिसमें आपने विश्वविद्यालय के अन्तर्गत प्रथम स्थान प्राप्त किया। डॉ० सूर्यकान्त जी संस्कृत में शोध करने के लिए लंदन गए और वहाँ के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डी०फिल्० की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार आपने शिक्षा के क्षेत्र में महाविद्यालय की पताका भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी फहराई।

डॉ० सूर्यकान्त ने गांधीजी के नेतृत्व में सत्याग्रह में भी भाग लिया था। आपने जामिया मिलिया इस्लामिया कालिज दिल्ली, पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर, ओरियण्टल कालेज जालन्धर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में क्रमशः संस्कृत लेक्चरर, रीडर तथा प्रोफेसर व अध्यक्ष पदों पर कार्य किया। विश्वविद्यालय शिक्षा एवं संस्कृत शोध के क्षेत्र में आपके द्वारा महाविद्यालय की बड़ी ख्याति हुई। साहित्यसृजन के क्षेत्र में भी आपका महान्

योगदान है। आपकी रचनाओं में- वैदिक देवशास्त्र, भारतीय धर्म और दर्शन, वैदिक कोष तथा साहित्यमीमांसा आदि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। कुल मिलाकर आपने लगभग ७० पुस्तकें लिखीं। डॉ० सूर्यकान्त महाविद्यालय की सभा के प्रधान भी रहे।

आचार्य सत्यव्रत जी शास्त्री- धामपुर (बिजनौर) की भूमि से उद्भूत आचार्य सत्यव्रत जी ऐसे शिक्षाविदों में अग्रणी थे जो कि महाविद्यालय से विद्याभास्कर करके आजीवन यहीं पर ब्रह्मचारियों को सुशिक्षित एवं संस्कारित करने में लगे रहे। आपने व्याकरण शास्त्री एवं आचार्य आदि परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कीं। आचार्य सत्यव्रत जी पुस्तकाध्ययन के अतिरिक्त विद्यार्थियों के लिए व्यावहारिक शिक्षा एवं चरित्र पर विशेष बल देते थे। आपका स्वयं का जीवन सदाचार से सुवासित था। आप वेद व्याकरण, न्याय आदि के अतिरिक्त वैदिक कर्मकाण्ड के विशेष ज्ञाता थे। आपकी लेखनशैली सरल व सुबोध थी। आपकी रचनाओं में- 'गायत्री संदेश', 'धर्मशिक्षा' तथा 'उपासना विधि' आदि उल्लेखनीय हैं। यह सुखद संयोग था कि लेखक के गुरुकुल शिक्षाकाल में आचार्य सत्यव्रत जी महाविद्यालय के आचार्य थे और लेखक को आपका शुभाशीर्वाद प्राप्त रहा। आप ऐसे शिक्षाविद् थे, जिन्होंने अपने घर-परिवार के सदस्यों को भी शिक्षाविद् बना दिया।

डॉ० गौरीशंकर आचार्य- राजस्थान की वीरभूमि (बीकानेर-भादरा) में जन्मे आचार्य गौरीशंकर जी जन्मजात प्रतिभावान् एवं सन्त प्रकृति के शिक्षाविद् हैं। आपने महाविद्यालय से विद्याभास्कर की उपाधि प्राप्तकर पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से शास्त्री, संस्कृत कालिज बनारस से साहित्यशास्त्री, कलकत्ता से सांख्ययोग तीर्थ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदान्ताचार्य तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० उपाधियाँ प्राप्त कीं। किन्तु आपकी वास्तविक उपाधि है- आपकी दैनिक यौगिक साधना, गायत्री पुरश्चरण एवं ब्रह्मचिन्तन। इसका प्रभाव आपकी सौम्य आकृति व आपके व्यक्तित्व में स्पष्ट झलकता है।

'एक सन्त प्रकृति का व्यक्ति भी राजनीति में सफल एवं प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है' इसके मूर्तरूप हैं- आचार्य गौरीशंकर जी। आप तत्कालीन बीकानेर राज्य में प्रथम शिक्षामंत्री रहे। आप गांधी विद्यामन्दिर सरदार शहर तथा बीकानेर साहित्य सम्मेलन के संस्थापक हैं। आपने श्री गंगानगर में एक स्नातकोत्तर महाविद्यालय की स्थापना में योगदान किया। आप राजस्थान आयुर्वेद विकास बोर्ड, प्राकृतिक चिकित्सा परिषद् तथा राजस्थान गौशाला संघ आदि संस्थाओं के अध्यक्ष व मंत्री रहे। आपने अनेक वर्षों तक महाविद्यालय के सभा प्रधान पद को भी सुशोभित किया।

पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी- बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ० कपिलदेव द्विवेदी जी की जन्मभूमि ग्राम गहमर जिला गाजीपुर (उ०प्र०) है। आपने सन् १९३९ में महाविद्यालय की विद्याभास्कर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, इसके अतिरिक्त आपने पंजाब विश्वविद्यालय तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की शास्त्री व व्याकरणाचार्य परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय से एम०ए० तथा एम०ओ०एल० एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से "अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन" विषय पर डी०फिल्० की उपाधि प्राप्त की। किन्तु डॉ० कपिलदेव जी की सबसे बड़ी उपाधि- "संस्कृत-हिन्दी-उर्दू-पाली-प्राकृत-अपभ्रंश-बंगला-मराठी-गुजराती-पंजाबी आदि भाषाओं पर अधिकार के साथ ही साथ, इंग्लिश-जर्मन-फ्रेंच-रूसी-चीनी भाषाओं का विशेष ज्ञान।" आप केवल नाम के ही द्विवेदी नहीं हैं, आपने सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा सामवेद विद्यार्थी अवस्था में ही सस्वर कंठस्थ किया था, इसीलिए आर्य विद्वानों एवं आपके गुरुजनों ने आपको "द्विवेदी" की गरिमामयी उपाधि से विभूषित किया और इसी कारण समस्त शिक्षा जगत्, साहित्य जगत् व आर्यजगत् आपको द्विवेदी के नाम से ही जानता है।

डॉ० द्विवेदी जी महाविद्यालय के उन प्रतिष्ठित शिक्षाविद् स्नातकों में हैं, जिन्होंने आर्यसमाज के हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लिया और पहले श्री चाँदकरण शारदा तथा फिर महात्मा आनन्द स्वामी जी के नेतृत्व में गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए। छः मास तक निरन्तर जेल यातनाएं सहीं। जेल में भी आपने विद्या एवं ज्ञान की ज्योति को जलाए रखा और वहाँ अनेक ग्रन्थों का अध्ययन व लेखन किया।

आपने पहले "इलाहाबाद विश्वविद्यालय" में संस्कृत प्रवक्ता फिर "गुरुकुल महाविद्यालय" में प्रधानाचार्य और तत्पश्चात् "सेंट एण्ड्रूज कालिज गोरखपुर" में संस्कृत विभागाध्यक्ष पदों पर कार्य किया। तदनन्तर डॉ० कपिलदेव जी "राजकीय स्नातकोत्तर कालिज नैनीताल" में संस्कृत प्रोफेसर, "काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय ज्ञानपुर (भदोही)" में संस्कृत विभागाध्यक्ष व उपाचार्य तथा "राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर" में प्रधानाचार्य पद पर सेवारत रहे और वहीं से आप सन् १९७८ में राजकीय सेवा से निवृत्त तथा संस्कृत साहित्य सेवा में प्रवृत्त हुए। आपने १२ वर्ष तक गुरुकुल महाविद्यालय के कुलपति पद को भी सुशोभित किया।

भारतवर्ष के किसी भी विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाला संस्कृत का कोई भी छात्र, अध्यापक एवं शोधकर्ता डॉ० कपिलदेव जी की निम्नलिखित पुस्तकों से परिचित हुए बिना नहीं रह सकता- "रचनानुवाद व प्रौढ़रचनानुवाद कौमुदी, संस्कृत व्याकरण, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, संस्कृत निबन्धशतकम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तल-उत्तररामचरित-प्रतिमानाटक की हिन्दी टीकाएं।" आपकी "अर्थविज्ञान एवं व्याकरणदर्शन" तथा "भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र" इन दो पुस्तकों ने आपको आधुनिक युग के श्रेष्ठ भाषावैज्ञानिकों की श्रेणी में ला दिया है। ३७ भागों में प्रकाशित आपकी "वेदामृतम् सीरीज" ने तो आपको द्विवेदी से यथार्थ रूप में चतुर्वेदी बना दिया है। आपकी "राष्ट्रगीताञ्जलिः, भक्तिकुसुमाञ्जलिः, शर्मण्याः प्राच्यविदः तथा आत्मविज्ञानम्" काव्य रचनाओं ने आपको संस्कृत महाकवि के महनीय पद पर प्रतिष्ठित कर दिया है।

डॉ० कपिलदेव जी ने संस्कृत एवं वैदिक साहित्य के प्रचार हेतु- इटली, स्विटजरलैण्ड, इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका और कनाडा आदि देशों की यात्राएं भी कीं। उपर्युक्त सेवाओं तथा संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में आपके विशिष्ट योगदान के आधार पर भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने आपको पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया। वस्तुतः साहित्यसृजन एवं संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में डॉ० कपिलदेव द्विवेदी ने अकेले ही इतना कार्य किया है कि जितना अनेक संस्थाएं भी मिलकर नहीं कर पातीं। किन्तु क्या यह सब कुल मिलाकर, परोक्ष रूप से- मूलतः गुरुकुल महाविद्यालय का योगदान नहीं है?

डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह- भारतीय सेना के वीर सैनिक एवं एक सच्चे आर्य तथा लोककवि डॉ० बलदेव सिंह जी के सुपुत्र डॉ० नरेन्द्र सिंह जी महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त ही मैनपुरी के क्रिश्चियन कालिज में अध्यापक हो गए थे। यहीं से आपने पंजाब शास्त्री तथा बी०ए० आदि परीक्षाएं पास कीं और "बलवन्त राजपूत कालिज आगरा" में नियुक्त हो गए। संस्कृत में एम०ए० करने के उपरान्त आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से "इण्डियन एपिक्स" विषय पर शोधकार्य करके डी०फिल्० की उपाधि प्राप्त की। डॉ०एन०डी० सिंह के नाम से शिक्षाक्षेत्र में एवं संस्कृत जगत् में विख्यात डॉ० नरेन्द्रदेव सिंह इतने प्रतिभाशाली थे कि उनकी विद्वत्ता व उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर डॉ० अमरनाथ झा एवं डॉ० जाकिर हुसैन जैसी हस्तियों ने भी उन्हें अपने विश्वविद्यालयों (इलाहाबाद एवं अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) में नियुक्त करने के लिए आमन्त्रित किया था। किन्तु श्रद्धेय डॉ० सिंह भी ऐसे दृढ़-स्वाभिमानी, निरीह एवं मौन साधक थे कि वे कहीं नहीं गए और सारा जीवन बी०आर० कालेज आगरा की सेवा में ही समर्पित कर दिया। वे यहाँ संस्कृत-हिन्दी के प्रोफेसर व अध्यक्ष रहे। उन्होंने इस कालेज में अध्यापन करते हुए अनेक मेधावी छात्रों को ऐसा शिक्षित किया कि उनमें से बहुतों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर-प्राचार्य व कुलपति पदों पर रहते हुए शिक्षाक्षेत्र एवं संस्कृत को गौरवान्वित किया, जिनमें प्रोफेसर अवनीन्द्र कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय (मेरे अग्रिम साथी), डॉ० नत्थन सिंह बड़ौत तथा डॉ० कमलेकर विक्रम विश्वविद्यालय के नाम उल्लेखनीय हैं। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें "वेदान्तसार की टीका" तथा "भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास" उल्लेखनीय हैं।

पं० रामावतार शास्त्री- आपने कुछ समय गुरुकुल बदायूँ में अध्ययन के पश्चात् गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में प्रवेश लिया और यहाँ से विद्याभास्कर हुए। तत्पश्चात् शास्त्रीजी ने कलकत्ता से "मीमांसातीर्थ" और वाराणसी से "मीमांसाचार्य" की परीक्षा उत्तीर्ण की। आप वेदान्तदर्शन के भी पारंगत थे। आपकी अनेक रचनाओं में "पंचदशी की टीका"

तथा "योगसार की टीका" उल्लेखनीय है । पं० रामावतार शास्त्री के समसामयिक विद्वान् स्नातकों में शास्त्रार्थमहारथी श्री देवेन्द्रनाथ शास्त्री, पं० विश्वनाथ शास्त्री पंचानन एवं रत्नगढ़ के निवासी श्री विश्वनाथ शास्त्री गजानन का नाम बड़े आदर से लिया जाता है ।

पं० दिलीपदत्त जी उपाध्याय- शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में महाविद्यालय का नाम रोशन करने वाले विद्वानों में उपाध्याय जी प्रमुख हैं । आपने महाविद्यालय में पं० भीमसेन जी से व्याकरण एवं साहित्य का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया । आरम्भ से ही काव्य-रचना में आपकी विशेष अभिरुचि थी । महर्षि दयानन्द के अद्भुत चरित्र चित्रण के रूप में आपका "मुनिचरितामृतम् " महाकाव्य संस्कृत-शिक्षा-जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध है । आपकी अन्य रचनाओं में संस्कृतालोक, प्रतापचम्पू तथा ऋतुवर्णन उल्लेखनीय हैं । आशुकवि पं० दिलीपदत्त उपाध्याय सच्चे ईश्वर भक्त थे । आप महाविद्यालय में दीर्घकाल तक अध्यापक एवं मुख्याध्यापक के रूप में निःस्वार्थ सेवा करते रहे । योगाभ्यास में आपकी विशेष लगन थी ।

पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र सुमन सुमन जी कुलमाता के ऐसे सपूत थे, जिनके व्यक्तित्व में हम कवि, लेखक, सम्पादक, शिक्षाविद् एवं एक सफल राजनीतिज्ञ के दर्शन कर सकते हैं । आप सन् १९४२ के आन्दोलन में भाग लेने के कारण फिरोजपुर (पंजाब) जेल में बन्दी रहे । वहीं पर आपने "बंदी के गान" की रचना की । आप "आर्यमित्र", "हिन्दी मिलाप" तथा "आर्य" आदि पत्रों के सम्पादक रहे । अनेक शिक्षण-संस्थाओं के संस्थापन में आपने सहयोग किया । आपकी लगभग ५० पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिनमें- "मल्लिका, कारा, हमारा संघर्ष, साहित्य-विवेचन तथा नारी तेरे रूप अनेक" आदि उल्लेखनीय हैं । आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर मेरठ विश्वविद्यालय में शोध हो चुका है । आप मेरठ विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी के सदस्य भी रहे थे । सुमनजी की अर्द्धशती-पूर्ति पर सन् १९६६ में आपकी साहित्यिक व शैक्षिक उपलब्धियों के प्रतीक रूप में "एक व्यक्ति एक संस्था" नाम से एक विशाल अभिनन्दन ग्रन्थ भारत के तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के करकमलों द्वारा आपको भेंट किया गया था ।

सुमनजी को पद्मश्री की उपाधि से भी नवाजा गया । आपके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी- "दस खण्डों में प्रकाश्य "दिवंगत हिन्दीसेवी" नामक महाकोश ग्रन्थ", जिसके प्रथम, द्वितीय खण्डों का विमोचन क्रमशः स्व० प्रधानमंत्री इन्दिरा गान्धी तथा स्व० महामहिम उपराष्ट्रपति पं० शंकरदयाल शर्मा ने किया था । उक्त समारोहों में लेखक को भी सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त रहा ।

श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री- ओजस्विनी एवं मधुमयी वाणी के धनी विद्याभास्कर प्रकाशवीर शास्त्री अपने ऐसे कुलबंधुओं में थे, जिनसे महाविद्यालय को सर्वाधिक गौरव प्राप्त हुआ, संस्कृत-शिक्षा एवं भारतीय संस्कृति की समुन्नति हुई तथा आर्यसमाज व इसके द्वारा संचालित शिक्षण-संस्थाओं तथा गुरुकुलों व पाठशालाओं का पुनरुत्थान हुआ । प्रकाशवीर जी छः वर्ष की अवस्था में गुरुकुल महाविद्यालय में प्रविष्ट हुए और निरन्तर १४ वर्ष तक अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने सन् १९४२ में विद्याभास्कर उपाधि प्राप्त की । भाषणकला प्रकाशवीर जी को ईश्वरीय देन के रूप में प्राप्त हुई थी, जिसका विकास महाविद्यालय की आर्यकिशोर सभा और विद्वत्कला परिषद् के माध्यम से अभ्यास करते-करते इस रूप में हुआ कि वे अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वक्ता के नाते विश्व में विख्यात हुए । शास्त्रीजी का धाराप्रवाह भाषण श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देने वाला होता था । जब वे आर्यसमाज के महामहोपदेशक बने तो सारे भारत के आर्यसमाजों से उनके भाषणों की मांग होती थी । आर्यसमाज के हैदराबाद सत्याग्रह तथा हिन्दी रक्षा आन्दोलनों की सफलता का अधिकांश श्रेय प्रकाशवीर शास्त्री के भाषणों को जाता है, जिन्होंने सारे देश की जनता के हृदय को आन्दोलित कर दिया था, लोगों में नई स्फूर्ति एवं संचेतना उत्पन्न कर दी थी । शास्त्रीजी हैदराबाद में महाविद्यालय से गए जत्थे में शामिल हुए और उन्होंने वहाँ सात मास तक जेल यातनाएं भी भोगीं ।

प्रकाशवीर शास्त्री अपनी वक्तृता, विद्वत्ता एवं प्रखर तथा उज्ज्वल व्यक्तित्व के आधार पर सन् १९५८, १९६२ और १९६७ के आम चुनावों में कांग्रेस के दिग्गज नेताओं को पराजित करके भारत की लोकसभा के सांसद चुने गए। आपने संसद् में भी अपनी पहचान बनाई। संसद् में राष्ट्रहित की बात उठाने में तथा हिन्दी-संस्कृत व शिक्षा की किसी भी समस्या की ओर ध्यान आकर्षित करने में तथा गरीब व किसानों की आवाज सशक्त रूप से बुलन्द करने में प्रकाशवीर शास्त्री सबसे आगे रहते थे। "गुरुकुलों व संस्कृत पाठशालाओं को शासन का अनुदान, विश्वविद्यालयों में संस्कृत की संस्थापना, आकाशवाणी पर संस्कृत समाचार, सरकारी कार्यालयों में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग"- ये सभी प्रकाशवीर शास्त्री की देन कहे जा सकते हैं। निर्दलीय होते हुए भी शास्त्री जी अपने में एक पार्टी थे, एक संस्था थे। पं० जवाहरलाल नेहरू, मोरारजी देसाई, इन्दिरा गाँधी तथा डॉ० राजेन्द्रप्रसाद आदि बड़े से बड़े नेता भी प्रकाशवीर शास्त्री के व्यक्तित्व से प्रभावित थे और उन्हीं के कारण भारत के अधिकांश राष्ट्रनेता अपनी कुलभूमि महाविद्यालय में आये और यहाँ की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अनेक प्रतिनिधिमंडलों के सदस्य के रूप में प्रकाशवीर शास्त्री ने फ्रांस, जर्मनी, रूस, ब्रिटेन, हालैण्ड, स्विटजरलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, यूनान, ईरान, तुर्की, थाइलैण्ड, कम्बोडिया, सिंगापुर, मलयेशिया, ताइवान व इजराइल आदि देशों की यात्रा की। भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में आप अफ्रीका तथा मॉरीशस भी गये। जहाँ भी प्रकाशवीर शास्त्री गए, उनके साथ भारत की संस्कृति गयी, आर्यसमाज गया और गुरुकुल महाविद्यालय का नाम भी गया। गुरुकुल का स्नातक होने के नाते आपकी गुरुकुल शिक्षा-पद्धति और आर्यसमाज के प्रति विशेष भक्ति व अनुरक्ति थी। संसद्वीथी में महर्षि दयानन्द का चित्र लगवाना तथा स्वामी दयानन्द का डाक टिकट जारी करवाना, शास्त्री जी के प्रयास का ही परिणाम था। प्रकाशवीर शास्त्री एक अच्छे लेखक भी थे। "मेरे सपनों का भारत", "गोहत्या या राष्ट्रहत्या" तथा "धधकता कश्मीर" आपकी प्रमुख रचनाएं हैं।

बलजीत शास्त्री- आर्यसिद्धान्तों के प्रखर व्याख्याता, विद्वान् व त्यागी स्वामी ऋतानन्द जी (गृहस्थ नाम पं० ऋषिराम) के सुयोग्य पुत्र श्री बलजीत शास्त्री ने महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त अपने परिश्रम से हाईस्कूल, इण्टरमीडिएट व बी०ए० परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। तत्पश्चात् उ०प्र० प्रशासनिक परीक्षा उत्तीर्ण करके आप जिला सूचना अधिकारी के पद पर नियुक्त हो गए और आजीवन एक कर्मठ व ईमानदार अधिकारी रहे। बलजीत शास्त्री जी आर्यसमाज और गुरुकुल को कभी नहीं भूले। आप केन्द्रीय आर्यसमाज मेरठ के प्रधान रहे। प्रतिदिन "गोसेवा" और "दैनिक यज्ञ" आपके जीवन का अनिवार्य अंग रहा। आपकी सहधर्मचारिणी धर्मपत्नी श्रीमती वेदवती जी कन्या गुरुकुल देहरादून की स्नातिका व संस्कृत की विदुषी थीं। यह एक सुखद संयोग ही था कि लेखक (डॉ० गणेशदत्त शर्मा) तथा वेदवती जी, दोनों ही एम०ए० संस्कृत में एन०ए०एस० कालिज मेरठ में सहपाठी रहे। बाद में वेदवती जी मेरठ के इस्माइल गर्ल्स डिग्री कालिज में संस्कृत प्रवक्ता व विभागाध्यक्ष रहीं।

संस्कृत शिक्षा-प्रचार और विशेषतः गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के पुनरुत्थान में बलजीत शास्त्री की विशेष अभिरुचि थी। जब पति-पत्नी दोनों ही गुरुकुल के स्नातक और शिक्षा के प्रति समर्पित हों तो सन्तति भी पूर्णतः संस्कारित ही होती है। बलजीत शास्त्री इस दृष्टि से एक सौभाग्यशाली व आदर्श पिता थे कि उनके चारों पुत्र (डॉ० अशोक-आनन्द-अजय-अरुण) वैदिक संस्कृति एवं संस्कृत के जन्मजात अनुरागी तथा अपने पिता श्री व मातृदेवता के अनुरूप ही संस्कृत शिक्षाप्रेमी, सदाचारी, कर्मठ, यज्ञप्रेमी तथा अतिथि-सत्कारपरायण हैं। उल्लेखनीय है कि शास्त्रीजी के ज्येष्ठ पुत्र डॉ० अशोक चौहान पहले जर्मनी में थे और वहाँ अपनी कर्मठता के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उद्योगपति व एन०आर०आई० रहे। तत्पश्चात् अपने पिता से वसीयत में प्राप्त शिक्षा-प्रसार के संस्कार उनके मन में जागृत हुए और जब इस क्षेत्र में कदम बढ़ाया तो अब वे भारतवर्ष के सर्वोच्च शिक्षाप्रसारकों में हो गए हैं। डॉ० अशोक चौहान द्वारा अपने पिता-पितामह व माता के नाम से संस्थापित "ऋतानन्द बलदेव फाउण्डेशन" के अन्तर्गत आरोपित छोटा सा पौधा "एमिटी स्कूल" अब एक महावृक्ष बनकर

"एमिटी विश्वविद्यालय" का रूप धारण कर चुका है, जिसमें- साइंस, टेक्नालाजी, मैनेजमेण्ट, शिक्षाशास्त्र, विधिशास्त्र तथा अनेक अन्य आधुनिक/पुरातन विषयों के अध्ययन/अध्यापन तथा शोध की उत्तम व्यवस्था है। एक वाक्य में कहा जाए तो "यह समस्त शिक्षा-विस्तार स्व० बलबीर शास्त्री एवं उनके द्वारा महाविद्यालय में प्राप्त गुरुकुल-शिक्षा की ही देन है।" उल्लेखनीय है कि डॉ० अशोक चौहान की धर्मपत्नी श्रीमती अमिता चौहान भी संस्कृत की स्कालर हैं और संस्कृत के महान् विद्वान् स्व० शिवराज शास्त्री की सुपुत्री हैं। यह सर्वविदित है कि डॉ० अशोक सम्प्रति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलाधिपति पद पर आसीन हैं और महाविद्यालय की उन्नति में सदैव अपना योगदान करते रहते हैं।

वाचस्पति जी शास्त्री– आप महाविद्यालय के उन स्नातकों में अग्रणी हैं, जिन्होंने भारत के प्रत्येक शहर व गाँव में घूम-घूमकर वैदिक धर्म व संस्कृत-शिक्षा का प्रचार प्रसार किया। आपकी वाणी में अद्भुत ओज था। यज्ञादि कर्मकाण्ड में आपकी विशेष प्रवीणता थी। सन् १९६२ में चीन के आक्रमण के समय वारणावत (बरनावा) में लाक्षागृह (लाखाटीला) पर ब्रह्मचारी कृष्णदत्त द्वारा राष्ट्रविजय के लिए आयोजित यज्ञ के आप ब्रह्मा रहे हैं। उस समय लेखक को भी सामवेदपाठी के नाते आपके सान्निध्य में रहने का सुअवसर मिला था। उल्लेखनीय है कि लेखक का विवाह संस्कार भी सन् १९६३ में श्री पं० वाचस्पति जी शास्त्री ने ही कराया था।

ओम्प्रकाश शास्त्री– महाविद्यालय के ओजस्वी स्नातक, शास्त्रार्थ-महारथी श्री ओम्प्रकाश शास्त्री जी (खतौली) को आर्यजगत् एवं शिक्षा-जगत् का कौन व्यक्ति नहीं जानता ? संस्कृत की विद्वत्ता एवं विलक्षण वक्तृता के साथ-साथ आपकी तर्कप्रवीणता गजब की थी। स्वामी दर्शनानन्द जी की शैली पर ही आप वैदिक-सिद्धान्तों का सटीक प्रतिपादन किया करते थे। जहाँ कहीं सिद्धान्तों पर विवाद की बात हो या आर्यसमाज के साथ विधर्मियों के शास्त्रार्थ की बात हो, वहाँ सर्वत्र ओम्प्रकाश शास्त्री को याद किया जाता है।

डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री– महाविद्यालय के उन प्रतिष्ठित स्नातकों में श्री सच्चिदानन्द शास्त्री का नाम आदर से लिया जाता है जो कि स्वतंत्रता-सेनानी व हैदराबाद-सत्याग्रही रहे। आपके बड़े भाई ब्रह्मचारी दयानन्द भी महाविद्यालय के छात्र थे और यहाँ से तीसरे जत्थे में सत्याग्रही होकर हैदराबाद गए। गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए। वे जेल में बीमार पड़े। बाद में उनकी मृत्यु भी हो गई।

डॉ० सच्चिदानन्द जी आर्यसमाज के महोपदेशक रहे। विद्याभास्कर के बाद आपने एम०ए०, पी-एच०डी० की उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। आप सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के मन्त्री रहे। आर्यमित्र (लखनऊ) तथा सार्वदेशिक (दिल्ली) के सम्पादन में भी आपका योगदान रहा। आप महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता तथा सभा के अन्तरंग सदस्य भी रहे। अनेक शिक्षणालयों के संचालन में आपका योगदान रहा। आपने अनेक पुस्तकें भी लिखी हैं। आज भी आप महाविद्यालय के उत्थान की चिन्ता में लगे रहते हैं।

श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री– आपने महाविद्यालय की विद्याभास्कर उपाधि प्राप्त करके एम०ए० तथा वेदान्ताचार्य परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। आप दीर्घकाल तक महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता व आचार्य पदों पर कार्य करते हुए महाविद्यालय की प्रगति में सदैव सहयोगी रहे। आप अपने युग के प्रसिद्ध शिक्षाविदों में गिने जाते थे। आपकी न्यायकुसुमांजली, तर्कभाषा-सार, महाभाष्य (पस्पशाह्निक) तथा सर्वदर्शनसंग्रह-टीका आदि रचनाएं प्रसिद्ध हैं।

नारायणमुनिश्चतुर्वेद– आपका गृहस्थ नाम आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी था। विद्याभास्कर के अतिरिक्त आपने एम०ए० और साहित्याचार्य परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कीं। पहले आपने कुछ समय अनेक शिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन कार्य किया और फिर गुरुकुल महाविद्यालय के प्राचार्य का पदभार संभाला। आपने अल्पतम दक्षिणा स्वीकार करते हुए सारा जीवन महाविद्यालय की सेवा में अर्पित कर दिया। आपने अनेक शिक्षाविदों को पैदा किया। आप उद्भटवक्ता, कुशल लेखक एवं

आशुकवि थे। आपकी अनेक रचनाओं में- "स्तुतिशतकम्, मुक्तकशतकम्, श्रुतिसुधा, यज्ञप्रसार तथा प्रकाशवीर शास्त्री यशः-प्रशस्ति एवं सांस्कृतिक विचार" आदि रचनाएं उल्लेखनीय हैं।

श्री पं० छेदीप्रसाद जी व्याकरणाचार्य- शिक्षाविदों के जन्मदाताओं की इस कड़ी में आपका नाम नहीं भुलाया जा सकता। आप व्याकरणशास्त्र के धुरंधर व शान्तमूर्ति थे। आपने कभी ग्रन्थ में देखकर नहीं पढ़ाया। महाकवि हर्ष की- "अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी" इस उक्ति के अनुसार समग्र व्याकरणशास्त्र आपकी जिह्वा पर था। आजीवन महाविद्यालय में रहते हुए आपने थोड़े से वेतन में शिक्षा-दान की मौन साधना की। आचार्य छेदीप्रसाद जी सौम्य मूर्ति थे। आप बिहार में जिला छपरा ग्राम भभुआ के निवासी थे। पढ़ाते समय आपका यह सम्बोधन आज भी कर्णकुहरों में गूँजता है- "हा, हो, ब्रह्मचारी! तो देखा! महाभाष्य के अमुक पृष्ठ पर अमुक सूत्र की व्याख्या में महर्षि पतञ्जलि ने यह लिखा है।"

वैद्यराज पं० हरिशंकर जी शास्त्री- महाविद्यालय की शिक्षा के पश्चात् आपने शास्त्री तथा काव्यतीर्थ परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। आयुर्वेद में आपकी विशेष रुचि थी। पीलीभीत आयुर्वेदिक कालिज से आपने आयुर्वेद की उच्चशिक्षा प्राप्त की। आयुर्वेद की शिक्षा एवं औषध-निर्माण व चिकित्सा के क्षेत्र में आपका विशेष योगदान है। वैद्य हरिशंकर जी लगातार बीस वर्ष तक महाविद्यालय सभा के प्रधान रहे और आयुर्वेद-भास्कर की मान्यता तथा भवन-निर्माण आदि अनेक कार्यों द्वारा महाविद्यालय की प्रगति में योगदान किया। आप पीयूषपाणि वैद्य कहे जाते थे। आपकी ख्याति दूर-दूर तक थी। मेरठ में आपका चिकित्सालय था।

डॉ० चन्द्रभानु अकिंचन- चुड़ियाला (सहारनपुर) की भूमि में जन्मे अकिंचन जी पर कालिदास की- "अकिंचनः सन् प्रभवः सः सम्पदाम्" वाली उक्ति चरितार्थ होती है, जिनका नाम ही अकिंचन था, किन्तु वे वक्तृत्व, कवित्व व लेखन आदि की प्रतिभाओं के धनी थे। महाविद्यालय की शिक्षा के पश्चात् आपने एम०ए० (संस्कृत) मेरठ कालिज से किया। पी-एच०डी० डॉ० सूर्यकान्त जी के निर्देशन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से की। आप दीर्घकाल तक एन०ए०एस० कालिज मेरठ में रीडर व संस्कृत विभागाध्यक्ष रहे। फिर महाविद्यालय में पोस्टग्रेजुएट कालिज के प्रिंसिपल बने और अन्ततः गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलसचिव पद से सेवानिवृत्त हुए। आप सहृदय एवं रसिक कवि थे। आपकी "काला तन" कविता बहुत प्रसिद्ध हुई, जिसके बोल थे-

"तुम कहते मेरा तन काला, यह मानव बड़ा भला होता है, होता जिसका तन काला।"

श्री भूदेव शास्त्री- आपने से पूर्व की पीढ़ी के स्नातकों की श्रेणी में भ्राताश्री पं० भूदेव शास्त्री अग्रणी हैं। आप डी०ए०वी० कालिज अम्बाला में अध्यापक रहे। आप पुराने जमाने के व्याकरणाचार्य हैं। संस्कृत के गूढ़ विद्वान्, उत्तम वक्ता तथा कुशल लेखक हैं। महाविद्यालय से आप निरन्तर जुड़े रहे हैं। अब भी आप अपनी इस संस्था की उन्नति के लिए सदा यत्नशील रहते हैं। सम्प्रति आपका निवास देहरादून में है।

डॉ० श्रुतिकान्त जी- आप महाविद्यालय के प्रतिभाशाली स्नातकों में गिने जाते हैं। महाविद्यालय से विद्याभास्कर होने के पश्चात् आपने पंजाब शास्त्री, एम०ए० हिन्दी-संस्कृत, तथा पी-एच०डी० उपाधियाँ प्राप्त कीं। अपनी शिक्षा पूर्ण करके आप कुछ समय देहरादून में शिक्षण-कार्य के पश्चात् दस वर्ष तक हिन्दू कालिज मुरादाबाद और तत्पश्चात् निरन्तर २४ वर्षों तक पंजाब सरकार के शिक्षा-विभाग में हिन्दी प्रवक्ता पद कार्यरत रहे। आपकी रचनाओं में- "साहित्य-विमर्श, आधुनिक हिन्दी-व्याकरण तथा रचना, हिन्दी साहित्य और उसके अंग तथा भारतीय देवभावना और मध्यकालीन हिन्दी साहित्य" आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ० श्रुतिकान्त जी व उनके परिवार का लम्बे समय से महाविद्यालय से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहा है। आप यहाँ के मुख्याधिष्ठाता भी रहे और अब भी महाविद्यालय की उन्नति में सतत योगदान करते रहते हैं।

डॉ० चन्द्रशेखर शास्त्री– महाविद्यालय की विद्याभास्कर के साथ ही आपने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री एवं सांख्ययोगाचार्य परीक्षाएं पास कीं। संस्कृत में एम०ए०, पी-एच०डी० भी किया। भ्राताश्री डॉ० चन्द्रशेखर जी डी०ए०वी० कालिज करनाल (हरियाणा) में संस्कृत प्रवक्ता व विभागाध्यक्ष रहे। सांख्ययोग पर आपका विशेष अध्ययन था और इसी विषय पर आपने अपना शोधग्रन्थ भी लिखा। दार्शनिक चिन्तन एवं साधना में आपकी विशेष रुचि रही।

डॉ० चन्द्रप्रकाश त्यागी– महाविद्यालय की शिक्षा पूर्ण करके आपने शिवाला घाट (वाराणसी) में रहते हुए एम०ए० आचार्य आदि परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। भाषाविज्ञान पर आपका विशेष अध्ययन था। आप शिमला विश्वविद्यालय (हिमाचल प्रदेश) में भाषाविज्ञान के प्रोफेसर रहे।

विभाभास्कर दिनेशचन्द्र शास्त्री– अपने समसामयिक स्नातकों में अत्यन्त प्रबुद्ध एवं मेधावी विद्वान् स्नातक प्रिय श्री दिनेशचन्द्र शास्त्री हमें सदैव याद रहते हैं। कानपुर जिले के ग्रामीण अंचल में जन्मे दिनेश जी महाविद्यालय में शिक्षा पूर्ण करके फिर यहीं (हरिद्वार) के होकर रह गए। आप इण्टर कालिज बेंगला (बहादराबाद) में संस्कृत के लेक्चरर रहे। इस दौरान आप माध्यमिक शिक्षक संघ उ०प्र० से जुड़े रहे, उसकी कार्यकारिणी में रहे। महाविद्यालय को कभी नहीं भूले। यहाँ के प्रबन्धतन्त्र से निरन्तर संयुक्त रहे, महाविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता रहे और इसके अभ्युत्थान में सदा सहभागी रहे।

महामहोपाध्याय प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री– महाविद्यालय की आरम्भ की कक्षाओं में वेदप्रकाश जी को अध्ययन करते देखकर ही हमको आभास हो गया था कि यह ब्रह्मचारी एकदिन संस्कृत शिक्षाक्षेत्र में शीर्ष पर पहुँचेगा। महाविद्यालय की आर्यकिशोर सभा और विद्वत्कला परिषद् में वक्तृत्व के अभ्यास का परिणाम है कि विलक्षण प्रतिभा लेकर जन्मे वेदप्रकाश शास्त्री आज जब विद्वद्गोष्ठियों में धाराप्रवाह संस्कृत व हिन्दी में भाषण करते हैं तो अपनी विद्वता के साथ-साथ महाविद्यालय की भी धाक जमा देते हैं। महाविद्यालय की शिक्षा के पश्चात् आपने विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर (पंजाब) से शास्त्री, आचार्य आदि परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं और तदनन्तर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में संस्कृत प्राध्यापक, रीडर व प्रोफेसर पदों पर कार्यरत रहते हुए आज आप गुरुकुल के आचार्य एवं उपकुलपति पद पर आसीन हैं। दीर्घकालावधि में वेदप्रकाश जी ने अनेक उतारचढ़ाव देखे हैं। बड़े पापड़ बेले हैं, किन्तु अपनी सारस्वत यात्रा में निरन्तर आगे बढ़ते गए हैं। आपने गुरुकुल में "ओरियण्टल कान्फ्रेन्स" का अधिवेशन किया। जनवरी २००५ में अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक सम्मेलन का आयोजन किया। मार्च २००६ में– "वेदाः वाल्मीकिरामायणं च" विषय पर राष्ट्रीय सम्मेलन और इनके अतिरिक्त भी न जाने कितने महासम्मेलन व संगोष्ठियों के आप आयोजक/संयोजक रहे, जिनमें आपको सदैव प्रो० महावीर अग्रवाल व प्रो० रूपकिशोर शास्त्री जैसे विद्वान् कुलबन्धुओं का सहयोग प्राप्त रहा। वेदप्रकाश जी गुरुकुल के कार्यवाहक कुलपति भी रहे और आपके कुलपतित्व में ही गुरुकुल की शताब्दी शानदार ढंग से मनाई गई। आप उच्च पद पर रहते हुए भी महाविद्यालय को कभी नहीं भूले। सदैव इसके अभ्युत्थान में सहयोग करते रहे। अपने नाम के अनुरूप ही आर्यमहासम्मेलनों व गुरुकुलों के उत्सवों आदि के अवसरों पर वेदों का प्रकाश फैलाते रहे। संस्कृत एवं वैदिक शोध से सम्बद्ध पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों की संख्या आपके शोधपूर्ण लेख व निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं और अब भी होते रहते हैं। आपकी उपर्युक्त समस्त शैक्षिक उपलब्धियों के उपलक्ष्य में आपको वाराणसी की सर्वोच्च उपाधि महामहोपाध्याय से अलंकृत किया गया। उत्तरांचल संस्कृत अकादमी का विशिष्ट राष्ट्रीय पुरस्कार आपको भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम के कर कमलों द्वारा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। वस्तुतः यह सब गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की शिक्षा की ही देन है। यह म०वि० के लिए गौरव का विषय है कि गत दि० ९.२.२००७ को गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० में आयोजित अन्ताराष्ट्रिय वेद-वेदाङ्ग विद्वत् सम्मेलन में प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री को 'अन्ताराष्ट्रिय विद्यारत्नाकर सम्मान' से विभूषित किया गया है।

प्रो० वेदप्रकाश जी के साथ ही अपने ज्ञानवारि से गुरुकुल को सींचने वाले महाविद्यालय के विद्वान् स्नातक कुलबन्धुओं में प्रो० विजयपाल शास्त्री दर्शनशास्त्र विभाग, प्रो० रामप्रकाश संस्कृत विभाग, प्रो० ज्ञानचन्द रावल हिन्दी विभाग तथा प्रो० ज्ञानप्रकाश श्रद्धानन्द वैदिक शोध संस्थान के नाम उल्लेखनीय हैं।

डॉ० हरिगोपाल शास्त्री- मेरठ की ऐतिहासिक नगरी में जन्मे हरिगोपाल जी ने महाविद्यालय की शिक्षा के साथ ही साथ सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं । मेरठ विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की । आप सन् १९६८ में महाविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए । महाविद्यालय सभा ने आपकी विद्वत्ता, गुरुकुल के प्रति आस्था, कर्मठता एवं प्रबन्धपटुता से प्रभावित होकर सन् १९७५ में आपको यहाँ के प्राचार्य पद पर नियुक्त किया । अनेक झंझावातों व तूफानों से गुजरते हुए हरिगोपाल जी निरन्तर तीन दशक से प्राचार्य पद को सार्थक करते हुए महाविद्यालय की उन्नति में संलग्न हैं । आपके विशेष प्रयत्नों से महाविद्यालय को हेमवतीनन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय गढ़वाल से संस्कृत तथा योग में एम०ए० की मान्यता मिल गई है । इसी विश्वविद्यालय ने गुरुकुल महाविद्यालय के अन्तर्गत बी०एड० प्रारम्भ करने के प्रस्ताव को भी सिद्धान्ततः मान्यता दे दी है । हरिगोपाल जी के प्रयत्न से भारत सरकार ने महाविद्यालय की विद्याभास्कर, विद्यारत्न, विद्याभूषण आदि सभी उपाधियों को केन्द्र सरकार की सेवाओं के लिए एलिजिबल (अर्ह) मान लिया है । यह एक बड़ी उपलब्धि है । वस्तुतः गत तीन दशकों में हुई महाविद्यालय की प्रगति का अधिकांश श्रेय आचार्य हरिगोपाल शास्त्री को ही जाता है ।

डॉ० हरिगोपाल जी एक अच्छे लेखक एवं कवि भी हैं । "भारतोदय" का नियमित प्रकाशन आपके सम्पादनकला-कौशल का ज्वलन्त प्रमाण है । यह लिखते हुए अत्यन्त गौरव का अनुभव हो रहा है कि महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री को वर्ष १९९८ में राष्ट्रपति सम्मान से सम्मानित किया गया और अब सितम्बर २००६ में उनकी शैक्षिक उपलब्धियों एवं संस्कृत के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय योगदान के उपलक्ष्य में उन्हें उत्तरांचल के महामहिम राज्यपाल द्वारा सम्मानित किया गया है । वस्तुतः यह सभी शिक्षाविदों, संस्कृत-सेवियों व गुरुकुल महाविद्यालय के समस्त कुल-बन्धुओं (स्नातकों) का ही सम्मान है ।

आयुर्वेदभास्कर डॉ० अजय कौशिक- आपने महाविद्यालय से संस्कृत एवं आयुर्वेद शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त एम०ए०, आचार्य एवं पी-एच०डी० उपाधियां प्राप्त करके शिक्षाक्षेत्र को ही अपना कार्यक्षेत्र बना लिया और सम्प्रति महाविद्यालय के परीक्षा विभाग में कुलसचिव के दायित्व को पूर्ण निष्ठा से निभा रहे हैं । महाविद्यालय के अनुशासन/प्रशासन में भी इनका योगदान रहता है ।

डॉ० यशवन्त सिंह चौहान- महाविद्यालय के पड़ोस के ही ग्राम रुहालकी किशनपुर (बहादराबाद) में जन्मे डॉ० यशवन्त जी ने सन् १९७१ में म०वि० से आयुर्वेदभास्कर किया और निरन्तर शिक्षा से जुड़े रहे । आप राष्ट्रीय इण्टर कालेज रुहालकी (बहादराबाद) के निरन्तर प्रबन्धक तथा तत्पश्चात प्रधान रहे और इस क्षेत्र में शिक्षा की उन्नति में अपना योगदान करते रहे । महाविद्यालय को कभी नहीं भूले । सम्प्रति आप मुख्याधिष्ठाता के रूप में महाविद्यालय के उत्थान में लगे हैं ।

श्री योगेन्द्रसिंह चौहान- "गुरुकुल महाविद्यालय की शिक्षा के संस्कारों से संस्कारित व्यक्ति शिक्षण संस्थाओं के संचालन में योगदान के साथ-साथ विधिक (कानून) के क्षेत्र में भी शीर्ष पर पहुंच सकता है", इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं- भाई श्री योगेन्द्र सिंह चौहान । आप निरन्तर अनेक वर्षों तक आर्य इण्टर कालेज बौंगला तथा राष्ट्रीय इण्टर कालेज रुहालकी की प्रबन्ध समिति में रहे । इस समय पृथ्वीराज चौहान डिग्री कालेज रुहालकी की प्रबंध समिति के सदस्य हैं । बी०ए०, एल०एल०बी० करके श्री योगेन्द्र जी ने एक यशस्वी अधिवक्ता के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किया है । अपनी लोकप्रियता के आधार पर ही आप निरन्तर चार बार हरिद्वार बार कौंसिल के अध्यक्ष रहे । इस समय उत्तरांचल बार कौंसिल के सदस्य हैं । आप रुड़की को-आपरेटिव बैंक के चेयरमैन भी रहे हैं । महाविद्यालय को आप कभी नहीं भूले । निरन्तर तीन दशक से आप महाविद्यालय से संयुक्त होकर इसके अभ्युत्थान में सहयोग दे रहे हैं । सम्प्रति आप महाविद्यालय सभा के मंत्री पद पर आसीन हैं ।

डॉ० कर्णसिंह जी- गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर से १९५० में विद्यारत्न परीक्षा उत्तीर्ण करके श्री कर्णसिंह जी ने हाईस्कूल से लेकर एम०ए० संस्कृत-हिन्दी परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कीं और फिर सन् १९६१ में मेरठ कालेज मेरठ के संस्कृत विभाग में प्राध्यापक हो गए। तदनन्तर वहीं पर रीडर एवं संस्कृत विभागाध्यक्ष बने और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। आपने सन् १९६७ में आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० उपाधि प्राप्त की। आप एक अच्छे व यशस्वी लेखक हैं। आपकी अनेक पुस्तकों में भाषाविज्ञान पर लिखा हुआ आपका ग्रन्थ छात्रों व अध्यापकों में बहुत लोकप्रिय है। आपने अभी-अभी गीता पर एक पुस्तक लिखी है, जो कि शिक्षाक्षेत्र एवं धार्मिक जगत् मे पर्याप्त चर्चित एवं प्रशंसित है।

आयुर्वेदभास्कर डॉ० महेन्द्रकुमार त्यागी- भाई महेन्द्रकुमार जी और लेखक, दोनों लगभग एक साथ ही एक ही कक्षा में प्रविष्ट हुए और समान भाव से दोनों ने एक ही साथ उस समय कार्यरत गुरुओं के सान्निध्य में महाविद्यालय ज्वालापुर में शिक्षा प्राप्त की। इस भांति हम दोनों यथार्थ में सतीर्थ्य हैं। महेन्द्रजी की रुचि आयुर्वेद में रही और उन्होंने महाविद्यालय के स्वर्ण-जयन्ती वर्ष में १९५९-६० में यहीं से आयुर्वेद-भास्कर की उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य किया। तत्पश्चात् "इन्स्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद स्टडीज एण्ड रिसर्च" (आई०ए०एस०आर०) सौराष्ट्र, गुजरात से स्नातकोत्तर उपाधि (एच०पी०ए०) प्राप्त की। आरम्भ में आप क्रमशः आयुर्वेद महाविद्यालय दिल्ली तथा आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी व काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विभागों में कार्यरत रहे, फिर भारत सरकार द्वारा संस्थापित केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसन्धान परिषद् दिल्ली में असिस्टेंट डायरेक्टर पद पर नियुक्त हुए और अंततः वहीं से सन् १९९७ में सेवानिवृत्त हुए।

आजीवन आयुर्वेदशिक्षा एवं अनुसंधान के लिए समर्पित डॉ० त्यागी ने आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति तथा आयुर्वेदीय औषधियों पर विशेष अनुसंधान-विषयक अनेक परियोजनाओं में कार्य किया। आयुर्वेद पर आयोजित अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों के संयोजक का दायित्व संभाला। आयुर्वेद विषय पर आपके सौ से अधिक शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं। आप अनेक आयुर्वेद विश्वविद्यालयों में परीक्षक तथा बोर्ड ऑफ स्टडीज के सदस्य रहे हैं। सम्प्रति आप अखिल भारतीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान साहिबाबाद के अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। साहिबाबाद में ही राज आयुर्वेद सेन्टर नाम से आपका अपना चिकित्सालय है, जिसमें आप स्वयं तथा आपकी धर्मपत्नी वैद्या राजत्यागी बैठती हैं। आप आर्यसमाज व अनेक सांस्कृतिक, साहित्यिक व शैक्षिक संस्थाओं से जुड़े हैं।

पं० हरिसिंह त्यागी- महाविद्यालय से विद्याभास्कर के पश्चात् श्री हरिसिंह जी ने एम०ए०, साहित्याचार्य की परीक्षाएं पास कीं। आप महाविद्यालय में दीर्घ कालावधि तक अध्यापक रहे। ब्रह्मचर्य आश्रम के मुख्य संरक्षक रहने के नाते आप बड़े पंडितजी के नाम से प्रसिद्ध हुए, क्योंकि आपसे पूर्व श्रद्धेय पं० कांशीदत्त जी शर्मा एक लम्बे समय तक ब्रह्मचर्य-आश्रम के मुख्य संरक्षक रहे और सभी उन्हें आदर से बड़े पंडितजी कहते थे, जिन्होंने निरन्तर ८५ वर्षों तक महाविद्यालय की निःस्वार्थ सेवा की तथा लेखक जैसे अनेकों स्नातकों के जीवन को शिक्षा एवं संयम नियम के ढाँचे में ढाला।

हरिसिंह जी एक अच्छे लेखक, सहृदय कवि तथा मनोविनोदी स्वभाव के हैं। हँसना-हँसाना आपके स्वभाव में शामिल है।

कविरत्न डॉ० श्रीकृष्ण सेमवाल- सेमवाल जी की जन्मभूमि उत्तरांचल में केदारनाथ के निकटस्थ ग्राम लूण (यमुनापुर) रुद्रप्रयाग है। आपने गुरुकुल महाविद्यालय के नियमित छात्र रहते हुए यहीं से संस्कृत में स्नातकोत्तर (एम०ए०) परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके अतिरिक्त आपने संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री, आचार्य परीक्षाएं भी उत्तीर्ण कीं। आगे चलकर डॉ० श्री कृष्ण सेमवाल को महाविद्यालय ज्वालापुर की विद्यावाचस्पति की सम्मानोपाधि तथा तिरुपतिस्थ राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ की डी०लिट्० की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। आपकी काव्यरचनापटुता से प्रभावित होकर

अखिल भारतीय पण्डित परिषद् वाराणसी द्वारा आपको कविरत्नम् की उपाधि प्रदान की गई।

डॉ० श्रीकृष्ण सेमवाल आरम्भ में विभिन्न विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संस्कृत-शिक्षक रहे। तत्पश्चात् आप दिल्ली शिक्षा निदेशालय में संस्कृत अधिकारी रहे तथा वर्तमान में आप संस्कृत अकादमी दिल्ली सरकार के सचिव पद पर कार्यरत हैं। सेमवाल जी कर्मठता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आज दिल्ली संस्कृत अकादमी के माध्यम से दिल्ली के प्रत्येक स्कूल-कालिजों में संस्कृत पहुँच चुकी है, चाहे वह संस्कृत की शोध-संगोष्ठियों या काव्य-गोष्ठियों के रूप में हो अथवा छात्रों के मध्य निबन्ध, भाषण, अन्त्याक्षरी व सस्वर श्लोक-पाठ प्रतियोगिताओं के रूप में हो। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विद्वद्गोष्ठियों का आयोजन सेमवाल जी के जीवन का एक अंग बन गया है।

डॉ० सेमवाल के व्यक्तित्व की विशेषता है कि अहर्निश संस्कृत-शिक्षा के प्रचार प्रसार व प्रशासनिक कार्य में संलग्न रहते हुए भी वे अपनी मूल प्रकृति से प्रेरित होकर संस्कृत की काव्य-रचना के लिए समय निकाल ही लेते हैं। आपकी रचनाओं में- भक्तिरसामृतम्, अनुरक्तिपीयूषम्, संघे शक्तिः कलौ युगे, पार्थेयम्, प्रियदर्शिनीयम् तथा भीमशतकम् आदि विशेषतः उल्लेखनीय हैं। संस्कृत शिक्षा के क्षेत्र में उपर्युक्त सफल उपलब्धियों के आधार पर आपको राष्ट्रपति सम्मान से भी नवाजा जा चुका है।

डॉ० वेदपाल शास्त्री- हापुड़ के निकटस्थ ग्रामीण अंचल (तातारपुर) में जन्मे डॉ० वेदपाल शास्त्री ने महाविद्यालय ज्वालापुर से १९६९ में विद्याभास्कर किया। तत्पश्चात् मेरठ विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम०ए०, पी-एच०डी० तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री व धर्मशास्त्र में आचार्य परीक्षाएं पास कीं। आप १९७६ में जनता वैदिक कालिज बड़ौत में संस्कृत प्राध्यापक नियुक्त हुए। सम्प्रति आप उक्त कालिज में ही संस्कृत के रीडर एवं अध्यक्ष पद पर आसीन हैं।

अपने अनुज स्नातक बंधुओं में डॉ० वेदपाल जी कुशल वक्ता, लेखक, सम्पादक तथा यशस्वी अध्यापक हैं। वैदिक एवं आर्ष सिद्धान्तों में निष्ठा आपको अपने पिताश्री महाशय रघुवीर सिंह आर्य से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुई है, जिसमें गुरुकुल महाविद्यालय की शिक्षा ने चार चाँद लगा दिए हैं। उल्लेखनीय है कि मान्यवर महाशय जी ने ही तातारपुर में गुरुकुल की स्थापना के लिए अपनी भूमि दान में दी थी।

डॉ० वेदपाल जी मेरठ विश्वविद्यालय संस्कृत अध्यापक परिषद् के मंत्री रहे। उन्होंने निरन्तर आठ वर्ष तक मेरठ विश्वविद्यालय की संस्कृत शोध-पत्रिका के संपादन का दायित्व संभाला। संस्कृत शोध में आपकी विशेष रुचि है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत आपके शोधपत्र विशेष चर्चा एवं आकर्षण के केन्द्र रहते हैं।

रामप्रकाश शर्मा 'सरस'- नई पीढ़ी के स्नातकों में प्रिय रामप्रकाश-मेधावी, कर्मठ एवं उदीयमान नक्षत्र के रूप में जाने जाते हैं। विद्याभास्कर के अतिरिक्त आपने प्रकाशवीर शास्त्री उपदेशक महाविद्यालय में सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आपने एम०ए० हिन्दी, बी०एड० व साहित्याचार्य भी की। सरस जी रसिक कवि, नाटककार एवं कुशल वार्ताकार हैं। आपकी वार्ताएं आकाशवाणी व दूरदर्शन पर प्रसारित होती रहती हैं। आपने एन०सी०ई०आर०टी० दिल्ली की अनेक पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्य किया है। एन०सी०ई०आर०टी० में आप प्रतिनियुक्ति पर भी कार्यरत रहे। हरियाणा सरकार ने आपको सर्वशिक्षा-अभियान के अन्तर्गत परामर्शदाता के रूप में नियुक्त किया। हिन्दी, संस्कृत, दर्शन व शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में रामप्रकाश शर्मा की अपनी पहचान है। सम्प्रति आप केन्द्रीय विद्यालय संगठन में संस्कृत शिक्षक के पद पर कार्यरत हैं और शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की यशःपताका फहरा रहे हैं।

विश्वपाल जयन्त- अपने अनुज स्नातकों में आधुनिक भीम प्रिय विश्वपाल जयन्त के नाते महाविद्यालय की बड़ी ख्याति हुई है। आयुर्वेदभास्कर के पश्चात् आपने अपने परिश्रम से बी०ए० व एम०ए० परीक्षाएं भी पास कीं। आप आयुर्वेद

शिक्षा-पद्धति में पारंगत हैं। योग एवं आयुर्वेद पर आपने बहुत कार्य किया है। विश्वपाल जयन्त का शरीर स्वयं ही ब्रह्मचर्य, योग एवं प्राणायाम के चमत्कार का साकार उदाहरण है। आपके ब्रह्मचर्य बल एवं व्यायाम-प्रदर्शन से द्रष्टा मुग्ध हो जाते हैं। इसी आधार पर आपने देश-विदेश में अल्प समय में ही बहुत यश कमाया है। आयुर्वेद एवं योग के प्रचारार्थ आपने कनाडा, अमेरिका, जापान, जर्मनी, हालैण्ड व इंग्लैण्ड आदि अनेक देशों की यात्रा की है। सन् १९९० में जयन्त जी ने कनाडा व अमेरिका में विश्वयोग-संस्थान की स्थापना की थी। आप गुरुकुल कण्वाश्रम कोटद्वार के संस्थापक हैं। भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री वी०वी० गिरि ने विश्वपाल जयन्त को आधुनिक भीम की उपाधि और हिन्दू फेडरेशन ऑफ कनाडा ने आपको हिन्दूरत्न की उपाधि से विभूषित किया था। विश्वपाल जयन्त ने योग-आयुर्वेद के तथा आर्यवीरदल के अनेक विशाल कैम्प आयोजित किए। हम जब टी०वी० चैनल पर जयन्त जी की आयुर्वेद की चर्चा सुनते हैं तो अत्यन्त गौरव का अनुभव होता है। आपके द्वारा लिखित अनमोल हीरा नामक पुस्तक तो बहुत ही उपयोगी एवं लोकप्रिय सिद्ध हुई है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त डी०ए०वी० कालिज जालन्धर में संस्कृत के प्रोफेसर रहे विद्याभास्कर दुर्गादत्त शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में दर्शनशास्त्र प्रोफेसर रहे विद्याभास्कर देवदत्त शर्मा, हिन्दू कालिज दिल्ली में प्रोफेसर रहे डॉ० राजेन्द्र शुक्ल, एम०डी० कालिज सहारनपुर में संस्कृत अध्यापक रहे श्री वागीश्वर शास्त्री, हरदोई में संस्कृत अध्यापक रहे श्री शिवकुमार शास्त्री, देवशर्मा शास्त्री व रामकुमार शास्त्री, डी०ए०वी० जामनगर में संस्कृत अध्यापक रहे श्री प्रकाशचन्द्र शर्मा, दिल्ली के श्री ऋषिपाल शास्त्री व श्री राजपाल शास्त्री मधुर प्रकाशन, संस्कृत महाविद्यालय चंदौसी के आचार्य रहे श्री पद्माकर शास्त्री, कलकत्ता वाले श्री दिनेशचन्द्र शास्त्री, गवर्नमेण्ट कालिज शाहजहाँपुर के श्री केदारनाथ शास्त्री, हिन्दू इण्टर कालिज बाराबंकी के श्री गोपालदत्त शास्त्री, दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ० गोपालदत्त जोशी, श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री शाहदरा दिल्ली, वैद्य प्रकाशचन्द्र शास्त्री दिल्ली, महेशचन्द्र शास्त्री, भारती विद्याभवन बम्बई, श्री रुद्रदत्त शास्त्री महोपदेशक, श्री रामेश्वर शास्त्री देवबन्द, हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ कवि श्री विमलचन्द्र विमलेश, वैद्यराज वासुदेव जी गुर्जर, श्री हितपाल शास्त्री बिजनौर, जवाहरलाल नेहरु डिग्री कालेज खोरी में संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० नरेन्द्रदेव शास्त्री, म्युनिसिपल इण्टर कालिज मसूरी में प्राध्यापक श्री कृष्णदेव शास्त्री व शुकदेव शास्त्री (दोनों भाई), श्री चैतन्य देव शास्त्री खुब्बनपुर (सहारनपुर), श्री रमेशचन्द्र शास्त्री दिल्ली, भ्राताश्री इन्द्रकुमार जी, श्री नारायणदत्त शास्त्री दिल्ली, स्व० रुद्रदत्त शर्मा संस्कृत प्राध्यापक दिल्ली (पूज्य सत्यव्रत शास्त्री जी के जामाता), डॉ० वेदपाल शास्त्री संस्कृत विभागाध्यक्ष जे०वी० कालिज बड़ौत तथा विजयपाल शास्त्री व श्यामपाल शास्त्री (स्याना-बुलन्दशहर) आदि समस्त कुलबन्धु विद्वान् स्नातकगण ऐसी प्रतिभाएं हैं, जो अपनी मातृसंस्था (गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर) के गर्भ से उदित हुई और जिन्होंने अपनी विद्या से, अपने ज्ञान से शिक्षा के क्षितिज को आलोकित कर दिया। अपने गुरुकुल महाविद्यालय की विद्यावंशव्रतति के प्रसून (स्नातकगण) देश-विदेश में जहाँ भी गए वहाँ उनके साथ-वेदविद्या, संस्कृत शिक्षा तथा तपःपूत गुरुजनों के अमृतमय उपदेशों की सुगंध भी गई, जिससे दिग्दिगन्त सुवासित हो उठा। जितने शिक्षाविद्, साहित्यकार, समाजशास्त्री, राजनेता, वैदिक मिशनरी और महामहोपदेशक अकेले गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने दिए उतने संभवतः किसी ने नहीं दिए। यही गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का शिक्षा के लिए तथा समाज व राष्ट्र के लिए विशेष योगदान है।

***

पता- १०/९८, सेक्टर-३, राजेन्द्र नगर
साहिबाबाद (गाजियाबाद)- २०१००५

शिक्षाक्षेत्र को महाविद्यालय का योगदान

-डॉ० मुनिकान्त शास्त्री, पूर्व मुख्याधिष्ठाता

महाविद्यालय ज्वालापुर के योगदान को समझने के लिए गत दो शताब्दियों के राजनीतिक और धार्मिक इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करना आवश्यक है। सन् १८५७ की जन-क्रान्ति और उसके क्रूरतापूर्ण दमन के पश्चात् पूरे राष्ट्र में घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। इस अन्धकार से बाहर निकलने के लिए ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' की प्रार्थना ही एकमात्र अवलम्ब था। जिस मार्गदर्शक की उस समय आवश्यकता थी, वह उसे महर्षि दयानन्द के रूप में मिला। स्वनामधन्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द के शिष्य दयानन्द ने निराशा और किंकर्तव्यविमूढ़ता के कोहरे से बाहर निकलने के लिए धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र को चुना। मेधावी शिष्य ने समझाया कि इस मृगजाल से निकलने के लिए वेद-विहित मार्ग ही एकमात्र अवलम्ब है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की।

कालान्तर में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गुरुकुलों की स्थापना की गई। इन गुरुकुलों ने अपने-अपने क्षेत्र में अच्छे कार्य किए। इन गुरुकुलों में सर्वोपरि स्थान महाविद्यालय ज्वालापुर का है। वीतराग सर्वस्वत्यागी, तार्किकशिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द द्वारा १९०७ में स्थापित इस गुरुकुल के सामने भी वे ही विकराल समस्याएं मुँह बाए खड़ी थीं। प्राचीन वैदिकधर्म लुप्तप्राय था। आर्षग्रन्थों का पठन-पाठन नहीं के बराबर था। धर्म के नाम पर विकृत कर्मकांड का साम्राज्य छाया हुआ था। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:' के देश में नारी को घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया था। शिक्षा-जगत् के कपाट उसके लिए बन्द थे। 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागश:' गीता के इस सन्देश को भुलाकर शूद्र को सभी अधिकारों से वंचित कर दिया था। वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न थी। जन्म से ही द्विज घर में उत्पन्न बालक यज्ञोपवीत धारण कर सकता था। किसी समय गार्गी जैसी विदुषी नारी तत्त्ववेत्ता याज्ञवल्क्य ऋषि से शास्त्रार्थ करती थी। यह सब भुलाकर उसे शूद्र वर्ण की श्रेणी में रख दिया था। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' यह नारा प्रचलित था। इस समाज को घुन के समान खाने वाली इन विकृतियों से छुटकारा पाने के लिए दो ही उपाय थे- उत्तम शिक्षा और उत्तम चरित्र।

शिक्षा- इस महाविद्यालय के सर्वप्रथम शिक्षा में आमूल-चूल परिवर्तन का साहसपूर्ण कदम उठाया। इस शिक्षा के कपाट सभी के लिए खोल दिए। कपाट खोलने के साथ महाविद्यालय के पाठ्यक्रम में प्राचीन वाङ्मय को प्रमुख स्थान दिया। इस वाङ्मय में विश्व का समस्त ज्ञान-विज्ञान निहित है। ज्ञान-विज्ञान की कोई ऐसी समस्या नहीं जिसका समाधान इस प्राचीन वाङ्मय में न मिलता हो। इस पाठ्यक्रम ने शिक्षा का वह सर्वतोमुखी रूप सामने रखा, जिसके कारण वह जगद्गुरु कहलाता था। इस शिक्षा को प्राप्त करने के लिए देश-देशान्तरों से विद्यार्थी खिंचे चले आते थे-

> **एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन: ।**
> **स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा: ।।**

इस पाठ्यक्रम में धर्म का यह रूप सामने रखा गया जो तर्क की कसौटी पर पूरा उतरता है और जिसे हम निर्विवाद रूप से सार्वजनिक कह सकते हैं। इस शिक्षा ने हमें आत्मगौरव और आत्मविश्वास से भर दिया।

पाठ्यक्रम के विषय में संक्षिप्त रूप में इतना कह देना आवश्यक है कि प्राच्य व्याकरण को पुन: नवजीवन मिला। अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। षड्दर्शनों के अध्ययन से बुद्धि का चतुर्मुखी विकास हुआ। संस्कृत के अध्ययन को प्रमुखता देते हुए भी इस पाठ्यक्रम में इतिहास, भूगोल, गणित आदि विषयों का पाठ्यक्रम अनिवार्य रूप से रखा गया। इस प्रकार इस शिक्षा में वह सब कुछ है जो इसे सर्वग्राह्य बनाता है।

चरित्र-निर्माण शिक्षा का अनिवार्य अंग है। चरित्रवान् व्यक्ति पूजा का पात्र होता है, समाज में उसे सम्मान मिलता है और चरित्रहीन निन्दा का पात्र बनता है। राम और रावण में चरित्र का ही अन्तर है। अनिन्द्य चरित्र से राम की पूजा होती है। प्रत्येक वर्ष विजयादशमी के दिन रावण का पुतला जलाया जाता है। आचारहीन व्यक्ति को देवता भी नहीं बचा सकते- 'आचारहीनं न पुनन्ति देवाः।' गुरुकुल की शिक्षा में रहन सहन के चरित्र पर तीव्र दृष्टि रहती है। जिस प्रकार अग्नि में तपकर सोना कुन्दन बन जाता है, उसी प्रकार शिष्य गुरुकुल में रहकर उत्तम आचरण का स्वरूप बन जाता है। चरित्र-निर्माण के लिए हमें यहाँ शिष्य को ब्रह्मचारी कहा जाता है और उसके निवास को छात्रावास न कहकर ब्रह्मचर्याश्रम कहा जाता है।

आर्यजगत् और सम्पूर्ण देश के लिए इस संस्था के योगदान को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। वह सचमुच वर्णनातीत है और चतुर्मुखी है। जिस प्रकार सूर्य की किरणें किसी भेदभाव के बिना निर्धन और धनी सभी घरों में अपना प्रकाश फैलाती हैं, उसी प्रकार इस संस्था ने ऊंच-नीच के भेद के बिना शिक्षा और पुनर्जागरण का सन्देश दिया। राष्ट्र को नये उत्साह से भर दिया। स्वाभिमान और आत्म-गौरव का सन्देश दिया। यदि इस संस्था ने शिक्षा को निःशुल्क न किया होता तो कितने ही शिक्षार्थी शिक्षा से वंचित रहते। इस संस्था ने अपने शैशव काल और मध्यकाल में उद्भट विद्वानों को जन्म दिया। डॉ० सूर्यकान्त, प्रो० उदयवीर, डॉ० हरिदत्त शास्त्री, प्रसिद्ध लेखक रामवृक्ष बेनीपुरी, बदायूँ के रुद्रदत्त, प्रसिद्ध वाग्मी और राजनीतिक नेता प्रकाशवीर शास्त्री, पद्मश्री क्षेमचन्द्र सुमन, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी इस संस्था की देन हैं। कालक्रम से इस संस्था के रूप में अन्तर आ गया है। यह भी कहीं न कहीं बाह्य जगत् से प्रभावित है। इसका हमें समाधान निकालना चाहिए।

***

पता- गोवर्धनपुर रोड, लक्सर (हरिद्वार)

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं

वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।

शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः

कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च॥

जलती हुई आग से सोने की पहचान होती है, सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से साधु की, भय आने पर शूर की, आर्थिक कठिनाई में धीर की और कठिन आपत्ति में शत्रु एवं मित्र की परीक्षा होती है।

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का योगदान

- प्रा० डॉ० चन्द्रशेखर लोखण्डे 'विद्याभास्कर'

महात्मा गांधी के निकटवर्ती माने जाने वाले श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (रावजी) जो रियासत हैदराबाद के उस्मानाबाद जिले के ही निवासी थे। गांधीजी ने उन्हें जेल से बाहर रहकर सत्याग्रह के लिए कार्य करने की सलाह दी थी। अतः रावजी चाहकर भी सत्याग्रह के मैदान में न उतर सके, लेकिन उन्होंने जेल से बाहर रहकर रियासत की जनता के प्रति हो रहे अन्याय अत्याचार के खिलाफ जनमानस को सचेत करने का कार्य किया तथा सैकड़ों लोगों को सत्याग्रह में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के ब्रह्मचारियों से एक के बाद एक तीन जत्थे रियासत में सत्याग्रह के लिए भेजे।

हैदराबाद सत्याग्रह में जहाँ अनेक गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों ने भाग लिया, वहाँ महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारियों का विशेष योगदान रहा है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारियों का पहला जत्था जो १५ की संख्या में था, यह जत्था स्वामी विवेकानन्द जी के नेतृत्व में हैदराबाद रियासत में पहुंचा तथा निजाम सरकार के कायदे-कानून को भंग करते हुए गिरफ्तार हुआ।

पन्द्रह संख्या का दूसरा जत्था पं० भूदेव जी शास्त्री के निर्देश में रियासत की सीमा को पारकर प्रदेश में प्रवेश कर गया और स्वयं को निजाम पुलिस के द्वारा गिरफ्तार करवा लिया।

स्वामी आनन्दप्रकाश जी के नायकत्व में १५ ब्रह्मचारियों का तीसरा जत्था २ जून १९३९ को हैदराबाद पहुँचकर निजाम सरकार के विरुद्ध नारे लगाते हुए पकड़ लिया गया और बन्दी बना लिया गया। ये तीनों जत्थे क्रमशः मुख्य अधिनायकों के जत्थों में समा गये, जैसे छोटे नद नाले मुख्य सरिता के प्रवाह में समा जाते हैं। ये प्रमुख अधिनायक थे- श्री चाँदकरण शारदा, श्री खुशहालचन्द जी खुर्सन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) और तीसरे श्री ज्ञानेन्द्र जी। इन तीनों महाधिनायकों के नेतृत्व में निकले गुरुकुल के ये तीनों जत्थे हैदराबाद रूपी समुद्र में जाकर समाविष्ट हो गये और वहाँ सत्याग्रह रूपी तूफान को पैदा कर संपूर्ण रियासत को झकझोर दिया।

महाविद्यालय के अन्य सात स्नातक भिन्न प्रान्तों में जनता को सत्याग्रह में शामिल होने के लिए प्रेरित करने में लगे रहे। उनमें श्री कांचीदत्त जी, श्री आशाराम जी, श्री मधुलाल जी तथा श्री भागीरथलाल जी प्रमुख थे।

इस तरह महाविद्यालय ज्वालापुर के ब्रह्मचारियों एवं स्नातकों ने हैदराबाद की प्रजा पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ स्वयं को संघर्ष की भट्ठी में झोंक दिया। ये ब्रह्मचारी अपनी किशोर अवस्था की देहलीज को भी न पारकर पाये थे कि भारत माँ की बेड़ियों को काटने के उद्देश्य से अपने प्राणों की परवाह किये बगैर संघर्ष की ज्वाला में कूद पड़े।

निजाम की आततायी पुलिस ने इन युवाओं के साथ वैसा ही सलूक किया जैसे कि एक साधारण मुजरिम के साथ किया जाता है। हाथ पैरों में बेड़ियाँ ऊपर से बेंत और गालियाँ यह जेलरों द्वारा की जाने वाली सामान्य बातें थीं। ऐसी नाजुक अवस्था वाले ब्रह्मचारियों के साथ निजाम पुलिस इस तरह का सलूक करती थी।

स्वामी आनन्द प्रकाश जी के साथ निकला तीसरा जत्था जिसमें ब्र० दयानन्द भी था। ब्र० दयानन्द उस समय १५ वर्ष की अवस्था के थे। इनका जन्म हरदोई जिले में सुरसा ग्राम में सन् १९१९ के पौष मास में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० रघुनन्दन शर्मा था। इनकी पांच सन्तानें थीं, ब्रह्मचारी दयानन्द सबसे ज्येष्ठ पुत्र थे। डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री विद्याभास्कर उन्हीं के छोटे भाई हैं जो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के विभिन्न पदों

पर आसीन रहे हैं। ब्रह्मचारी दयानन्द ने गुरुकुल में रहकर मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात दयानन्द को न्यायदर्शन पढ़ने के लिए नित्यानन्द वेदविद्यालय काशी भेजा गया। काशी में दो वर्ष रहकर ब्र०दयानन्द ने न्याय की शिक्षा प्राप्त की। लेकिन अचानक माँ की मृत्यु हो जाने के कारण आपको बीच में ही पढ़ाई छोड़कर ग्राम मुग्मा आना पड़ा। वहाँ से ग्रीष्मावकाश बिताने के लिए वे वापस महाविद्यालय ज्वालापुर में आ गये। उसी समय हैदराबाद सत्याग्रह का प्रारम्भ हो चुका था। उधर हैदराबाद के आर्यसत्याग्रह के साथ, स्टेट कांग्रेस का भी सत्याग्रह चल रहा था, हिन्दू महासभा ने भी उसी समय भागानगर प्रतिकार आन्दोलन के नाम से सत्याग्रह चला रखा था। पं० रघुनन्दन शर्मा जिला कांग्रेस कमेटी में मन्त्री पद पर कार्यरत थे। उधर महात्मा गांधी ने कुछ गलत फहमियों के कारण स्टेट कांग्रेस को सत्याग्रह स्थगित करने के आदेश दे दिए। गांधी जी के इस तरह अचानक निर्णय लेने से रियासत के भीतर और बाहर के बहुत कांग्रेसी नाराज हो गये थे, शायद इसी कारण ब्र० दयानन्द के पिता श्री रघुनन्दन शर्मा ने जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया था। वे स्वयं अपने क्षेत्र से जत्था लेकर आर्य सत्याग्रह में जाना चाहते थे, लेकिन मित्रों की सलाह से उन्होंने बाहर रहकर कार्य करना पसन्द किया और महाविद्यालय ज्वालापुर के अधिकारियों के निवेदन पर ब्र० दयानन्द को सत्याग्रही जत्थे के भेजने की अनुमति दे दी। स्वामी आनन्दप्रकाश जी का जत्था २ जून १९३९ को हैदराबाद पहुंचा और रियासत के कानून सीमा में प्रवेश कर गया। निजाम सरकार के विरुद्ध नारे लगाते हुए पुलिस ने देखा तो वह हैरान होकर रह गयी। पुलिसवाले सोचते कि न जाने इन कच्ची उम्र वाले युवकों में इतना जोश कहाँ से आ गया है, जो निजाम की नृशंस पुलिस के सामने निडर होकर विरोध प्रकट कर रहे हैं और बेखौफ होकर जेल जाने के लिए आमादा हैं। इन ब्र० सत्याग्रहियों को २-२ साल की कड़ी कैद हुई। जेलों में उन्हें ऐसी यातनाएं दी गईं जो चोर और डाकुओं को भी नहीं दी जाती। भोजन में रेत, कूड़ा, पत्थर आदि मिला होता था। दाल के नाम पर सिर्फ पानी, दाल नदारद। रोटी के नाम से ज्वार की मोटी रोटियाँ दी जातीं। किसी कवि ने इस तरह खाने को देखकर कहा था-

> अमीरों आपके कुत्ते जिसे हर्गिज न खायेंगे,
>
> असीराने वतन वे रोटियाँ हम हँस हँस के खाते हैं।

जेल के ऐसे निकृष्ट भोजन से उदरशूल, अर्शोगण्ठकम, डायरिया, पेचीश, निमोनिया, आदि अनेक प्रकार के रोग हो जाया करते। इसी कारण कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने कहा था-

> क्या खाक लिखें जब कि महबस में मुसाफिर को
>
> दो ज्वार की रोटी है और दाल का पानी है।
>
> सुनकर जिसे महफिल की हर आँख में पानी है।

और हुआ भी वही सर अकबर हैदरी और आर्य नेताओं में समझौता हो जाने के पश्चात् ब्र० दयानन्द अपने गाँव चले गये, लेकिन इतने कमजोर हो गये थे कि पहचानना मुश्किल हो गया। उन्हें डायरिया (अतिसार) हो गया था। निकृष्ट भोजन और कड़ी धूप में काम करने की वजह से उनकी यह हालत हो गयी थी। अन्ततः ९ मार्च १९४० ई० को उनका देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु पर सारे आर्यसमाज और गुरुकुल वासियों ने अत्यन्त दुःख प्रकट किया।

इस तरह महाविद्यालय ज्वालापुर का यह सपूत हैदराबाद की प्रजा को गुलामी से मुक्त कराते हुए इस दुनिया से कूच कर गया।

श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ (राव जी) ने सत्याग्रह प्रारम्भ होने पर आर्यजनता से कहा था- "आजकल हैदराबाद की समस्या फिर आर्यसमाज के सामने बड़े जोर से आयी है। ... ...यह सत्याग्रह संग्राम भी इतिहास में लिखने

---

4. आर्यसमाज और गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान :: 217

की मात हो जायेगी। यदि आर्यसमाज स्वकीर्ति को सुरक्षित रखना चाहता है तो किसी न किसी दिन और कहीं न कहीं सत्याग्रह पूरे बल से करना ही होगा।'

श्री नरदेव जी शास्त्री (रावजी) का यह वक्तव्य सार्वदेशिक सभा के नेतृत्व को लक्ष्य करके कहा गया था। वे निरन्तर देश और रियासत की जनता के सम्पर्क में थे। उन्होंने सत्याग्रह के नेताओं से यह आग्रह किया था कि आर्यसमाज निजाम सरकार की तानाशाही के आगे न झुके।

सन् उन्नीस सौ उन्तालीस १९३९ के अप्रैल महीने में श्री नरदेव जी शास्त्री ने हैदराबाद की जेलों का मुआयना किया। उत्तर भारत में यह बात फैल चुकी थी कि निजाम की जेलों में सत्याग्रहियों के साथ नृशंस व्यवहार किया जा रहा है तथा अमानवीय यातनाएं दी जा रही हैं।

निजाम सरकार यह जानती थी कि श्री नरदेव जी वेदतीर्थ (रावजी) सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों को समझा बुझाकर सत्याग्रह खत्म करवा सकते हैं।

जब श्री रावजी जेलों में सत्याग्रहियों को देखने पहुंचे तो सर्वप्रथम जेल के सुपरिटेण्डेण्ट से अनुमति लेकर उन्होंने सत्याग्रहियों से पूछताछ की। उनके बुरे हाल देखकर रावजी व्यथित हो गये। किशोर एवं प्रौढ़ सत्याग्रहियों को जेलों में कोई रियायत नहीं बरती जाती थी। उनकी अवस्था देखकर श्री नरदेव जी शास्त्री का अन्तःकरण पीड़ा से भर गया। उन्होंने कलेक्टर रिजवी से दरख्वास्त की कि सत्याग्रहियों के साथ मानवीय बर्ताव करें। कलेक्टर रिजवी ने इस बारे में आश्वासन देकर उनसे निवेदन किया कि वे किसी तरह आर्यनेताओं को समझा बुझाकर सत्याग्रह समाप्त करवाने में मदद करें। कलेक्टर रिजवी ने श्री रावजी से आत्मीय भाव जताते हुए कहा- लोगों को यह बड़ा भ्रम हो गया है कि निजाम सरकार हिन्दुओं और आर्यों पर अत्याचार कर रही है। आप निजाम राज्य के ही हैं, आप तो देख रहे हैं कि इस राज्य में हिन्दू और अन्य मतावलम्बी कितने सुखचैन से रहते हैं। बाहर वालों के (भारत में रहने वालों के) मन में यह बात बैठा दी गयी है कि यहाँ गैर-मुस्लिमों पर जुल्म किये जा रहे हैं। लोग अन्धाधुन्ध चले आ रहे हैं। ऐसे चले आ रहे हैं, जिनकी भाषा भी हम समझ नहीं सकते। आर्यसमाज के सौ पचास बड़े लोग आते तो हम उनसे बातचीत करते और उनकी क्या शिकायत है समझ लेते, लेकिन देश के चारों ओर से रेला चला आ रहा है और रियासत की तमाम जेलें भर गयीं हैं।

वे नलगुण्डा भी गये और श्री सुरेन्द्रशास्त्री से मिले। वहाँ उन्होंने शास्त्री जी से सत्याग्रह की आगे की रणनीति पर बात की। इस तरह श्री रावजी ने सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए बाहर रहकर स्वयं का योगदान दिया है। उनकी प्रेरणा से अनेक ब्रह्मचारी, स्नातक एवं अध्यापक उनमें श्री हरिदत्त जी शास्त्री आदि मुख्य थे, प्रेरित होकर सत्याग्रह में सहभागी हुए।

कुछ अन्य ब्रह्मचारी और स्नातक जिनमें श्री प्रकाशवीर शास्त्री (पूर्व सांसद), वैद्य दिनेश चन्द्र शास्त्री, श्री विजयपाल शास्त्री, श्री जिनपाल जी शास्त्री, श्री भूदेव जी शास्त्री, डॉ० कपिलदेव जी द्विवेदी, श्री गोपालदत्त जी जोशी, श्री जगदीशचन्द्र शास्त्री, डॉ० सुदर्शन जी आयुर्वेदाचार्य, श्री बलदेव जी, श्री चन्द्रभानुजी शास्त्री, वैद्य धर्मदेव आत्रेय, श्री सुखलाल जी, श्री हरिश्चन्द्र आत्रेय, श्री महावीर शास्त्री 'बन्दी' आदि प्रमुख हैं। सत्याग्रह में भाग लिया था। सम्पूर्ण सत्याग्रह के दौरान गुरुकुल महाविद्यालय में लगभग ४५-५० छात्र, स्नातक एवं अध्यापक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सत्याग्रह में शामिल थे।

आचार्य नरदेव जी शास्त्री (रावजी) के पिता श्री निवास रावजी का मराठवाड़ा के क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार में बहुत योगदान रहा है। सन् १८९२ में हैदराबाद के सुलतान बाजार में आर्यसमाज की स्थापना हुई। श्री निवास जी के इस क्षेत्र में अनेक व्याख्यान हुए, उनके व्याख्यानों से प्रभावित होकर अनेक पौराणिक विद्वान् आर्यसमाज की तरफ आकर्षित हुए। उनसे ही प्रभावित होकर राय कुंवर बहादुर जो कभी नास्तिक कहलाते थे, आर्यसमाज में प्रविष्ट होकर आस्तिक बन गये। उससे पूर्व सन् १८८० में मराठवाड़ा विभाग के धारूर गाँव में आर्यसमाज की स्थापना हुई, उसमें भी

रावजी के पिता श्री निवासराव जी का योगदान रहा है। गुरुकुल के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द जी का भी योगदान हैदराबाद रियासत में आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में रहा है। तात्पर्य यह है कि जब कभी रियासत में आर्यसमाज के कार्यों पर आँच आयी, तब गुरुकुल महाविद्यालय के कुलवासियों ने अपना तन मन धन और प्राण देने में तत्परता दिखलाई है।

इन पंक्तियों के लेखक की शैक्षिक शुरुआत भी गुरुकुल घटकेश्वर हैदराबाद से हुई है। सन् १९७१ में गुरुकुल ज्वालापुर से स्नातक बनने के बाद लेखक ने जीवन का अधिकांश समय दक्षिण में आर्यसमाज के प्रचार प्रसार में लगाया है। "हैदराबाद मुक्ति संग्राम का इतिहास" यह विस्तृत ग्रन्थ लेखक के पाँच वर्ष के कठिन परिश्रम का ही प्रतिफल है। यह ग्रंथ सम्प्रति विद्वन्मान्य हो चुका है। इतिहास अध्येताओं को आगे आकर इस स्वर्णिम अध्याय को दुनिया के सामने लाने की जरूरत है।

* * *

सीताराम नगर, मुहल्ला- लातूर,
जिला- लातूर (महाराष्ट्र) - ४१३५३१
फोन- ०२३८२- २२६०२३

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥

बुढ़ापा (सुन्दर) रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, दोष देखने की आदत धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच पुरुषों की सेवा सत्स्वभाव को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥

इन्द्रियों तथा मन को जीतने वाले, अपराधियों को दण्ड देने वाले और जाँच-परखकर काम करने वाले धीर पुरुष की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है।

आर्यसमाज द्वारा प्रवर्तित गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

जब आर्यनेताओं ने यह अनुभव किया कि डी०ए०वी० कालेज लाहौर में उन उद्देश्यों की पूर्ति या प्राप्ति नहीं हो रही है, जिसके लिए उसकी स्थापना की गई थी तो उन्होंने शिक्षा की वास्तविक वैदिक-प्रणाली गुरुकुलों की स्थापना का लक्ष्य निर्धारित किया। इन मनस्वी पुरुषों में प्रधान थे आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान लाला मुन्शीराम तथा उनके साथी। पं० गुरुदत्त का निधन सन् १८९० में हो गया था। यदि वे भी १९वीं शताब्दी के अन्त तक रहते तो गुरुकुल स्थापना में मुन्शीराम के दाहिने हाथ सिद्ध होते।

लाला मुन्शीराम जी ने गुरुकुल स्थापना के अपने मनोरथ से पंजाब की सभा को अवगत कराया और इस निश्चय से सूचित किया कि वे इस महान् कार्य के लिए धन-संग्रहार्थ निकलेंगे और जब तक सत्रह हजार रुपया एकत्र नहीं हो जाएगा, तब तक घर नहीं लौटेंगे। मनस्वी कार्यार्थी सुख-दुःख की चिन्ता किए बिना अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। मुन्शीराम जी ने भी यही किया और निश्चित अवधि के पहले ही निर्धारित राशि से अधिक लेकर स्वस्थान पर आ गए। सौभाग्य से बिजनौर जिले के जमींदार ठाकुर अमनसिंह ने उन्हें गंगा के तट की अपनी भूमि गुरुकुल के लिए दान दे दी। अन्ततः १९०२ की वैशाखी के दिन गुरुकुल स्थापित हो गया। कुछ समय के लिए इसे गुजरांवाला तथा जालंधर में भी चलाया गया था, अब समुचित जगह मिलने पर गंगा के कूल पर इसे ले जाया गया। झाड़-झंखाड़ों को साफ कर फूस की कुछ कुटियाएं बनीं और छात्रावासयुक्त गुरुकुल चल पड़ा। प्रारम्भ में लाला मुन्शीराम ने 'जो बोले सो कुण्डा खोले' की कहावत के अपने दो पुत्र- इन्द्र और हरिश्चन्द्र को इस गुरुकुल में भर्ती करवाया। धीरे-धीरे अन्य छात्र भी आए और गुरुकुल चल पड़ा।

यह निश्चय किया गया था डी०ए०वी० की भांति गुरुकुल में यथावश्यकता अंग्रेजी तथा विज्ञान आदि की शिक्षा दी जायेगी, किन्तु प्रधानता वैदिक आर्ष-शास्त्रों तथा संस्कृत व्याकरण में छात्रों को व्युत्पन्न बनाने को ही रहेगी। अब यह अनुभव किया गया कि शास्त्रों के उच्चकोटि का अध्ययन तो गुरुकुल का लक्ष्य बन गया है, किन्तु आर्यसमाज में ऐसे विद्वान् तथा सर्वविद्या-निष्णात गुरुजन कहां हैं जो अध्यापक बन कर अपने अन्तेवासियों को शास्त्रों में सर्वविद्या-विचक्षण बना सकेंगे। अन्ततः लाला मुन्शीराम, जो आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता थे, काशी से पं० काशीनाथ शास्त्री तथा पं० गंगादत्त शास्त्री (कालान्तर में स्वामी शुद्धबोध तीर्थ) को गुरुकुल में लाने में सफल हो गए। पं० काशीनाथ तो सनातनी आख्यानों के थे, किन्तु विद्या-प्रचार हेतु उन्होंने गुरुकुल में आना स्वीकार कर लिया। उनकी शास्त्रज्ञता के बारे में प्रसिद्ध है कि एक ही आसन पर बैठकर विभिन्न विषयों (न्याय, वेदान्त-सांख्य, वेद, व्याकरणादि) के छात्रों को वे अनवरत बिना पुस्तक हाथ में लिए पढ़ाते थे और यह शिक्षा-सत्र अस्खलित रूप से दिनान्त तक चलता था।

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली जिन आदर्शों को लेकर चली, उनमें निम्न प्रमुख थे-

१. इस पद्धति में भारतीय आर्य सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण समावेश रहेगा। छात्रों का खानपान, रहनसहन, वेशभूषा पूर्णतया प्राचीन गुरुकुलवासियों की भांति निराडम्बर, सादगी तथा स्वच्छता युक्त रहेगा। गुरुकुल के अध्यापकों और शिष्यों की दिनचर्या व्यवस्थित होगी, जिसमें प्रातः सायं संध्योपासना तथा अग्निहोत्र का प्रावधान रहेगा।

२. यहां सभी विषयों को हिन्दी माध्यम से पढ़ाया जायेगा। यह तथ्य सचमुच आश्चर्यजनक है कि गुरुकुल कांगड़ी में स्नातक स्तर तक का रसायन, भौतिकी, प्राणिविज्ञान, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र जैसे विषयों को हिन्दी माध्यम से सफलतापूर्वक पढ़ाया जाता था तथा उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें गुरुकुल के अध्यापकों ने ही तैयार की थीं।

३. हिन्दी तथा संस्कृत की प्रधानता होने पर भी अंग्रेजी तथा पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के उच्चस्तर के अध्यापन की

यहाँ सम्पूर्ण सुविधाएं थीं । आयुर्वेद का पृथक् विभाग था तथा विज्ञान की प्रयोगशालाएं सभी साधनों से परिपूर्ण थीं ।

४. गुरुकुल-शिक्षा में स्वावलम्बन पर बल दिया गया था । यहाँ सादगी, स्वच्छता तथा आत्मनिर्भरता पर जोर दिया जाता था । यहाँ दी जाने वाली शिक्षा का लक्ष्य छात्र में स्वदेश-गौरव, स्वधर्म के अभिमान तथा भारत के सुयोग्य नागरिक के रूप में अपनी पहचान बनाने का था । यही कारण है कि गुरुकुल के स्नातक आगे चलकर देश के निर्माण में योगदान करते रहे । यहाँ के स्नातकों ने कालान्तर में शिक्षा, साहित्यलेखन, वैद्यक, पत्रकारिता तथा वैदिक धर्मप्रचार में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिकाएं निभाईं ।

५. गुरुकुल-शिक्षा में स्त्री-शिक्षा के लिए पृथक् कन्या गुरुकुलों की स्थापना की योजना थी । अतः शीघ्र ही विभिन्न स्थानों में लड़कों की भांति कन्याओं के पृथक् गुरुकुल स्थापित किए गए । देहरादून तथा बड़ोदरा में सफलतापूर्वक कन्या-गुरुकुल चलाए गए । पंजाब तथा हरियाणा में कन्याओं के लिए संख्यातीत गुरुकुल बने । विशुद्ध शास्त्रीय शिक्षण के लिए पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु की सुयोग्य शिष्याओं प्रज्ञा तथा मेधा ने वाराणसी में पाणिनीय कन्या महाविद्यालय की स्थापना की, जो सफलतापूर्वक चल रहा है ।

६. गुरुकुल की स्थापना में संचालकों का उद्देश्य विद्यार्थियों को तुल्य खान-पान, समान रहन-सहन तथा एक सी दिनचर्या उपलब्ध कराना था । शिक्षा सर्वथा निःशुल्क थी । भोजन वस्त्रादि के लिए न्यूनतम द्रव्य लिया जाता था । यहाँ राजा-रंक, गरीब-अमीर, सवर्ण-अन्त्यज का कोई भेदभाव नहीं था । सभी जातियों के छात्रों को योग्यता के आधार पर प्रवेश मिलता था । गुरुकुल से निकले स्नातक अपने नाम के आगे जातिसूचक शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे । वे विद्यालंकार, वेदालंकार, सिद्धान्त- वाचस्पति आदि का ही प्रयोग करते थे ।

७. आधी शताब्दी तक गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सवों तथा दीक्षान्त उत्सवों की धूम रही । देश का ऐसा कौन सा राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक व्यक्तित्व का धनी महापुरुष रहा होगा, जिसने इस गुरुकुल में आकर दीक्षान्त-प्रवचन न किया होगा । महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, कविगुरु रवीन्द्रनाथ, डॉ० राधाकृष्णन । सभी तो यहाँ आए थे । प्रेमचंद ने यहाँ की साहित्य परिषद् की अध्यक्षता की तो गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में पं० नेहरु का आगमन हुआ था ।

यह भी सत्य है कि राजनैतिक उथल-पुथल के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने गुरुकुल के प्रति वक्रदृष्टि अपनाई और गुप्तचरों की मिथ्या रिपोर्टों के आधार पर यह धारणा बनाई गई कि गुरुकुलों में विदेशी शासन को नेस्तनाबूत करने के लिए क्रान्तिकारी-षड्यंत्रकारी युवक तैयार किए जाते हैं । इससे पहले कि इस महनीय शिक्षण-संस्था पर सरकार का दमनचक्र चलता, दूरदर्शी आचार्य महात्मा मुंशीराम के मित्र एवं प्रशंसक दीनबंधु सी०एफ० एण्ड्रूज ने समस्या को सुलझाने की पहल की । उन्होंने उच्चाधिकारियों से भेंट की, तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश (तब संयुक्त प्रान्त) के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स मेस्टन तथा भारत के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड की गुरुकुल यात्रा हुई । उन्होंने गुरुकुल की पाठविधि, कार्यप्रणाली, विद्यार्थियों की दिनचर्या तथा नित्यप्रति की जीवनपद्धति को नजदीक से देखा और अपने भ्रम दूर किए । आचार्य मुन्शीराम ने भी उन्हें बताया कि यद्यपि गुरुकुलीय शिक्षा का आदर्श देशभक्त नागरिक बनाना है, ऐसे नागरिक जो स्वदेश को पराधीनता की बेड़ियों से उसे मुक्त कराये, तथापि यह गुरुकुल षड्यंत्रकारियों को उत्पन्न करने का कोई कारखाना नहीं है । यहाँ न तो बम बनाने की ट्रेनिंग दी जाती है और न यहाँ घृणा के बीज बोये जाते हैं ।

समय-समय पर उक्त राज्याधिकारियों के अतिरिक्त अन्य विदेशी लोग भी गुरुकुल आकर वहाँ की यथार्थ जानकारी लेते रहे । कालान्तर में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बनने वाले मजदूर दल के नेता रेमजे मैकडानल्ड ने गुरुकुल की यात्रा की तथा अपने विचार बनाए ।

एक अमेरिकन शिक्षाविद् राल्फ फेल्प्स ने पर्याप्त समय तक वहाँ निवास कर अपने विचार लेखबद्ध किए। इंग्लैण्ड के ट्रेड यूनियन नेता सिडनी वेब ने भी गुरुकुल को निकट से देखा था। अभी कुछ समय पूर्व मेरे अमेरिकन मित्र तथा मिस्सौरी स्टेट यूनिवर्सिटी में धर्मविज्ञान के प्रोफेसर डॉ० लेवेलिन ने गुरुकुल में कुछ काल तक निवास किया था। जर्मनी के एक शोधछात्र गुरुकुल शिक्षाप्रणाली पर शोधकार्य हेतु सामग्री संग्रहार्थ गुरुकुल प्रवास किया था। ऐसे शोधकर्मियों की संख्या पर्याप्त है।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि गुरुकुल कांगड़ी के रूप में जो आदर्श राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था मूर्त्त रूप में आई, उसका अनुकरण अन्य मतावलम्बियों ने भी किया तथा गुरुकुल शिक्षा के आदर्शों को प्रधानता देते हुए अपनी शिक्षण संस्थाएं स्थापित कीं। यहाँ उनका नामोल्लेख ही पर्याप्त है- रवीन्द्रनाथ ठाकुर का शान्ति-निकेतन, जिसे कवि के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने स्थापित किया। वाराणसी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त द्वारा स्थापित काशी विद्यापीठ, अहमदाबाद में महात्मा गांधी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ, राजस्थान में पं० हीरालाल शास्त्री द्वारा स्थापित वनस्थली विद्यापीठ। इसी प्रकार जैनों ने भी अपने गुरुकुल स्थापित किए तथा सनातनधर्मियों ने गुरुकुल की प्रतिद्वन्द्विता में ऋषिकुलों की स्थापना की। मारिशस के भुवले द कुर्बेन ग्राम में भी गुरुकुल की स्थापित किया गया है, जहाँ पं० उषा शर्मा अध्यापन रत हैं।

***

पता - ८/४२५, नन्दनवन, जोधपुर, राजस्थान

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥

आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं- बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना।

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने अधीन कर अपने से ही अपने आत्मा को जानने की इच्छा करे; क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है।

गुरुकुलों का शिक्षाक्षेत्र को योगदान

-प्रो० रामसिंह, सांसद, कुलपति

एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत), बी०एड०, एल०एल०बी०, विद्यावाचस्पति

प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली में गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली का महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्राचीन काल में गुरुकुल प्रकृति की गोद में, एकान्त स्थान पर सुरम्य प्राकृतिक छटा से घिरे हुए वातावरण में बहती हुई नदियों के किनारे हुआ करते थे। आजकल के शिक्षण-संस्थानों की तरह इन गुरुकुलों के कुलपति अथवा आचार्य का नाम प्रसिद्धि को प्राप्त होता था। पढ़ने वाले विद्यार्थी चाहे राजा के राजकुमार हों अथवा सामान्य प्रजाजनों के सुपुत्र, सबको गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाना पड़ता था। गुरुकुलों में वेद, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थों की शिक्षा के साथ साथ भाषा, इतिहास, व्याकरण आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। गुरुकुलों में आदर्श एवं व्यवहार दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। पुस्तकीय सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान भी प्रदान किया जाता था। सादा जीवन उच्च विचार ही इन गुरुकुलों का आदर्श था। त्याग, तपस्या और साधना का जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मचारीगण गुरुजनों के चरणों में शिक्षा प्राप्त करते थे। समाज में उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्चस्व था, अतः ब्रह्मचर्य आश्रम अर्थात् (६ से २५ वर्ष की आयु के बालक) अपने जीवन के सर्वांगीण विकास (शारीरिक, सैद्धान्तिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास) हेतु आचार्यकुल में शिक्षा प्राप्त करने जाते थे।

गुरुकुलों के आचार्य भी अपने-अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान् एवं लब्धप्रतिष्ठ होने के साथ-साथ आचारशास्त्र के नियमों को तथा मानवीय मूल्यों को स्वयं अपने जीवन में धारण करने वाले आदर्श व्यक्ति होते थे। जब तक इस देश में गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली का वर्चस्व रहा भारत विश्व का गुरु रहा। यहाँ के बड़े-बड़े गुरुकुलों एवं विश्वविद्यालयों में विश्व के अनेक देशों से लोग शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। वर्तमान यूरोप के लोग जब जंगली अवस्था में रहते थे, तब भारत ज्ञान के सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैला रहा था। तभी तो महाराज मनु ने लिखा है "**एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशाद् अग्रजन्मनः स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः**" अर्थात् संसार के समस्त मानव भारत देश में उत्पन्न होने वाले विद्वान् ब्राह्मणों के चरणों में बैठकर चरित्र एवं सदाचार की शिक्षा प्राप्त करें।

१९वीं शताब्दी के ऐसे घोर अन्धकार युग में स्वराज्य के प्रथम मंत्रद्रष्टा, राष्ट्रीय पुनर्जागरण के पुरोधा तथा सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत तथा आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव हुआ उन्होंने पुनः वेदों की ओर लौटने का आह्वान करते हुए भूले भटके भारतीयों को पुनः वेदों का ज्ञान कराया तथा प्राचीन गौरव गरिमा से भारतीयों को अवगत कराते हुए अज्ञानरूपी अंधकार से निकालकर ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर अग्रसर होने का आह्वान किया।

वेदों की व्याख्या करते हुए तथा अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, व्यवहारभानु, आर्याभिविनय, ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली की ओर ध्यान खींचा तथा आर्ष ग्रन्थों एवं आर्ष शिक्षापद्धति का गुरुकुलीय शिक्षापद्धति से अध्ययन-अध्यापन करने पर प्रबल समर्थन एवं पुरजोर आह्वान किया। उनके जीवन काल में पुनः गुरुकुल खुले। १८८३ में उनके निधन के पश्चात् उनके योग्य उत्तराधिकारी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की। कालान्तर में आर्यसमाज के उद्भट विद्वान् तथा महान् दार्शनिक स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार की स्थापना की, जो इस वर्ष अपनी स्थापना के गौरवपूर्ण १००वर्ष पूर्ण कर शताब्दी समारोह मना रहा है। उसके बाद तो अनेक आर्यसमाजों एवं सन्त-महात्माओं ने सारे देश में सैकड़ों गुरुकुलों की स्थापना की, जो भारतीय शिक्षा एवं राष्ट्रीय जागृति एवं सामाजिक चेतना के केन्द्र बन गए। जिनसे हजारों विद्वान, उपदेशक, प्रचारक तथा प्रबुद्ध नेतागण पढ़लिख कर शिक्षित-दीक्षित होकर गुरुकुलों से निकले एवं उन्होंने सारे देश में स्वाधीनता-संग्राम

की चिनगारी को प्रज्वलित करने तथा आजादी की लड़ाई में भाग लेने में लाखों लोगों को प्रेरित किया। परिणामस्वरूप १५ अगस्त १९४७ को भारत अंग्रेजों की अधीनता से मुक्त हुआ।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि इन गुरुकुलों का राष्ट्र, समाज, शिक्षा, स्वाधीनता संग्राम, महिला-जागृति, दलितोत्थान तथा राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बनाने में तथा वैदिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इन गुरुकुलों ने आर्यसमाज की विचारधारा एवं उसके प्रचार-प्रसार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली की यह मान्यता रही है "**सा विद्या या विमुक्तये**" अर्थात् विद्या वह है, जो हमें बन्धन से मुक्त कराती है, आत्मज्ञान कराती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार 'जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियता आदि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें' उसको शिक्षा कहते हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में लिखा है- '**विद्ययाऽमृतमश्नुते**' अर्थात् विद्या से अमरत्व की उपलब्धि होती है। योगेश्वर श्री कृष्ण ने भी गीता में कहा है '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है। नीतिकारों ने भी कहा है '**ज्ञानं भारः क्रियां विना**' अर्थात् बिना क्रिया के ज्ञान भार है। इस कसौटी पर गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली सर्वोत्तम सफल सिद्ध हुई है।

आज देश के बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्री वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन की बात कहते हैं, परन्तु यह परिवर्तन किस दिशा में हो, यह निर्णय वे नहीं कर पाते हैं। ऐसे भटकाव की स्थिति में मार्गदर्शन एवं शीतलता, तृप्ति और शान्ति की प्राप्ति के लिए गुरुकुलतरु की छाया में बैठकर चिंतन करना होगा, क्योंकि गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ही वह गंगोत्री है, जहां से सर्वांगीण विकास हेतु पवित्र ज्ञान की भागीरथी प्रवाहित हो सकती है। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली कोरे अक्षरज्ञान की बात नहीं करती, अपितु वह व्यवहारकुशल, चरित्रवान्, देशभक्त, बहुआयामी व्यक्तित्व वाला आदर्श मानव बनाती है।

सामाजिक पुनर्जागरण के पुरोधा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। इसका कारण है कि व्यक्ति, परिवार, समाज तथा विश्व की उन्नति तथा सुख, समृद्धि तभी संभव है, जब स्त्री-पुरुष सुशिक्षित हों। अतः सन्तान को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभाव को धारण कराना, माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्तव्य है।

अतः गुरुकुल शिक्षा का मात्र उद्देश्य यह नहीं था कि मनुष्य को आजीविका के योग्य या अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम बना दिया जाय, अपितु आत्मा में निहित शक्तियों का विकास करते हुए प्रथम अभ्युदय की प्राप्ति और तदनन्तर निःश्रेयस तक पहुँचाना शिक्षा का उद्देश्य था। संक्षेप में गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की महत्त्वपूर्ण देन निम्नलिखित है-

१. **अनिवार्य तथा समान शिक्षा** गुरुकुलीय शिक्षापद्धति में अनिवार्य और समानशिक्षा पर जोर दिया जाता है। राजा हो या रंक सब एक साथ गुरु के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करते हैं। आज की तरह अमीरों के लिए अलग तथा गरीबों के लिए अलग इस तरह का भेदभाव गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में नहीं था। गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था।

२. **बालक-बालिकाओं के लिए पृथक्-पृथक् व्यवस्था** गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली सहशिक्षा की विरोधी रही है। बालक-बालिकाओं के लिए अलग-अलग एक दूसरे से दूर शिक्षा केन्द्र होते थे, जहां पढ़ाने वाले भी बालकों के गुरुकुलों में शिक्षक पुरुषगण तथा बालिकाओं के शिक्षाकेन्द्र में महिलाएं शिक्षण का कार्य कर सकती थीं।

३. **ब्रह्मचर्य के पालन पर जोर**- विद्यार्थीकाल जीवन का स्वर्णकाल है। ब्रह्मचर्य आश्रम सब आश्रमों की नींव है। गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में चरित्रनिर्माण तथा सदाचार पर जोर देने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करना आवश्यक माना है, जिससे बालक की सद्वृत्तियों का भली प्रकार से विकास हो सके।

४. सर्वांगीण विकास पर जोर- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली एकांगी नहीं होती है. इसमें बालक के व्यक्तित्व का समग्र, संतुलित तथा सर्वांगीण शारीरिक, आत्मिक एवं बौद्धिक सब प्रकार का विकास किया जाता है ।

५. गुरु-शिष्य के बीच मधुर सम्बंध- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में छात्रों को गुरुजनों के आश्रम में ही रहना पड़ता है । गुरु के सांनिध्य में ही बालकों की शिक्षा दीक्षा होती है. उनका संबंध औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों तरह का रहता है, जिससे एक दूसरे को भली प्रकार समझकर सम्यक् और सुचारु ज्ञान प्रदान किया जाता है ।

६. सादा जीवन-उच्च विचार की प्रमुखता- गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली का सादगी महत्त्वपूर्ण आधार है । सब प्रकार की तड़क-भड़क से दूर फैशन, विलासिता, ऐश्वर्य आदि से दूर कठोर त्यागमय जीवन एवं विशाल चिंतन की ओर ध्यान दिया जाता है ।

७. खान-पान एवं सत्ता की समानता- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली की महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें छात्रों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता, चाहे कोई राजपुत्र हो या कुबेरपुत्र या फिर कोई निर्धन व्यक्ति का पुत्र हो, उसे अपने माता-पिता की समृद्धि के अनुसार सुविधा देने का प्रावधान नहीं है ।

८. यम और नियमों का पालन- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में छात्रों को यम और नियमों का पालन करना भी आवश्यक है ।

९. आचार्य का महत्त्वपूर्ण योगदान- शिक्षा जहाँ जीवन का अनिवार्य अंग है, वहीं शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक (आचार्य) की योग्यता और उसका आचरण भी बहुत महत्त्वपूर्ण है । स्वामी दयानन्द का स्पष्ट मत है कि 'जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुराचारी हों, उनसे शिक्षा न दिलावें । किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों, वे पढ़ाने और शिक्षा देने के योग्य हैं । आचार्य सदाचारी विद्वान्, धार्मिक, प्रेमपूर्वक पढ़ानेवाला तथा छात्रहित में अपना सब कुछ समर्पित कर देने वाला होना चाहिए । आचार्य की शिक्षा देने की प्रक्रिया भी अत्यधिक सुगम एवं प्रयोगात्मक होनी चाहिए ।

१०. संस्कारों पर जोर- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में बालक को सुसंस्कृत, शिष्ट एवं श्रेष्ठ मानव बनाने के लिए निरंतर प्रयास किया जाता है, ताकि वह परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए उपयोगी हो ।

११. मातृभाषा एवं हिन्दी, संस्कृत की शिक्षा पर जोर- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में बालक को मातृभाषा, आर्यभाषा हिन्दी तथा भारतीय ज्ञान की भंडार संस्कृत का ज्ञान विशेष रूप से अन्य विषयों के अध्ययन के साथ-साथ करवाया जाता है ।

१२. भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा से अवगत कराना- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में बालक को प्रारम्भ से ही भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा से अवगत कराया जाता है । अध्ययन अध्यापन के साथ-साथ संयमित जीवनचर्या, संध्या, हवन, पंच महायज्ञ का ज्ञान आदि की शिक्षा भी प्रारम्भ से दी जाती है ।

१३. गुरुकुल शिक्षा में विज्ञान को स्थान- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में प्राचीन तथा अर्वाचीन एवं आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्राचीन आदर्श एवं परम्पराओं आदि सबका समावेश है । गुरुकुलीय शिक्षा की सम्पूर्ण जीवनशैली एवं शिक्षा-शैली विज्ञान एवं तर्क के सहारे खड़ी है ।

१४. नैतिक शिक्षा पर जोर- गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली ने हमेशा नैतिकता पर जोर दिया है, जबकि आधुनिक शिक्षाप्रणाली में नैतिकता की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता । नैतिकता-विहीन शिक्षा राष्ट्र के लिए हानिकारक होती है, क्योंकि उसमें माता-पिता, गुरुजन, परिवार, समाज तथा राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध छात्रों को नहीं कराया जाता है । गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में विद्यार्थी को अपने लक्ष्य की पहचान हो सके, अपने कर्तव्यों को जान सके, वह केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु सबके लिए जिए, ऐसी नैतिकता का विकास किया जाता है । नैतिकता के आधार पर ही सभ्य समाज का

निर्माण हो सकता है ।

१५. आजीविका का सहारा- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में व्यक्ति को जीवन के संचालन हेतु उपयुक्त कार्यक्षेत्र प्राप्त हो सके, आजीविका कमा सके, अतः प्रत्येक छात्र को आयुर्वेद, धनुर्वेद, अथर्ववेद, शिल्प एवं जीवनोपयोगी शिक्षा का अध्ययन भी कराया जाता है । अभ्युदय और निःश्रेयस शिक्षा का उद्देश्य होता है ।

१६. अनुशासन, राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की शिक्षा पर जोर- गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में अनुशासन तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत विचारों, भावनाओं एवं देशभक्ति की शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है । यही कारण है कि आजादी की लड़ाई के दिनों में गुरुकुल स्वाधीनता संघर्ष के केन्द्र तथा आजादी के बाद राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा देने वाले केन्द्र बन गए ।

इस प्रकार से गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली ने देश की शिक्षाप्रणाली को महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी योगदान दिया है । गुरुकुलीय शिक्षा आधुनिक भारतीय शिक्षा में एक अनूठा प्रयोग है, इसके द्वारा प्राचीन भारतीय ज्ञान, संस्कृति एवं शिक्षा की रक्षा हुई है । गुरुकुलों ने देश में राष्ट्रीयता का विकास किया है । पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान और भारतीय विद्या के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयास गुरुकुलों द्वारा हुए हैं, जो अत्यन्त सराहनीय हैं ।

***

पता- ३१३ चंदवरदाई, अजमेर (राजस्थान)

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः

सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः ।

स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः

षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।

राजन् ! नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निडर होकर रहना- ये छः मनुष्यलोक के सुख हैं।

गुरुकुलीय शिक्षापद्धति का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिष्कृत रूप

- डॉ० जयदत्त उप्रेती

वर्तमान युग में गुरुकुलों की कल्पना और सम्भावना मूलतः महर्षि दयानन्द सरस्वती की देन है। उन्होंने जहाँ एक ओर वेदप्रचारक, पाखण्डनिवारक और समाजसुधारक "आर्यसमाज" नामक संगठन को जन्म दिया, वहाँ अपने कालजयी और क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और वेदभाष्य, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका सदृश ग्रन्थों की रचना करके ब्रिटिश शासनाधीन भारत में शिक्षा के क्षेत्र में, आज से सवा सौ वर्ष पूर्व, महान् क्रान्ति का सूत्रपात किया था।

ऋषि दयानन्द के प्रवचनों और उनके ग्रन्थों के अध्ययन से प्रेरित होकर महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द), स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा नारायण स्वामी ने क्रमशः गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन आदि गुरुकुलों की स्थापना की, जो आज तक कुछ उतार-चढ़ाव के साथ चल रहे हैं। उनके पश्चात् तो अनेक आर्य विद्वानों और संन्यासी महात्माओं ने देश में स्थान-स्थान पर अनेक गुरुकुल स्थापित किए। इनमें बालकों के तथा बालिकाओं के गुरुकुल पृथक्-पृथक् हैं, जो कि निरन्तर चल रहे हैं। ऋषि-भक्तों के प्रयत्न से अब तो नेपाल, मॉरीशस, थाइलैंड आदि देशान्तरों में भी वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु गुरुकुल स्थापित हो रहे हैं। जो इस बात का शुभ-संकेत दे रहे हैं कि चरित्रवान् नागरिकों के निर्माण और भारत के प्राचीन वैभवरूप वैदिक ज्ञान-विज्ञान के प्रति संसार के लोगों का रुझान व झुकाव बढ़ रहा है।

विगत सौ वर्षों के अन्तराल में इन गुरुकुलों ने देश को अनेक वेदज्ञ और संस्कृतज्ञ विद्वान्, साहित्यकार, वेद-वेदांगों और भारतीय आस्तिक दर्शनों के उच्चकोटि के व्याख्याता और भाष्यकार, लेखक, कवि, पत्रकार, प्राध्यापक, आचार्य, राजनीतिज्ञ एवं देशभक्त प्रदान किए हैं। वेदोपदेशकों, धर्म-प्रचारकों और शास्त्रार्थकुशल वाग्मी विद्वानों का भी इनमें समावेश किया जा सकता है, जिन्होंने "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के वेद-सन्देश को ग्राम, नगर, देश, देशान्तरों तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। यद्यपि अनेक ऐसे विद्वान् हुए हैं, जिनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुलेतर शिक्षा-संस्थानों में हुई और आर्यसमाज तथा आर्यविद्वानों के सम्पर्क में आने से तथा ऋषि दयानन्द-रचित सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों को पढ़कर, अपने स्वाध्याय के बल पर अनेक उच्चकोटि के ग्रन्थों के रचयिता हुए हैं। इन सब प्रकार के विद्वानों का यदि इस प्रसंग में नाम स्मरण न किया जाय तो कृतघ्नता होगी। कतिपय नाम ये हैं- पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती), पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार, श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, विद्यामार्तण्ड प्रियव्रत वेदवाचस्पति, डॉ० निरूपण विद्यालंकार, प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार, श्री वागीश्वर विद्यालंकार, चतुर्वेदभाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति (स्वा० धर्मानन्द सरस्वती), कवि मेधाव्रताचार्य (दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य प्रणेता), आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि, डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, डॉ० देवदत्त शर्मोपाध्याय, पं० वीरसेन वेदश्रमी, पं० शिवकुमार शास्त्री, ओम्प्रकाश शास्त्री, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, स्वा० वेदानन्द सरस्वती, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, म०म० युधिष्ठिर मीमांसक, आचार्य विश्वश्रवाः, पं० बिहारीलाल शास्त्री, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, स्वा० सत्यप्रकाश सरस्वती, पं० भगवद्दत्त, बी०ए०, रिसर्च स्कालर, श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री, स्वा० ओमानन्द सरस्वती, स्वा० विश्वेश्वरानन्द, स्वा० व्रतानन्द, अनेक खण्डों में वैदिक पदानुक्रमकोश जैसे महान् श्रमसाध्य अनुसंधान ग्रन्थों के प्रणेता/सम्पादक आचार्य विश्वबन्धु, शास्त्रार्थ-महारथी अमरस्वामी, स्वा० धीरेन्द्र सरस्वती इत्यादि तथा वर्तमान विद्वानों में स्वा० मुनीश्वरानन्द सरस्वती, स्वा० वेदमुनि परिव्राजक, स्वामी इन्द्रदेव यति, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य विशुद्धानन्द मिश्र, पं० सत्यानन्द वेदवागीश, डॉ० भवानीलाल भारतीय, प्रो० सत्यव्रत शास्त्री, प्रो० रमाकान्त उपाध्याय, श्री राजेन्द्र जिज्ञासु, आचार्य विजयपाल विद्यावारिधि, डॉ० रघुवीर वेदालंकार, डॉ० धर्मवीर, डॉ० सोमदेव शास्त्री इत्यादि उल्लेखनीय हैं। विदुषी

देवियों में भी स्व० सावित्री देवी शर्मा आचार्या, प्रज्ञादेवी विद्यावारिधि, आचार्या मेधादेवी, सूर्यादेवी चतुर्वेदा, डॉ० प्रियंवदा वेदभारती इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त विद्वानों/विदुषियों में अधिकांश गुरुकुलों की ही उपज है। इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि गुरुकुलों की दिनचर्या और शिक्षापद्धति अच्छी नहीं रही है। अवश्य अच्छी और तपस्यापूर्ण रही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु आज समय की धारा नए-नए वैज्ञानिक अनुसन्धानों के कारण तीव्र गति से परिवर्तित हो रही है। विश्व में राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अनुदिन भारी परिवर्तन हो रहे हैं। तदनुसार लोगों के रहन-सहन तथा दैनिक उपयोगी उपकरणों तथा भोग्य वस्तुओं में भी वृद्धि हो रही है। उदाहरणार्थ, दैनिक समाचार-पत्र, आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूरभाष (टेलीफोन, मोबाइल फोन), बिजली और बिजली से चलने वाले यन्त्र, जैसी वस्तुओं का घरों में होना आवश्यक सा हो चला है, तो इनके संचालन और यथोक्त उपयोग की जानकारी का होना भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में यह वांछनीय प्रतीत होता है कि एतद्विषयक अधिक नहीं तो सामान्य जानकारी गुरुकुलीय छात्रों को भी अन्य विद्यालयों के समान प्रदान की जाय। साथ ही प्रशासनिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक, औद्योगिक और व्यावसायिक विषयों से सम्बन्धित सामान्य जानकारी, भारत के प्राचीन से लेकर अधुनातन इतिहास और भूगोल विषयों की जानकारी (जिन सबको समुचित रूप में सामान्य-ज्ञान जैसे शब्दों से समझा जा सकता है), छात्रों को दिलाने की व्यवस्था होना समयानुसार आवश्यक प्रतीत होता है।

समस्त गुरुकुलों में समान प्रकार की पाठविधि और समान प्रकार की परीक्षाएं आयोजित करना गुरुकुलों में एकत्व और पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़ करने के लिए संगठन की दृष्टि से वांछनीय है। सम्प्रति किन्हीं गुरुकुलों में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी की पाठविधि और परीक्षाएं चलती हैं, तो किन्हीं में महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक की और किन्हीं में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार की। इस प्रकार विविधता चल रही है। यह अच्छा नहीं लगता। अन्य सरकारी, गैरसरकारी संस्थाओं की भांति आर्यसमाज के इन गुरुकुलों का भी एक स्थायी संगठन और प्रशासकीय इकाई होना चाहिए। तभी समान रूप से सब छोटे-बड़े गुरुकुल आगे बढ़ सकेंगे।

ऋषि दयानन्द की कृपा और प्रेरणा से चारों वेदों के अध्ययनाध्यापन की यदि कहीं व्यवस्था होती है तो वे ही आर्यसमाज के विविध गुरुकुल हैं। अतः इस दिशा में भी गुरुकुलों के पाठ्यक्रम में परिष्कार करने की आवश्यकता है।

***

पता- स्वस्त्ययन, तल्ला थपलिया,
अल्मोड़ा- २६३६०१, उत्तरांचल

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे।

(महर्षि दयानन्द)

वर्तमान समय में गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली की प्रासङ्गिकता

- डॉ. महावीर एम.ए. (संस्कृत, वेद, हिन्दी) व्याकरणाचार्य, डी.लिट्.

"सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वह है जो मानव को मुक्ति का मार्ग दिखाती है। भारतीय मनीषियों ने शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास द्वारा मुक्ति का साधन माना है। शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित न रहकर आध्यात्मिक चिन्तन तक का लक्ष्य निर्धारित करती है। शिक्षा का उद्देश्य सर्वांगीण विकास द्वारा उसे पूर्ण मानव बनाना है। ऐसा मानव जो परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए परम उपयोगी हो। इस प्रकार के मानव-निर्माण में महत्त्वपूर्ण घटक हैं- माता, पिता और आचार्य। आधुनिक युग-निर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में कहा है- "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् जिस बालक को प्रशस्त गुणों से परिपूर्ण माता, पिता और आचार्य प्राप्त होते हैं वह धन्य है। बालक के निर्माण में इन तीनों की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। माता, पिता अपनी सन्तान को जैसा बनाना चाहते हैं, उन्हें भी स्वयं वैसा ही बनना पड़ता है।

शिक्षा-प्राप्ति में जहाँ प्रथम घटक के रूप में माता, पिता का शिक्षित, सदाचारी, धार्मिक होना आवश्यक है, वहाँ दूसरा घटक है सुन्दर, सात्त्विक, नैसर्गिक परिवेश। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में बालक का जैसा विकास होता है, वैसा कृत्रिम वातावरण में नहीं हो सकता। वेद में कहा है-

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत। यजु० २६.१५

यही कारण है कि प्राचीन काल के गुरुकुल खुले-प्रशस्त वनों, मैदानों, नदियों के तटों और सुरम्य पर्वतों की उपत्यकाओं में, जन-कोलाहल से दूर हुआ करते थे। छान्दोग्य उपनिषद् धर्म के जिन तीन स्कन्धों की चर्चा, १. यज्ञ-अध्ययन, दान, २. कष्ट-सहिष्णुता, तप तथा ३. श्रम-संयमपूर्वक कुलवास के रूप में करती है, वह ऐसे ही शान्त-एकान्त स्थानों पर संभव है। भोग विलास के वातावरण से दूर रहकर ही बालक आत्मनिर्भर और आत्मसंयमी हो सकता है।

गुरुकुलीय शिक्षाप्रणाली में श्रम का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता था। प्रत्येक बालक को वहाँ श्रम की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। राजा और रंक के बालक बिना किसी भेदभाव के वहाँ परिश्रम कर जीवन जीना सीखते थे।

इस प्रकार पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त क्षेत्रीय-कार्य सम्पादन का प्रमाणपत्र भी तत्कालीन शिक्षा में अनिवार्य था। गुरुकुलीय शिक्षा-प्रणाली तप, त्याग और श्रम पर आधारित थी। गुरु के महत्त्व के कारण इन विद्या-केन्द्रों को गुरुकुल कहा जाता था। इस कुल का मुखिया उदार लोकचेता होता था। वह अपने सम्पर्क में आए छात्र को उसी ममता से रखता था, जैसे-माता अपने गर्भस्थ शिशु को रखती है।

इन शिक्षणालयों को कुल इसलिए कहा गया कि वहाँ बालक को निजी परिवार की क्षुद्रभावना से निकालकर एक बड़े परिवार की सामाजिक चेतना से जोड़ना था। वह किसी देश, परिवार, जाति का सदस्य नहीं, वह तो मानव कुल का सदस्य है। आचार्य बिना किसी भेदभाव के जब सभी बालकों को अपने समीप बैठाकर "सह नाववतु" और "सह नौ भुनक्तु" का उपदेश करता था, तब विघटन की भावना स्वतः समाप्त होकर संगठन की भावना उत्पन्न हो जाती थी।

प्राचीन समय में इस प्रकार के गुरुकुलों की एक सुदीर्घ परम्परा थी। इस प्रणाली में शिक्षा प्राप्तकर राष्ट्र का ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व का मार्ग-दर्शन करने वाले अनेक महापुरुष हुए हैं। प्रश्नोपनिषद् में सुकेशा आदि पिप्पलाद के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में वरुण से भृगु, छान्दोग्य उपनिषद् में हारिद्रुमत से सत्यकाम तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रजापति से इन्द्र तथा विरोचन आश्रम में ही शिक्षा ग्रहण करते थे। रामायणकाल में वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा अगस्त्य के आश्रम गुरुकुल ही थे। भारद्वाज का आश्रम भी गुरुकुल ही था।

इस प्रकार गुरुकुलों की शिक्षा-पद्धति व्यावहारिक और चरित्र-निर्माणमूलक थी। इसके लिए आश्रमवास अनिवार्य था, वहाँ रहते हुए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना तथा आचार्य के निकट रहकर उनके व्यक्तिगत जीवन से शिक्षा-ग्रहण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। प्राकृतिक वातावरण में रहकर बलिष्ठ शरीर का निर्माण, समानता का जीवन जीकर सामाजिक चेतना की प्राप्ति तथा गुरु के आदर्श जीवन से प्रेरणा लेकर आत्मिक विकास अथवा सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति की विशिष्टताएं थी। भारतवर्ष में सुदीर्घ काल तक इस परम्परा में शिक्षा-प्राप्त, वैदुष्य, उज्ज्वल चरित्र, श्रमनिष्ठा, देशभक्ति, गुरुजनों के प्रति असीम श्रद्धा आदि गुणों से परिपूर्ण स्नातकों द्वारा इस देश की प्रतिष्ठा दिग्-दिगन्त में व्याप्त की गई थी। उस स्वर्णिम युग के लिए मनु जी ने उद्घोषणा की थी-

एतद्देश-प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः । मनु० २.२०

अर्थात् पृथिवीस्थ सभी मानव इस देश में उत्पन्न अग्रजन्मा ब्राह्मणों से अपने-अपने चरित्र की शिक्षा प्राप्त करते थे। यह देश विश्वगुरु था, किन्तु परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव है। जो राष्ट्र कभी विश्व का नेतृत्व करता है, कभी वह उन्नति की दौड़ में बहुत पीछे रह जाता है। भारत की दशा भी यही हुई। पाखण्ड, अन्याय, अत्याचार, अविद्या का दानव प्रबल हो उठा, सद्वृत्तियों का तेज दुर्बल हो गया। ऐसे कठिन काल में काठियावाड़ की धरती पर टंकारा में मूलशंकर का उदय और सच्चे शिव की खोज करते-करते दिव्य तेजधारी महर्षि दयानन्द के रूप में भारतीय गगन में सूर्य के समान चमकना, भारतीय इतिहास की अपूर्व घटना है। स्वामी दयानन्द ने सर्वत्र व्याप्त अज्ञान, पाखण्ड और दुराचार को ललकारा, शास्त्रार्थ किए, विष के प्याले पिये, किन्तु सत्यज्ञान का प्रकाश करते रहे। वेद का भाष्य किया, सत्यार्थप्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ लिखकर सत्य का मार्ग दिखाया। उसी अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति का उद्घोष किया। महर्षि के अनन्य शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द वेद-निर्दिष्ट तथा स्वामी दयानन्द प्रतिपादित शिक्षा-प्रणाली के अनुसार भगवती भागीरथी के पावन तट पर कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल की स्थापना कर एक नए इतिहास का शुभारम्भ किया। गुरुकुल के यशस्वी स्नातकों ने समाज और राष्ट्र-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने चरित्र और योग्यता की छाप लगा दी। देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में गुरुकुल की अग्रगण्य भूमिका रही।

संस्कृत और संस्कृति की प्रतिष्ठापना में गुरुकुल के स्नातकों ने अद्भुत कार्य किया, यह एक लम्बा इतिहास है। गुरुकुल कांगड़ी से प्रेरणा लेकर देश में बालक-बालिकाओं के अनेक गुरुकुल स्थापित हुए। एक नए भारत का सपना साकार होता हुआ दिखाई देने लगा। इसी परम्परा में स्वामी दयानन्द के पूज्य गुरु ब्रह्मर्षि विरजानन्द जी की पुण्यभूमि में भी गुरुकुल करतारपुर की स्थापना हुई।

***

पता- प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत,
डीन, प्राच्य विद्या संस्थान,
गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० हरिद्वार

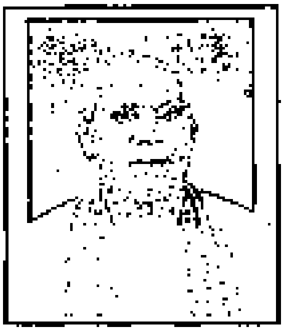

गुरुकुलों का शिक्षाक्षेत्र को योगदान

\- आचार्य नन्दकिशोर विद्यावाचस्पति

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में शिक्षा के विषय में आर्ष-प्रणाली पर विशेष रूप में जोर दिया है। १९वीं सदी के पूर्वार्ध में स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दर्शनानन्द जी ने गुरुकुलों का बीजारोपण किया। स्वामी दयानन्द के पदचिह्नों पर चलते हुए उन्होंने 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए', इस आर्यसमाज के नियम को आधार बनाकर वैदिक शिक्षा का पुनः प्रचलन शुरू किया। गुरुकुलों का शिक्षा के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान रहा है।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा गुरुकुल की स्थापना- स्वामी दर्शनानन्द का जन्म १८६१ में जगरावां (लुधियाना, पंजाब) में हुआ था। इनके पिता श्री पण्डित रामप्रताप एक सम्पन्न व्यापारी थे। संन्यास लेने से पूर्व इनका नाम कृपाराम था। पिताश्री की इच्छा थी कि उनका पुत्र भी व्यापार के क्षेत्र में उन्नति करते हुए एक सम्पन्न धनाढ्य सद्गृहस्थ की तरह जीवन यापन करें। इसी उद्देश्य से ११ वर्ष की आयु में इनका विवाह भी कर दिया, किन्तु व्यापार में मन नहीं लगा और महर्षि दयानन्द के व्याख्यानों से प्रभावित होकर सत्य शास्त्रों का अध्ययनकर धर्म तथा देश की सेवा में अपना जीवन लगा देने का निश्चय कर लिया था और बनारस आकर विद्याध्ययन करने लगे।

लाला मुंशीराम ने गुरुकुल की स्थापना का प्रयत्न सन् १८९८ में प्रारम्भ किया था। अगस्त १८९८ में उन्होंने गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये एकत्र करने के लिए यात्रा प्रारम्भ की थी और नवम्बर १८९८ में आर्य-प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने अपने प्रबन्ध में गुरुकुल को स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकृत किया था। इसी के अनुसार पहले गुजरांवाला में गुरुकुल की स्थापना की गई (मई १९००) और बाद में उसे हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में ले जाया गया।

गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली की पुनःस्थापना का प्रयत्न गुजरांवाला में आर्य प्रतिनिधिसभा, पंजाब द्वारा गुरुकुल खोले जाने से पूर्व ही शुरू किया जा चुका था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जिस शिक्षा-पद्धति का अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया था, अनेक आर्यविद्वान् उसे क्रियान्वित करने का विचार कर रहे थे। इनमें स्वामी दर्शनानन्द प्रमुख थे। उन्होंने १८९८ में सिकन्दराबाद जिला बुलन्दशहर में एक गुरुकुल की स्थापना की और फिर सन् १९०३ में बदायूं में। इसके दो वर्ष पश्चात् विरालसी जिला मुजफ्फरनगर में स्वामी जी द्वारा एक अन्य गुरुकुल की स्थापना की गई। ज्वालापुर में गुरुकुल महाविद्यालय के संस्थापक भी स्वामी दर्शनानन्द ही थे। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक युग में प्राचीन भारतीय शिक्षाप्रणाली के अनुसार शिक्षण-संस्थाओं की स्थापना और उसे लोकप्रिय बनाने का प्रथम श्रेय स्वामी दर्शनानन्द जी को ही दिया जाना चाहिए। सन् १८९८ में उन्होंने सिकन्दराबाद में जिस गुरुकुल को स्थापित किया, वही बाद में फर्रुखाबाद ले जाया गया और फिर वृन्दावन। स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों से विश्वविख्यात लेखकों, पत्रकारों, लब्धप्रतिष्ठित वैदिक विद्वानों का अधिक संख्या में प्रादुर्भाव हुआ। जिसमें पण्डित उदयवीर शास्त्री दर्शनाचार्य, डॉ० हरिदत्त शास्त्री सप्ततीर्थ, डॉ० सूर्यकान्त, श्री क्षेमचन्द्र सुमन, श्री प्रकाशवीर शास्त्री (सांसद), आचार्य लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य नन्दकिशोर विद्याभास्कर, श्री गौरीशंकर-शिक्षामंत्री (राजस्थान) इत्यादि उल्लेखनीय है। स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुलों का शिक्षा के क्षेत्र में देश-विदेश में विशेष योगदान रहा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा गुरुकुलों की स्थापना- स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम) का जन्म जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में सन् १८५६ में हुआ। पिता श्री नानकचन्द उत्तर-प्रदेश में पुलिस-सर्विस में थे और सहारनपुर,

बलिया, काशी, मिर्जापुर, बदायूँ और बरेली आदि स्थानों पर इंस्पेक्टर व कोतवाल के पदों पर थे। ब्रिटिश शासन के उस काल में पुलिस अफसरों को न धन की कमी होती थी और न शक्ति की।

गुजरांवाला में वैदिक पाठशाला पहले ही विद्यमान थी। १९ मई, १९०० को उसी के साथ गुरुकुल की भी स्थापना कर दी गई। भक्त आनन्दस्वरूप की वाटिका में पांच कमरों का निर्माणकर उनमें ब्रह्मचारियों के निवास के लिए आश्रम खोल दिया गया। लाला मुंशीराम ने अपने दोनों पुत्र हरिश्चन्द्र और इन्द्रचन्द्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कराये। ये गुरुकुल के पहले ब्रह्मचारी थे। इनके अतिरिक्त अन्य आर्य परिवारों के भी २० बालक गुरुकुल में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार गुरुकुल के खुलते ही उसमें शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारियों की संख्या २२ हो गई।

लाला मुंशीराम इस बीच गुरुकुल के लिए उपयुक्त स्थान की तलाश में तत्पर थे। शीघ्र ही उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त हो गई। मुंशी अमनसिंह ने अपनी जमींदारी को कांगड़ी गाँव की १४०० बीघा जमीन गुरुकुल को दान में दे दी और २ मार्च १९०२ को कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना हो गई। कांगड़ी के पश्चात् स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कुरुक्षेत्र, इन्द्रप्रस्थ, सूपा (गुजरात) एवं कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्थापना में योगदान दिया।

अंग्रेजों का शासन काल था, मत-मतान्तरों का बोलबाला था। तत्कालीन समय में राष्ट्रीय स्तर पर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने और स्वामी दर्शनानन्द जी ने गुरुकुलों की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुलों का विस्तार किया। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से ख्यातिप्राप्त प्रथम स्नातक के रूप में पं० हरिश्चन्द्र और इन्द्र विद्यावाचस्पति इस गुरुकुल के स्नातक हुए। यहाँ से सैकड़ों स्नातक, लेखक, लब्धप्रतिष्ठित वैदिक विद्वानों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें डॉ० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पं० जयदेव विद्यालंकार (वेदभाष्यकार), डॉ० रामनाथ वेदालंकार, आचार्य अभयदेव विद्यालंकार, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार, पं० क्षितीश वेदालंकार इत्यादि विशेष उल्लेखनीय हैं।

गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान रहा है। इन्हीं गुरुकुलों को देखकर अनेक गुरुकुलों का शिक्षा के क्षेत्र में प्रादुर्भाव एवं विस्तार हुआ है। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं-

आर्ष गुरुकुलों की परम्परा में- १. गुरुकुल चित्तौड़गढ़, २. गुरुकुल झज्जर, ३. श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ, ४. आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा। ५. आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय होशंगाबाद, ६. गुरुकुल आश्रम आमसेना उड़ीसा, ७. गुरुकुल महाविद्यालय रुद्रपुर (तिलहर), ८. गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास उड़ीसा, ९. श्रीमद्दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ उड़ीसा, १०. दयानन्द वैदिक उपदेशक विद्यालय यमुनानगर, ११. संस्कृत विद्यालय दयानन्द मठ दीनानगर, १२. पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़ रेवली (सोनीपत), १३. आर्ष गुरुकुल खानपुर मन्दाना, १४. आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय आबू पर्वत (राजस्थान), १५. आर्ष गुरुकुल नवापारा रायपुर छत्तीसगढ़, १६. आर्ष गुरुकुल टिकाऊला, १७. आर्ष गुरुकुल मन्झावाली (फरीदाबाद), १८. आर्ष गुरुकुल अयोध्या, १९. गुरुकुल वृन्दावन मथुरा, २०. गुरुकुल बदायूँ, २१. गुरुकुल विराटनगर, नेपाल, २२. कन्या गुरुकुल देहरादून, २३. कन्या गुरुकुल नरेला, २४. पाणिनि कन्या महाविद्यालय, बनारस, २५. कन्या गुरुकुल लोवांकला बहादुरगढ़ (हरियाणा), २६. कन्या गुरुकुल खानपुर, सोनीपत, २७. गुरुकुल महाविद्यालय भैंसवाल, २८. कन्या गुरुकुल हाथरस, २९. कन्या गुरुकुल कनखल, ३०. आर्ष कन्या गुरुकुल बड़ौदा।

इस प्रकार से शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुलों का विशेष योगदान रहा है। वर्तमान समय में गुरुकुलों की महती प्रासङ्गिकता है। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के शताब्दी के अवसर पर अधिक से अधिक गुरुकुलों की स्थापना करके हम स्वामी दर्शनानन्द जी के प्रति सच्ची पुष्पांजलि अर्पित करें।

पता- गुरुकुल होशंगाबाद (म०प्र०)

गुरुकुल और विश्वविद्यालयीय शिक्षा

– कुलदीप सिंह आर्य

गुरुकुल शिक्षा–पद्धति १९वीं सदी की विशिष्ट देन है, जिसके सूत्रधार १८वीं सदी के महान् नायक महर्षि दयानन्द सरस्वती थे। उनकी चिन्तन–दृष्टि इतनी व्यापक एवं सूक्ष्म थी कि राष्ट्रीय विकास का ऐसा कोई पथ नहीं था जो उनसे अछूता हो। इनके महान् शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी ओमानन्द, स्वामी मुनीश्वरानन्द आदि अनेक महर्षियों ने गुरुकुलों की स्थापना करके राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में चार–चाँद लगाए, जिनका आज अपना स्वतंत्र वर्चस्व है। लार्ड मैकाले की शिक्षा–नीति के विरोध में राष्ट्र के महान् सपूतों ने गुरुकुल इसलिए खोले कि राष्ट्र का भविष्य स्कूल–कालेजों में पढ़कर मात्र उदरपालक लिपिक तक सीमित रहेगा तो देश का सार्वभौमिक विकास कैसे होगा। अतः ऐसे नवयुवकों का निर्माण किया जाए जो शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास से परिपूर्ण हों और उनके केन्द्र केवल गुरुकुल ही हो सकते थे। परन्तु देश का दुर्भाग्य कि आज लगभग २५–३० ही प्रतिष्ठित गुरुकुल हैं। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालयों की चारों ओर बाढ़ आई है। शिक्षा के नाम पर खर्च होने वाला देश का धन गुरुकुल शिक्षा के लिए .०००१% भी नहीं मिलता और इतने पर भी राष्ट्र के निर्माण में इनकी भूमिका सार्वभौमिक एवं सर्वपक्षीय है। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार, गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल ज्वालापुर, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, गुरुकुल ततारपुर, गुरुकुल करतारपुर, गुरुकुल गौतमनगर, गुरुकुल नरेला, गुरुकुल लुधियाना, गुरुकुल पूठ गाजियाबाद, गुरुकुल वाराणसी, गुरुकुल किसार, पौंधा देहरादून आदि भारत के प्रतिष्ठित परम्परागत शिक्षण केन्द्र हैं, जिनका योगदान विश्वविद्यालयों से कम नहीं और इनके अतिरिक्त अनेक गुरुकुल ऐसे हैं, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं। इन सभी गुरुकुलों का एक ही कसूर है कि ये छात्रों को सर्वथा निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते हैं। यहाँ तक कि कई गुरुकुलों में भोजन एवं पुस्तक खर्च भी नहीं लिया जाता। जबकि विश्वविद्यालयों में मात्र प्रवेश फार्म के ही एक हजार रुपये तक वसूले जाते हैं और दूसरे शुल्क जैसे- रजि० फीस, प्रवेश, पुस्तकालय, छात्रावास, छात्रनिधि आदि अनेक रूपों में विविध प्रकार से फीस एवं फण्ड वसूले जाते हैं। देश का दुर्भाग्य एवं भेड़-चाल कि अधिक फीस वाले संस्थान अधिक श्रेष्ठ हैं और निःशुल्क बिल्कुल खराब। इस मानसिकता के शिकार माता–पिता अपनी सन्तान को कालेज, विश्वविद्यालयों की तरफ ही भगाते हैं। वर्तमान में गुरुकुलों में दो प्रकार के छात्र मुख्य रूप से पढ़ते हैं- प्रथम निर्धन तथा द्वितीय उद्दण्ड। ऐसे छात्रों को भी गुरुकुल में तपाकर कुन्दन बना दिया जाता है।

गुरुकुलों का पाठ्यक्रम प्रायः– वेद, दर्शन, व्याकरण, संस्कृत साहित्य एवं राष्ट्रभक्ति व संस्कृति पर आधारित रहता है। यद्यपि गणित, इंग्लिश, कम्प्यूटर विज्ञान जैसे आधुनिक विषय भी गुरुकुलों में पढ़ाए जाते हैं, परन्तु इन आधुनिक विषयों के विद्वान् गुरुकुलों से नहीं के बराबर ही निकलते हैं और संस्कृत, हिन्दी के पारंगत बन जाते हैं, क्योंकि गुरुकुलों का पाठ्यक्रम इस तरह का होता है। साथ ही गुरुकुलों का अध्ययन दिनचर्या एवं संस्कार प्रधान है। इसी कारण यहाँ के विद्यार्थी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूपों से धनी होते हैं। योग जैसी विद्या में वे निपुण होते हैं। वर्तमान में माता-पिता का आदर, परिवार एवं समाजवाद, राष्ट्रवाद की भावनाओं से परिपूर्ण होते हैं गुरुकुल के छात्र।

विश्वविद्यालयों को विभिन्न नए–नए पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने की अनुमति होती है और वे समय-समय पर आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम खोलते रहते हैं जो उनका एक विशेष आकर्षण है, जबकि गुरुकुलों में ऐसा कम ही देखने को मिलता है। विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होता है, जिससे छात्रों को नौकरी या व्यवसाय प्राप्ति के अवसर हों, लेकिन गुरुकुलों के पाठ्यक्रम - आचार, चरित्र, देशभक्ति, संस्कार, राष्ट्रीयता आदि पर आधारित अधिक होते हैं। इसीलिए आजीविका के इच्छुक छात्र विश्वविद्यालयों में पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं। वर्तमान में स्वामी रामदेव जी महाराज, जो

गुरुकुल कालवा के छात्र रहे हैं, पूरे विश्व के गौरव हैं। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रेरित करके अग्रसर किया है। इसी प्रकार स्वामी, मनीषी, राष्ट्रभक्त, संस्कृतज्ञ, राजनेता आदि को अनेक गुरुकुलों ने उत्पन्न किए हैं, जिनकी सूची बहुत लम्बी है।

जिस दिन गुरुकुलों में भी आर्थिक एवं मानसिक रूप से सुसम्पन्न छात्रों की संख्या अधिक होगी, उस दिन उनके परिणाम में भी चार चाँद लगेंगे। वर्तमान में यदि कोई दम्पति अपनी सन्तान को मातृ-पितृभक्त, देशभक्त, सुसंस्कृत एवं मानव बनाना चाहे तो उसका प्रवेश निश्चित रूप से गुरुकुल में ही कराये, कहीं ऐसे संस्थानों में कदापि नहीं, जिनमें पढ़कर आपकी सन्तान आपका ही अपमान करे।

२१वीं सदी में गुरुकुलों के सफल संचालन हेतु कुछ सुझाव

१. गुरुकुलों में विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाए एवं नीचे का पाठ्यक्रम बोर्ड का हो, जिनमें संस्कृत एवं संस्कार को अतिरिक्त अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाए। सरकारों से अनुदान व्यवस्था भी होनी चाहिए।

२. गुरुकुलों में आवासीय शिक्षा के अतिरिक्त डे-बोर्डिंग प्रणाली भी लागू हो, जो छात्र आवास में न रहना चाहें उन्हें ३ घण्टे अतिरिक्त रखकर घर आने जाने की सुविधा हो। रोजगार से जोड़ना गुरुकुल-शिक्षा के लिए अत्यावश्यक है।

३. छात्रों से आवश्यकतानुसार शुल्क लिया जाए और राज्य सरकारों से अनुदान लिया जाए। गुरुकुलों से व्यर्थ के राजनेताओं को भगाया जाए और परिश्रमी चरित्रवान् शिक्षकों को मेरिट के आधार पर रखकर पूर्ण सुविधा प्रदान की जाए।

४. शहरों में बन्द पड़े आर्यसमाजों में कन्या-गुरुकुल, गुरुकुल खोले जाएं तथा शिक्षितजनों को उनसे जोड़ा जाए। वेशभूषा में भी समयानुसार परिवर्तन अपेक्षित है।

५. नए पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए जाएं यथा- संस्कृत-प्रवीण पाठ्यक्रम, संस्कारशास्त्री, योगाचार्य, नृत्यशास्त्री, संगीतशास्त्री, आंग्ल-प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम आदि समयानुसार डिग्री एवं डिप्लोमा।

***

पता- अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
डी.ए.वी. कालेज, अमृतसर

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़कर, कपट, पाखंड, विश्वासघात आदि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है कुछ समय पश्चात् शीघ्र समूल नष्ट हो जाता है।

(मनुस्मृति ४.१७)

हैदराबाद आर्यसत्याग्रह के सेनानायक

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी : व्यक्तित्व और कृतित्व

- स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

महात्मा नारायण स्वामी जी का जन्म का नाम 'नारायण प्रसाद' था और आप मुंशी नारायण प्रसाद के नाम से जाने जाते थे। आपने जीविकार्थ राजकीय सेवा स्वीकार कर ली थी। आप आर्यसमाजी विचारों के व्यक्ति थे। आपने अपनी युवावस्था में ही यह निश्चय कर लिया था कि चालीस वर्ष की आयु में ही वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर घर त्याग दूँगा। दैवयोग कहें या होनहार- जब आप केवल अड़तीस वर्ष के ही थे, तभी आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया, अतएव आपका वानप्रस्थ का मार्ग प्रशस्त हो गया था।

आप उन दिनों राजकीय सेवा में मुरादाबाद के जिलाधिकारी के पेशकार के पद पर कार्यरत थे और आर्यसमाज मुरादाबाद के मन्त्री के पद पर प्रतिष्ठित थे। तब मुरादाबाद में एक ही आर्यसमाज था, जो अब आर्यसमाज बांस मण्डी के नाम से जाना जाता है।

आपके मन्त्रित्व के समय में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव का अवसर था। आपने जिलाधिकारी महोदय से उत्सव के लिए छुट्टी मांगी। जिलाधिकारी ने कहा 'मुंशी जी, आप तो आये दिन आर्यसमाज के कार्यों के लिए छुट्टियाँ लेते रहते हो। आप या तो आर्यसमाज की सेवा कर लो या सरकारी नौकरी ही कर लो।' मुंशी नारायण प्रसाद जी ने तुरन्त राजकीय सेवा से त्यागपत्र दे दिया और जिलाधिकारी से कहा कि 'मैं अब आर्यसमाज की सेवा करूंगा।' इस प्रकार श्री मुंशी नारायण प्रसाद जी राजकीय सेवा से मुक्त हो गए और आर्यसमाज की ही सेवा में जुट गए तथा अपने पूर्व निश्चयानुसार चालीस वर्ष की आयु में वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण कर ली।

मुंशी जी ने आर्यसमाज का इतना कार्य किया कि आप आर्यसमाज की उत्तर प्रदेशीय सेवा में प्रसिद्ध हो गए। प्रदेश में परिचय बढ़ जाने और सम्मान प्राप्त होने पर आपने आर्यसमाज के हित में पहला कार्य उत्तर प्रदेशीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा के गठन का किया। कुछ समय पश्चात् आर्यसमाज के लिए प्रचार को कार्य को गति देने और आर्यसमाज के कार्य को सुदृढ़ करने के लिए दूसरा कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से 'आर्यमित्र' साप्ताहिक के प्रकाशन का किया, जिसे प्रदेश के आर्यों का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में आर्यमित्र को उर्दू में प्रकाशित किया गया। उस समय के पढ़े लिखे लोग उर्दू जानने वाले ही होते थे, क्योंकि तब सरकारी कामकाज की भाषा उर्दू ही थी। सभी आर्यसमाजों को आर्यमित्र का ग्राहक बनाया गया और तत्पश्चात् आर्यमित्र की ग्राहक-संख्या बढ़ाने का अभियान चलाया गया। तब आर्यमित्र की भाषा भी देवनागरी अक्षरों में लिखी जाने वाली आर्यभाषा हिन्दी कर दी गई। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश से सम्बद्ध श्री भगवानदीन जी 'आर्य भास्कर प्रेस' के नाम से एक प्रेस चलाते थे। उन्होंने मुंशी नारायणप्रसाद जी के कार्यकलापों से प्रभावित होकर अपना 'आर्यभास्कर प्रेस' आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को दान कर दिया। तब उसका नाम 'भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस' हो गया और उसे आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय ५-मीराबाई मार्ग में लाया गया। इससे पहले ही आर्य प्रतिनिधि सभा को यह भूमि प्राप्त हो चुकी थी और उसमें कुछ कमरे भी बन गए थे। तब मुंशी नारायणप्रसाद जी वानप्रस्थ 'नारायण स्वामी' नाम से संन्यास आश्रम में प्रवेश कर चुके थे।

नारायण स्वामी बन जाने पर आप 'महात्मा नारायण स्वामी' नाम से प्रसिद्ध हो गये। आपने मुरसान के राजा महेन्द्रप्रताप से गुरुकुल खोलने के लिए मथुरा-वृन्दावन के क्षेत्र में यमुना किनारे भूमि दान में प्राप्त कर ली थी।

कुछ वर्ष पहले से ही आप गुरुकुल सिकन्दराबाद जनपद बुलन्दशहर के कुलपति थे। आपके मन में आया कि इस गुरुकुल को यदि राजा महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त भूमि में ले जाया जाय तो उस भूमि का सदुपयोग भी हो जायेगा और राजा महेन्द्रप्रताप जी की इच्छा की भी पूर्ति हो जायेगी। राजा महेन्द्र प्रताप जी ने क्योंकि यह भूमि गुरुकुल खोलने के निमित्त ही प्रदान की थी। स्वामी जी ने गुरुकुल सिकन्दराबाद की स्वामिनी सभा में यह प्रस्ताव रखा। सभा ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और अन्ततोगत्वा गुरुकुल सिकन्दराबाद 'गुरुकुल वृन्दावन' नाम में परिवर्तित होकर स्वनामधन्य राजा महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त यमुना किनारे वाली भूमि में चला गया।

कुछ वर्षों बाद गुरुकुल सिकन्दराबाद क्षेत्र में आर्यसमाजी बन्धुओं के प्रयत्न से सिकन्दराबाद में फिर से गुरुकुल प्रारम्भ हो गया और गुरुकुल के पुराने बने भवनों का सदुपयोग भी हो गया और जिन लोगों ने वहाँ गुरुकुल के लिए कमरे बनाये थे, उनकी उस पवित्र भावना को भी संरक्षण प्राप्त हो गया तथा गुरुकुल सिकन्दराबाद के लिए आर्यसमाज को समर्पित जीवन वाले सिकन्दराबाद निवासी श्री पण्डित मुरारीलाल शर्मा, कुलपति भी प्राप्त हो गये, जिनके संरक्षण में यह गुरुकुल अहर्निश उन्नति करता गया। एक समय ऐसा आया, जब इस गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की संख्या तीन सौ तक पहुंच गई थी। इसका एक कारण तो श्री पण्डित मुरारीलाल जी का पाण्डित्यपूर्ण धर्मनिष्ठ जीवन था, दूसरे पण्डित जी ने अपने दोनों पुत्रों देवेन्द्र और महेन्द्र को भी गुरुकुल में ही शिक्षार्थ प्रविष्ट करा दिया था तथा तीसरा कारण महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का इस गुरुकुल को संरक्षण प्राप्त होना भी था। महात्मा जी ने गुरुकुल वृन्दावन चलाते हुए भी अपना सौहार्दपूर्ण कृपा का हाथ सिकन्दराबाद गुरुकुल पर बनाए रखा था।

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज को रह-रहकर यह बात कचोटती रहती थी कि हरिद्वार जैसी सुप्रसिद्ध तीर्थस्थली में आर्यसमाज का कोई स्थान नहीं है। यदि यहाँ कोई स्थान बन जाय तो भारत के कोने-कोने तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के दृष्टिकोण से वैदिक विचारों को पहुंचाया जा सकता है। एक समय यह भी आया कि हरिद्वार-रुड़की मार्ग पर उन्हें आश्रम बनाने के लिए भूमि प्राप्त हो गयी। वही आश्रम आर्य विरक्त (संन्यास-वानप्रस्थ) आश्रम के नाम से अनेक एकड़ भूमि में अवस्थित है। तबतक स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा स्थापित गुरुकुल मुंशी अमनसिंह जी द्वारा प्रदत्त भूमि में कांगड़ी ग्राम के निकट गंगा के तट पर था और हिमालय की शाखा शिवालिक की पहाड़ियों के निकट था। वहाँ जाने के लिए गंगा पार करके जाना पड़ता था और पैदल या बैलगाड़ियों के अतिरिक्त वहाँ जाने का अन्य कोई साधन नहीं था। कालान्तर में गंगा की भयंकर बाढ़ से हुई तबाही के कारण गुरुकुल को गंगा के इस पार गंगा की नहर के किनारे लाया गया। हरिद्वार का यह आर्य वानप्रस्थाश्रम महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की तपोभूमि गंगा-नहर के दूसरे तट पर है।

एक समय ऐसा आया कि भारत के अनेक प्रदेशों के आर्यबन्धुओं की सम्मति और सहयोग से महात्मा जी ने आर्यसमाज के केन्द्रीयकरण और संगठन की दृष्टि से सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा का गठन किया कि जिसमें न केवल देश के समस्त प्रदेशों, अपितु भारत से बाहर सुदूर देशों के भी आर्यसमाजों का प्रतिनिधित्व हो सके। इस प्रकार आर्यसमाज विश्व-व्यापी संगठन बन गया।

जिस प्रकार प्रारम्भ में उत्तर प्रदेश की आर्य-प्रतिनिधि-सभा का नेतृत्व प्रदान कर महात्मा जी ने उसे सुसंगठित किया, उसी प्रकार सार्वदेशिक सभा का भी नेतृत्व किया और इसे 'सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा' नाम दिया। कुछ समय पश्चात् सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि-सभा का भी एक भव्य भवन में (दिल्ली के नए बाजार में) कार्यालय स्थापित हो गया। बाद में इसी भवन में दीर्घकाल तक रोगी रहकर स्वास्थ्य-लाभ करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान हुआ, तब से यह भवन 'स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान भवन' के नाम से प्रसिद्ध है तथा सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा का कार्यालय अब उसके लिए क्रय किए गए विशाल 'दयानन्द भवन' में रामलीला मैदान के निकट आसफ अली मार्ग पर अवस्थित है।

महात्मा नारायण स्वामी जी बड़े विचार और कर्मठ व्यक्तित्व के धनी थे। एक बार अपने जीवन में आर्यजनों को एक स्थान पर एकत्रित कर आर्यसमाज की संगठित शक्ति को प्रदर्शित करने का भाव उनके मन में उदय हुआ तो उन्होंने ऋषिवर देव दयानन्द की जन्म-शताब्दी मनाने की योजना बना डाली। सार्वदेशिक सभा में इस प्रस्ताव को रखा। तब महात्मा जी स्वयं ही सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे। कुछ लोगों ने महात्मा जी जैसा सम्मेलन चाहते थे, उसकी सफलता में संदेह भी व्यक्त किया किन्तु महात्मा जी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था और उनके व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव था कि वह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया तथा पन्द्रह दिन तक यह समारोह महर्षि की शिक्षा-स्थली मथुरा नगरी में मनाया जाना निश्चित हो गया। इस समय तो लोगों को सुनकर आश्चर्य होता है कि उस समारोह में तीन लाख आर्यजन उपस्थित हुए थे और तीन लाख की यह संख्या 'दयानन्द नगर' के नाम से १५ दिन तक बसी रही थी। राजकीय अधिकारी कमिश्नर महोदय तथा डी०आई०जी० आदि ने बार-बार स्वामी जी से आग्रह किया कि आप जितना आदेश करें प्रबन्ध-व्यवस्था के लिए उतनी ही पुलिस भेज दी जाए, किन्तु आर्यजगत् के उस तपस्वी महापुरुष ने धन्यवादपूर्वक किसी भी प्रकार की सहायता लेने से स्पष्ट नकार दिया और उन राजकीय अधिकारियों को कहा कि हमारे अपने लोग स्वयं ही सब व्यवस्था संभाल लेंगे, आप किसी भी प्रकार की चिंता न करें। जैसा महात्मा जी ने कहा था, सचमुच वैसा ही हुआ, उस तीन लाख की आबादी वाले दयानन्द नगर में कोई भी किसी भी प्रकार की घटना नहीं घटी। स्वामी जी के व्यक्तित्व में ऐसा आकर्षण और उनका इतना प्रभाव क्यों था ? इसका प्रमुख कारण यह है कि जहाँ उनमें नेतृत्व का गुण था, साथ ही वह योगी भी थे। अपने अनुभव के आधार पर यह स्पष्ट घोषणा करने में मुझे लेश भी संकोच नहीं है कि वर्तमान की तो बात क्या, आर्यसमाज की स्थापना से लेकर अब तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात् महात्मा नारायण स्वामी जी जैसा आध्यात्मिक व्यक्ति कोई नहीं हुआ। खेद की बात तो यह है कि आर्यसमाज के छोटे-बड़े सभी कार्यक्रमों में अन्य सभी नेताओं के नाम के जयघोष लगाए जाते हैं, किन्तु उस परम तपस्वी की कहीं चर्चा नहीं होती।

उस दयानन्द जन्म-शताब्दी समारोह में कमिश्नर महोदय, डी०आई०जी० के साथ महात्मा जी को मिलने पहुँचे। वार्तालाप के मध्य कमिश्नर महोदय ने सिगार की इच्छा व्यक्त की। उन्हें सिगार पीने की लत थी। जब महात्मा जी ने उन्हें यह बताया कि यहाँ सिगार आदि उपलब्ध नहीं होगी, तब तो वह दोनों अंग्रेज अधिकारी आश्चर्यचकित रह गए, परन्तु फिर भी उनको इस बात का विश्वास नहीं हो रहा था। जाते-जाते वह दोनों उस समारोह में घूमे और एक पान वाले की दुकान पर जा पहुँचे। उससे सिगार मांगी तो वह बोला श्रीमान् जी सिगार-सिगरेट आदि तो क्या ? यहाँ आपको पान में खाने का तम्बाकू भी नहीं मिलेगा। मेले के द्वार पर पूरी जांच होने के बाद ही विक्रयार्थ आने वाला सामान भीतर आने दिया जाता है। दोनों अधिकारी विस्फारित नेत्रों से पान वाले के मुंह की ओर देखते रहे और फिर आपस में वहाँ की प्रबन्ध-व्यवस्था तथा महात्मा जी के व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए वापस चले गए।

भारत के मध्य दक्षिण में (जो अब आन्ध्र प्रदेश के नाम से जाना जाता है) एक मुस्लिम रियासत थी, जिसका शासक आसफजाह निजामुल्मुल्क नाम से जाना जाता था। वह निरन्तर हिन्दुओं को मुस्लिम बनाने के लिए दमन की नयी-नयी विधियां अपनाता रहता था। आर्यसमाज को वहाँ नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए सन् १९३९ ई० में सत्याग्रह करना पड़ा था। उस सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी ही थे। गुरुकुल कांगड़ी के पन्द्रह ब्रह्मचारियों को साथ लेकर स्वामी जी ने वहाँ सत्याग्रह किया था। उस सत्याग्रह में अट्ठारह सहस्र व्यक्तियों ने भाग लिया था। अन्ततोगत्वा निजाम को झुकना पड़ा था और सात महीने सत्याग्रह के सफलतापूर्वक संचालन पर अपनी हार मानकर निजाम शाही ने घुटने टेक दिए थे तथा सभी सत्याग्रहियों को उनके घरों तक जाने का किराया और मार्ग में नाश्ता व भोजन करने का व्यय देकर विदा कर दिया था तथा सत्याग्रह से सम्बन्धित आर्यसमाज की सभी 'चौदह मांगों' को स्वीकार कर लिया था।

बाद में आर्यों के लिए एक और परीक्षा का अवसर आया। जब सिन्ध प्रदेश में अन्तरिम सरकार बनी। यह सरकार मुस्लिम लीग की सरकार थी। इस सरकार ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। इस समुल्लास में मुहम्मदी मत इस्लाम की समीक्षा की गयी है। यहाँ भी सत्याग्रह करने का आर्यसमाज ने बिगुल बजा दिया। उसके लिए भी प्रथम सर्वाधिकारी पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी ही बनाए गए। उस सत्याग्रह का कार्यक्रम बनाया गया कि सिन्ध प्रदेश की राजधानी कराची में पहुंचकर सत्यार्थप्रकाश की कथाएं की जाएं। महात्मा जी के साथ महात्मा खुशहालचन्द (बाद में जो आनन्द स्वामी बने), राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (जो बाद में धुवानन्द बने), पण्डित रामदत्त शुक्ल एडवोकेट लखनऊ, श्री कुंवर चांदकरण शारदा अजमेर आदि अनेक महानुभाव करांची पहुंचे। जाने से पहले सिन्ध सरकार को सचेत कर दिया गया था। करांची के चौक-चौराहों पर सत्यार्थप्रकाश की कथा कही गयी। उन दिनों सत्यार्थप्रकाश की बढ़ती हुई मांग के कारण जब प्रेस सत्यार्थप्रकाश छापकर मांगों की पूर्ति नहीं कर पा रहे थे, तो हस्तलिखित सत्यार्थप्रकाश तैयार किए जाने लगे। बाद के आकलन के अनुसार चार सहस्र सत्यार्थप्रकाश हस्तलिखित बिक गए थे। महात्मा नारायण स्वामी जी के हाथ की सत्यार्थप्रकाश की अन्तिम प्रति दो सौ रुपये में बिकी थी। जब सिन्ध सरकार इन सत्याग्रही महापुरुषों को बन्दी नहीं बना सकी तो महात्मा नारायण स्वामी जी ने यह घोषणा कर दी कि- क्योंकि सरकार हमें बन्दी नहीं बना सकी, इसका अर्थ यह है कि अब सिन्ध सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर जो प्रतिबन्ध लगाया था, वह समाप्त कर दिया है।

स्वजीवन के अन्तिम काल को मात्र अध्यात्म-साधना में ही बिताने के लिए स्वामी जी ने रामगढ़ जनपद नैनीताल को पसन्द कर वहाँ रहना प्रारम्भ कर दिया था। वही स्थान अब 'नारायण स्वामी आश्रम रामगढ़' के नाम से प्रसिद्ध है।

***

(आर्यजगत् १२.३.२००६ से साभार) — वैदिक संस्थान, नजीबाबाद, जनपद बिजनौर (उ०प्र०)

> कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।
>
> (महर्षि दयानन्द)

गुरुकुलों का सामाजिक नवनिर्माण में योगदान

- डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री (महोपदेशक)

आर्यसमाज की स्थापना के लगभग २५ वर्ष के पश्चात् तथा युगप्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती के निधन के १७ वर्षों के बाद ही आर्यसमाज के आन्दोलन से सम्बद्ध तत्कालीन शिक्षा-प्रेमियों एवं भविष्य-द्रष्टाओं के मन में स्वामी दयानन्द द्वारा प्रतिपादित प्राचीन आर्ष पाठविधि के अनुसार, वेद, शास्त्र, पुराण, उपनिषद् , व्याकरण, दर्शन आदि ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन एवं अध्यापन के उद्देश्य से प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-पद्धति एवं आश्रम-व्यवस्था के अनुसार निरन्तर गुरुओं एवं आचार्यों के सान्निध्य में रहकर अपने व्यक्तित्व का सर्वात्मना विकास करने वाली एक नई पीढ़ी को तैयार करने के लिए गुरुकुलों की आवश्यकता अनुभूत हुई, इसी का परिणाम था कि जहाँ डी.ए.वी. स्कूलों या कालेजों की स्थापना करके आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति को भी समाज के प्रतिष्ठित किया गया, वहीं गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के प्रबल समर्थक स्वामी श्रद्धानन्दजी ने १९०० में जालन्धर में सर्वप्रथम गुरुकुल की स्थापना की। कालान्तर में २-३ वर्षों बाद ही यह गुरुकुल कांगड़ी ग्राम में हरिद्वार में स्थानान्तरित हो गया। पुनः बाढ़ के प्रकोप के कारण १९२४ में यह पुनः स्थानान्तरित होकर यहाँ आ गया, जहाँ यह आजभी विराजमान है।

स्वामी श्रद्धानन्द के ही समकालीन दर्शनशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् तथा आर्यसमाज के प्रसिद्ध प्रचारक संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी ने भी १९०७ में हरिद्वार में ही ज्वालापुर ग्राम के निकट गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना की। ये वही दर्शनानन्द जी थे, जिन्होंने आर्यजगत् में जब आर्ष-पाठविधि के अनुसार व्याकरण की शिक्षा दी जा रही थी तथा व्याकरण का प्रसिद्ध ग्रन्थ पतंजलि का महाभाष्य सरलतया उपलब्ध नहीं होता था तो उन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण महाभाष्य को वाराणसीमें अपने प्रेस में मुद्रित कराया था, जिनका तत्कालीन नाम श्री पं. कृपाराम शर्मा था। इसी प्रकार १९२४ में आचार्य रामदेव जी ने भी हरिद्वार में कन्या गुरुकुल की स्थापना करते हुए गुरुकुल शिक्षा-पद्धति के अनुसार कन्याओं का अध्ययन भी समाज के लिए उचित माना। १९२५ में स्वामी त्यागानन्द जी ने गुरुकुल महाविद्यालय अयोध्या (फैजाबाद) में भी गुरुकुल की स्थापना की तथा स्वामी व्रतानन्द जी ने चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में १९३५ में स्थापित किया। उसके बाद तो पूरे उत्तरभारत में गुरुकुलों की स्थापना करने की मानो होड़ सी लग गई तथा हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश में २५ की संख्या से भी अधिक गुरुकुल स्थापित किये गये। इस सम्बन्ध में गुरुकुल वृन्दावन का भी नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है, जहाँ के स्नातकों ने अपनी योग्यता से साहित्य-सेवा में पर्याप्त योगदान किया।

कन्या गुरुकुलों में दिल्ली के निकट नरेला, मुरादाबाद में चोटीपुरा, वाराणसी में प्रज्ञादेवी जी द्वारा स्थापित जिज्ञासु स्मारक पाणिनि महाविद्यालय भी गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति के महत्त्वपूर्ण केन्द्र सिद्ध हुए तथा आज भी सर्वात्मना कार्यरत होकर कन्याओं के निर्माण में अपनी अप्रतिम भूमिका निभा रहे हैं।

आर्ष-पाठविधि के संरक्षक

आर्यसमाज द्वारा स्थापित इन गुरुकुलों के स्नातकों ने जहाँ आर्ष-पाठविधि के अनुसार संस्कृत शिक्षा को ग्रहण करके न केवल पाणिनि व्याकरण की प्राचीन सूत्र-पद्धति के अनुसार व्याकरण के पठन-पाठन को प्रोत्साहित किया, अपितु नव्य व्याकरण या प्रक्रिया ग्रन्थों की कठिनता से उसे मुक्त भी किया। संस्कृत पठन-पाठन में व्याकरण एक आवश्यक तत्त्व है, जिसके बिना कोई भी शास्त्र पढ़ना संभव नहीं। स्वामी दयानन्द ने इसी आर्ष पाठविधि का अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन भी किया है।

वर्णव्यवस्था के प्रबल पोषक

संस्कृत भाषा उसका व्याकरण एवं अन्य वेदांगों के अध्ययन के साथ ही वेद एवं वैदिक कर्मकाण्डों का ज्ञान इन गुरुकुलों की स्थापना से पहले तक सामान्य संस्कृत पाठशालाओं में केवल जातिगत ब्राह्मणों तक ही सीमित था। आज से १२५ वर्ष पूर्व तक यह कल्पना करना भी असंभव था कि क्या वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन तथा कर्मकाण्ड का निष्पादन समाज में ब्राह्मण जाति के अलावा अन्य भी कोई कर सकता है ? गुरुकुलों ने इस रुढ़ि को बड़े ही डिण्डिम घोष के साथ नष्ट कर दिया। आर्यसमाज द्वारा स्थापित इन गुरुकुलों में पढ़ने वाले युवकों ने न केवल जातिगत ब्राह्मणत्व के इस मिथ्याभिमान को तोड़ा, अपितु उन्होंने अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम के बल पर ब्राह्मणादि वर्णों का निर्धारण जन्म से नहीं, अपितु कर्म से होता है, यह सिद्ध भी कर दिया।

आज भले ही आरक्षण के बल पर संस्कृत भाषा के अध्यापक के रूप गैर-ब्राह्मणों की नियुक्ति संभव हो, परन्तु गुरुकुलों से निकलने वाले इन विद्वान् संस्कृतज्ञों ने अपनी योग्यता के बल पर आज से एक शताब्दी पूर्व ही विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्राध्यापक के रूप में नियुक्त होकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवा दिया।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले अनेक अनुसूचित वर्ग के लोगों ने भी संस्कृत के प्रकाण्ड पाण्डित्य उपलब्ध करके तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देते हुए आर्यसमाज द्वारा अनुमोदित तथा प्राचीन वैदिक शास्त्रों एवं स्मृतियों में प्रतिपादित गुण-कर्म व्यवस्था के अनुसार ही वर्णों का निर्धारण उचित है तथा जाति जो जन्म आधृत है, वह व्यर्थ एवं प्रवञ्चनापूर्ण है, इसको सिद्ध किया।

गुरुकुलों के स्नातक पुरोहित एवं प्रचारक बने

आज १३० वर्ष होने पर भी आर्यसमाजरूपी जो संस्था जीवित एवं सक्रिय है, उसका कारण गुरुकुल के स्नातक ही हैं। विगत शताब्दी में (एवं आज भी) आर्यसमाज के जो महान् प्रचारक एवं उपदेशक हुए- जैसे श्री पं० वाचस्पति शास्त्री, आचार्य बृहस्पतिजी, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार, श्री पं० हरिदत्त जी शर्मा, श्री प्रकाशवीरजी शास्त्री, पं० धर्मदेव जी विद्यालंकार, श्री पं. शिवकुमारजी शास्त्री, आचार्य सत्यमित्र जी शास्त्री आदि। ये सभी गुरुकुलों की ही उपज थे।

इन उपदेशकों ने न केवल अपने प्रवचनों एवं भाषणों से समाज में नवचेतना का संचार किया, अपितु अपने चिन्तन से भारतीय संस्कृति के प्रति भी रुझान उत्पन्न किया। इन व्यक्तित्वों के निर्माण में गुरुकुलों का योगदान अविस्मरणीय रहेगा।

आर्यसमाज के मन्दिरों में आजभी सर्वाधिक वे व्यक्ति ही पुरोहित के रूप में प्रतिष्ठित होकर कर्मकाण्ड अनुष्ठान करा रहे हैं, जो कभी न कभी कहीं न कहीं आर्यसमाज के द्वारा स्थापित गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त की है या उनके सम्पर्क में रहे हैं। कर्मकाण्ड के क्षेत्र में इन गुरुकुलों की स्थापना ने कुछ एक वर्ग-विशेष के एकाधिकार को लगभग समाप्त कर दिया। सामाजिक नव-निर्माण की भूमिका में यह अत्यन्त आवश्यक भी था। आज न केवल जाति ब्राह्मण से इतर लोग आर्यसमाज के मंचों एवं मन्दिरों में खुलेआम पुरोहित के रूप में प्रतिष्ठित होकर पूज्य एवं स्वीकार्य हो चुके हैं, अपितु पौरोहित्य कार्य को महिलाएं भी बड़ी ही योग्यतापूर्वक सम्पन्न करा रही हैं। इस प्रकार महिलाओं को भी वैदिक कर्मकाण्ड में दीक्षित एवं शिक्षित करने का श्रेय इन गुरुकुलों को देना ही चाहिए।

आज जो दक्षिण भारत में तथा अन्यत्र भी मन्दिरों में महिला पुजारियों की नियुक्ति हो रही है तथा ब्राह्मणेतर शूद्र वर्ग के लोग भी मन्दिरों में पूजा-पाठ के लिए समाज द्वारा आगे लाए जा रहे हैं, इन सबका श्रीगणेश गुरुकुलों ने ही किया था, वह भी आज से एक सौ वर्ष पूर्व। यह बात इतिहास के पन्नों में दर्ज करने योग्य मानी जाएगी।

सामाजिक शैक्षणिक क्षेत्र में विशेष योगदान

आर्यसमाज द्वारा स्थापित इन गुरुकुलों के शैक्षणिक वातावरण में पल-बढ़कर अनेक ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिभा के बल पर अद्वितीय ख्याति अर्जित की है। प्रसिद्ध आलोचक एवं अलंकारशास्त्री डॉ० नगेन्द्र, डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री, डॉ० मंगलदेव शास्त्री, आचार्य विश्वेश्वर, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, आचार्य हरिदत्त शास्त्री, डॉ० सूर्यकान्त-प्रभृति अनेक नाम ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध गुरुकुलों, आश्रमों, आर्यसमाज या आर्यसमाज की पृष्ठभूमि से सम्बद्ध शिक्षा-संस्थाओं से निश्चित ही रहा है। इन लोगों ने समाज में अपनी अद्भुत वैदुष्य, विशेषकर वैदिक साहित्य के गहन अनुशीलन में जीवन को इस प्रकार समर्पित कर दिया कि इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ वैदिक साहित्य के इतिहास में मील के पत्थर साबित हो रहे हैं।

संस्कृत-समाज, विशेषतः वैदिक अध्ययन के क्षेत्र में, गुरुकुल के इन स्नातकों की तपस्या जहाँ आज भी फलीभूत होकर चर्चित हो रही है, वहीं भारतवर्ष में इनकी प्रतिभा की चर्चा इनके लेखनकार्य के कारण ही है।

आज सैकड़ों की संख्या में जो वैदिक प्रवचनकर्ता आर्यसमाज के मंचों से कार्य सम्पन्न करा रहे हैं तथा अनेक भजनोपदेशक भी जो समाज में नैतिकता, शालीनता तथा सद्गुणों का प्रचार करते हुए समाज के लोगों के चरित्र-निर्माण में महती भूमिका निभा रहे हैं; इनमें इन गुरुकुलों की भूमिका हमें सहर्ष स्वीकार कर लेनी चाहिए। समाज की दूषित प्रवृत्तियों का समापन एवं सात्त्विक प्रवृत्तियों के विस्तार को नया आयाम देते हुए गुरुकुलों की पृष्ठभूमि से निकले हुए स्नातकों ने जो भारतवर्ष के समाज के निर्माण में योगदान किया है, वह स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने योग्य है।

***

पता- बी-२९ आनन्दनगर, जेलरोड
रायबरेली (उ०प्र०)- २२९००१

> **न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।**
> **क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।।**
>
> जो वृद्धि भविष्य में नाश का कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए और उस क्षय का भी बहुत आदर करना चाहिए; जो आगे चलकर अभ्युदय का कारण हो ।

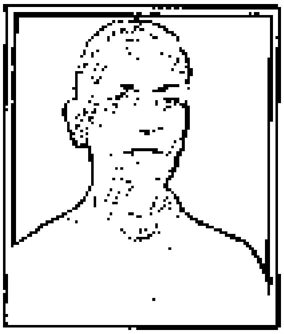

गुरुकुलों का राष्ट्र को योगदान

– वेदाचार्य डॉ० रघुवीर वेदालंकार

कोई भी राष्ट्र वहाँ की सरकार के कुशल प्रशासन तथा व्यक्तियों, संस्थाओं एवं समाज के द्वारा दिए गए योगदान के आधार पर ही उन्नति किया करता है। यह योगदान विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कार्यों के द्वारा दिया जाता है। किसान देश को अन्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाता है तो व्यापारी उसे आर्थिक समृद्धि प्रदान करता है। वैज्ञानिक विज्ञान की उपलब्धियों के द्वारा राष्ट्र को योगदान देते हैं, तो श्रमजीवी श्रम के द्वारा तथा क्षत्रिय रक्षा द्वारा ऐसा करते हैं। इन सबके अतिरिक्त जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वह है शैक्षिक एवं सांस्कृतिक योगदान। बिना इसके अन्य दृष्टियों से समुन्नत राष्ट्र भी पूर्ण समृद्ध नहीं कहा जा सकता।

गुरुकुल मूलतः एक शिक्षा-संस्था है, किन्तु शिक्षा के माध्यम से वह जो कुछ राष्ट्र को देता है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। गुरुकुल में शिक्षा के साथ-साथ आचार की शिक्षा भी दी जाती है। वस्तुतः व्यक्ति तथा राष्ट्र का जीवन आचार पर ही निर्भर है। इसके अभाव में वह शिक्षित होकर भी भटक जायेगा। गुरुकुलीय प्रणाली में आचार्य को केवल शिक्षक ही नहीं माना गया, अपितु यास्क मुनि तो कहते हैं '**आचार्यः आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा।**' यहाँ पर सर्वप्रथम स्थान आचार का ही है, बुद्धि का परिष्कार तो बाद की चीज है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में इसका सर्वथा अभाव है। यही कारण है कि आज छात्रगण शिक्षा प्राप्त करते समय भी तथा शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भी पुस्तकीय ज्ञान में तो समृद्ध हो जाते हैं, किन्तु आचार-भ्रष्ट होकर नाना प्रकार के अपराध तथा वित्तीय घोटाले आदि करते हैं। एक अशिक्षित व्यक्ति राष्ट्र के लिए उतना घातक नहीं होता, जितने कि ये राक्षस रूप में साक्षर व्यक्ति। गुरुकुलों ने राष्ट्र को नैतिक, चरित्रवान् स्नातक दिए हैं। यह योगदान धनादि के योगदान से अधिक मूल्यवान् है। प्राचीन समय समावर्तन के समय आचार्य अपने नव स्नातकों को उपदेश दिया करता था **सत्यं वद, धर्मं चर। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।** आज भी गुरुकुलों में यह उपदेश दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दिया जाता है। वर्तमान शिक्षा में सत्य तथा धर्म का कोई स्थान नहीं है।

आचार की शिक्षा के साथ-साथ आचार्य ब्रह्मचारी की बुद्धि का भी परिष्कार करता है, उसे समुन्नत बना देता है, जिससे कि गुरुकुल का स्नातक लौकिक दृष्टि से भी अपने जीवन को समुन्नत करता हुआ विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्र को योगदान देता है। गुरुकुलों का उपाध्याय वर्ग हो या छात्रवर्ग, सभी ने यह योगदान दिया है। शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुलों का बहुत योगदान है। शिक्षा के साथ उसका माध्यम बहुत महत्त्व रखता है। गुरुकुलों ने हिन्दी भाषा के माध्यम से ही न केवल प्राचीन संस्कृत-वाङ्मय, अपितु आधुनिक विज्ञान आदि विषयों की भी शिक्षा प्रदान करके अमूल्य योगदान दिया है। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों द्वारा विज्ञान के मूलग्रन्थ भी अपनी मौलिक हिन्दी में लिखकर यह सिद्ध कर दिया गया था कि हिन्दी भाषा में भी विज्ञान की शिक्षा देने में कोई बाधा नहीं है। उन ग्रन्थों की प्रशंसा वि०वि० अनुदान आयोग के अध्यक्ष प्रो० डी०एस० कोठारी ने भी की थी।

गुरुकुलों ने संस्कृत तथा वेदों के तो अनेक प्रकाण्ड पण्डित पैदा किए ही हैं, इसके साथ ही इतिहास, हिन्दी, अंग्रेजी आदि आधुनिक विषयों एवं साहित्य के भी प्रतिष्ठित विद्वान् पैदा किए हैं। महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक श्री क्षेमचन्द्र जी सुमन का हिन्दी साहित्यकारों में उच्च स्थान था। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक चन्द्रगुप्त वेदालंकार, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार तथा डॉ० हरिदत्त वेदालंकार तथा जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास के ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे। पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार तथा उनकी धर्मपत्नी ने मनोविज्ञान विषय पर कई ग्रन्थ लिखे हैं। संस्कृत तथा वैदिक साहित्य के क्षेत्र में तो गुरुकुलों ने अनेक प्रतिभाशाली विद्वान् राष्ट्र को दिए हैं। इनमें पं० विश्वनाथ, पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड, आचार्य प्रियव्रत, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार

आचार्य विश्वेश्वर, द्विजेन्द्र नाथ, आचार्य उदयवीर शास्त्री, पं० विद्यानिधि, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, डॉ० रामनाथ वेदालंकार, पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, डॉ० हरिदत्त शास्त्री आदि का नाम प्रमुख रूप में लिया जा सकता है, जिन्होंने वेद, व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि के विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट साहित्य का प्रणयन करके शिक्षा एवं वाङ्मय के क्षेत्र में राष्ट्र को विशिष्ट योगदान दिया है। अन्य भी अनेक ख्याति-प्राप्त विद्वानों के नाम इस क्षेत्र में लिये जा सकते हैं। आज भी गुरुकुलों के ही स्नातक विभिन्न महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संस्कृत तथा वेदादि विषयों के अध्यापन के साथ-साथ ऋषि दयानन्द की विचारधारा के प्रचार-प्रसार का भी कार्य कर रहे हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कुछ स्नातकों ने अच्छा कार्य किया है, इनमें पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

राष्ट्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है राजनीति। राजनीति में ईमानदार, चरित्रवान् व्यक्ति आएंगे तो राष्ट्र समुन्नत होगा। अपराध-प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों से राजनीति भी वैसी ही बन जायेगी, जैसा कि आजकल हो रहा है। इसलिए राजनीति के उज्ज्वल छवि वाले तथा अपराध रहित व्यक्तियों का आना अत्यन्त आवश्यक है। गुरुकुलों के स्नातक तथा आचार्य दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों ने संसद् तथा विधान-सभाओं में जाकर अपने आचरण की छाप छोड़ी है। आज तो भूले-भटके ही आर्यसमाजी या गुरुकुलों के स्नातक राजनीति में मिलेंगे, किन्तु एक समय था जबकि इनकी संख्या पर्याप्त होती थी। गुरुकुल घरौंडा के आचार्य स्वामी रामेश्वरानन्द जी अपने सुस्पष्ट कथन के लिए आज भी स्मरण किए जाते हैं। महाविद्यालय ज्वालापुर के स्नातक प्रकाशवीर शास्त्री की वाग्मिता पर तो जवाहरलाल नेहरु भी मुग्ध थे। पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार ये दोनों ही राज्यसभा के प्रतिष्ठित सदस्य रहे हैं। इसी प्रकार पं० शिवकुमार शास्त्री, श्री रघुवीर सिंह शास्त्री, श्री नरदेव स्नातक, स्वामी इन्द्रवेश जी आदि कितने ही गुरुकुलीय व्यक्तियों ने सांसद, विधायक तथा मन्त्री के रूप में राजनीति में योगदान दिया। आज यह संख्या कुछ कम हो गयी है।

गुरुकुलों के स्नातकों तथा आचार्यों ने केवल स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी राजनीति में भाग नहीं लिया, अपितु पराधीनता के दिनों में भी देश को स्वतंत्र कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उन दिनों गुरुकुलों को तो क्रान्ति का गढ़ ही समझा जाता था। गुरुकुल कांगड़ी के बारे में तो पर्याप्त प्रचार ऐसा था कि यह क्रान्तिकारियों की शरणस्थली है तथा वहाँ बम आदि भी बनाए जाते हैं। इसी क्रान्ति में अंग्रेजी सरकार की वक्रदृष्टि भी गुरुकुल पर रही तथा उसकी तलाशी की योजना भी बनाई गई थी। उन दिनों गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने जत्थे बनाकर सत्याग्रह में भी भाग लिया तथा महात्मा गांधी आदि के स्वतंत्रता आन्दोलन को सक्रिय योगदान दिया। गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने हरिद्वार में दूधिया बांध पर शारीरिक परिश्रम करके जो धन उपार्जन किया था, उसे सत्याग्रह की सहायतार्थ गांधीजी को भेंट किया था। इन सबका विवरण डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपने 'आर्यसमाज के इतिहास' में दिया है।

राष्ट्र केवल शिक्षा तथा धन आदि के बल पर ही समुन्नत नहीं होता, अपितु उसके सर्वाङ्गीण विकास के लिए वहाँ के निवासियों का चरित्र भी उज्ज्वल होना चाहिए। उन्हें नैतिकता तथा सदाचार आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। यह कार्य सहज नहीं है। व्यक्ति में ये गुण स्वयं उत्पन्न नहीं हो जाते, अपितु इनके लिए प्रचार करना पड़ता है। गुरुकुलों ने इस क्षेत्र में भी स्मरणीय कार्य किया है। जनता को सदाचार तथा नैतिकता की शिक्षा देने के लिए गुरुकुलों के आचार्यों तथा स्नातकों ने न केवल भारत में ही, अपितु विदेशों में भी श्लाघनीय कार्य किया है। यह कार्य आज भी जारी है। इस कार्य में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को अपने प्राण भी गंवाने पड़े हैं। यथा- नेपाल के शुक्रराज शास्त्री को नेपाल में प्रचार करने के कारण ही फांसी पर चढ़ा दिया गया था। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं० सत्यपाल जी आदि ने भी विदेशों में प्रचार किया। आज भी डॉ० दिलीप वेदालंकार जैसे कई विद्वान् विदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

***

पता- उपाचार्य, रामजस कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

गुरुकुलों का शिक्षा के क्षेत्र को योगदान

- श्री रामनाथ सहगल

भारत को पूर्वकाल में जगद्गुरु का स्थान इसी गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति के आधार पर प्राप्त हुआ था। आर्यावर्त में आदिकाल से ही गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति का प्रचलन रहा है, जो अब शनैः शनैः क्षीण होती जा रही है और इसी कारण भारत से भारतीयता अर्थात् आर्यत्व का भी ह्रास होने लगा है। उसका ही परिणाम है कि किसी युग में जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठापित भारत दासता की शृंखलाओं में भी आबद्ध हो गया था।

"सादा जीवन उच्च विचार।" यह गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति का मूल है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने कालजयी ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" के तृतीय समुल्लास में शिक्षा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए निर्देश दिया है- "विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए।" पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम या नगर रहें। सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिए जायें, चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए। इसके अनुरूप ही देश में गुरुकुलों की स्थापना हुआ करती थी। इन गुरुकुलों में शिक्षा के साथ-साथ चरित्र एवं शरीर-सौष्ठव पर भी ध्यान केन्द्रित कर ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी यथासमय समाजोपयोगी विद्वान् बनकर कार्यक्षेत्र में उतरते थे। ये चरित्रवान् और विद्वान् ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी समाज की दिशा-निर्देश करते थे और समाज एवं स्वहित के साथ देशहित में प्रवृत्त हो जाते थे।

गुरुकुलीय शिक्षा श्रमसाध्य भले ही हो, वह कष्टसाध्य और व्ययसाध्य कभी नहीं रही। गुरुकुल के समीपवर्ती ग्राम अथवा नगर गुरुकुल की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तत्पर रहते हैं। इस प्रकार सहज ही शिक्षा की प्राप्ति और उसका प्रचार हो जाया करता है। निर्धन से निर्धन परिवार का बालक-बालिका भी इस पद्धति के द्वारा शिक्षा-ग्रहण करने में समर्थ होकर कालान्तर में शिष्ट नागरिक बन जाया करते हैं। इस प्रकार शिक्षा के प्रसार में यह गुरुकुल का महान् योगदान रहा है। वर्तमान में भी यही प्रथा प्रचलित है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के आविर्भाव के समय भी यत्र-तत्र गुरुकुलों की स्थिति विद्यमान थी, किन्तु उनका उतना प्रचलन नहीं रह गया था। स्वामी जी महाराज ने इस पद्धति का एक प्रकार से पुनरुद्धार आरम्भ किया और स्थान-स्थान पर गुरुकुलों की स्थापना कर शिक्षा के प्रसार में महान् योगदान किया। इसके लिए विश्व उनका सदा ऋणी रहेगा।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में दो प्रसिद्ध गुरुकुलों की स्थापना हुई। गुरुकुल महाविद्यालय कांगड़ी और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर। कांगड़ी का महाविद्यालय अब मानद विश्वविद्यालय का रूप धारण कर चुका है और देश के अनेक विद्यालय तथा गुरुकुल इससे सम्बद्ध हो गए हैं। इन दो प्रसिद्ध गुरुकुलों के अतिरिक्त भी देश के कोने-कोने में अनेक गुरुकुल शिक्षा के प्रसार में महान् योगदान कर रहे हैं। मेरी स्वयं की आरम्भिक शिक्षा गुरुकुल रावलपिण्डी में हुई है।

इतना सब कुछ होने पर भी गुरुकुलों का प्रचलन कभी अवरुद्ध नहीं हुआ और न ही शिक्षा-प्रसार के क्षेत्र में गुरुकुल के योगदान में कभी कोई कमी आई। आधुनिक भारत में भी गुरुकुलों का वैसा ही महत्त्व है, जैसा कि प्राचीन काल के आर्यावर्त में था। इन गुरुकुलों ने विश्व को अनेक शिक्षा-शास्त्री, उपदेशक, विद्वान् ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक, आयुर्विज्ञानी और राजनेता भी प्रदान किए हैं। योग और चिकित्सा के क्षेत्र में भी इनका महान् योगदान है।

इतना ही नहीं, तत्कालीन अंग्रेज शासक तो इन गुरुकुलों को क्रान्तिकारियों की जननी तक का आरोप लगा चुके थे। कभी भजनोपदेशक गाया करते थे- "गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।" यह अभी भी उसी प्रकार हलचल मचा रहा है। विश्व भर में योग द्वारा हलचल मचाने वाले स्वामी रामदेवजी भी गुरुकुल की ही देन हैं। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। निःसन्देह शिक्षा के क्षेत्र में गुरुकुलों का प्रशंसनीय योगदान है।

पता- आर्यसमाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली- ११०००१

गुरुकुलों का समाज को योगदान

– पं० आत्मानन्द शास्त्री विद्याभास्कर

गुरुकुलों की स्थापना के पूर्व संस्कृत-विद्या काशी, मथुरा, भिवानी और अन्यत्र भी यत्र तत्र फैली हुई थी। गुरुदेव अपने शिष्यों को रुचि के अनुसार कहीं व्याकरण, कहीं साहित्य, कहीं ज्योतिष या दर्शन पढ़ाया करते थे। गाँवों में पंडित-पुरोहित लोग थोड़ा बहुत कर्मकाण्डी शिक्षा देते थे। उत्तर प्रदेश में, बल्कि सारे देश में, काशी विद्या का केन्द्र माना जाता था। बंगाल में नदिया-शांतिपुर, भाटपाड़ा भी संस्कृत के केन्द्र थे, किन्तु विद्या के लिए सब काशी की ओर ही देखते थे। काशी में वेदविद्या और वैदिक साहित्य की प्रायः उपेक्षा ही थी। गुरुकुलों की स्थापना से सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव यह पड़ा कि वेदविद्या और ऋषियों के वैदिक ग्रन्थ पठन-पाठन में पुनः प्रचलित हो गये।

गुरुकुलों के सुयोग्य आचार्यों ने जिस लगन और श्रद्धा से ऋषिकृत ग्रंथों को पढ़ाना और उन पर भाष्य करना आरम्भ किया। उससे संस्कृत जगत् में वेद और ऋषिकृत ग्रंथों का अध्यापन सनातन-धर्मी जगत् में भी अपनी रीति से कहीं कहीं आरम्भ हो गया।

ऋषिकृत ग्रंथों के प्रति होने वाली कई सौ वर्षों की उपेक्षा समाप्त हो गई और इसका श्रेय वेदविद्या के केन्द्र गुरुकुलों को ही जाता है। गुरुकुल विद्या के केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे। उच्चकोटि के विद्यासम्पन्न आचार्य लोग एकत्र होने लगे। तपस्वी श्रद्धालु समर्पित विद्वानों के केन्द्र गुरुकुलों में दृष्टिगोचर होने लगे। कई आचार्यों ने आर्षविद्या पर कई बहुमूल्य ग्रंथों का लेखन-प्रकाशन आदि आरम्भ किया।

गुरुकुल की पत्रिकाएं शोध-पत्रिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हो गईं। वेद, दर्शन, उपनिषद्, साहित्य आदि कोई ऐसा क्षेत्र न रह गया, जिसमें गुरुकुलों को सर्वमान्य सम्मान न मिला हो। गुरुकुल बहुमुखी विद्या के केन्द्र बन गए।

गुरुकुलों के स्नातक जीवन और समाज के क्षेत्र में भी सम्मानजनक पदों पर प्रतिष्ठित हुए। सम्पादक, लेखक, प्राध्यापक, अध्यापक सर्वत्र स्नातकों का यश बढ़ने लगा। पहले कालेजों में प्रोफेसर अंग्रेजी लाइन के विद्वान् ही होते थे। समय बदला और आज दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और अन्यत्र दूसरे प्रदेशों में भी उच्चतम स्थानों पर गुरुकुलों के सुयोग्य स्नातक प्रतिष्ठित हैं। स्कूलों में भी पहले अंग्रेजी लाइन के ही विद्वानों की नियुक्ति होती थी, किन्तु गुरुकुल के स्नातक अनेकों विद्यालयों में सेवा में लगे हुए हैं। इस प्रकार विद्या के क्षेत्र में उच्चतम प्रतिष्ठानों से लेकर नीचे पाठशालाओं तक गुरुकुलों के स्नातक फैले हुए हैं। ये स्नातक जहाँ अपने विषय की शिक्षा देते हैं, वहाँ भारतीय सभ्यता संस्कृति भारत के इतिहास और ऋषियों के मर्यादाओं की भी रक्षा करते हैं।

स्वामी दयानन्द जी को स्त्रीशिक्षा के लिए बहुत कुछ लिखना पड़ा। आर्यसमाज ने स्त्रियों के वेदाधिकार पर अनेकों शास्त्रार्थ किए, किन्तु वे लेख और शास्त्रार्थ पर्याप्त न थे। कन्या गुरुकुलों ने कन्याओं को उच्चतम वेद, व्याकरण, दर्शन आदि सभी दिशाओं में इतना सुयोग्य किया कि आज पौराणिक जगत् के पक्षपातरहित विद्वान् यह बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं कि कन्याएं वेदविद्या में किसी से भी कम नहीं हैं। काशी के कन्या गुरुकुल में जाकर काशी के विद्वान् भी बिना प्रशंसा किए नहीं रह पाते। एक काशी क्या, आज तो आर्यसमाज के अनेकों कन्या गुरुकुल उच्चकोटि की विदुषी देवियाँ समाज में उत्पन्न कर रहे हैं। लगता है ऋषि दयानन्द की तपस्या से कन्या गुरुकुलों ने गार्गी, मैत्रेयी आदि के युग को पुनः लौटा लिया है।

गुरुकुलों के प्रभाव का एक और बड़ा महत्त्वपूर्ण पक्ष है। आर्यसमाज एक सुधारवादी नवजागरण का प्रचारक बन कर उठा था। अछूतोद्धार, नारीशिक्षा, विधवा-विवाह आदि अनेक प्रकार के कार्य आर्यसमाज के प्रचार में अनिवार्य आवश्यक अंग बन गए थे। कई हजार सभाएं वार्षिकोत्सव यज्ञों के प्रोग्राम आदि आर्यसमाज ने अपने हाथ में लिया था,

इसके लिए पूरे वर्ष विद्वान् उपदेशकों और प्रचारकों की आवश्यकता रहती है। ये हजारों उपदेशक, प्रचारक आर्यसमाज के प्रचार में अपेक्षित थे। किन्तु इन्हें पूरा करने को कोई संस्था यदि सामने आई तो वह आर्यसमाज के गुरुकुल थे। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने चारों ओर धूम मचा दी।

आर्यसमाज के प्रचार के साथ हजारों आर्यसमाज मंदिर बन गए, जिनमें एक पंडित-पुरोहित अत्यन्त आवश्यक हो गया। इस आवश्यकता की पूर्ति भी गुरुकुल के स्नातकों ने बड़ी योग्यता से पूर्ण की है।

जन्मगत वर्ण-व्यवस्था को सिद्धान्त में ही नहीं, क्रियात्मक रूप से असत्य सिद्ध करके आर्यसमाज ने हर क्षेत्र से हर जाति से अपने उपदेशक विद्वान् तैयार कराए। आज भी हजारों अब्राह्मण कुलों के लोग पंडित-पुरोहित के रूप में लगे हुए हैं। गुरुकुलों का योगदान बहुमुखी है। उसका आकलन महान् है।

***

पता- आर्यसमाज, १९ विधान सरणी,
कलकत्ता

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ।।

जो अपने आश्रितजनों को बाँटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा माँगने पर जो मित्र नहीं है, उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुष को सारे अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता- ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

खंड ५

विशिष्ट लेख

हमारी संस्कृति की विशेषताएं

- आचार्य नरदेव शास्त्री जी वेदतीर्थ, पूर्व कुलपति

हमारी संस्कृति की कई विशेषताएं हैं, जो अन्य धर्मों में नहीं पायी जातीं। अनन्तकाल के प्रवाह से हमारी जाति में एक ऐसा रक्त-प्रवाह बह रहा है, जिस प्रवाह को अब तक कोई नहीं रोक सका। एक सहस्र वर्ष की दासता, परचक्र, सैकड़ों उलट-फेर भी न रोक सके। चाहे कुछ भी हुआ, कुछ भी देखना पड़ा, पर हमारी जाति में निम्नलिखित गुण तो किसी न किसी रूप में रहे ही हैं।

आस्तिकता- चाहे हम अपने पूर्वजों-जैसे उत्कृष्ट कोटि के आस्तिक न रहे हों, तथापि आस्तिक रहे हैं अवश्य, आस्तिक हैं अवश्य और आस्तिक रहेंगे अवश्य। नहीं तो, इतनी बड़ी सुदीर्घकालीन दासता में हम जीवित ही कैसे रह सके, यही आश्चर्य है।

इस हमारी अस्ति-बुद्धि को कोई नहीं मिटा सका। हमारे अंदर ईश्वर-विश्वास बराबर बना रहा। इस संसार का कर्ता, धर्ता, हर्ता कोई अवश्य है, जिसके संकेतमात्र से ही त्रिभुवन तथा लोक-लोकान्तर बनते हैं, बने रहते हैं और अन्त में बिगड़ जाते हैं। उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक की गाथा न जाने कब से चली आयी है। उस परमात्मा के अभिध्यानमात्र से प्रलय में बिखरे पड़े हुए अनन्त परमाणुओं में जीवन-संचार होने लगता है। प्रलयावस्था में पड़ी हुई मूल-प्रकृति विकृति की ओर चल पड़ती है और अन्त में यह विराट् जगत् बनता है-

श्वेताश्वतर-उपनिषद् में स्पष्ट कहा है कि ऋषियों ने ध्यानावस्थित होकर साक्षात्कार किया-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।।

हमारी हिंदू-जाति, आर्य-जाति, उसी विश्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा, सर्वभूतनिगूढ़ देव में विश्वास रखती चली आयी है। यह और बात है कि उसको जानने के अनेक उपाय वेदों में, स्मृतियों में, धर्म-शास्त्रों में बतलाए गए हैं। भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से प्रवृत्त हुए दर्शनशास्त्र भी अन्ततोगत्वा उसी की बात पर एकमत हो जाते हैं- यह एक हिंदू-जाति की विशेषता है और इसी विश्वास के आश्रय से यह जीवित रही है।

मोक्ष-जीवन का विशेष उद्देश्य- दूसरी एक विशेषता इस विश्वास की रही है कि जीवों के इस संसार में आने का विशिष्ट उद्देश्य है और इस जगत् के बनने-बिगड़ने का भी एक विशिष्ट उद्देश्य है। वह है- **भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**। (योग०) यह दृश्य-जगत् इसीलिए बना है कि जीव अपने-अपने कर्म-फलानुसार इस संसार में आवें, कर्म-फलों को भुगतें और प्रयत्न करते करते अपवर्गतक पहुँचें। यद्यपि अपवर्ग (मोक्ष) प्रत्येक के बूते की वस्तु नहीं है, तथापि पहुँचने वाले वहां पहुँच ही जाते हैं- कितने ? कौन कह सकता है, कब ? कौन कह सकता है-

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।

यह बात सर्वविदित ही है। जीव अपने कर्मानुसार विविध योनियों में होकर अन्त में मनुष्ययोनि में आकर, वहाँ से प्रयत्न करते-करते अपवर्ग तक पहुँच जाते हैं। उत्तम आचरण वाले उत्तम योनियों को प्राप्त करते हैं, निकृष्ट आचरण वाले निकृष्ट योनियों को। इस सिद्धान्त को हम मानते चले आये हैं। यही कारण है कि हम किसी भी दशा में रहें, किसी भी दशा में पहुँचें, समाधानपूर्वक कर्मफलों को भुगतने की मनोभूमिका रखते हैं- इस जाति के जीवित रहने का दूसरा यह कारण है।

ईश्वरीय न्याय में विश्वास- तीसरी विशेषता यह रही है कि हम ईश्वरीय न्याय में अटल विश्वास रखते चले आए हैं। हम पर कैसी भी बीती, हम इसी विश्वास पर अधिकतर जीवित रह सके हैं। ये दुःख क्यों आए ? अपने कर्मों का फल।

यही हिंदूजाति की मनोभावना रही है। हमने अपने कर्मानुसार प्राप्त सुख-दुःखों के लिए अन्य किसी को दोष देने की बात सीखी ही नहीं।

कर्मफल पर विश्वास- चौथी विशेषता अपने कर्मफलों पर दृढ़ विश्वास की है। जब हमने अच्छे अथवा बुरे कर्म किए हैं, तब इनका फल दूसरा कौन भुगतेगा हमको छोड़कर। यह बात हमारी जाति की हृदयान्तरतल में गड़ी हुई है।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

फलदाता वही परम कारुणिक भगवान् हैं, जिनके न्याय में भी दया रहती है। इसीलिए हिंदूजाति में किसी के सुख को देखकर डाह नहीं होता, बल्कि दूसरे के दुःखों देखकर उसमें करुणा उत्पन्न होती है।

प्राणिमात्र में आत्मदर्शन- हिन्दूजाति की पाँचवीं विशेषता यह है कि वह सब प्राणियों में आत्मैकत्व को देखती रही है। इसका फल यह हुआ कि हिन्दू अन्यों के सुख-दुःखों को भी अपने सुख-दुःखों की दृष्टि से देखता चला आया है। गीता में भी इसी समबुद्धि पर बल दिया गया है। हिंदूजाति जीवों की ऊपरी विषम दशा को देखकर कभी नहीं घबराती। वह तो अन्तरात्म-समता की दृष्टि रखती रही है।

सारांश हमारी हिंदूजाति कौड़ी मूल्य की नहीं रहती, यदि उसमें यह अध्यात्म-दृष्टि, सर्वभूतैकत्व अथवा सर्वात्मैकत्व की दृष्टि न रहती। वर्तमान अध्यात्मशून्य दृष्टिवाले एकमात्र भौतिक उन्नति में लोलुप पाश्चात्य राष्ट्र अथवा पाश्चात्य विज्ञानवादी यहीं तो भूलते हैं और केवल आपातरम्य जगत् पर दृष्टि डालकर सबको सम-समान बनाने की बात कहते रहते हैं। इनके पास भीतरी समता को देखने के लिए न आँखें हैं न और कुछ। इसीलिए कोरा विज्ञान, अध्यात्मशून्य विज्ञान भी इनको नहीं तार रहा है। नारद क्या कम विज्ञानी थे? किन्तु आत्मतत्त्व को जानकर ही सुखी हुए। आत्मज्ञान के बिना उनकी सब विद्याएं, ज्ञान-विज्ञान निरर्थक सिद्ध हुए। पाश्चात्य विज्ञानवादी सांसारिक तुच्छ पदार्थों में ही सुख मान रहे हैं और अध्यात्मदृष्टि के न रहने से-

यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति। भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्यः। (छान्दोग्य०)

इस भूमातत्त्व (आत्म-परमात्मतत्त्व) को न जानकर भटक रहे हैं। अन्त में भटक-भटककर इनको भी हमारे मार्ग पर ही आना पड़ेगा।

फिर प्रश्न हो सकता है कि हिन्दू-जाति में ऐसे-ऐसे गुण थे तो एक सहस्त्र वर्षपर्यन्त दास्यपङ्क में क्यों फँसी रही? उत्तर यह है कि ईश्वर ने किसी जाति को कोई किसी प्रकार का ताम्रपट्ट तो दे नहीं रक्खा कि यही जाति संसार में सदैव के लिए सर्वोपरि रहेगी। जलयन्त्रचक्रवत् (रँहट) उन्नति तथा अवनति के चक्र नीचे-ऊपर होते ही रहते हैं। इस नियम का हमारी हिंदू जाति ही अपवाद क्यों बनी रहती।

हमारा धर्म केवल निःश्रेयस की बात नहीं कहता और न केवल भौतिकवाद की बात ही करता है। हमारे ऋषि तो कहते हैं कि जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस- दोनों की सिद्धि हो, वह धर्म है।

हम स्वतंत्र हुए सही, अब इस स्वतंत्रता के आश्रय से हमें पुनः इस भारत में भारतीय ढंग की संस्कृति लानी है। इसीलिए वर्तमान राज्य-प्रणाली में भी देश-काल-धर्मानुरूप कतिपय अभीष्ट परिवर्तन करने पड़ेंगे।

वर्तमान पाश्चात्य प्रजातन्त्र-प्रणाली का अनुकरण युगधर्म हो सकता है, पर उसका भारत में अन्धानुकरण करके हम सुखपूर्वक जीवित न रह सकेंगे।

जिस युग में हम विचर रहे हैं, वह एक संक्रमणात्मक युग है, जिसमें स्थिरता भी नहीं, गम्भीरता भी नहीं-एक शिक्षा की ही बात लीजिए-

वर्तमान समय में जिस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है, उससे भारत का चरित्र कभी सुधरेगा- ऐसी आशा रखना दुराशामात्र है। मुझ-जैसे प्राचीन शिक्षाभिमानी को इस युग में यह प्रतीत हो रहा है कि अन्धकार ने प्रकाश को ललकारा है कि- 'आ, जरा ठहर, तेरी खबर लूँ। अब तक तो तूने मुझे बहुत परेशान कर रक्खा था और संसार में मुझे छिपने के लिए स्थान तक नहीं छोड़ा था। अब इस युग में तेरे लिए कोई स्थान नहीं छोड़ूँगा।' ऐसा प्रतीत हो रहा है कि प्रकाश अपने प्राण बचाकर भाग रहा है और अन्धकार उसका पीछा कर रहा है। यदि भारत में भारतीयता का अन्त हो गया तो हम स्वतंत्र होकर भी स्व-स्वरूप को भूलकर क्या जीवित रहेंगे ?

भारत का नाम बिगड़ जाय और रूप भी बिगड़ जाय- तो नामरूप दोनों के बिगड़ जाने से भारत का क्या शेष रह जायगा। अब तक तो भारत का किसी प्रकार नाम चला आ रहा है। रूप तो सहस्र वर्ष से विकृत होता चला आ रहा है। अब इस विकृत रूप को मिटाकर पूर्ववत् सुन्दर-मनोहारी रूप बनाने के लिए समस्त प्रयत्न होने चाहिएं।

पर क्या किया जाय। कभी यह वर्तमान प्रजातन्त्र-प्रणाली प्रत्यक्षरूप में अथवा स्पष्टरूप में आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति, आर्यसभ्यता की पोषक और पालक बन सकेगी, ऐसी आशा करनी दुराशामात्र होगी। आर्यजाति-उद्धार के लिए इस पद्धति की सरकार कभी कटिबद्ध न हो सकेगी। जब शिक्षा-संस्थाओं में ही धर्मशिक्षा को प्रतिष्ठित अधिष्ठान नहीं मिल रहा है, तब क्या होगा- यह एक चिन्तनीय विषय बन गया है। जब छात्र-छात्राओं की सह-शिक्षा का अनर्थकारी परिणाम भी हमारी समझ में नहीं आ रहा है, तब क्या कहा जाय ? जब कि गोहत्यानिषेध की बात भी अब तक हमारी समझ में नहीं आ रही है, तब क्या समझा जाय कि हम किधर जा रहे हैं ? हम लोग आज यदि भारतीय धर्म का अध्ययन करते हैं, तो पाश्चात्त्य-दृष्टि से करते हैं। भारतीय धर्म की उत्तमता स्वीकार करने के लिए भी हमें पाश्चात्त्य-दृष्टि चाहिए। भारतीयों के रोगों की ओषधियों के भारत में रहते भी हम पाश्चात्त्य ओषधियों को मँगाने में करोड़ों रुपये खर्च करते हैं, तब तो बड़ा विस्मय होता है। महात्मा गांधी जी जीते-जी महाघोष कर गए कि मशीन-युग को समाप्त करो, पर हम करोड़ों रुपये मशीनों पर लगाते ही चले जाते हैं। राज्यशासनचक्र अभी तक विलायती ढंग के ही हैं- खाली, उनको चलाने वालों के गोरे हाथ बदलकर हमारे काले हाथ लग रहे हैं।

एक ओर बेकारी-बेकारी चिल्लाते हैं, दूसरी ओर स्कूल-कालेज और विश्वविद्यालयों द्वारा- अस्वाभाविक, अभारतीय, अनुपयोगी शिक्षा द्वारा बेकारी को बढ़ाते ही चले जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अभी तक हमारे भारतीय नेता शिक्षा की जटिल समस्याओं को सुलझाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। वैसे ये नेता एकस्वर से वर्तमान शिक्षा-दीक्षा की बुराई करते हुए सुने जाते हैं।

फिर क्या निराशा ही निराशा है ? आशा के संचार के लिए स्थान नहीं है ? -

है क्यों नहीं, जिस करुणानिधान भगवान् ने स्वतंत्रता दिलायी, वही आगे भी वर्तमान परिस्थितियों के रहते हुए भी उन्हीं में से ऐसी विचित्र परिस्थिति उत्पन्न करेगा, जिससे भारत अपने अभीष्ट पथ की ओर अग्रसर होता जायगा। इस कार्य में देर अवश्य है, पर अन्धेर नहीं। भारतवर्ष की धर्मप्राण जाति को इस कार्य में अपेक्षित त्याग-तपस्या करनी ही पड़ेगी। संस्कृत के विद्वान् , जिन्होंने आज तक संस्कृत-विद्या के रक्षार्थ कुल परम्परा द्वारा प्रयत्न किए, उनको पुनः एक बार त्याग-तपस्या का मार्ग अपनाना पड़ेगा, तब कहीं संस्कृत-विद्या की रक्षा हो सकेगी। हमारी सरकार के पास अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा के लिए करोड़ों, अरबों रुपये हैं, पर संस्कृत के लिए- जिसके आश्रय से आज तक भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता जीवित रही- पैसा नहीं है, संस्कृत-विद्या के लिए आस्था नहीं, श्रद्धा नहीं। हमारे ही उत्तर प्रदेश में धनाभाव के कारण लगभग १५,०० संस्कृत पाठशालाएं तथा विद्यालय आधे मुरझा गए हैं। काशी, जो कि किसी समय संस्कृत विद्या का गढ़ था, अब वह भी मुरझा चला है। जब संस्कृत के केन्द्र ही मुरझा रहे हैं, तब भारतीय संस्कृति ही कहाँ रहे और कहाँ श्वास-प्रश्वास ले- धर्मो रक्षति रक्षितः - यही सत्य है। (कल्याण से साभार- प्रेषक- शिवकुमार गोयल)

संस्कृत के पण्डित और अंग्रेजी के विद्वान्

(समन्वय की आवश्यकता)

- आचार्य श्री नरदेवजी शास्त्री, वेदतीर्थ, पूर्व कुलपति

प्रश्न यह है कि हिंदुस्तान की छत्तीस करोड़ प्रजा को एक सूत्र में बाँधने के लिए हिंदुत्व के अतिरिक्त अन्य कोई साधन अथवा सूत्र होने चाहिए या नहीं ? इनमें चार कोटि मुसलमान और एक कोटि ईसाइयों को छोड़ दिया जाय तो शेष इकतीस करोड़ हिन्दू प्रजा को, जो हिंदुत्व के नाते एक हैं, एकत्व में बाँधे रखना राष्ट्रदृष्टि से हितकर ही होगा या नहीं ? पर यह तभी हो सकता है, जब कि समाज-सुधार की दृष्टि रखने वाले लोग समाज-सुधार करते समय राष्ट्रियत्व का ध्यान रखते रहें। प्राय: यह इतना बड़ा हिंदू-समाज प्राचीन धर्म, रीति-नीति-संस्कृति के परम कट्टर उपासक पण्डित शास्त्रियों और संन्यासियों के हाथों में ही है और उनके आदेश, निर्देश, अनुशासन तथा अनन्त काल की उन उन सुदृढ़ परम्पराओं के अनुसार चलता आया है। दूसरी ओर अंग्रेजी राज्य में अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा में लालित, पालित, पोषित, परिवर्द्धित एवं डेढ़ सौ वर्षों तक उनके अनुशासन में अनुप्राणित अंग्रेजी विद्वानों की परम्परा है। ऐसे ही लोगों के हाथों में राज्य-सूत्र आ गए हैं। ये लोग समाज-सुधार करते समय प्राचीन पण्डित-शास्त्रियों की भावनाओं का ध्यान नहीं रखते और इनको साथ लिए बिना ही स्वेच्छानुसार एकदम सुधार करना चाहते हैं। दूसरी ओर पुराना पण्डितसमाज इन सुधारकों को तिरस्कार की दृष्टि से ही देखता रहता है। इनको नयी परिस्थिति समझ में नहीं आती और अंग्रेजी विद्वानों में इनसे हेल-मेल बढ़ाकर, इनसे सम्पर्क रखकर काम करने की युक्ति तथा बुद्धि नहीं होती। केवल यह सुधार हो- ऐसी बड़-बड़ करने में और नये कानूनों के बनवाने में ही ये प्रयत्नशील रहते हैं। इस प्रकार प्राचीन-नवीन का मेल बैठाना अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। नये अंग्रेजी के विद्वान् जनता को अपनी ओर खींचते हैं और प्राचीन विद्वान् अपनी ओर। इस प्रकार हिंदुओं के इतने बड़े समाज में खींचातानी और ऐंचातानी चल रही है। प्राचीन पण्डित-समाज के साथ प्राचीन धर्मशास्त्र, दर्शन, संस्कृति-परम्परा बल है और नवीन अंग्रेजी शिक्षित समाज के साथ केवल नवीन ढंग के स्वराज्य स्वशासन का बल है और उनके हाथों में शासनसूत्रों के होने से वे बलपूर्वक ही समाज में अपने ढंग के सुधार लाना, करना, अथवा करवाना चाहते हैं। अब कैसे मेल बैठे ? नये ढंग के स्वराज्य में, स्वशासन में, शासनचक्र किसी विशेष धर्माधिष्ठान पर आश्रित नहीं रहेगा और न है। किन्तु फिर यह प्रश्न होता है कि इनको धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का कहाँ अधिकार है, पर ये हस्तक्षेप करते हैं अथवा हस्तक्षेप करने की चेष्टा करते हैं। अत: यह इनकी सर्वथा अनधिकार चेष्टा ही है। और क्या कहा जाय।

फिर प्रश्न यह उठता है कि यदि शासनसूत्र हस्तक्षेप न करें तो भीतरी अपेक्षित सुधार कैसे होगा ? क्या इतने बड़े समाज को, वह जिस रूप में चल रहा है, चलने दिया जाय ? क्या इसमें प्रचलित अनेक श्रेष्ठ सदाचारों के साथ-साथ मिश्रित रूप में चलते हुए अनेक अनाचार अथवा कदाचारों को ऐसी ही चलने दिया जाय ? क्या उनमें देशकालानुसार अपेक्षित सुधार न किए जायें ? इसका सरल उत्तर यह है कि सुधार होने चाहिए, पर इसके लिए समाज-प्रवर्तक आचार्यों, धर्माचार्यों, प्राचीन पण्डितों और शास्त्रियों के सम्मुख देश की समग्र स्थिति रखकर उन्हीं से अनुरोध किया जाय कि वर्तमान परिस्थितियों में, समाज में इन इन सुधारों की आवश्यकता प्रतीत होती है। इसलिए वे धर्म की मुख्य परम्पराओं को सुरक्षित रखकर ऐसी व्यवस्थाएं दें, जिससे इतने बड़े समाज का भीतरी सुधार होकर जाति तथा राष्ट्र में बलसञ्चार हो सके।

ऐसा कोई समन्वय हुए बिना प्राचीन धर्म-परम्पराओं तथा नव्य शासनप्रणाली का मेल नहीं बैठेगा और अशान्ति तथा कलह बढ़ते ही रहेंगे। मुख्य बात यह है कि नव्यशासन-सूत्रधारी नव्य विचारों के लोग धर्म की बातों में हस्तक्षेप न करें। उन सब परम्पराओं की बातों को बैलगाड़ी की उपमा देकर अपने आपको वायुयान के उपासक समझ स्वेच्छानुसार वर्तना भी कदापि उचित नहीं है। जब प्राचीन धर्म और प्राचीन संस्कृति के उपासक धर्म और संस्कृति के उद्धार की बातें करते हैं, तब

ये नये ढंग के लोग उनको बैलगाड़ी के सवार कहकर उपहास किया करते हैं। नये वायुयानों की सभ्यता किस विनाश-पथ पर चल रही है, इसको देखकर तो यही कहना पड़ेगा कि बैलगाड़ी की सभ्यता चाहे कितनी ही धीमी चल रही है, श्रेष्ठ है। चाहे उसमें कालवश कितनी ही त्रुटियों का क्यों न संचार हुआ हो। जिस बैलगाड़ी के साथ संसार के सर्वश्रेष्ठ, आदिसत्य सनातन चक्षु वेद हैं, शास्त्र हैं, दर्शन हैं, धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहास हैं, उसका अनुचित उपहास अथवा परिहास क्यों? बैलगाड़ी जहाँ काम देती है, वहाँ वायुयान कौड़ीकाम के सिद्ध होते हैं। वायुयान का जहाँ काम है, वहाँ रहे। जितना उसका महत्त्व है, रहे। हमारे प्राचीन पुरुष सब प्रकार के यानों से काम लेते रहे। उनके बैलगाड़ी, रथ आदि तो थे ही; पर उनके वायुयान भी तो थे- जिन पर बैठकर देवगण आकाश-संचार करते थे, ऊपर से युद्ध देखते थे, विजयी दल पर ऊपर से पुष्प-वृष्टि किया करते थे। उनके शस्त्रास्त्र भी थे। सब कुछ था; किंतु वे उनका दुरुपयोग कभी नहीं करते थे। हम पूछते हैं कि आजकल के सभ्य-दुम विज्ञानवादियों की सभ्यता क्या कर रही है? थोड़ा-सा नाममात्र भौतिक सुख पहुँचा रही है, तो अधिकतर उसका रुख महती विनष्टि की ओर ही है।

इसलिए अंग्रेजीग्रंथी विद्वान् प्राचीनग्रन्थी विद्वानों का उपहास करना छोड़कर उनकी भावनाओं का समादर करें और प्राचीनग्रन्थी विद्वान् भी समय की परिस्थिति को समझने की चेष्टा करें एवं अपने धर्म और संस्कृति के विपरीत जो बातें हों, उनको छोड़कर, अन्य बातों में देश, राष्ट्र और शासनचक्र के सहायक रहें। नये ढंग के शासकवर्ग शासनसूत्र के बलपर, बहुमत के बल पर प्राचीनताभिमानियों के साथ धींगामुश्ती, जोर-जबरदस्ती न करें। आज अंग्रेजी पढ़े-लिखों का यह हाल है कि जरा धर्म का नाम सुनते ही ये नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। जिनको अंग्रेजी नहीं आती, ऐसे लोगों के साथ बैठने, उनसे मिलने, बातचीत करने में ये अपनी हतक समझते हैं। ऐसे लोग अपने समाज का सुधार कैसे कर सकते हैं? वस्तुतः ऐसे लोग देश तथा राष्ट्रोद्धार की बातें क्यों करते हैं?

स्व० लोकमान्य तिलक ने एक बार 'केसरी में' लिखा था- 'अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में यही एक कमी है, ऐसे लोग क्या तो समाज-सुधार करेंगे और क्या ही देशकार्य करेंगे। धर्म की रक्षा के लिए कष्ट सहना अथवा तदर्थ प्राण देना- इन बातों का धर्म-श्रद्धा में अन्तर्भाव होता है। ईसाई लोग अंग्रेजी-विद्या में पारंगत होते हुए भी किसान, मजदूर, माली आदि छोटे-छोटे लोगों से मिलने, उनसे हेलमेल बढ़ाकर धर्मप्रचार करने में नहीं हिचकिचाते। हमारे सुधारक लोगों में ऐसे लोग कहाँ देखने को मिलते हैं? उल्टा ऐसा करने में वे अपनी हतक समझते हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में यह जो कमी है, वह उनकी शिक्षा-दीक्षा का ही प्रभाव है। जनता की उन्नति के लिए उनमें मिलकर रहना, स्वार्थ-त्यागपूर्वक सतत चेष्टा करना और स्वधर्म पर निष्ठा रखकर वैसी बुद्धि बनाए रखना- ये बातें अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में कहाँ हैं। यह उनका दोष नहीं, यह तो उनकी शिक्षा का ही दोष है। परन्तु इनमें इस प्रकार की जनता से अलग रहने की और अज्ञान से अपने-आपको उनसे बड़ा समझते रहने की मनोवृत्ति जब तक बनी रहेगी, तब तक सच्चा सुधार असम्भव है। ये लोग पुराने पण्डितों, शास्त्रियों को भला-बुरा कहते हैं, उनकी खिल्ली उड़ाते रहते हैं। इस प्रकार दोनों ओर जो कानापन आ गया है, उसको ठीक करना, यह सबसे प्रथम सुधार होना चाहिए, जब अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग अपने इस दृष्टिदोष को दूर करेंगे तभी वे सुधार कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।'

बात सोलह आने सच है। यदि लोकमान्य तिलक के समय में यह लागू होती थी तो अब भी लागू होती है। ये लोग जिन, पंडितों, शास्त्रियों का उपहास करते रहते हैं, उन्हीं पण्डितों ने अपनी कुल-परम्परा से अब तक जिस किसी प्रकार से वेद, दर्शन, इतिहास-पुराणादि को जीवित रक्खा, जिससे विपरीत समय में भी हिंदूजाति किसी प्रकार श्वास-प्रश्वास लेती रही है। कितनी अनुपम धर्मनिष्ठा है! इसकी उपमा संसार में कहीं नहीं मिलेगी। अंग्रेजों के समय में धर्मबन्धन शिथिल हो जाने के कारण यह परम्परा ढीली से होती जा रही है। पेट का प्रश्न धर्मानुसार न रहकर धर्म का साथ छोड़ रहा है और ऐसा विकराल बन गया है कि धर्मनिष्ठा पीछे ही पीछे हटती जा रही है और येनकेन प्रकारेण उदरदरी की पूर्ति की चिन्ता ही सबको

मारे डाल रही है। इसीलिए पण्डितों के लड़के भी धर्मग्रन्थों की रक्षा के प्रश्न को मध्यमार्ग में छोड़कर अर्थ के पीछे पड़ गए हैं तो भी पण्डितों के यहाँ अब भी वैदिक साहित्य के अवशेष मिलेंगे ही। इसीलिए अंग्रेजी पढ़े-लिखों को इन पण्डितों का उपहास करने में लज्जित तो होना चाहिए। जिस अंग्रेजी राज्यशासन, शिक्षा-दीक्षा के बलपर इतना उपहास होता था, वह राज्य भी अब तो चला गया। यद्यपि उस राज्य की छाया और माया अब भी शेष है तो भी वह दिन समीप आ रहा है, जब कि जो कुछ शेष है, वह भी नि:शेष हो जायगा। फिर समझ में नहीं आ रहा है कि ये लोग अपने स्वरूप को भूलकर अपने ही भाइयों का क्यों तिरस्कार करते रहते हैं।

अंग्रेजी पढ़े-लिखों में अनेक ऐसे हैं जो प्राचीन धर्म या संस्कृति की शतमुख से प्रशंसा करते रहते हैं। पर साथ ही यह भी उपदेश देते रहते हैं कि हमारे धर्म में, संस्कृति में जो भी उच्चतम नैतिक सिद्धान्त हैं, उनको ही लेना चाहिए, न कि सड़ी-गली सभी वस्तुओं को। हिन्दू धर्म की अत्यधिक प्रशंसा सुनने से वे घबराते हैं और कहते हैं कि यह जातिवाद अनर्थक है, इससे भारत को हानि पहुँचेगी। जिस प्राचीन धर्म-संस्कृति की पुकार मचायी जाती है, उस धर्म और संस्कृति का पुनरुत्थान देखना उनकी समझ में एक व्यर्थ स्वप्न सा ही है। वे समझते हैं कि ऐसी प्राचीनता के दिन सदा के लिए गए। अब कभी नहीं लौटेंगे।

ईश्वर की कृपा हुई कि लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी- जैसे नेता भारतीयों के सामने भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में आए और महात्मा गान्धी ने तो भारतीय संस्कृति के प्रथम दो उच्च तत्त्व 'सत्य' और 'अहिंसा' को भारतीय राजनैतिक आन्दोलन में प्रमुख स्थान दिया और उसी का आश्रय लेकर अंग्रेजों को विवश किया कि वे भारत को छोड़ जायँ।

यदि कांग्रेस को कोरे विलायती ढंग के राजनैतिक नेता मिलते तो न जाने आज क्या विपरीत रूप देखने को मिलता। भारतीय धर्म और संस्कृति के उच्च तत्त्व को सब मानेंगे। किन्तु यही कहते जायँगे कि भारतीय वर्तमान शासन निधर्मी रहेगा। मतलब यह कि राज-काज में किसी भी धर्म का विशिष्ट अधिष्ठान नहीं रहेगा, अस्तु !

जब यह दशा है तो स्वधर्म तथा स्वसंस्कृति की रक्षा कौन करेगा ? वही प्राचीनताभिमानी पण्डित-शास्त्रि-समाज या और कोई ? यवनकाल में भी यह भार इन्हीं पर रहा। अंग्रेजों के काल में भी यह भार इन्हीं पर रहा और अब स्वराज्य काल में भी इस बात का उत्तरदायित्व इन्हीं पर है; क्योंकि अंग्रेजी पढ़े-लिखे विद्वान् कभी इस धर्म और संस्कृति की रक्षा करेंगे, ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। जिनको जिस बात का गन्ध तक नहीं, उनसे उसी बात की रक्षा की आशा करना नितान्त मूर्खता होगी।

इतनी बड़ी विवेचना का अर्थ यही है कि ब्राह्मणों को पुन: त्याग-तपस्या का मार्ग लेना पड़ेगा। तब हमारे धर्म और संस्कृति की परम्परा की यथार्थ रक्षा हो सकेगी- इस वर्ग के आगे हुए बिना कुछ न हो सकेगा।

यही मार्ग क्यों ? और इन्हीं पर भार क्यों ?

इसलिए कि ये ही राष्ट्रपुरोहित रहे हैं और वेदों के शब्दों में जब तक पुन:-

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता: स्वाहा। (यजुर्वेद)

'हम राष्ट्र के पुरोहित हैं और राष्ट्र-कल्याण-निमित्त जाग रहे हैं'- ऐसी गर्जना नहीं करेंगे, तब तक हमारा उद्धार कहाँ?

देश अथवा धर्मपर जब सङ्कट आ पड़ते हैं, देश का शासन भ्रष्ट हो जाता है, प्रजा मर्यादा को छोड़कर विशृंखल हो जाती है, धर्म-कर्मों का विलोप होने लगता है, तब ये ही राष्ट्रपुरोहित देव राष्ट्र में ओज, तेज, बल आदि के सञ्चारार्थ तप और त्याग का आश्रय लेते हैं। यही अथर्ववेद में बतलाया गया है- तभी राष्ट्र का कल्याण होता है।

भद्रमिच्छन्त ऋषय: स्वर्विद: तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥ (अथर्ववेद)

क्या देखते नहीं कि राजनैतिक कार्य में भी लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी आदि को तप और त्याग का आश्रय लेना पड़ा, तब भारत तेजस्वी बन सका। जब धर्म के एक अङ्ग- राजनीति की प्राप्ति में इतना त्याग करना पड़ा, इतना तप तपना पड़ा, तब सम्पूर्ण धर्म की रक्षा के लिए कितनी त्याग-तपस्या की आवश्यकता पड़ेगी- इस पर जरा विचार कीजिए।

जब तक एक वर्ग अन्य सब बातों को छोड़कर इसी त्याग-तपस्या के मार्ग को अपनाकर अग्रसर नहीं बनता, तब तक तेजस्वी, ओजस्वी, बलशाली भारतीय राष्ट्र की कल्पना ही सर्वथा असम्भव है। चाहे कोई वर्ग क्यों न हो, जो भी वर्ग इस कार्य के लिए आगे बढ़ेगा, भारतवर्ष उसी का ऋणी होगा। अत्यन्त प्राचीन काल से जिसका यह पवित्र कार्य रहा है, वही इस कार्य को संभाले तो और अच्छा। फिर एक बात और है- भारतवर्ष तो सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सिद्धान्त को मानता चला है। उसने यह जो संकुचित केवल नए ढंग की राष्ट्रीयता सीखी है, वह अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा-शासन का ही प्रभाव है। समस्त संसार के कल्याण के साधन के लिए भी भारत का ओजस्वी, तेजस्वी एक राष्ट्र होना अत्यावश्यक है। पाश्चात्य देश और राष्ट्र संकुचित राष्ट्रीयता एवं धर्मशून्य-विज्ञान के दुष्परिणामों को भुगत रहे हैं। भारतवर्ष इस प्रकार की संकुचित राष्ट्रीयता तथा धर्मशून्य-विज्ञान के दुष्परिणामों से बचकर फिर एक बार संसार का गुरु बनकर संसार को चरित्र शिक्षा देना चाहता है। भारतवर्ष के ठीक हुए बिना संसार की गति-विधि सुधर नहीं सकती। ईश्वर करे वह दिन शीघ्र देखने को मिले जब भारत ओजस्वी, तेजस्वी राष्ट्र बनकर संसार को यथार्थ मार्ग दिखला सके। तथास्तु, एवमस्तु, परेशो मङ्गलं विधाययतु।

***

(कल्याण से साभार), प्रेषक- शिवकुमार गोयल

अकर्मशीलं च महाशनं च, लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ।।

अकर्मण्य, बहुत खाने वाले, लोगों से वैर करने वाले, अधिक मायावी, क्रूर, देश-काल का ज्ञान न रखने वाले और निन्दित वेष धारण करने वाले मनुष्य को कभी अपने घर में न ठहरने दे।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।।

ये आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं- बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलने का स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता।

गीता-माहात्म्यम्

- आचार्य श्री नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

अपने-अपने धर्मग्रन्थों का अपना-अपना विशेष माहात्म्य होता है, जिससे पता चलता है कि उस ग्रन्थ का बड़प्पन क्यों है, उस ग्रन्थ के स्वाध्याय से क्या क्या लाभ होता है ? इत्यादि ।

इसी प्रकार गीता-माहात्म्य की बात है। वेद न पढ़े, शास्त्र न पढ़े, उपनिषदें न पढ़ीं- अथवा इनके पढ़ डालने की शक्ति अपने में न देखी, तो यदि सब का सार गीता ही पढ़ डाली, तो जीवन सफल बन सकता है ।

संसार में गीता ही एक ऐसा सारभूत ग्रन्थ है कि जिसमें मनुष्य की जीवनोपयोगी बातें इतने संक्षेप से, इतनी उत्तमता से आती हैं ।

भगवान् कृष्ण ने गीतोपदेश दिया ।

कब ? महाभारत के महायुद्ध के अवसर पर ।

क्यों ? इसलिए कि अर्जुन कातर होकर अस्त्र-शस्त्र छोड़कर अपाहिज की भांति हाथ पर हाथ धरकर बैठ गया था। कृष्ण भगवान् को यह बात अच्छी नहीं लगी । इसलिए गीता द्वारा सहज-स्वभाव-धर्म का ऊहापोह किया और अर्जुन को पुनः खड़ा किया ।

यह उपदेश न होता तो क्या होता ? यह उपदेश न होता तो पाण्डवों की हार होती और संसार पर उल्टा प्रभाव पड़ता कि दुर्योधन की तरह ही वर्तना चाहिए, देखो उसका कोई कुछ भी बिगाड़ न सका ।

युद्ध होने से क्या हुआ ? पाण्डव निन्दा से बचे । उनकी विजय अर्थात् सत्य की विजय, धर्म की विजय हुई और संसार पर उच्च स्तर का प्रभाव पड़ा कि अन्त में सत्य की ही विजय होती है, धर्म की ही विजय होती है । इसलिए धर्म पर ही आरूढ़ होना चाहिए ।

एक और भी लाभ हुआ, अपूर्व- वह यह कि इस महायुद्ध के निमित्त से गीता-रत्न जगत् के सम्मुख आया, वह गीता स्वयं अमर हुई, अमर हुए हमारे वेदशास्त्र, उपनिषद् , अमर हुए भगवान् कृष्ण, अमर हुए पाण्डव, अमर हुआ भारत और अमर हुआ महाभारत ।

क्या गीता का उपदेश इसी प्रकार हुआ था, जैसा कि, जिस रूप में कि गीता मिल रही है ?

नहीं, गीता का उपदेश भगवान् कृष्ण द्वारा अर्जुन को मौखिक रूप में ही हुआ, किन्तु गीता को सुन्दर प्रतिभाशाली अमर-काव्य बनाने का श्रेय भगवान् व्यास को है, जिनकी दिव्य लेखनी से ऐसा अदृष्टपूर्व सरस्वती का प्रवाह उतरा ।

अच्छा गीता का माहात्म्य क्या है ? प्राणायामपूर्वक जो गीताध्ययन करेगा उसके पाप नष्ट होंगे, इस जन्म के पाप तो जायेंगे ही अन्य जन्मों के भी जायेंगे।

क्या सचमुच ? इस अर्थ में सचमुच कि यदि अध्ययन या पाठ का अर्थ आचरण भी है तो गीतानुकूल आचरण करने से कर्मयोग द्वारा मनुष्य इह जन्म में पाप-पुण्यों से अलिप्त रहेगा और दूसरे जन्म में मुक्त होगा ।

और केवल पाठ से ?

और केवल पाठ से भी यह होगा कि यदि गीता-पाठ शुद्ध मनोभूमिका के साथ होता रहेगा तो न जाने गीता का कौन सा वचन हृदय में आ लगेगा और उससे पाठ करने वाले का कितना कल्याण होगा । अर्थ-विचारपूर्वक गीतापाठ से सब कुछ संभव है । जो केवल गीतापाठ करते हैं, उनको चाहिए कि किसी सद्गुरु से उसके तत्त्व को समझ लेने की चेष्टा करें ।

कहा भी है कि–

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ।।

अर्थात् समस्त उपनिषदें तो गौएं हैं । दुग्ध दोहने वाले हैं गोपालनन्दन भगवान् कृष्ण । पार्थ अर्जुन बछड़ा है । दुग्ध पीने वाले विद्वान् हैं, दुग्ध है गीतारूपी अमृत ।

बस,

एकं 'शास्त्रं' देवकीपुत्रगीतम् । एको 'देवो' देवकीपुत्र एव ।।

एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि । कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ।।

एक ही शास्त्र है - जिसको भगवान् कृष्ण ने कहा अथवा गाया ।

एक ही देव है, एक ही वह भगवान् कृष्ण है, जिसने इस प्रकार का अद्भुत शास्त्र कहा अथवा इस प्रकार अद्भुत कर्मयोग का गीत गाया, तथा अर्जुन को ज्ञानोपदेश दिया ।

एक ही मन्त्र है- उस भगवान् परमेश्वर का नाम ।

एक ही काम है– उस भगवान् की सेवा ।

इसके ऋषि कौन हैं ? भगवान् व्यास, जिन्होंने गीता को रचा ।

देवता कौन है, जिसने प्रेरणा दी ? भगवान् कृष्ण ।

गीता का बीज क्या है ?

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं, प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

अरे अर्जुन, जिन बातों का विचार इस समय नहीं करना चाहिए, उन विचारों को क्यों लेकर बैठा है । जिन बातों को नहीं सोचना चाहिए, क्यों सोच रहा है और बड़ी–बड़ी बातें, शास्त्रों की बातें कर रहा है । इस समय तो प्राप्त महायुद्ध में डटे रहना ही तेरा कर्तव्य है-

यह बीज है, यहीं से गीता–वृक्ष का अंकुर फूटता है ।

कील, खूंटा क्या है ?

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।

यह शक्ति है । बस, मैं तुझे युद्ध में होने वाली हिंसा के सब प्रकार के पापों से छुड़ा दूँगा, तू शोक मत कर । इसी खूँटे के इर्द गिर्द तुझे घूमना है ।

इसलिए- पार्थ अर्थात् अर्जुन को समझाने के लिए साक्षात् भगवान् कृष्ण द्वारा महाभारत की रणस्थली में कही हुई और भगवान् व्यास द्वारा सुन्दरतापूर्वक रची हुई अठारह अध्यायरूपी अद्वैतामृतवर्षिणी- आत्मैकतत्त्वप्रबोधिनी, भवसागरपारतारिणी गीते, मैं तेरा अनुसन्धान करता हूँ ।

***

पता- कुलपति, गुरुकुल महाविद्यालय,

ज्वालापुर (हरिद्वार)

देव दयानन्द

-पद्मश्री श्री क्षेमचन्द्र सुमन, पत्रकार

भारत के उद्धारक ऋषिवर, दयानन्द हे शान्ति-सुधाम ।
ब्रह्म-वंश-अवतंस तुम्हारा, अमर हो गया जग में नाम ।।
यज्ञों में पशु-बलि देने की-
प्रथा तुम्हीं ने की थी बन्द ।
शूद्रों को निज गले लगाकर,
काटे उनके भारी फन्द ।।
बुरी रीतियों औ कुरीतियों, को करके तुमने निर्मूल ।
ले सुधार की सुई निकाला, दुख-दायक समाज का शूल ।।
किया अविद्या-अन्धकार को,
ज्ञान-सूर्य से अपने दूर ।
आडम्बर मिथ्याभिमान के,
किया किले को चकनाचूर ।।
दिखलाया स्वराज्य-पथ तुमने, मिला देश को था आधार ।
वेदों की महिमा वर्णन कर, किया धर्म का पुनरुद्धार ।।
आर्य धर्म की ध्वजा उड़ाकर,
दिया उसे नव गौरव-दान ।
सदा करेगा पूज्य महर्षे,
तुझ पर यह भारत अभिमान ।।

***

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते ।।

उद्योग में लगे रहना- उससे विरक्त न होना धन, लाभ और कल्याण का मूल है। इसलिए उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अनन्त सुख का उपभोग करता है ।

हिन्दी के युगद्रष्टा : स्वामी दयानन्द

-पं० प्रकाशवीर शास्त्री

अब से सौ साल पहले बम्बई नगर में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की थी । इस बहुमुखी संगठन की नींव रखते समय उनकी दृष्टि जहाँ सामाजिक कुरीतियों के निवारण और नये राष्ट्रीय जागरण की ओर गई वहाँ देश की एकता और विकास की योजनाएं भी उनकी आंखों से ओझल न रह सकीं । अंग्रेज दोनों हाथों से उन दिनों देश की दौलत को लूट ही रहा था । धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में भी वह भारत को दिवालिया बनाना चाहता था । इसके लिए उसने अच्छी संख्या में अपने दलाल छोड़ रखे थे । भाषा, वेश और सभ्यता तीनों पर उसका खुला प्रहार हो रहा था ।

लार्ड मैकाले ने अपने एक सम्बन्धी को भारत में अंग्रेजों को पांव फैलाते देख कर एक बार लिखा था- यदि यह ही गति रही तो वह दिन दूर नहीं जब भारतीय रंग-रूप में जरूर हिन्दुस्तानी लगेंगे, पर दिल और दिमाग दोनों से पूरी तरह वह अंग्रेज हो जाएंगे, लेकिन उस बेचारे को यह क्या पता था कि भारत में एक संन्यासी ने राष्ट्रीयता की ऐसी लहर पैदा कर दी है जो तेरे इन स्वप्नों को ही केवल मिट्टी में मिलाकर नहीं रख देगी, अपितु अंग्रेजी राज की नींव हिलाने में भी प्रमुख भूमिका अदा करेगी ।

स्वामी दयानन्द का जन्म सौराष्ट्र की मोरवी रियासत के एक गांव टंकारा में हुआ था । उनकी मातृभाषा गुजराती थी और अध्ययन मुख्यतः संस्कृत के माध्यम से हुआ । इसलिए गुजराती और संस्कृत पर उनका जितना अधिकार था, उतना हिन्दी पर नहीं था । अपने लिखे ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' का पहला संस्करण भी इसलिए उन्हें रद्द करना पड़ा क्योंकि उसमें हिन्दी उतनी परिमार्जित नहीं थी, जितनी दूसरे संस्करण में थी । वर्तमान 'सत्यार्थप्रकाश' की भूमिका में इसका उल्लेख भी स्वामी जी ने किया है । डॉ० अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'थाट्स आन पाकिस्तान' में 'सत्यार्थप्रकाश' की हिन्दी को आदर्श हिन्दी लिखा है । उनका कहना है- हिन्दी न तो इतनी क्लिष्ट हो, जिसमें संस्कृत शब्दों की भरमार हो और न ही ऐसी हिन्दी हो, जिसमें सरलता के नाम पर अरबी और फारसी के शब्द जबरदस्ती ऊपर थोपे गये हों । 'सत्यार्थप्रकाश' में जो हिन्दी स्वामी दयानन्द ने लिखी है वह स्वाभाविक भाषा है। स्वामी जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के अतिरिक्त भी छोटे-बड़े सब मिलाकर ३७ और ग्रन्थ हिन्दी में लिखे हैं ।

स्वामीजी के सम्पर्क में जो विदेशी आए उन्हें भी हिन्दी सीखने का परामर्श उन्होंने दिया । थियोसोफिकल सोसायटी की मादाम ब्लावाट्स्की को एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा यदि अपने पत्र का उत्तर चाहें तो उसकी नागरी करवा कर हमें जरूर भेजें। इसी तरह का एक पत्र कर्नल अलकाट को उन्होंने लिखा- मुझे यह सुनकर खुशी हुई कि आपने नागरी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया है। अपने प्रमुख शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा को भी, जिन्हें छात्रवृत्ति दिलवा कर स्वामी जी ने ही विदेश पढ़ने भेजा था, वह यदा-कदा लिखते रहते थे- विदेशों में अपनी भाषा के गौरव की वृद्धि का तुम्हें जरूर ध्यान रहना चाहिए। मारीशस, फीजी, ट्रिनिडाड, सुरीनाम, गुयाना आदि जिन देशों में प्रवासी भारतीय रहते हैं, उनमें भी हिन्दी प्रचार का अधिकांश श्रेय आर्यसमाज को है ।

राष्ट्रीय एकता के लिए कोई भाषा, जो पूरे देश में बोली और समझी जा सके, उसे स्वामी दयानन्दजी बहुत आवश्यक मानते थे । उदयपुर में रियासत के दीवान श्री मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या ने एक बार इसी प्रकार चर्चा चलने पर स्वामी जी से पूछा- महाराज ! राष्ट्र की एकता के लिए आप किन बातों को प्रमुखता देना पसन्द करेंगे । स्वामीजी ने कहा- एक भाषा, एक भाव और एक धर्म राष्ट्रीय एकता के आधार हैं । इनमें भी भाषा पर उन्होंने विशेष बल दिया । स्वयं अपने ग्रन्थों और भाषणों का माध्यम भी स्वामी जी ने हिन्दी को ही रखा । प्रारम्भ में संस्कृत में भी उन्होंने कुछ पुस्तकें लिखीं, पर बाद में उनका भी हिन्दी में अनुवाद कर दिया । वह यह अच्छी तरह जान गये थे कि संस्कृत भारत में आज विद्वानों की भाषा तो जरूर है

पर जनभाषा नहीं है, इसलिए क्यों न उस भाषा का ही सहारा लिया जाए, जो देश के अधिकतर भाग में बोली और समझी जाती है। आर्यसमाज को जो राष्ट्रीयता और सुधार के कार्यक्रम स्वामी जी ने दिए उनमें हिन्दी का प्रचार और प्रसार भी मुख्य कार्य रहा। हिन्दी के लिए अपने ग्रन्थों में स्वामी जी ने आर्यभाषा शब्द का प्रयोग किया है।

एक बार स्वामीजी से ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन ने कहा– महाराज! कहीं आपने अंग्रेजी और सीख ली होती तो बहुत बड़ा काम हो जाता। फिर तो वेदों का यह ज्ञान दुनिया के उन दूसरे देशों में भी आसानी से फैल जाता, जहाँ अंग्रेजी बोली और समझी जाती है। स्वामीजी बोले–केशव बाबू! अगर आपने अंग्रेजी के साथ संस्कृत और पढ़ ली होती तो उससे भी बड़ा एक काम यह होता– एक और एक ग्यारह, पहले हम दोनों मिलकर अपने देश का सुधार करते और बाद में कहीं और चलने की बात सोचते।

आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं ने, चाहे वे गुरुकुल हों अथवा डीएवी कालेज, दोनों में ही प्रारम्भ से शिक्षा का माध्यम हिन्दी रही। पंजाब में तो आर्यसमाज के प्रचार से पहले उर्दू का बोलबाला था। आपसी पत्र-व्यवहार से लेकर समाचारपत्रों तक में भी उर्दू चल पड़ी थी। आजतक भी कई पत्र उर्दू में निकल रहे हैं। लेकिन पंजाब के इन उर्दू पत्रों ने भी हिन्दी के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में बड़ी मदद की है। अब तो लगभग इन सभी उर्दू पत्रों के हिन्दी संस्करण भी निकल रहे हैं। जिन घरों में पुरानी पीढ़ी वालों के लिए उर्दू के पत्र आते हैं, उन्हीं घरों में नई पीढ़ी के लिए हिन्दी के पत्र मंगवाए जाते हैं।

डी०ए०वी० कालेज के संस्थापकों में महात्मा हंसराज जी के बाद पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय का नाम प्रमुख रूप में आता है। लालाजी को गिरफ्तार कर जब मांडले जेल भेजा गया तो उन पर जो आरोप लगे उनमें एक यह आरोप भी था– लाला लाजपतराय का सम्बन्ध उस आर्यसमाज से है, जो हिन्दी के प्रचार और प्रसार को अपना राष्ट्रीय धर्म मानता है। उधर महात्मा मुंशीराम ने, जो संन्यास के बाद स्वामी श्रद्धानन्द बने, हरिद्वार के पास गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की। लेकिन गुरुकुल में भी विज्ञान, साहित्य, दर्शन, इतिहास आदि सभी विषय हिन्दी के पढ़ाए जाते हैं।

पंजाब में हिन्दी–उर्दू के इस संक्रमणकाल में उन लोगों को एक अजीबो–गरीब परेशानी से गुजरना पड़ा, जो हिन्दी नहीं जानते थे। प्रसिद्ध अभिनेता स्वर्गीय श्री पृथ्वीराज कपूर ने एक बार अपना हिन्दी संस्मरण सुनाते हुए कहा– स्वामी दयानन्द जी की कृपा से ही मुझे भी हिन्दी सीखनी पड़ी। विवाह से पहले मेरी पत्नी ने मुझे एक पत्र हिन्दी में लिख मारा। उस समय तक मैं उर्दू या फिर थोड़ी–बहुत अंग्रेजी ही जानता था। पंजाब और सीमाप्रान्त में उन दिनों ऐसी हवा आर्यसमाज ने चला रखी थी कि कोई दूसरी भाषा को हाथ ही नहीं लगाना चाहता था। लड़कियां तो विशेष रूप से हिन्दी पढ़ रही थीं। अपनी होने वाली पत्नी के पत्र को शर्म के मारे किसी और से तो मैं पढ़वाना नहीं चाहता था और स्वयं मेरे लिए हिन्दी का काला अक्षर भैंस बराबर था। समझ में नहीं आया करूँ तो क्या करूं। बाद में बाजार से हिन्दी की बारहखड़ी खरीद कर लाया। पहले तो कुछ दिन जम कर वह सीखी और धीरे-धीरे अक्षर जोड़कर वह पत्र किसी तरह पढ़ा। मेरे लिए मेरी पत्नी का वह पत्र ही हिन्दी सिखाने वाले गुरु का काम कर गया।

एक बार स्वामी जी जब पंजाब का भ्रमण कर रहे थे तो उनके एक भक्त ने उनके ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करने की अनुमति मांगी। स्वामी जी बोले भाई! मेरी आँखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी भारतीय एक ही भाषा बोलने और समझने लग जाएंगे। जिन्हें मेरे भाव जानने हैं, वह मेरी भाषा सीखें। अनुवाद तो विदेशियों के लिए होता है।

राजस्थान में शाहपुरा एक ऐसी रियासत थी, जिसके शासक स्वामी दयानन्द के अच्छे भक्त बन गये थे। स्वामी जी से वह राज-काज की बातों में भी परामर्श लेने लगे थे। उन्हें दो बातें विशेष रूप से स्वामीजी ने कहीं। पहली बात राज काज

का अधिकांश काम वह हिन्दी में करे यह थी । दूसरी बात अपने शरीर पर कम से कम एक वस्त्र हाथ का बना और हाथ का कता हुआ जरूर धारण करें । आगे चलकर तो स्वाधीनता आन्दोलन में स्वदेशी वस्त्र और हिन्दी का व्यवहार दोनों राष्ट्रीयता के प्रतीक ही बन गये । मद्रास में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की नींव जब गांधी जी रख रहे थे तब चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य ने कहा था- क्यों न हिन्दी का नाम बदलकर स्वराज्य भाषा रख दिया जाए ।

आर्यसमाज के गुरुकुलों, कालेजों और कन्या विद्यालयों ने देश को हिन्दी-सेवियों की भी कई पीढ़ियां दी हैं । श्री पद्मसिंह शर्मा, सम्पादकाचार्य, पं० रुद्रदत्त जी, कविवर श्री नाथूराम शंकर और उनके सुयोग्य सुपुत्र श्री हरिशंकर शर्मा ने अपनी लेखनी और वाणी से हिन्दी की भरपूर सेवा की । पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आर्यसमाज से प्रभावित व्यक्ति अच्छी संख्या में मिलेंगे। हिन्दी के कुछ पुराने मासिक और साप्ताहिक पत्र भी वर्षों तक आर्यसमाज के कुशल और समर्थ पत्रकारों द्वारा चलाये जाते रहे । आर्यमित्र, भारतोदय, सद्धर्म-प्रचारक और मार्तण्ड इसी तरह के पत्रों में हैं । इनमें आर्यमित्र तो आज के साप्ताहिक पत्रों में वेंकटेश्वर समाचार के बाद सबसे पुराना हिन्दी का पत्र है । महात्मा गांधी ने आर्यसमाज की हिन्दी सेवाओं की व्याख्या दो शब्दों में इस तरह की थी- आर्यसमाज और हिन्दी दोनों एक दूसरे के पूरक और पर्यायवाची बन गए हैं । महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की इस दूरदर्शिता ने भारत को विनाश के मुंह में जाने से बचा लिया ।

***

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।

दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ।।

बुद्धिमान् पुरुष की बुराई करके इस विश्वास पर निश्चिन्त न रहे कि 'मैं दूर हूँ ।' बुद्धिमान् की बाँहें बड़ी लम्बी होती हैं, सताया जाने पर वह उन्हीं बाँहों से बदला लेता है ।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।।

जो विश्वास का पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं, किन्तु जो विश्वासपात्र है, उस पर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है, वह मूल का भी उच्छेद कर डालता है।

आर्यसमाज का दायित्व

- श्री प्रकाशवीर शास्त्री

आर्यसमाज की स्थापना कांग्रेस के जन्म से दस वर्ष पहले ही हो चुकी थी। डॉ० पट्टाभि सीतारमैया के शब्दों में स्वराज्य के जो स्वर १९०६ में कांग्रेस मंच पर मुखरित हुए उनकी संपूर्ण योजना और कार्यक्रम आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने १८७४ में ही देशवासियों को दे दी थी। अपने प्रमुख ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में स्वराज्य को सुराज में बदलने की रूपरेखा भी अंग्रेज-राज को भारत से उखाड़ने के साथ-साथ स्वामीजी ने उन्हीं दिनों अपने ग्रन्थों में लिख दी थी। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा को विदेश में भेजकर स्वराज्य के लिए भूमिका तैयार कराने में भी स्वामी जी की दूरदृष्टि काम कर रही थी। भारत में देशी राजाओं को, जो १८५७ की क्रान्ति में छुपे बैठे रहें, कर्तव्य-बोध कराने में भी स्वामी जी ने कई बार देशी रियासतों की यात्रा की। उनके महाप्रयाण के बाद आर्यसमाज के बहुत से राष्ट्रीय नेता आंदोलन की अगली पंक्ति में रहकर स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करते रहे। अमर-शहीद स्वामी श्रद्धानंद, पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय, देवतास्वरूप भाई परमानन्द, चौधरी रामभजदत्त आदि नेता उसी पीढ़ी के थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी सरदार भगतसिंह और रामप्रसाद बिस्मिल जैसे कई उभरते व्यक्तित्व आर्यसमाज ने देश को दिये। पर इतना सब कुछ होने के बाद भी आर्यसमाज विशुद्ध रूप से सांस्कृतिक और सामाजिक संगठन रहकर ही कार्य करे- यह ही सबकी इच्छा रही। परन्तु राजनीति से सदा आंखें बंद रखें और आर्यसमाज राजनीति का निर्देशन न करे, यह अभिप्राय किसी का नहीं था।

अंग्रेज भारत को आर्थिक गुलामी में जकड़ने के साथ-साथ सांस्कृतिक और सामाजिक बंधनों में भी बांधकर रखना चाहता था। इसके लिए अंग्रेजों ने जहाँ ईसाई मिशनरियो का जाल पूरे भारत में फैला दिया, वहीं सरकारी शिक्षा-संस्थाओं का भी खुला समर्थन इससे हो रहा था। लार्ड मैकाले ने इसी बात को अपनी सफलता का उल्लेख करते हुए एक पत्र में लिखा था- 'वह दिन दूर नहीं, जब भारतीय मन और मस्तिष्क दोनों ही हमारे षड्यंत्र का शिकार हो चुके होंगे। शरीर से भले ही वे हिन्दुस्तानी लगें, पर उनके विचारों और वेषभूषा पर हम पूरी तरह से छा जायेंगे। आर्यसमाज ने इस चुनौती का भी मजबूती से सामना किया। उसके गुरुकुल और डी०ए०वी० कालेज जहाँ युवा पीढ़ी में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरने में लगे थे, वहीं ईसाई मिशनरियों की दुकानें बन्द करवाने में भी आर्यसमाज ने प्रमुख भूमिका निभाई। यह बात दूसरी है कि राजसत्ता अथवा बड़े धनपति का हाथ कमर पर न होने से कुछ क्षेत्रों में उतना काम न हो सका, जितना आवश्यक था। ईसाई मिशनरियों को नाको चने चबवा दिये। भारत के पूर्वी भागों में जहाँ इन्होंने जरूर कुछ पंजे जमाये, पर देश के मध्यवर्ती क्षेत्रों से निराशा ही उनको हाथ लगी।

सामाजिक और राजनीतिक सुधार एक दूसरे के पूरक हैं। आर्यसमाज प्रारम्भ से ही इसे जानता था। इसलिए हरिजनों, आदिवासियों, महिलाओं की शिक्षा और उनकी सामाजिक स्थिति सुधारने में प्रारम्भ से ही आर्यसमाज ने विशेष यत्न किया। हिन्दू समाज ने भी यदि इसमें साथ दे दिया होता तो तस्वीर आज कुछ और ही होती। फिर भी सौ वर्षों में इस क्षेत्र में की गई आर्यसमाज की सेवाएं आज इतिहास का विषय बन गई हैं। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता अपराध माना गया है। हरिजनों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उन्हें नौकरियों और विधानमण्डलों में विशेष संरक्षण देने की भी व्यवस्था की गई थी। आजकल अतिरिक्त भूमि के वितरण में भी हरिजन परिवारों को प्राथमिकता दी जा रही है। पर क्या इससे समस्या का समाधान हो गया? इसमें अभी बहुत कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन करने होंगे।

जन्म से जात-पात की समाप्ति और अन्तर्जातीय सम्बन्धों के विकास में आर्यसमाज ने प्रारम्भ से ही अच्छी रुचि ली। परन्तु अब लगता है कि कुछ इसमें शिथिलता आ रही है। इसके लिए शासन के स्तर पर जहाँ कुछ सुधार अपेक्षित हैं, वहाँ सामाजिक स्तर पर भी नये पग उठाने होंगे। तमिलनाडु की सरकार ने अन्तर्जातीय विवाह करने वालों को सरकार की

ओर से आर्थिक सहयोग और नौकरियों में प्राथमिकता देने का अभियान प्रारम्भ किया है, वह अनुकरणीय है। आर्यसमाज यदि इसके लिए अनुकूल भूमिका तैयार करे तो उसमें केवल हिन्दू-समाज का ही नहीं, मानव-समाज का बहुत भला हो सकता है। इसके लिए पहले अपने संगठन में उन अधिकारियों को प्रमुखता दी जाये, जिन्होंने जांत-पांत से ऊपर उठकर अपना पारिवारिक विस्तार अथवा वैवाहिक सम्बन्ध किये हैं। आर्यसमाज के सदस्य और पदाधिकारी ही कहीं-कहीं अपने नाम के साथ जब जातिवाचक शब्द लगाते हैं तो उनकी आस्था में संदेह होने लगता है। आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं में पढ़ने और पढ़ाने वाले छात्रों एवं अध्यापकों के नामों के साथ भी जातिवाचक शब्दों का रहना उपहासास्पद लगता है। यहीं से जाति-परक शब्दों के लिए मोह जागता है। यदि आर्यसमाज इस दिशा में पहल करे तो शासन को विवश होकर झुकना पड़ेगा। पीछे हरिजन-समस्या के समाधान पर बोलते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि जबतक देश में जांत-पांत की बुराई जीवित रहेगी, तबतक हरिजन-समस्या के समाधान में बहुत बड़ी बाधा रहेगी।

अभी गांधी जयन्ती से शराबबंदी के बारह सूत्री कार्यक्रम की घोषणा भी की गई थी। पराधीन भारत में जिस शराब की बुराई से मुक्ति लेने का दृढ़ संकल्प किया गया था, वह दुर्भाग्य से स्वाधीनता के ४७ वर्ष बाद और भी कई गुना बढ़ गई है। कई राज्य सरकारों का भी इसमें प्रमुख हाथ रहा। राज्य की आय बढ़ाने के चक्कर में आंख मूंद कर शराब के लाइसेंस दिए जाते रहे। पर आर्यसमाज जैसे समाज-सुधारक संगठन मजबूती से यदि इस ओर लग जायें तो समाज और सरकार दोनों को सही रास्ते पर आना पड़ेगा। मादक द्रव्यों का सेवन करने वाला चाहे कितना ही बड़े से बड़ा नेता क्यों न हो, उसका और सरकारी अधिकारियों का जब तक खुलकर जनता में विरोध नहीं किया जायेगा, तबतक यह बुराई देश से जायेगी नहीं। राजनीति से पृथक् रहते हुए भी कृतसंकल्प होकर यदि आर्यसमाज ने इस बुराई को दूर करने का बीड़ा उठा लिया तो भावी भारत उसका ऋणी रहेगा।

इसी तरह की एक और कमजोरी जो आज पूरे देश को स्वाधीन होने के बाद भी फिर से दासता के शिकंजे में जकड़ रही है, वह है अंग्रेजी भाषा के बढ़ते हुए वर्चस्व की। एक बार तो यह लगने लगा कि अंग्रेजी के नामलेवा और पानीदेवा अब देश में ढूंढने पर भी नहीं मिलेंगे, परन्तु अब फिर से अंग्रेजी की हवा बढ़ रही है। सरकारी कार्यालयों, नौकरियों और परीक्षाओं में तो अंग्रेजी का दबदबा है ही, सामाजिक कार्यक्रमों में, विशेषकर विवाह-शादी के आमंत्रणपत्रों तक में अंग्रेजी का भूत हावी हो रहा है आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ने अहिन्दी भाषी होते हुए भी राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था। अपने ग्रन्थों और भाषणों में भी उन्होंने उसका प्रयोग किया। परन्तु अब आकर हिन्दी के प्रचारक और समर्थक भी थकने से नजर आ रहे हैं। आर्यसमाज भाषायी-स्वाभिमान देश में जागृत करने के लिए यदि आगे आता है तो दूसरे लोग भी उसके पीछे चलेंगे, क्योंकि आर्यसमाज को इसके माध्यम से अपने किसी राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति नहीं करनी है। इसलिए भी उसकी आवाज स्वागत योग्य होगी। देश आज सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति के चौराहे पर है। इसमें भाषायी-स्वाभिमान का प्रश्न भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। राष्ट्रीय चेतना जगाने में भाषा की भूमिका रहती है। आर्यसमाज शताब्दी के दूसरे चरण में प्रवेश करते समय अपने कार्यक्रमों में इसका समावेश करें। इसी तरह के कई और भी ज्वलंत प्रश्न हैं, जिनको आर्यसमाज अपने कार्यक्रम में स्थान दे तो देश उसे हाथों-हाथ उठा लेगा।

राजनीतिक दल न होते हुए भी आर्यसमाज देश को वर्तमान और भावी राजनीति को स्वस्थ दिशा देने का काम आसानी से कर सकता है। सत्ता की राजनीति को सेवा की राजनीति में बदलने का काम प्रचलित राजनीतिक दलों द्वारा संभव नहीं है। यह आर्यसमाज जैसे निष्पक्ष और तटस्थ संगठन ही कर सकते हैं। दशरथ की राजसभा में जो काम महर्षि वशिष्ठ का था, वह ही आज आर्यसमाज को निभाना होगा। किसी भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर शासन और समाज-दोनों आर्यसमाज के संकेतों की आंख उठाकर प्रतीक्षा करें- इस स्थिति में यदि आर्यसमाज आ गया, तो इतिहास में अमर हो जायेगा।

***

शिक्षा में हिन्दी के प्रस्तोता : स्वामी श्रद्धानन्द

- स्व. पं. प्रकाशवीर शास्त्री

हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी का रजत-जयन्ती समारोह चल रहा था। गांधी जी भी उसमें भाग लेने पधारे थे। आए थे यह सोचकर जो विश्वविद्यालय काशी में है, वहाँ तो हिन्दी और संस्कृत का बोलबाला होगा ही। पर जब गांधी जी ने चारों ओर वहाँ अंग्रेजी का साम्राज्य देखा तो तिलमिला उठे। विश्वविद्यालय के संस्थापक मालवीय जी को देखकर बोले, महामना ! यह बच्चे तो गंगा किनारे बैठकर टेम्स का पानी पी रहे हैं। अपने इसी भाषण में गांधी जी ने कहा- "लोग मुझे महात्मा कहते हैं, पर मैं महात्मा नहीं हूँ। महात्मा तो आर्यसमाज के नेता स्वामी श्रद्धानन्द हैं, जो गंगा के किनारे हरिद्वार में बैठकर हिन्दी के माध्यम से गुरुकुल में विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे हैं।

स्वाधीन भारत में अभी तक भी अंग्रेजी हवाओं में पले कुछ लोग यह कहते मिलेंगे- "जबतक विज्ञान-तकनीकी ग्रन्थ हिन्दी में न हों तबतक कैसे हिन्दी में उच्च शिक्षा दी जाय. जबकि स्वामी श्रद्धानन्द स्वाधीनता से भी चालीस साल पहले गुरुकुल कांगड़ी में हिन्दी के माध्यम से विज्ञान जैसे गहन विषयों की शिक्षा दे रहे थे। ग्रन्थ भी हिन्दी में थे और पढ़ाने वाले भी हिन्दी के थे। जहाँ चाह होती है, वहाँ राह निकलती है। एक लम्बे अरसे तक अंग्रेज गुरुकुल कांगड़ी को भी राष्ट्रीय आन्दोलन अभिन्न अंग मानते रहे। इसमें कोई सन्देह भी नहीं। गुरुकुल के स्नातकों में स्वाधीनता की अजीब तड़प थी। स्वामी श्रद्धानन्द जैसा राष्ट्रीय नेता जिस गुरुकुल का संस्थापक हो और हिन्दी शिक्षा का माध्यम हो, वहाँ राष्ट्रीयता नहीं पनपेगी तो कहाँ पनपेगी। स्वामी जी से मिलने देश के प्रमुख राष्ट्रीय नेता भी गुरुकुल आते रहते थे। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद जब मोहनदास कर्मचन्द गांधी पहली बार गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव में पधारे, तब स्वामी श्रद्धानन्द ने ही उन्हें महात्मा की उपाधि प्रदान की। तब से ही गांधी जी महात्मा गांधी कहलाने लगे।

राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के मंच पर भी प्रारम्भ में तो तीन-चार दशाब्दियों तक अंग्रेजी का ही दबदबा रहा। भाषण-प्रस्ताव और चर्चाओं में अंग्रेजी छाई रहती थी। पर जब १९१९ में अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन हुआ और स्वामी श्रद्धानन्द उसके स्वागताध्यक्ष बनाए गए, तब पहली बार कांग्रेस के मंच पर हिन्दी सुनने को मिली। स्वामी जी ने वेद मन्त्र पढ़कर जब अपना भाषण हिन्दी में दिया, तब वहाँ बैठे किसी नेता ने कहा- "आज लगता है हम भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में बैठे हैं। कांग्रेस अधिवेशन से पहले अमृतसर के जलियांवाला बाग में ऐतिहासिक नरमेध हो चुका था, जिसकी याद भी आज रोंगटे खड़े कर देती है। लोगबाग इतने डरे हुए थे कि कोई हिम्मत करके तैयारियों में आगे लगने को उद्यत नहीं हो रहा था। सबने आखिर एक स्वर में यह तय किया- "स्वामी श्रद्धानन्द यदि इस अधिवेशन की बागडोर अपने हाथ में ले लें, तब ही बात बन सकती है। अमृतसर कांग्रेस के चार वर्ष बाद स्वामी जी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी निर्वाचित हुए थे।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी स्वामी जी का अमर स्मारक है। प्रारम्भ में जब उन्होंने हरिद्वार में गंगा के दूसरे किनारे पर गुरुकुल की नींव डाली तो अधिकांश व्यक्ति स्वामी जी के प्रयास की सफलता में संदेह कर रहे थे। कुछ तो कहते थे- "भला कौन अपने बालकों को इन जंगलों में लाकर साधु बनाएगा। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का वेश भी उन दिनों कुछ ऐसा ही था। सबको वहाँ नंगे पैर, नंगे सिर रहना पड़ता था और पीले खद्दर के कपड़े पहनना अनिवार्य था, पर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सबसे पहले अपने ही दो पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरुकुल में ब्रह्मचारी बनाया। आगे चलकर वह ही पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति दिल्ली के सुप्रसिद्ध पत्रकार और राजनीतिक नेता बने। हरिश्चन्द्र जी स्नातक बनने के कुछ दिन बाद विदेशों में स्वाधीनता की अलख जगाने चले गए।

एक ऐसा भी समय रहा जब लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, देवतास्वरूप भाई परमानन्द, चौधरी रामभजदत्त और श्री घनश्यामसिंह गुप्त आदि आर्यसमाज के नेता राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच पर भी वैसे ही सक्रिय थे जैसे आर्यसमाज में। उन दिनों स्वातन्त्र्य-संघर्ष में आर्यसमाज का संगठन द्वितीय रक्षा पंक्ति का काम कर रहा था। समाजसुधार के साथ-साथ राजनीतिक चेतना जगाने में आर्यसमाज के इन नेताओं का योगदान आसानी से नहीं भुलाया जा सकेगा। हिन्दी, हरिजन-समस्या का समाधान और खादी तीनों के लिए आर्यसमाज अर्पित सा हो गया था। मालवीय जी कट्टर सनातनधर्मी थे और स्वामी जी कट्टर आर्यसमाजी, लेकिन राजनीतिक और सामाजिक सुधारों में दोनों एक थे। हिन्दू समाज को रूढ़ियों से उबार कर एक सशक्त समाज बनाने की उनकी कल्पना थी। प्रारम्भ में गांधीजी के साथ कई प्रश्नों पर उन दोनों का मतभेद भी रहा, पर बाद में गांधी जी को जब उन्होंने सारी स्थिति समझाई और अन्य स्रोतों से भी गांधी जी ने उसकी वास्तविकता की जानकारी ली तो वह स्वामी जी की दूरदर्शिता के कायल हो गए। दिल्ली में जब स्वामी जी का बलिदान हुआ, तब गोहाटी में उसी समय अखिल भारतीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन चल रहा था। स्वामी श्रद्धानन्द की मृत्यु का समाचार सुनते ही अधिवेशन स्थगित कर दिया गया। शोक प्रस्ताव पर बोलते हुए अपने भाषण में गांधी जी ने कहा था- "काश ! यह शानदार मौत मुझे भी मिली होती।"

समाज-सुधार आन्दोलन को भी इस निर्भीक संन्यासी से नई दिशा मिली। हरिजन-समस्या के समाधान में तो कई स्थानों पर संघर्ष का भी सामना करना पड़ा। गुरुकुल कांगड़ी के छात्रावासों और भोजनालयों में बिना किसी भेदभाव के हर जाति के विद्यार्थी रहते और खाते-पीते थे। स्वामी जी का कहना था कि मनों में छुआछूत की भावना मिटाने में आवासीय शिक्षण-संस्थाओं का अच्छा योगदान रह सकता है। चौबीसों घंटे एक साथ मिलकर जब वह रहेंगे, खेलेंगे-कूदेंगे और पढ़ेंगे-लिखेंगे तो कहां तक छूत-अछूत की दीवार खड़ी रह जाएगी। आजादी के बाद भी यदि इसी रास्ते को पकड़ा गया होता तो मंजिल बहुत पहले तय हो जाती। आवासीय पद्धति पर आश्रित ऐसे गुरुकुल उन्होंने हरियाणा में इन्द्रप्रस्थ और कुरुक्षेत्र, गुजरात में सोनगढ़ और सूपा में भी खोले। देहरादून का कन्या गुरुकुल भी उसी शृंखला की कड़ी है।

सदियों की दासता के बाद रूढ़ियों का शिकार हिन्दू समाज कुछ समय तक तो बिल्कुल ही छुई मुई बन गया था। किसी हरिजन से सवर्ण हिन्दू का स्पर्श हो गया तो बिरादरी से बाहर। किसी हरिजन के कुएं से किसी सवर्ण हिन्दू ने पानी पी लिया तो बिरादरी से बाहर। किसी की चारपाई पर भूल से कोई बैठ गया तो बिरादरी से बाहर। बंगाल में तो किसी मुस्लिम नवाब के दरबार में नाक तक भोजन की गन्ध जाने से ही 'घ्राणम् अर्धभोजनम्' सूंघना भी आधा भोजन होता है, की व्यवस्था देकर एक कुलीन और सम्भ्रान्त परिवार को जातिच्युत कर दिया गया। बाद में उसी की शाखा-प्रशाखाएं जहाँ-तहाँ निकल-निकल कर पूरे बंगाल में फैल गईं। उसकी परिणति किस रूप में १९४७ में हुई, इसकी विस्तार से यहाँ चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू समाज की इस कमजोरी को भी सहारा दिया। जो व्यक्ति अथवा परिवार हिन्दू समाज की इस संकुचित भावना का शिकार हो गए थे, उनको समाज में फिर से वही पुराना सम्मानित स्थान देकर अपने उदार हृदय और दूरदर्शिता का परिचय दिया। कुछ लोग जो हिन्दू समाज की इस कमजोरी का लाभ उठा रहे थे, उन्हें तो इससे ठेस पहुंचनी स्वाभाविक थी। अली-बन्धुओं को आगे करके गांधी जी से उसकी शिकायत भी की गयी, पर स्वामी जी ने गांधी जी से स्पष्ट कह दिया- स्वाधीनता के आन्दोलन को मेरे इस व्यवहार से कुछ भी क्षति पहुंचती है तो मुझे आप छोड़ दें, लेकिन जो लोग स्वयं तो तबलीग की बातें करें और हरिजनों को हिन्दू-मुसलमानों में आधा-आधा बांटने का सुझाव दें और मुझे अपने ही भाइयों को गले लगाने से रोकें, यह श्रद्धानन्द के लिए संभव नहीं है। मैं तो राष्ट्र की एकता का इसे एक आवश्यक भाग ही मानता हूँ।

राष्ट्रीय मुसलमानों का एक वर्ग, जो स्वामी जी को निकट से जानता था, उन हलकी बातों से कभी प्रभावित नहीं हुआ। हकीम अजमल खां, डाक्टर अंसारी और दिल्ली के दूसरे इसी तरह के राष्ट्रीय नेता स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में दिल्ली में कन्धे से कन्धा लगाकर आजादी का आन्दोलन चला रहे थे। तीस मार्च का वह दिन जब दिल्ली में चांदनी चौक के घंटाघर पर स्वामी जी आजादी के दीवानों का एक विशाल जुलूस लेकर आ रहे थे, हिन्दू-मुसलमान सभी उसमें शामिल थे। लालकिले की ओर अंग्रेजों की सैनिक टुकड़ी रास्ता रोके खड़ी थी और फतेहपुरी की ओर से समुद्र की तरह ठाठें मारता हुआ यह जुलूस आगे बढ़ रहा था। घंटाघर पर सैनिकों ने जुलूस को रोकने के लिए इधर अपनी संगीनें संभाल लीं। उधर स्वामी जी ने अपनी कमीज के बटन खोलकर सीना तान लिया और कहा- "हिम्मत है तो चलाओ गोली। स्वामी जी की इस निर्भीकता पर सेना के जवान हक्के-बक्के रह गए और करें तो क्या करें। जुलूस के लोग भी स्वामी जी के इस दृढ़ निश्चय पर आज कुछ कर गुजरने को आमादा थे। उनका कहना था- स्वामी जी को गोली तो बहुत दूर की बात है किसी ने हाथ भी लगा दिया तो आज यहाँ लाशें बिछ जाएंगी। अब तो उस दृश्य की कल्पना करना ही कठिन है। आखिर में फिर अंग्रेज अधिकारी को सद्बुद्धि आ गई और सिपाहियों को अपनी बन्दूकें नीची करनी पड़ीं।

***

यद्योश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।

समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ।।

जिन दो मनुष्यों का चित्त से चित्त, गुप्त रहस्य से गुप्त रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती।

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।

ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ।।

सम्बन्धियों के साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है; उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिए।

मेरे सपनों का भारत

– स्व. पं. प्रकाशवीर शास्त्री

देश के पुरानेपन पर जब कभी सोचा जाता है तो यहीं आकर बुद्धि विश्राम लेती है । इसे तो हिमालय की चोटियां, गंगा और यमुना की धाराएं तथा सूर्य की किरणें ही अच्छा बता सकेंगी । राजस्थान के लेखक कर्नल टाड का विचार है कि और देशों में सृष्टि का कोई हिसाब ही नहीं, इससे आदि सृष्टि यहीं हुई यह सुनिश्चित सत्य है और है भी यह ठीक। उत्पत्ति-प्रलय का हिसाब ही किसी देश और उसकी सभ्यता की प्राचीनता बतलाने में अपना मुख्य स्थान रखता है । चैल्डियन्स की सभ्यता संसार में सबसे पुरानी मानी जाती है । उसी से निकली हुई वर्तमान योरोपीय सभ्यता है, जिसके विचार से पृथ्वी की उत्पत्ति बीस लाख वर्ष पूर्व हुई थी । चैल्डियन्स के समकक्ष ही मिश्री सभ्यता तो इस विषय में मौन है । बेबीलोनिया वाले पृथ्वी की आयु केवल पांच लाख वर्ष ही मानकर रह जाते हैं। ईरानी बारह हजार और मध्यकालीन यूरोपीय विद्वान् ६००० वर्ष तक ही पहुंचकर चुप हो गए । फिर इस गम्भीर और विवेचनात्मक प्रश्न का उत्तर यदि कोई दे सकता है तो वह वृद्ध भारत ही अपनी पुरानी बहियों से बता सकता है। महाराज मनु के अनुसार सम्वत् २००९ को सृष्टि की आयु के १९७२९४९०५३ वर्ष हो चुके हैं । इसका विस्तृत विवरण महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में और भास्कराचार्य ने सूर्य-सिद्धान्त में दिया है । वैदिक ग्रन्थों की गणना के अनुसार सृष्टि की आयु ४,३२,००००००० वर्ष मानी गई है ।

पौने नौ सौ वर्ष का यह मुगल और अंग्रेजों का इतिहास तथा उससे पूर्व महाभारत काल तक की पांच सहस्राब्दियों तक का इतिहास तो सिनेमा के चलचित्रों की भांति हमारे सामने है ही । भारतीय असभ्य थे, हमने इन्हें खाना-पीना और वस्त्र-धारण करना सिखाया, कहने वाले जब अजन्ता और एलोरा की गुफाओं की चित्रकला और उसमें अंकित तत्कालीन भारतीय सभ्यता, रहन-सहन आदि के ढंग देखते हैं तो लज्जा से मस्तक झुकाकर रह जाते हैं । स्वयं उनका भारत में आना तो दूर, जब उनके पूर्वज सभ्यता का क-ख-ग भी नहीं जानते थे, वह उस समय के चित्र हैं । अनहैप्पी इण्डिया पुस्तक में विद्वान् थार्नटन महोदय ने लिखा है- विश्व के रंगमंच पर मिस्र की सभ्यता बहुत पुरानी मानी जाती है, परन्तु जब नील नदी की घाटी में पिरामिडों की सृष्टि भी नहीं हुई थी और जब योरोपियन सभ्यता का पालना समझे जाने वाले यूनान और रोम नितान्त असभ्य थे, उस समय भारतवर्ष धन और ऐश्वर्यों का भण्डार था । यहां नगरों और व्यावसायिकों का बुद्धि-कौशल चमकता था और भूमि पर उनका परिश्रम अंकित था । खैबर की घाटी भी इसका प्रमाण है । कारीगरों की चमत्कारपूर्ण भवनों की निर्माण कुशलता की सभ्यता, आज भी सहस्रों वर्षों की फैली हुई सभ्यताएं नहीं कर सकतीं । भारत की स्थिति असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण रही होगी ।

इतना होने पर भी कभी हमने वह हल्के नारे नहीं लगाये, जिनमें हमने अपने धन-वैभव अथवा शक्ति की मलमल की प्रदर्शनी बनाया हो । इससे भी अधिक हमारे पास कुछ था । हां ! एक बार हिमालय की चोटी पर चढ़ मानव-जाति के आदि पुरुष मनु की वह घोषणा हमने दोहराई थी । लेकिन क्यों ? जिसमें संसार भारतीय ऋषियों के चरणों में बैठ कर नैतिकता का पाठ पढ़ सके और बढ़ती हुई अनैतिकता, बर्बरता और ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों पर रोक लगाए ।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ।।

यह ही थी वह भारतीय सौहार्द की द्योतक घोषणा, जिसे स्मरण कर अमेरिका के वैभव को देखकर सकुचाए हुए प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने अमेरिका के आमन्त्रण पर किए गए अपने कुछ सप्ताहों के भ्रमण के बाद गौरव के साथ मस्तक ऊँचा करके कहा था "मैं संसार की सबसे पुरानी और महान् संस्कृति का प्रतिनिधि बनकर आपके देश में आया हूँ ।" द्वितीय

राउण्टेबल कांफ्रेंस में आए हुए प्रतिनिधियों से मिलने के बाद इंग्लैण्ड के वर्तमान प्रधानमंत्री विन्स्टन चर्चिल की भतीजी मिस क्लेयर शेरिडन ने कहा था- मैं कान्फ्रेंस में आए सब ही प्रतिनिधियों के आवास स्थानों पर जा जाकर उनसे मिली। उनके रहन-सहन, बात-चीत और वेशभूषा को देखकर मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा, परन्तु श्रद्धा किसी की ओर न उत्पन्न हुई। लेकिन सबसे मिलने के बाद जब भारत के उस लंगोटीबन्द फकीर की कुटिया में मैं पहुँची, जहाँ बैठकर वह चर्खा चला रहा था, मेरा सिर स्वतः ही श्रद्धा से उसकी ओर झुकने लगा।

-(गांधी अभिनन्दन ग्रन्थ में सर्वपल्ली राधाकृष्णन् द्वारा उद्धृत)

विश्व को जब भी शान्ति और न्याय की खोज हुई है तब-तब ही तृषित नेत्रों से उसने भारत की ओर आंख उठाकर देखा है। वैदिक ऋषियों ने केवल हिमालय की चोटी पर चढ़कर ही अपने जगद्गुरुत्व का शंख नहीं फूंका था, अपितु वह परोपकारी सन्त पुलस्त्य और व्यास बनकर आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि द्वीपों में भी आश्रम बनाकर रहे थे। सत्ता-धन और भूमि के लोभ मे परस्वत्व-अपहरण की खूनी तलवार लेकर आततायी देशों ने कुछ समय तक अन्य देशवासियों के शरीरों और प्रदेशों पर भले ही शासन किया हो, परन्तु उनके हृदयों में वह न प्रवेश कर पाये। इसके विपरीत भारत के ''बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'' और ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' के सन्देशों को लेकर की गई सांस्कृतिक विजय आज भी बहुत से राष्ट्रों के मस्तक पर दिव्य आभा बनकर चमक रही है। अभी पीछे सांची में मौद्गलायन और सारिपुत्त के अस्थि अवशेषों के स्थापना समारोह में आए लंका-स्याम-बर्मा आदि देशों के प्रतिनिधि एक स्वर में यह कहकर गए 'भारत हमारा धर्मगुरु और ज्ञान गुरु दोनों ही है।'

आर्यन रेस नामक पुस्तक के पृष्ठ २४४ पर कर्नल अल्काट ने लिखा है बेबीलोनिया मिस्र यूनान रोम और उत्तरी योरोप के दर्शनशास्त्र तथा धर्म भारतीय विचारों से परिपूर्ण हैं। पैथागोरस, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, होमर, जीनो, हीसिअड, सिसरोवर्लिन आदि तत्त्ववेत्ताओं के विचारों की तुलना कपिल, मनु, व्यास, गौतम, कणाद, जैमिनि, नारद, मरीचि आदि ऋषियों से करने पर स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमीय दर्शनशास्त्रों में पूर्वीय दर्शनों की ही छाप है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र और पिंगल का छन्दशास्त्र आज भी पश्चिमीय नाट्यशालाओं और छन्द रचनाओं की पहुंच से परे है। पश्चिम का सारा संगीत हारमोनियम के पाँच स्वरों में बन्धकर केवल मनोविनोद और विलास कक्षों तक ही पहुँचकर रह गया है, परन्तु भारतीय संगीत-परम्परा निषाद-षड्ज-गान्धार-ऋषभ-मध्यम-धैवत आदि स्वरों में बन्धी हुई वीणा-सितार आदि वाद्ययन्त्रों द्वारा अनादि सत्ता में लय होने का साधन मानी गई है। तानसेन के गुरु हरिदास जी और विष्णुदिगम्बर की संगीत-साधना ब्रह्म प्राप्ति की दिशा में उठते हुए पग ही प्रतीत होते थे। भारतीय साहित्य का निर्माण मुगल शासनकाल में भले ही वातावरण और परिस्थितियों से प्रभावित होकर कुछ दिन तक राज्यश्लाघा में होने लगा हो, परन्तु हमारा साहित्य भी उस अनन्त की ओर ले जाकर ही हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा देकर विराम लेता है, उसकी रचना अधिकतर ''स्वान्तःसुखाय'' आत्मिक आनन्द प्राप्ति के ही लिए हुई है। विश्व की भाषाएं आज भी संस्कृत की सर्वांश में पूर्ण वर्णमाला के आगे नत मस्तक हैं। इंग्लिश में पहले जैसे पुराने ढंग की घड़ियों में I II III इस प्रकार एक के लिए एक, दो के लिए दो और तीन के लिए तीन और आगे भी ऐसी ही रेखाएं खींच कर संख्याबोधक चिन्ह बनाए जाते थे। उसके बाद उनमें कुछ सुधार हुआ और अब १, २, ३, ४, ५ इस रूप में आज लिखे जाने लगे। इन संख्याबोधक चिन्हों को वह अरेबिक अंक कहते हैं। परन्तु अरब में संख्या-पर्यायवाची इन शब्दों को कहते हैं ''इल्मे हिन्दसा'' अर्थात् यह ज्ञान जो भारत से लिया। इस दृष्टि से भी सभ्यता की थोथी ढोंडी पीटने वाले भारत के ऋणी हैं। अलबेरूनी का तो यहाँ तक कहना है कि विश्व की कोई भी जाति एक हजार से आगे गिनना ही नहीं जानती, यह भी भारतीयों को ही गौरव प्राप्त है। गणित शास्त्र में भी अपने परिष्कृत मस्तिष्क से विश्व को चमत्कृत करने वाली महिला लीलावती, जिसने बीजगणित का आविष्कार किया, इसी भारत भूमि की देन है। पश्चिमीय विज्ञान मानव-शरीर की जितनी नाड़ियां गिन पाया है, उपनिषद् के ऋषियों ने उनकी संख्या सात सौ के लगभग और अधिक मानी है। कुछ नाड़ियां

इस प्रकार की भी होती है जो प्राण रहते हुए ही शरीर में अपनी सत्ताएं बनाए रखती हैं और प्राणान्त होते ही उन सूक्ष्म नाड़ियों का भी अस्तित्व देह के धानी में मिल जाता है। उपनिषत्कालीन ऋषियों ने उन्हें योग के द्वारा अपने अन्दर झाँककर देखा था, जिनसे पश्चिम आज भी अपरिचित है।

न्यूटन से शताब्दियों पूर्व ही भास्कराचार्य यह सिद्ध कर चुके थे कि पृथिवी अपनी आकर्षण शक्ति के जोर से सब चीजों को अपनी ओर खींचती है। इसीलिए सब ही पदार्थ उस पर गिरते हुए से दीखते हैं।

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत् , स्वस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।

आकृष्यते तत् पततीव भाति, समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे ।। सिद्धान्त शिरोमणि

भारतीय गणित ज्योतिष के ग्रन्थ तथा देहली, जयपुर और उज्जैन की वेधशालाओं को देखकर सभ्य कहलाने का दम भरने वाले पश्चिमीय राष्ट्र दांतों तले अंगुली दे जाते हैं। शिल्पशास्त्र पर आज भी भृगु, कश्यप, मय और विश्वकर्मा के ग्रन्थ भारतीय भण्डार की अमूल्यतम निधि हैं। महाभारतकालीन लाक्षागृह और द्यूत-भवन आज भी आश्चर्य का विषय बने हुए हैं। अभी कुछ समय पहले की ही तो बात है जब इण्टरनेशनल एकेडमी आफ संस्कृत रिसर्च (अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत अनुसन्धान-मंडल) के अन्वेषकों को मैसूर में भारद्वाज मुनि द्वारा लिखित वैमानिक शास्त्र पर एक ग्रन्थ मिला है। उसमें केवल विमान निर्माणकला, संचालन और उड्डयन के सम्बन्ध में ही विवेचन नहीं किया गया है, अपितु कुछ ऐसे यन्त्रों का भी उल्लेख है, जहाँ आज के समुन्नत वैज्ञानिक पहुंच भी नहीं सके हैं। ऐसे भी विमानों का वर्णन उसमें है जो न तो खण्डित किए जा सकें, न जलाए जा सकें और न टूट ही सकें। एक और भी रोचक विवरण अभी प्रकाश में आया है- १८वीं शताब्दी के अन्तिम काल में बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट्स में शिवकर बापूजी तलपदे नाम के एक वेदज्ञ अध्यापक थे, जिन्होंने मरुत्सखा नामक स्वयंचालित विमान का निर्माण कर १८९५ में बम्बई चौपाटी पर बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ के सामने तथा अन्य भी सहस्रों दर्शकों ने उसे उड़ाया था। तलपदे महोदय ने महादेव गोविन्द रानाडे को भी यह विमान दिखाया था। बाद में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया और उस खिन्नता में उन्होंने विमान का मौडल और तत्सम्बन्धी सारी सामग्री "रैली ब्रादर्स" नामक एक ब्रिटिश फर्म के हाथ बेच दी। भोजकालीन ग्रन्थों में पारे से चलने वाले कुछ यन्त्रों और यानों का भी वर्णन मिलता है जिनकी पश्चिमीय जगत् आज कल खोज में लगा हुआ है। विश्व के अणुविज्ञान के आधार "रमण इफैक्ट" का आविष्कारकर्ता सर सी.वी. रमण और आकाशीय लहरों में ध्वनि दूर तक ले जाने वाले एवं वनस्पति जगत् की आन्तरिक खोज करने वाले जगदीश चन्द्र बसु की जननी भी यही भारत भूमि है। जहाँ बड़े-बड़े योगी और विद्वान् आविष्कारक और अन्वेषक इस भूमि की शोभा बढ़ा रहे हैं, वहाँ प्रकृति नटी भी समय-समय पर अपनी ऋतुओं द्वारा भारत की शोभा द्विगुणित करती रही है। संसार का सबसे बड़ा हीरा 'कोहेनूर' इसी भारत की पुरातन निधि है, जो गोलकुण्डा की खान में एक साधारण मजदूर को मिला और शाहजहाँ, नादिरशाह, अहमदशाह दुर्रानी, शाहशुजा, रणजीत सिंह और दिलीप सिंह के हाथों में होता हुआ आज दो टुकड़े होकर ब्रिटिश राज्य मुकुट की शोभा बढ़ा रहा है। राजनीति के ग्रन्थों में आचार्य चाणक्य का अर्थशास्त्र, विदुर की नीति और पं० विष्णु शर्मा के पञ्चतन्त्र का अनुवाद संसार की प्रायः सब ही भाषाओं में हो चुका है। महाभारतकालीन शस्त्रास्त्र और रामायण-कालीन संजीवनी बूटी, उपनिषद्-कालीन च्यवन आदि ऋषियों का कायाकल्प विज्ञान एवं विक्रम और भोजकालीन राजाओं के उड़नखटोले आज संसार के लिए काल्पनिक कहानी न रहकर खोज का विषय बनते जा रहे हैं। इन सब को देखकर ही किसी कवि ने सम्भव है यह लिखा है-

खण्डहर बता रहे हैं इमारत बुलन्द थी

इसके अतिरिक्त भी प्राचीन भारत की जब समृद्धि और वैभव पर दृष्टि डाली जाती है तो और भी दांतों तले अंगुली आ जाती है। क्या यह चर्चाएं अभी नहीं सुनी जातीं, जब रुपये मन अनाज मिलता था और घी रुपये का पंसेरी मिलता था,

पर आज? यद्यपि हमारा उद्देश्य तत्कालीन आंकड़ों से आज के आंकड़ों को नाप कर इस जमाने को हेय और बदनाम सिद्ध करना नहीं है। कौन नहीं जानता यदि अगस्त सन् १९३९ में जीवन-निर्वाह सम्बन्धी जितनी वस्तुओं का मूल्य एक सौ रुपया माना जाय तो उतनी ही वस्तुओं का मूल्य मार्च सन् १९५२ में ३५७.५ था। इस प्रकार मूल्यों में लगभग पौने चार गुना वृद्धि तो मामूली हुई है। परन्तु इन आंकड़ों से मुझे और समग्र भारत को वह स्वर्णिम दिन याद दिलाते हैं, जब यहाँ सोने के गड़वों में गंगाजल रक्खे जाते थे और अतिथियों को सोने की ही थाली में भोजन परोसे जाते थे। बहुत पुराने जमाने के तो ठीक-ठीक भावों का कुछ पता नहीं। २४०० वर्ष पूर्व महामति कौटिल्य के समय के भाव तावों का कुछ पता लगता है, मुगल कालीन भावों का भी पता चलता है।

इन सब से एक बात और भी मोटे रूप में मालूम देती है। चौबीस सौ वर्ष पूर्व रुपये पैसे की कीमत बहुत ही कम थी, किन्तु इधर दो-तीन सौ वर्षों में रुपये की कीमत लगभग एक-सी ही रही है। यह बहुत ही मार्के की बात है। फिर भी रुपये की कमी और मंहगाई से आम जनता क्यों इतनी परेशान है?

पेट भरने के लिए अकबर के समय में जितना घण्टा काम करने पर एक आदमी के लिए आवश्यक था, आज जवाहरलाल जी के समय में भी लगभग उतने ही घण्टे काम की दरकार है। फिर यह हाय धुन क्यों? उस समय में एक व्यक्ति के आश्रित रहने वालों की आवश्यकताएं कम थी, भले ही संख्या अधिक हो। उसी समय का एक गीत अभी भी राजस्थान में सुनाई पड़ जाता है-

नई मूंज की खाट-कनै चूवै टापरी,
भैंस लड़ी दो'च्यार क दूजण बापड़ी।
बाजर हुँदा बाट दही में ओलणा,
इतना दे करतार फिर नहीं बोलणा।।

मूंज की खाट, न चूने वाला छप्पर, दो-चार दूजन भैंस, दही में भीगी बाजरे की बाटी, बस! यदि प्रभु इतना दे दे तो फिर क्या शिकायत? पर आज?

सिनेमा का टिकट, फैशन की मांगें, शादी-विवाहों में दहेज की थैलियां आदि इतनी आवश्यकताएं मनुष्य बना बैठा है, जिनकी पूर्ति करने में ही जीवन निकल जाता है और फिर इस पर भी मजा यह है कि परिश्रम पहले से चौथाई भी नहीं करना चाहता, फिर यह दिन-रात की हाय-धुन न हो तो और क्या हो?

('भारतीयता के प्रबुद्ध प्रहरी' से साभार)

***

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु।।

उद्योग, संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना- इन्हें उन्नति का मूलमंत्र समझिए।

शिक्षा और संस्कृति

- पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

शिक्षा और संस्कृति यह दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। शिक्षा संस्कृति का आधार और उन्नायक है तो संस्कृति शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है। दोनों को अलग करना सम्भव नहीं है। शिक्षा का सम्बन्ध ज्ञानार्जन, विषय-बोध, पदार्थों के तत्त्वों का ज्ञान, संसार की प्रत्येक वस्तु के स्वरूप का ज्ञान और उसकी उपयोगिता का आकलन करने के साथ ही मनुष्य के विवेक को प्रबुद्ध करना भी है। अतएव शिक्षा को विद्याभ्यास, ज्ञानार्जन भी कहा जाता है।

शिक्षा के दो स्वरूप हैं- एक ओर यह मनुष्य की चिन्तनशक्ति को प्रबुद्ध करके उसके कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का बोध कराती है और उसके जीवन का लक्ष्य बताती है। दूसरी ओर मनुष्य की आन्तरिक शक्ति का विकास करके उसे आत्म-चिन्तन, आत्मबोध और तत्त्वज्ञान की ओर प्रवृत्त करती है। इन दोनों स्वरूपों में मौलिक अन्तर यह है कि एक में मनुष्य की दृष्टि बाहरी संसार की ओर रहती है और वह भौतिक समृद्धि की ही कामना करता है। उसका जीवन और लक्ष्य भौतिकवादी हो जाता है। दूसरी ओर मनुष्य की अन्तर्दृष्टि सूक्ष्म होती चली जाती है और वह अन्दर की ज्योति, जिसे आत्मा कहते हैं, के दर्शन के लिए प्रयत्नशील होता है। उसकी दृष्टि स्थूल से सूक्ष्म की ओर, भौतिक से अध्यात्म की ओर, सकामता से निष्काम की ओर होती है।

शिक्षा के प्रसंग में ही स्वाध्याय को बहुत महत्त्व दिया गया है। स्वाध्याय के भी दो स्वरूप हैं। एक है- पढ़े हुए विषयों का बार-बार पठन, मनन-चिन्तन और उसके सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना। किसी भी विषय को बार-बार पढ़ने से उसका गूढ़ अर्थ स्पष्ट होता है और विषय की बारीकी से जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए प्रिय विषय को बार-बार पढ़ा जाता है और उसमें सरसता की अनुभूति के साथ ही उसको हृदयंगम किया जाता है। परन्तु स्वाध्याय का इसके अतिरिक्त वास्तविक अर्थ है- स्व-अध्याय। स्व अर्थात् आत्मा का अध्ययन या चिन्तन। तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मबोध की प्रक्रिया का नाम स्वाध्याय है। स्वाध्याय का साक्षात् सम्बन्ध आत्मचिन्तन से है। आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जानना, उसके गुणों को आत्मसात् करना और आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना, यह स्वाध्याय का वास्तविक अर्थ है। इसके लिए धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, वेद, उपनिषद्, गीता एवं दार्शनिक ग्रन्थों का पठन, मनन और चिन्तन आवश्यक बताया गया है।

हमारे शास्त्रीय ग्रन्थों में स्वाध्याय पर इतना अधिक बल दिया गया है कि इसे संसार का सबसे बड़ा तप बताया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् (१.९.१) में आचार्य मौद्गल्य का कथन है- कि संसार में सबसे बड़ा तप स्वाध्याय है। इसीलिए दीक्षान्त समारोह में आचार्य का आदेश होता है कि किसी अन्य कार्य में भले प्रमाद करो, परन्तु स्वाध्याय में कभी भी प्रमाद मत करना (तैत्ति० उपनिषद् १.११.१)। शतपथ ब्राह्मण (११.५.६.३१) में इससे भी आगे बढ़कर कहा गया है कि सारी पृथ्वी का दान करने से जितना पुण्य होता है, उसका तिगुना पुण्य प्रतिदिन स्वाध्याय करने से होता है।

स्वाध्याय और आत्मचिंतन को इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया गया है। इस पर हम विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि स्वाध्याय ही वह प्रक्रिया है, जो मनुष्य को मनुष्य ही नहीं, अपितु उसे देवत्व या देवता का स्वरूप प्रदान करती है। व्यक्ति और समाज के सुधार की यही सर्वोत्तम प्रक्रिया है। जब आत्मचिन्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है तो विचारों की शुद्धि, भावों की शुद्धि और उदात्त गुणों के ग्रहण का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी को संस्कार, संस्कृति या परिष्कार कहते हैं। इसी रूप में शिक्षा संस्कृति की आधारशिला या जननी है।

व्यक्ति समाज का अंग है। व्यक्तियों का समूह ही समाज है। जिस प्रकार भवन के निर्माण के लिए ईंट आदि की पूर्णता, शुचिता और निर्दोषता अपेक्षित है, उसी प्रकार समाज की उन्नति, प्रगति और विकास के लिए व्यक्तियों की चारित्रिक

उन्नति, नैतिकता और सत्यनिष्ठा अपेक्षित होती है। जैसे व्यक्ति होंगे, वैसा ही समाज बनेगा। समाज की उन्नति का रहस्य है, व्यक्तियों की शैक्षिक, नैतिक एवं चारित्रिक उदात्तता। इस उदात्तता का बीज-वपन शिक्षा द्वारा ही होता है। अतः शिक्षा को व्यक्ति और समाज का निर्माता माना जाता है। वैयक्तिक उन्नति सामाजिक उन्नति, राष्ट्रीय उन्नति के रूप में परिणत होती है और सामाजिक उन्नति राष्ट्रीय उन्नति का आधार बनती है। अतः शिक्षा और स्वाध्याय पर प्राचीन मनीषियों द्वारा बल देना अत्यन्त उचित था।

स्वाध्याय जब आत्मचिन्तन का स्वरूप ले लेता है, तब आत्मशक्ति का प्रस्फुरण होता है, यह आत्मशक्ति ही दुर्विचाररूपी रावण का वध करती है और सद्विचार रूपी राम का आविर्भाव करती है। बुराइयों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और पाप के विचारों का समूल विनाश करके उनके स्थान पर शान्ति, प्रेम, ममता, परोपकार, धैर्य और सहिष्णुता आदि गुणों के विकास को ही संस्कृति का नाम दिया गया है।

संस्कृति का साक्षात् सम्बन्ध संस्कारों से है। संस्कार, परिष्कार, शुद्धि या संशोधन संस्कृति है। संस्कृति के उन्नयन की वही प्रक्रिया है जो कृषि में अपनाई जाती है। उत्तम कृषि के लिए सबसे प्रथम भूमि का परिष्कार आवश्यक होता है। अनावश्यक और अवांछनीय घास-फूंस, कूड़ा-करकट, कंकड़-पत्थर आदि भूमि से निकालकर भूमि को शुद्ध करना पड़ता है। बीज बोने के बाद भी घास-फूस को निकालना होता है और यथासमय सिंचाई आदि की आवश्यकता होती है, तब उत्तम पैदावार होती है। यही प्रक्रिया संस्कृति की है। इसमें भी दुर्गुण, दुर्विचार आदि को पहले निकालकर मस्तिष्क को शुद्ध करना होता है। तदनन्तर अच्छे गुणरूपी बीज वहाँ सुन्दर रूप में पनपते हैं। ये सद्गुण रूपी बीज ही उत्तम संस्कृति को जन्म देते हैं। संस्कृति न केवल व्यक्ति का परिष्कार करती है, अपितु समाज राष्ट्र और विश्व को शुद्ध पवित्र बनाती है। उच्च संस्कृति स्वार्थपरक न होकर परार्थपरक होती है। इसमें मानवमात्र के कल्याण की प्रवृत्ति होती है। विश्व-बन्धुत्व का भाव जागृत होता है और लोकहित एवं विश्वहित की कामना होती है।

इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होता है कि शिक्षा, स्वाध्याय और संस्कृति परस्पर अनुस्यूत हैं। उत्तम शिक्षा, उच्च संस्कृति को जन्म देती है और अधम शिक्षा कु-संस्कृति को जन्म देकर विश्व के संहार की प्रक्रिया आरम्भ करती है। यही कारण है कि आज विज्ञान अपनी अपूर्व उन्नति करके लोकहित की अपेक्षा विश्व-संहार की ओर अधिक अग्रसर है। यदि विज्ञान के साथ सु-संस्कृति का समन्वय किया जाता है तो आज विज्ञान भयावह न होकर सुख और शान्ति का आधार होता।

***

(सार्वदेशिक, ८.११.१९९८ से साभार) — निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर-भदोही

> अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
> जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम्॥
>
> अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को सद्व्यवहार से वश में करे, कृपण को दान से जीते और झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे।

वेदों की उपयोगिता आधुनिक संन्दर्भ में

- पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

प्राचीन संस्कृत-साहित्य में वेदों के अध्ययन पर बहुत बल दिया गया है। इसके अनेक प्रयोजन बताए गए हैं, जिनमें विशेष उल्लेखनीय हैं - आचार-शिक्षा, कर्तव्य- शिक्षा, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्यों का उल्लेख, अध्यात्म-शिक्षा, ज्ञान और विज्ञान के विविध अंगों का विवेचन एवं विश्लेषण।

धर्म के वास्तविक ज्ञान के लिए वेदों को ही परम आधार माना जाता था, अतएव मनु का कथन है कि–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् । मनु० २.१२

वेदाद् धर्मो हि निर्बभौ० । मनु० २.१०

वेद से ही धर्म का प्रारम्भ हुआ है। वेदों के अर्थों के ज्ञान के लिए इतिहास और पुराणों की आवश्यकता बताई गयी है। साथ ही यह भी कहा गया है कि यदि कोई अल्पबुद्धि मनुष्य वेदों का अर्थ करने लगता है तो वह अर्थ के स्थान पर अनर्थ भी कर देगा, इसलिए वेद अल्पज्ञ विद्वानों से भयभीत रहते हैं।

इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति । वसिष्ठ स्मृति २७.६

याज्ञवल्क्य स्मृति में ब्राह्मणों के लिए वेदाध्ययन अनिवार्य कार्य बताया गया है।

वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ।। याज्ञवल्क्य० १.४०

जो ब्राह्मण वेद न पढ़कर अन्य शास्त्रों में रुचि रखता था, उसे निकृष्ट माना जाता था।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ।। मनु०

वृत्या शूद्रसमो ज्ञेयो यावद् वेदे न जायते ।। वसिष्ठ० २.१२

वशिष्ठ-स्मृति में वेद पढ़ाने के आधार पर ही आचार्य को पिता कहना उचित बताया गया है।

वेदप्रदानात् पितेत्याचार्यमाचक्षते । वसिष्ठस्मृति २.५

पतञ्जलि मुनि ने संस्कृत-व्याकरण के पढ़ने का मुख्य कारण वेदों की रक्षा करना बताया है।

"**रक्षोहागम-लघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्**" । महाभाष्य आ०१

ऋग्वेद में कहा गया है कि अर्थ न जानने वाले को वेद का तात्त्विक ज्ञान नहीं होता है। उसकी तुलना भारवाहक पशु से की गई है।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्, यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति, य इत् तद् **विदुस्त इमे समासते** ।। ऋग्० १.१६४.३९

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद् , **अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्** ।। निरु० १.१८

यह मानने पर कि वेदों की शाश्वत उपयोगिता है, क्या वर्तमान युग में वेद विश्व के लिए कुछ उपयोगी या ज्ञानवर्धक हो सकते हैं ? क्या वेदों में कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनसे विश्व के विविध शास्त्रों के विद्वान् एवं वैज्ञानिक भी लाभान्वित हो सकते हैं ? इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वेदों में अनेक ऐसे तथ्य हैं, जिनसे समस्त मानव-समाज आज भी लाभान्वित हो सकता है। संक्षेप में वेदों में वर्णित कुछ विषय ये हैं-

सुखी जीवन, सुखी गृहस्थ और सुखी परिवार, सुखी समाज, वेदों में नारी का उदात्त जीवन, अध्यात्म, दार्शनिक विषय, राष्ट्रीय संगठन, राष्ट्रीय स्वाधीनता, उद्योग एवं पुरुषार्थ, चारों वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य, कृषि, व्यापार और वाणिज्य, वेदों में वर्णित वृत्तियाँ, भक्ष्य और पेय वस्तुएं, वृक्ष एवं वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, राजा और प्रजा, सभा, समिति एवं संसद् , सेना और सैनिक, अस्त्र और शस्त्र, लोकतंत्र एवं जनराज्य, राज्यशासन, आयुर्वेद एवं चिकित्साशास्त्र, भैषज्य एवं विविध औषधियाँ, विविध रोग-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, सूर्यकिरण-चिकित्सा, वायु एवं प्राणायाम-चिकित्सा, कृमि-नाशन, विष-नाशन, अरिष्ट-नाशन, मणि-धारण, वाजीकरण, भौतिक चिकित्सा से सम्बद्ध, मनोविज्ञान से सम्बद्ध, गणित से सम्बद्ध, संकल्प-चिकित्सा (Auto-Suggestion) से सम्बद्ध, वशीकरण (Hypnotism) से सम्बद्ध, देशभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम से सम्बद्ध, भाषाविज्ञान एवं भाषाशास्त्र से सम्बद्ध, स्वप्न-विज्ञान से सम्बद्ध, काव्य और कवित्व से सम्बद्ध, नृत्य, गीत और वाद्य से सम्बद्ध, ज्योतिष-विद्या से सम्बद्ध, भवन-निर्माण से सम्बद्ध, वस्त्र और आभूषण से सम्बद्ध, विविध संस्कारों से सम्बद्ध आदि।

इसके अतिरिक्त विविध विज्ञान, देवता, आचार-संहिता, कर्मफल, पुनर्जन्म, ऋतुचक्र, लौकिक कर्म एवं मान्यताओं से सम्बद्ध मंत्रों की संख्या हजारों में है। देव-सम्बन्धी मंत्रों में विविध देवों के गुणों और कर्तव्यों का उल्लेख है। वेदों में सर्वत्र नारी के उदात्त चरित्र का उल्लेख है। स्त्रियों को न केवल उदात्त चरित्रयुक्त ही चित्रित किया गया है, अपितु उन्हें 'सेनानी' या सेनापति के पद पर भी प्रतिष्ठित किया गया है। इसी प्रकार वेदों में कहीं भी शूद्रों को अस्पृश्य या तिरस्करणीय नहीं बताया गया है। उन्हें शिल्पवृत्ति-प्रधान बताया गया है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से अथर्ववेद सबसे अधिक उपयोगी है। इसमें ज्ञान और विज्ञान की बातों का सबसे अधिक वर्णन है। अथर्ववेद में राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, चिकित्साशास्त्र एवं अध्यात्मशास्त्र का इतना अधिक विस्तृत विवेचन है कि उपनिषदों के अध्यात्म का इसमें स्पष्ट उद्गम देखा जा सकता है। आयुर्वेद और चिकित्साशास्त्र के लिए यह महनीय ग्रन्थ है। इसमें सैकड़ों मंत्रों में विविध औषधियों के गुण-कर्मों का वर्णन है। आयु-वर्धक उपायों के अतिरिक्त खांसी, ज्वर, कुष्ठ, नपुंसकता, उन्मत्तता, क्षयरोग, हृदय-रोग, क्षेत्रीय रोग आदि की चिकित्सा वर्णित है। कृमि-नाशन, विष-नाशन, कृत्यापरिहार आदि अनेक प्रयोग दिए गए हैं। राजनीतिशास्त्र से सम्बद्ध विषयों में राजा और प्रजा के अधिकार और कर्तव्यों का विशद वर्णन है। सभा, समिति, संसद् के कर्तव्यों का विधान है। राष्ट्रीय-सुरक्षा, सेना संगठन, अस्त्र-शस्त्र-प्रयोग और शत्रु-सेना-नाशन के प्रयोगों का उल्लेख है। जनराज्य, जनतंत्र, निर्वाचन आदि का इसमें अनेक स्थानों पर उल्लेख है। चारों वेदों में मनोविज्ञान-विषयक मंत्रों की संख्या पर्याप्त है।

वेदों में यद्यपि भौतिकी, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, गणित, भूगर्भशास्त्र आदि से सम्बद्ध मंत्रों की संख्या बहुत कम है, परन्तु स्थान स्थान पर कुछ महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक संकेत हैं, जिनका स्पष्टीकरण उन शास्त्रों के विशेषज्ञ ही कर सकते हैं। उदाहरण के लिए कुछ मंत्रों का दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है -

अथर्ववेद में वनस्पतिशास्त्र के एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख है, जिसे क्लोरोफील (Chlorophyll) कहते हैं, जिसके कारण वृक्षों में हरियाली रहती है। वेदमन्त्र में स्पष्ट संकेत है कि 'अवि' नामक एक रक्षक एवं पोषक तत्त्व है, जिससे वृक्ष एवं लताएं हरी भरी रहती हैं।

अधिर्वै नाम देवता, ऋतेनास्ते परीवृता ।

तस्या रूपेणेमे वृक्षा, हरिता हरितस्रजः ।। अथर्व० १० ८.३१

इसी प्रकार ऋग्वेद के एक मंत्र में योग-विद्या का बहुत रहस्यात्मक तथ्य वर्णन किया गया है -

सुदेवो असि वरुण, यस्य ते सप्त सिन्धवः ।

अनुक्षरन्ति काकुदं, सूर्म्यं सुषिरामिव ।। ऋग्वेद ८.६९.१२

मनुष्य के तालु वाले स्थान पर सात सिन्धुओं (२ आँख, २ कान, २ नेत्र एवं जिह्वा) की शक्तियाँ क्षरित होती हैं। जीभ को उलट कर तालु में लगाने से पूरे शरीर में शक्ति जागृत की जा सकती है। अतः योगी योगाभ्यास के समय जीभ को उलटकर तालु स्थान में लगाते हैं। मनुष्य के शिरोभाग में ऊर्जा का केन्द्र है और तालु में जिह्वा लगाकर उस ऊर्जा को ग्रहण कर सकते हैं और अपनी शक्तियों को उन्नत कर सकते हैं।

ज्ञान के भंडार को वेद कहते हैं। अतएव स्मृतियों में वेद को 'सर्वज्ञानमयो हि सः' कहा गया है। प्राचीन ऋषियों ने वेदों के गूढ़ तत्त्वों को समझने के लिए कठिन साधना की और उनके वैज्ञानिक अर्थों को ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में स्पष्ट किया गया है। वेदों में अनन्त ज्ञान की राशि है, अतः उपनिषदों मे 'अनन्ता वै वेदाः' अर्थात् वेदों के ज्ञान का कोई अन्त नहीं है, कहा गया है।

ऐसे ज्ञान के भंडार वेद आज के युग में भी सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के लिए, चारित्रिक उन्नयन के लिए तथा वैज्ञानिक उन्नति के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

प्रसारण- आकाशवाणी, इलाहाबाद, १०.६.१९८१ पता- निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही)

***

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ।।

जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल- ये चारों बढ़ते हैं।

वेदों में विज्ञान
गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त (Law of Graviation)

- पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी

आधारशक्ति- बृहत् जाबाल उपनिषद् में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को 'आधारशक्ति' नाम से कहा गया है। इसके दो भाग दिए गए हैं- **१. ऊर्ध्वशक्ति या ऊर्ध्वग : ऊपर की ओर खिंचकर जाना,** जैसे- अग्नि का ऊपर की ओर जाना। **२. अधःशक्ति या निम्नग : नीचे की ओर खिंचकर जाना,** जैसे- जल का नीचे की ओर जाना या पत्थर आदि का नीचे आना। उपनिषद् का कथन है कि यह सारा संसार अग्नि और सोम का समन्वय है। अग्नि की ऊर्ध्वगति है और सोम की अधःशक्ति। इन दोनों शक्तियों के आकर्षण से ही यह संसार रुका हुआ है।

(क) अग्नीषोमात्मकं जगत् । बृ०जा०उप० २.४

(ख) आधारशक्त्यावृतः, कालाग्निरयम् ऊर्ध्वगः ।

तथैव निम्नगः सोमः । बृ०जा०उप० २.८

महर्षि पतंजलि (१५० ई० पूर्व) ने व्याकरण-महाभाष्य में इस गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए पृथिवी की आकर्षण शक्ति का वर्णन किया है कि- यदि मिट्टी का ढेला ऊपर फेंका जाता है तो वह बाहुवेग को पूरा करने पर, न टेढ़ा जाता है और न ऊपर चढ़ता है। वह पृथिवी का विकार है, इसलिए पृथिवी पर ही आ जाता है।

लोष्ठः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग् गच्छति, नोर्ध्वमारोहति ।

पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्छति, आन्तर्यतः । महाभाष्य (स्थानेऽन्तरतमः, १.१.४९ सूत्र पर)

आकृष्टिशक्ति- भास्कराचार्य द्वितीय (१११४ ई०) ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में गुरुत्वाकर्षण के लिए आकृष्टिशक्ति शब्द का प्रयोग किया है। भास्कराचार्य का कथन है कि पृथिवी में आकर्षणशक्ति है, अतः वह ऊपर की भारी वस्तु को अपनी ओर खींच लेती है। वह वस्तु पृथिवी पर गिरती हुई सी लगती है। पृथिवी स्वयं सूर्य आदि के आकर्षण से रुकी हुई है, अतः वह निराधार आकाश में स्थित है तथा अपने स्थान से नहीं हटती और न गिरती है। वह अपनी कीली पर घूमती है।

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्, खस्थं गुरुं स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।

आकृष्यते तत् पततीव भाति, समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे । (सिद्धान्त० भुवन० १६)

वराहमिहिर (४७६ ई०) ने अपने ग्रन्थ पंचसिद्धान्तिका और श्रीपति (१०३९ ई०) ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशेखर में यही भाव प्रकट किया है कि तारासमूहरूपी पंजर में गोल पृथिवी इसी प्रकार रुकी हुई है, जैसे दो बड़े चुम्बकों के बीच में लोहा।

पंचमहाभूतमयस्तारा-गण-पंजरे महीगोलः ।

खेऽयस्कान्तान्तः लोह इवावस्थितो वृत्तः । (पंच० पृ० ३१)

आचार्य श्रीपति का कहना है कि पृथिवी की अन्तरिक्ष में स्थिति उसी प्रकार स्वाभाविक है, जैसे सूर्य में गर्मी, चन्द्र में शीतलता और वायु में गतिशीलता। दो बड़े चुम्बकों के बीच में जैसे लोहे का गोला स्थिर रहता है, उसी प्रकार पृथिवी भी अपनी धुरी पर रुकी हुई है।

(क) उष्णत्वमर्कशिखिनोः शिशिरत्वमिन्दौ,....

निर्हेतुरेवमवनेः स्थितिरन्तरिक्षे ।। (सिद्धान्त० १५.२१)

(ख) नभस्ययस्कान्तमहामणीनां, मध्ये स्थितो लोहगुणो यथास्ते ।

आधारशून्योऽपि तथैव सर्वाधारो धरित्र्या ध्रुवमेव गोलः ।। (सिद्धान्त० ५.२२)

पिप्पलाद ऋषि (लगभग ४००० वर्ष ई० पूर्व) ने प्रश्न-उपनिषद् में पृथिवी में आकर्षण शक्ति का उल्लेख किया है। अतएव अपान वायु के द्वारा मल-मूत्र शरीर से नीचे की ओर जाता है। आचार्य शंकर (७००-८०० ई०) ने प्रश्नोपनिषद् के भाष्य में कहा है कि पृथिवी की आकर्षण शक्ति के द्वारा ही अपान वायु मनुष्य को रोके हुए है, अन्यथा वह आकाश में उड़ जाता।

(क) पायूपस्थे-अपानम् । (प्रश्न उप० ३.५)

(ख) पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य० । (प्रश्न० ३.८)

(ग) यथा पृथिव्याम् अभिमानिनी या देवता...सैषा पुरुषस्य अपान-

वृत्तिम् आकृष्य...अपकर्षणेन अनुग्रहं कुर्वती वर्तते ।

अन्यथा हि शरीरं गुरुत्वात् पतेत् सावकाशे वा उद्गच्छेत् । (शांकर भाष्य, ३.८)

इससे स्पष्ट है कि पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त भारतीयों को हजारों वर्ष पूर्व से ज्ञात था।

***

पता- निदेशक, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही)

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था,

सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।

तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा,

पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ।।

हे भारत ! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मा से इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दया की लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करने वाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है; क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है।

आयुर्वेद में अनुसंधान, एक समीक्षात्मक अध्ययन

- डॉ. महेन्द्रकुमार त्यागी

'शास्त्रं हि शास्त्रान्तरानुबन्धि' जिसका भाव है कि एक शास्त्र दूसरे शास्त्र से कहीं न कहीं किसी न किसी क्षेत्र से विचार से, क्रिया से अनुबन्धित होता है। यह आपसी अनुबन्ध ही अध्येता के सामने चिन्तन के, मनन के नये आयाम उपस्थित करता है। ज्योतिष एक पृथक् शास्त्र है। जब उसकी अवधारणाओं का स्वास्थ्य के क्षेत्र में क्रियात्मक प्रयोग हुआ तो 'वीर-सिंहावलोक' जैसे अनूठे ग्रन्थ का सृजन ही नहीं हुआ है, एक नई विधा ने चिकित्सा के क्षेत्र में जन्म लिया। आज भी ज्योतिष-आयुर्वेद के समुचित प्रयोग एवं उपयोग के अपरिमित आयाम अपने में संजोये है।

इसे ही एक सन्दर्भ में जरा आगे सोचें, भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पहले के पूरे मुस्लिम काल तथा उससे भी पूर्व नालन्दा और तक्षशिला के विश्वविद्यालयों की परम्परा का अन्तराल आयुर्वेद के विश्वविद्यालय-प्रशिक्षण के बिना ही रहा है। तो भी अपनी प्रौढ़ शास्त्रीयता और परिपक्व सिद्धान्तों तथा जीवन की दैनन्दिन उपयोगिता के सहारे न सिर्फ आयुर्वेद जीवित रहा, वरन् इसमें कई नई रचनाएं और नये-नये स्वात्मीकरण भी होते रहे। फिरंग का उल्लेख मनःशिला (मैनसिल) का प्रयोग, इसके सशक्त उदाहरण हैं। ऐसे प्रगति-चिह्न तब और महत्त्व पा जाते हैं, जब हम अनुभव करते हैं कि तब राज्याश्रय का आधार नहीं था। आधार या संबल था तो केवल सबल और स्वस्थ गुरु शिष्य-परम्परा का।

यह गुरु शिष्य-परम्परा भी अधिकतर संस्कृत पठन-पाठन करने वालों तक ही सीमित रही थी, फिर जैसे-जैसे हजार वर्ष के मुस्लिम काल में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन का ह्रास होता गया, वैसे-वैसे आयुर्वेद भी अपनी-अपनी लोकभाषाओं का आश्रय लेते गये। ये लोकभाषाएं ही उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनी। इस विचार ने ऐसी प्रेरणा को जन्म दिया, एक सम्भावना जगायी, जो हम पर दोष लगता रहा है कि आयुर्वेदज्ञों ने अपना अनुभव बांटने में संकोच बरता है। पहले हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य की खोज खबर लेने की बात सोची गयी। मराठी, गुजराती, बंगला, तेलुगु, मलयालम और तमिल आदि भी इस सम्भावना से अछूती नहीं रही होंगी।

इसी प्रसंग में जयपुर के आमेर शास्त्र-भन्डार में आयुर्वेद के अनेक गुटके संग्रह की सूचना मिली, जिनमें मध्यकालीन चिकित्सकीय अनुभव-सार संगृहीत हैं। जयपुर के १२ भन्डारों में लगभग ८०० गुटकों की सूचना है। अनेकों बस्ते ऐसे हैं, जिनमें आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थ बंधे पड़े हैं।

नागरी-प्रचारणी सभा काशी के ग्रन्थागार में मुगलकालीन चिकित्सा-विज्ञान से सम्बन्धित सैकड़ों पांडुलिपियां सुरक्षित हैं, जिनका आजतक ढंग से वर्गीकरण तक नहीं हो सका है। एक दो नहीं अनेकों हस्तलेख सूरज की रोशनी देख पाने की प्रतीक्षा में हैं। कुछ इसी प्रकार की स्थिति अमीनुद्दोला पब्लिक लाइब्रेरी लखनऊ और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पांडुलिपि संग्रहालय की है। केवल रणवीर लाइब्रेरी जम्मू के आयुर्वेदीय ग्रन्थों की सूची बन पायी है। इसी प्रकार देश में और भी ऐसे अग्रणी ग्रन्थागार होंगे जो कि व्यक्तिगत स्वामित्व में हैं, जिनमें आयुर्वेद की बहुमूल्य सामग्री आज भी सूर्य की रोशनी से अछूती है। यह दुर्लभ ज्ञान-भंडार उपलब्ध न होने के कारण आयुर्वेद-जगत् का समुचित ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ नहीं हो पाया है और जो और हमारे आयुर्वेद महाविद्यालयों में तथा स्नातकोत्तर अनुसंधान संस्थानों में इन मध्यकालीन संग्रहों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा सका है। प्राचीन संस्कृत और संहिता के दायरे में बंधे कुछ मनीषी अभी भी इन पान्डुलिपि-ग्रन्थों को "भाषा" (जनभाषा) में लिखे होने के कारण हेय दृष्टि से देखते हैं, जबकि ये पान्डुलिपियां उन अन्धे युग के चिकित्सकों की वैद्यकीय ज्ञान और अनुभव की अमूल्य थाती हैं, जब न आयुर्वेद महाविद्यालय थे, न तो सूचनाओं के आदान-प्रदान के साधन थे, न पत्र-पत्रिकायें थीं, तो इन भाखा-भाखी चिकित्सकों ने आगामी पीढ़ी के लिए टूटे-फूटे

ही सही संस्कृत के आयुर्वेद ग्रन्थों के न केवल अनुवाद प्रस्तुत किए, अपितु अपने निजी अनुभवों को लिपिबद्ध किया। ऐसे ही पुटपाक-विधि रसशास्त्रीय-प्रक्रिया में ऐसी लोक-विस्तृत और सर्वजन-सुलभ हो गयी, जैसे आज के युग में एन्टीबाइटिक्स या लोगों की अनुरागान्धता। पुटपाक पर ग्रीष्म वर्णन में घनानन्द ने रसात्मक वर्णन किया है।

बरनि बताई छिति व्योम की कताई।

आयो जेठ आततार्ड पुटपाक सों करत है।।

दुर्भाग्य से संस्कृत एवं संहिता के दायरों में हमारे मनीषी बन्धु इस उपलब्धि के श्रेय से वंचित रह गये, ऐसी ही अवसर पर हमें वाग्भट्ट की चेतावनी दोहराने को मन करता है।

ऋषि-प्रणीते प्रीतिश्चेत् मुक्त्वा चरक-सुश्रुतौ।

भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते, तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्।।

अध्ययन की दृष्टि से इसे हम तीन वर्गों में बांट सकते हैं–

१. शास्त्र-निबन्धक कवि में संस्कृत के चरक-सुश्रुत और हिन्दी में वैद्य-मनोत्सव

२. शास्त्र में काव्य-निबन्धक कवि संस्कृत में लोलम्बराज-कृत सिद्धि-भैषज्य-मणिमाला और हिन्दी में जुराकुश-चिकित्सा-सार।

३. संस्कृत काव्य में कालिदास, हर्ष आदि। इसमें पहले प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में हस्तलेखों में उपलब्ध है। आयुर्वेद में अनुसन्धान के लिए जामनगर आयुर्वेद विश्वविद्यालय, गुजरात, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, नागरी प्रचारिणी सभा, राष्ट्रीय शोध-संस्थान जयपुर से काफी कुछ अनुसन्धान के सम्बन्ध में सहयोग एवं मार्गदर्शन लिया जा सकता है। अतः अनुसन्धान की व्यापक सम्भावनाओं के क्षेत्र में अब और अधिक उपेक्षित रखने से जो कुछ सामग्री उपलब्ध भी है, वह भी धीरे-धीरे काल-कवलित हो जायेगी। अतः प्रबुद्ध जनों से आस्था एवं विश्वास के साथ इस क्षेत्र में आगे आने का विनम्र अनुरोध किया जा रहा है। कुछ इसी प्रकार की महाकवि भवभूति की उक्ति थी, जो उसने कहा था।

उत्पत्स्यतेऽत्र मम कोऽपि समानधर्मा,

कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी।।

***

पता- आयुर्वेद-भास्कर, आयुर्वेदाचार्य, एच०पी०ए०
भूतपूर्व सहायक निदेशक आयुर्वेद,
केन्द्रीय आयुर्वेदानुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली

वैदिक दर्शन, एकेश्वरवाद

-डॉ० जयदेव वेदालंकार

एकेश्वरवाद- वेदों में द्वैतवादी दर्शन प्राप्त होता है। आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द ने वेदों में त्रैतवादी दर्शन का प्रतिपादन किया है। महर्षि दयानन्द वेदों में एक यथार्थवादी दर्शन का प्रतिपादन करते हैं, जिसको कि हम त्रैतवाद नाम दे सकते हैं। इस त्रैतवाद के अन्तर्गत ईश्वर जीव और प्रकृति को यथार्थ रूप में स्वीकार किया जाता है। जिस प्रकार उपनिषदों में केवल एक ब्रह्म का प्रतिपादन हुआ है, उसी प्रकार वेद भी एक ईश्वर की उपासना मानता है। ईश्वर को अनेक नामों से कहा गया है। उसके असंख्य नाम हो सकते हैं। वे अनेक नाम बहुदेवतावाद के द्योतक नहीं हैं, अपितु एक ही ईश्वर की विभिन्न शक्तियों के नाम हैं। जैसा कि यजुर्वेद के ३२वें अध्याय, श्वेताश्वतरोपनिषद् के चतुर्थ अध्याय में कहा गया है कि उसी को अग्नि, उसी को वायु, चन्द्रमा, शुक्र, आपः आदि नामों से कहा जाता है। इसी प्रकार ऋग्वेद में प्रतिपादन किया है कि ये इन्द्र वरुण मातरिश्वा आदि नाम भी उसी ईश्वर के हैं अर्थात् वह एक है, विद्वान् लोग उसको अनेक नामों से कहते हैं।

वेद में एक ईश्वर का प्रतिपादन- उपनिषदों में जो सिद्धान्त प्रचलित है वह यह है कि उपनिषदों का ब्रह्म एक है। आचार्य शंकर के सिद्धान्तानुसार तो ब्रह्म ही एकमात्र सत् है। शेष सभी मायोपहित चैतन्य हैं। ब्रह्म ही संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। परन्तु यदि उपनिषदों का आधार वेद माना तो परस्पर संगति से ऐसा अर्थात् आचार्य शंकर का मत समीचीन प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि वेदों के अनेक मंत्र एक ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, परन्तु साथ ही आत्मा अर्थात् जीवात्मा और संसार के पदार्थों की सत्ता भी स्वीकार की गई है। इसी प्रकार उपनिषदों में भी वेदमन्त्रों को लेकर उसी प्रकार सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, जैसा कि वेद ने किया है। अन्तर केवल इतना है कि वेद एक सागर है, जिसमें सभी प्रकार की विद्याओं का वर्णन बीज रूप में हुआ है। उपनिषद् वेद के केवल एक अङ्ग अर्थात् ज्ञानकाण्ड की अनुभूतिपरक व्याख्याएं प्रस्तुत करती हैं। यहाँ केवल वेद और उपनिषदों में ब्रह्म-सम्बन्धी मन्त्रों का साम्य दिखाना ही उचित है।

जिस प्रकार उपनिषदों में एक ब्रह्म माना गया है, इसी प्रकार वेदों में भी ईश्वर का वर्णन आया है- १. सृष्टि में जो कुछ भी जड़-चेतन संसार है, वह समस्त परमेश्वर से व्याप्त है। २. जो समस्त विश्व का अनुपम स्वामी और अखिल भुवनों का एक पति परमेश्वर है, उसी परम सत्ता का वर्णन परम पुरुष, सृष्टि का अध्यक्ष, देवों का देव तथा ब्रह्म आदि नामों से अनेक मन्त्रों में पाया जाता है। ३. जब ब्रह्म का साक्षात्कार जिज्ञासु कर लेता है, तब समस्त भुवनों का साक्षात्कार कर लेता है, क्योंकि वह ब्रह्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। ४. विद्वान् ब्राह्मण उसी एक ब्रह्म की स्तुति भरी वाणियों से भक्ति करते हैं। ५. हम लोग अपनी रक्षा के लिए ईश्वर को जो जंगम और स्थावर सबका स्वामी है, वही बुद्धि का प्रेरक है, उसकी प्रार्थना करते हैं। ६. उसी एक ईश्वर को अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, मातरिश्वा आदि नामों से कहा जाता है। ७. हे अखिल ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर! आपसे भिन्न तथा आपके तुल्य द्युलोक और पृथिवी पर न हुआ है और न होगा।

हम लोग लौकिक पदार्थ अश्व, हाथी आदि सवारियों की इच्छा करते हुए तथा अन्न बल आदि से युक्त होकर समस्त वेद जिसके गीत गाते हैं, वह ओ३म् है। इतना ही नहीं, अपितु वेदान्त दर्शन भी यह स्वीकार करता है कि वेदों में ब्रह्म का वर्णन हुआ है, वह ऐसा नहीं है कि उससे अधिक शक्तिशाली कोई और देव हो, अपितु वेदान्त दर्शन भी यह स्वीकार करता है कि वह देवों का देव है और सर्वशक्तिमान् है। वह सर्वव्यापक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी आदि विशेषणों से युक्त है। एकेश्वरवाद का वेदों में जितना स्पष्ट और सुन्दर वर्णन हुआ है, संभवतः अन्यत्र नहीं हुआ हो।

***

पता- (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, दर्शन-विभाग)

डीन प्राच्यविद्या संकाय, कुलसचिव -गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथी

- डॉ० भवानीलाल भारतीय

भारत की प्राचीन वैचारिक प्रणाली में शास्त्रार्थ-विचार का नितान्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। उपनिषद्-कालीन ऋषि-मुनि आध्यात्मिक और दार्शनिक विषयों पर शास्त्रार्थों के द्वारा विचार-विमर्श तथा तत्त्वचिन्तन करते थे। उपनिषदों में मिथिला के नरेश जनक विदेह के दरबार में उपस्थित होने वाले महर्षि याज्ञवल्क्य तथा अन्य ऋषियों के आने तथा परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् किसी दार्शनिक मत के निर्धारण के प्रसंग मिलते हैं। जनक के आह्वान पर आमंत्रित शास्त्रार्थ-सभा में याज्ञवल्क्य तथा विदुषी गार्गी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि उस युग में नारियां पुरुषों की भाँति विचार सभाओं में आकर पुरुषों से प्रत्यक्ष संवाद करती थीं। कालान्तर में बौद्ध-जैनों की अवैदिक विचारधारा से जब संघर्ष की स्थिति बनी तो शंकराचार्य ने न केवल इन अवैदिक मतों के आचार्यों से ही शास्त्रार्थ किए, अपितु वैदिक धर्म में आई विकृतियों के पोषक शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, सौर, कापालिक आदि मतों के मानने वालों को भी शास्त्रार्थ-समर में पराजित कर वेद-उपनिषद् आधारित सनातन वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया। शंकर स्वामी के द्वारा किए गए शास्त्रार्थों का विवरण माधवाचार्य-कृत 'शंकर-दिग्विजय' में मिलता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती ने मानव जाति के सर्वतोमुखी उत्थान का प्रारम्भ आर्यसमाज की स्थापना के द्वारा किया तो शास्त्रार्थ-प्रणाली का पुनः आरम्भ हुआ। स्वामीजी के विद्यागुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द ने जब सिद्धान्तकौमुदी आदि अनार्ष व्याकरण ग्रन्थों का खण्डन कर अष्टाध्यायी एवं महाभाष्य पर आधारित आर्ष व्याकरण का पुनः प्रचलन करना चाहा तो वैष्णवमत के आचार्य रंगाचार्य के गुरु श्रीकृष्ण शास्त्री से उनका शास्त्रार्थ होने का प्रसंग आया। ये दोनों महारथी प्रथम बार शास्त्रार्थ-संग्राम में नहीं उतरे, किन्तु यह निश्चय हुआ कि इन दोनों के शिष्य (दण्डीजी के शिष्य चौबे रंगदत्त तथा गंगादत्त तथा शास्त्रीजी के शिष्य लक्ष्मण शास्त्री तथा मुरमुरिया पण्डया) शास्त्रार्थ करेंगे। यहाँ भी श्रीकृष्ण शास्त्री के धनाढ्य शिष्य सेठ राधाकृष्ण की चतुराई से शास्त्रार्थ तो नहीं हुआ। इसके विपरीत जनता में प्रसिद्ध कर दिया गया कि विरजानन्द का पक्ष (उनके शिष्य) पराजित हो गए हैं। तत्काल काशी के पण्डितों को उत्कोच (रिश्वत) देकर एक व्यवस्था मंगा ली गई, जिसमें श्रीकृष्ण शास्त्री के पक्ष को यथार्थ स्वीकार किया गया था। इस अन्याय को देखकर प्रज्ञाचक्षु दण्डीजी को कहना पड़ा-

कथं काशी विदुष्मती ?,

अन्यायपूर्ण निर्णय देने वाली काशी की यह विद्वन्मण्डली विदुष्मती नहीं है।

इन्हीं दण्डीजी के योग्य शिष्य स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन काल में विधर्मियों से लगभग पचास शास्त्रार्थ किए। (विवरण के लिए देखें- नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती : परिशिष्ट ५ शास्त्रार्थों का विवरण) इनमें जहाँ पौराणिक पण्डितों को उन्होंने मूर्तिपूजा, भागवतपुराण, अद्वैतवाद, वेद में देवतावाद आदि विषयों पर स्वमत को सिद्ध करने के लिए आहूत किया वहाँ ईसाई, जैन तथा इस्लाम पक्ष के पोषक विद्वानों को भी शास्त्रार्थ-समर में ललकारा। पौराणिक पण्डितों में उनका साम्मुख्य स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बालशास्त्री, बंगाली पं० ताराचरण तर्करत्न, कर्णवास के पं० हीरावल्लभ, कानपुर के पं० हलधर ओझा, मुम्बई के कमलनयन आदि से रहा, वहाँ ईसाई पादरी नीलकण्ठ गोरे, टी.जे. स्काट, नोबेल, पादरी ग्रे तथा डॉ० हसबैंड तथा मुसलमान मौलवी मोहम्मद कासिम, जालंधर के मौलवी अहमद हसन तथा उदयपुर के मौलवी अब्दुल रहमान उनके प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी रहे। साधु सिंहकरण (जैनी) से उन्होंने मसूदा (राजस्थान) में शास्त्रार्थ किया। (महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थों के विस्तृत विवरण के लिए इन पंक्तियों के लेखक का लिखा ग्रन्थ ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ-प्रकाशक रामलाल कपूर ट्रस्ट द्रष्टव्य है।

स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् भी शास्त्रार्थों का यह क्रम रुका नहीं । पं० भीमसेन शर्मा (इटावा), मेरठ के पं० तुलसीराम स्वामी, प्रतिवादि- भयंकर स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी योगेन्द्रपाल, पं० मनसाराम जैसे श्रेष्ठ शास्त्रार्थ-महारथियों ने पचासों बार पं० कालूराम, पं० अखिलानन्द, पं० माधवाचार्य आदि उन पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया, जो पुराणों का पक्ष लेकर शास्त्रचर्चा में प्रवृत्त होते थे । विगतकाल (बीसवीं शती के पूर्वार्ध) में पं० बुद्धदेव मीरपुरी, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० लोकनाथ तर्कवाचस्पति, पं० गणपति शर्मा ने तथाकथित सनातनी पण्डितों को निरन्तर शास्त्रार्थों में पटखनी दी । जैन मतावलम्बी विद्वानों ने जब आर्यसमाज से लोहा लेना चाहा तो स्वामी कर्मानन्द तथा स्वामी दर्शनानन्द ने उनको शास्त्रार्थों में हराया । पं० गोजदत्त ने तो आगरा में आर्य मुसाफिर विद्यालय की स्थापना कर उपदेशकों के प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ किया । उनके इस विद्यालय में विभिन्न मतों का तुलनात्मक अध्ययन कराया जाता था तथा छात्रों को शास्त्रार्थ-कला के दांव-पेंच सिखाए जाते थे । प्रसिद्ध शास्त्रार्थकर्ता पं० बिहारीलाल शास्त्री ने यहाँ अध्यापन किया था तथा ठाकुर अमरसिंह, पं० राहुल सांस्कृत्यायन, मौलवी महेशप्रसाद तथा पं० कालीचरण शर्मा मौलवी (कानपुर) आदि ने यहाँ प्रशिक्षण प्राप्त किया था । राजस्थान के आर्य- महोपदेशक पं० रामसहाय शर्मा (कालान्तर में स्वामी ओम्भक्त) ने भी यहाँ से उपदेशक की ट्रेनिंग ली थी ।

जिन विद्वानों ने मुसलमान-मौलवियों से शास्त्रार्थ किए उनमें पं० रामचन्द्र देहलवीजी तो अरबी भाषा तथा कुरान के मर्मज्ञ थे । उनकी कोमल, मधुर भाषण शैली निष्पक्षी वक्ताओं को भी प्रभावित करती थी । इन शास्त्रार्थों के विवरण कालान्तर में पुस्तकाकार छप जाते थे और जिज्ञासुमन उन्हें पढ़कर आर्य विद्वानों की शास्त्रीय प्रतिभा से अवगत होते थे । कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में ईसाई पादरी जानसन से चूरू (राजस्थान) के प्रसिद्ध पं० गणपति शर्मा का शास्त्रार्थ हुआ था । जिसकी अध्यक्षता स्वयं कश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह ने की थी तथा गणपति जी को विजय प्रमाणपत्र तथा सरोपा भेंट किया था। इन पंक्तियों के लेखक ने काशी-शास्त्रार्थ की शताब्दी के अवसर पर आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी शीर्षक ग्रन्थ लिखकर दिवंगत तथा तब (१९६९ में जीवित) लगभग सौ शास्त्रार्थ-कर्ताओं का वृत्तान्त उपस्थित किया था । कालान्तर में अमर-स्वामी जी ने 'निर्णय के पथ पर' शीर्षक बृहद्ग्रन्थ के लेखन का समापन किया जो उनके निधन के पश्चात् भी कई खण्डों में छपता रहा । यदि शास्त्रार्थों तथा शास्त्रार्थ-महारथियों पर विस्तृत विवरणात्मक ग्रन्थ लिखा जाए तो भारतीय धर्म के इतिहास में यह कालजयी लेखन होगा ।

***

पता ८/४२३, नन्दन वन जोधपुर

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ।।

राजन् ! आप जहाँ-जहाँ जाएँगे वहाँ-वहाँ मित्र-शत्रु, उदासीन, आश्रय देनेवाले तथा आश्रय पानेवाले- ये पाँच आपके पीछे लगे रहेंगे ।

महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर मंच पर विराजमान महामहिम बाबू राजेन्द्र प्रसाद, राष्ट्रपति,
डा. हरिदत्त शास्त्री, पं. प्रकाशवीर शास्त्री आदि

भाषण करते हुए आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ (कुलपति) साथ में बैठे हैं-
पं. प्रकाशवीर शास्त्री, डा. हरिदत्त शास्त्री, पं. कांचीदत्त जी आदि

प्राचीन स्नातकों का दुर्लभ चित्र

आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, वैद्य विष्णुदत्त शर्मा, पं. प्रकाशवीर शास्त्री एवं
आचार्य नन्द किशोर शास्त्री के साथ प्राचीन स्नातकों का दुर्लभ चित्र

संस्था के वार्षिकोत्सव पर पधारे विशिष्ट अतिथि के साथ महाविद्यालय के पदाधिकारीगण
बाँये से श्री चन्द्रमोहन मेहता, श्री कालू लाल श्रीमाली, पं. प्रकाशवीर शास्त्री, श्री नरदेव शास्त्री

महाविद्यालय के यशस्वी स्नातक

राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रखर प्रवक्ता पं. प्रकाश वीर शास्त्री

महाविद्यालय के यशस्वी स्नातक

श्री बलजित् शास्त्री

वार्षिकोत्सव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी न्यायविद्

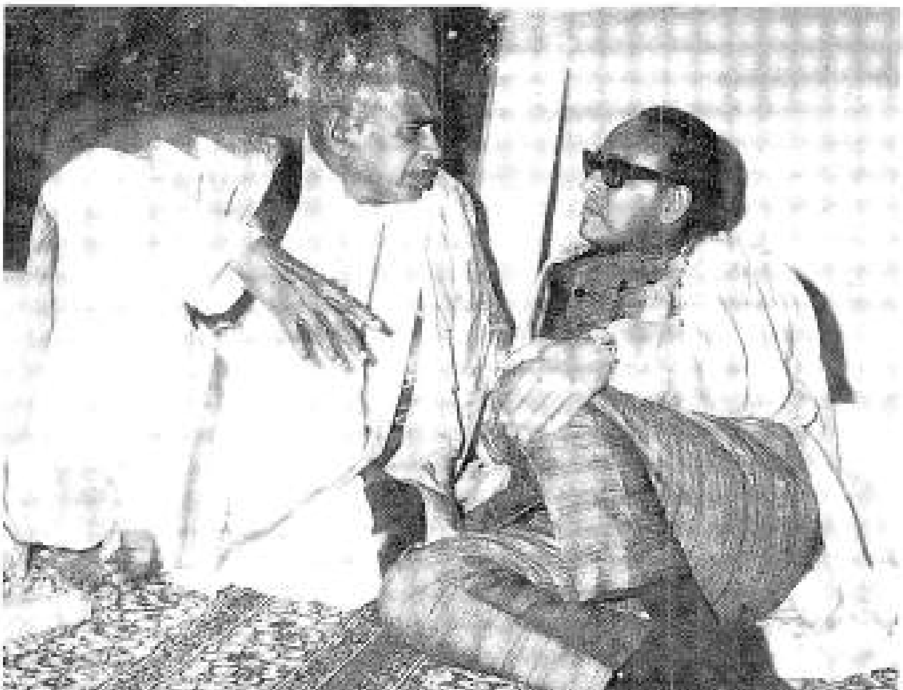

माननीय श्री वि. गोपाल रेड्डी श्री लक्ष्मी मल्ल सिंघवी से विचार-विमर्श करते हुए

संस्था के पुस्तकालय में अपने साथियों को संस्मरण सुनाते हुए संस्कृत के महान विद्वान् डा. हरिदत्त शास्त्री, साथ में बैठे हैं बांये से श्री प्रकाश चन्द्र शास्त्री, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, श्री डा. वाचस्पति शास्त्री एवं श्री डा. गौरीशंकर आचार्य

मुख्य अतिथि के साथ श्री सत्यव्रत शास्त्री,
श्री पं. प्रकाशवीर शास्त्री, श्री लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी आदि

वार्षिकोत्सव पर अपने विचार व्यक्त करते हुए रायबहादुर गूजरमल मोदी

श्री राजेश पायलट (सांसद) का अभिनन्दन करते हुए श्री बाबू सिंह पंवार (मुख्याधिष्ठाता)

सम्पूर्णानन्द सं. वि. वि. के माननीय बदरीनाथ जी के साथ अधिकारी गण

दर्शनानन्द जयन्ती पर छात्रों को पुरस्कृत करते हुए श्री बाबू सीताराम (मुख्याधिष्ठाता)

आचार्य सत्यव्रत शास्त्री धामपुर का
अभिनन्दन करते हुए
डा. हरिगोपाल शास्त्री (प्राचार्य)

प्राचीन मुख्य कार्यालय भवन

बाँये से सर्वश्री डा. आनन्द मेहता, बाबू सीताराम, काजी मोहम्मद मुईउद्दीन,
डा. हरिदत्त शास्त्री, डा. गौरीशंकर आचार्य, डा. हरिगोपाल शास्त्री

संस्था के वार्षिकोत्सव पर मुख्य अतिथि माननीय श्री बनारसी दास गुप्त मुख्यमन्त्री उ.प्र. के साथ
जिलाधिकारी सहारनपुर एवं डा. गंगाशरण भारद्वाज (सभा मन्त्री)

मुख्य अतिथि माननीय वि. गोपाल रेड्डी वार्षिकोत्सव पर यज्ञ की आहुति देते हुए

चौ. यशपाल सिंह, कृषि मन्त्री, उ.प्र. (बीच में), के साथ श्री राम सिंह सैनी विधायक

स्वामी दयानन्द का शिक्षादर्शन (गुरुकुल-शिक्षा)

- डॉ० गणेशदत्त शर्मा (पूर्व प्राचार्य)

शिक्षा का महत्त्व- महर्षि दयानन्द भलीभाँति इस तथ्य का दर्शन किए हुए थे कि- "शिक्षा मानव एवं समाज की नींव है ।" शिक्षा के इसी महत्त्व को स्वीकार करते हुए उन्होंने "सत्यार्थप्रकाश" के तृतीय समुल्लास में लिखा है- "संतानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म और स्वभाव-रूप आभूषणों का धारण कराना माता-पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है ।"

शिक्षा की अनिवार्यता (राजनियम, जातिनियम)- शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग मानकर स्वामी दयानन्द ने इसके लिए राज्य को उत्तरदायी ठहराया है । वे लिखते हैं - "इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें और आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को कोई घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो ।" अनिवार्य शिक्षा के लिए इतनी कठोर व्यवस्था कोई अन्य शिक्षाशास्त्री अथवा समाज-सुधारक नहीं दे पाया है ।

शिक्षा का आरम्भ- सामान्यत: यह समझा जाता है कि बच्चे की शिक्षा तब प्रारम्भ होती है, जब पिता उसे पाठशाला अथवा स्कूल में प्रविष्ट कराता है और अध्यापक उसे अक्षरज्ञान सिखाने लगता है । परन्तु स्वामी दयानन्द पाठशाला जाने से भी पहले बच्चे की शिक्षा के लिए उसके माता-पिता को उत्तरदायी मानते हैं । "सत्यार्थप्रकाश" का द्वितीय समुल्लास आरम्भ करते हुए- " अथ शिक्षां प्रवक्ष्याम: " कहकर स्वामी जी ने "शतपथ-ब्राह्मण" के इस वचन को उद्धृत किया है-

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।

इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है- 'वस्तुत: जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है ।'

माता, पिता, आचार्य- सबसे पहली शिक्षा बच्चे को माँ से मिलती है । प्रसिद्ध पादरी एच.डब्ल्यू. बीचर (H.W. Beecher) का यह कथन नितान्त सत्य है- 'माता का हृदय बच्चे की पाठशाला है' । माता स्तन्यपान के समय अपनी लोरियों में ही बच्चे के कोमल एवं साफ-सुथरे मन में जो संस्कार जमा देती है, उनकी छाप आजीवन अमिट रहती है और जैसे संस्कार होते हैं, वैसा ही जीवन बन जाता है । इस दृष्टि से माता जैसा चाहे बच्चे को वैसा ही बना सकती है ।

माता के बाद दूसरा उत्तरदायित्व पिता का है और इस परम्परा में इन दोनों के बाद आचार्य का स्थान है । इसलिए मनु ने आचार्य की अपेक्षा सौ गुना अधिक महत्त्व पिता का और पिता की भी अपेक्षा हजार गुना अधिक महत्त्व माता का बताया है-

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता ।
सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते ।। मनु० २.१४५

संस्कार- जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है । विशेष रूप से बाल्यावस्था में जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं, वे जीवन पर्यन्त साथ नहीं छोड़ते । जैसे कुम्हार द्वारा मिट्टी के बर्तन में खींची गई रेखाएं फिर कभी नहीं छूटतीं, उसी प्रकार माता-पिता द्वारा डाले गए संस्कार बच्चों के मन से कभी नहीं छूटते । इस वास्तविकता को जानकर ही स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने यह उपदेश किया- 'जैसे संतान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न माता पिता करते रहें, जिससे उत्तम संस्कार उत्पन्न हों । सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें ।'

आचार्यकुल- माता-पिता द्वारा बच्चे के पालन-पोषण, अक्षरज्ञान तथा उसे प्रारम्भिक शिष्टाचार की शिक्षा के बाद पांच से आठ वर्ष की अवस्था में स्वामी दयानन्द ने उनके पाठशाला भेजने का विधान किया है। इसके लिए स्वामीजी ने आचार्यकुल एवं गुरुकुल शब्दों का भी प्रयोग किया है। वे लिखते हैं- द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें। (स०प्र०समु०३)

अध्यापक- विद्यार्थियों को सुशिक्षित एवं चरित्रवान् बनाने के लिए योग्य एवं सच्चरित्र अध्यापकों की आवश्यकता है, क्योंकि छात्र के जीवन पर पुस्तकों का उतना प्रभाव नहीं होता जितना अपने अध्यापक एवं आचार्य का। यास्क ने आचार्य शब्द की निरुक्ति करते हुए लिखा है-

आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थान्, आचिनोति बुद्धिमिति वा। यास्क, निरु०, १.४.१२

इस निर्वचन के अनुसार आचार्य वही है जो कि अपने शिष्यों में सदाचार का आधान कराए और शिष्यों को सदाचारी वही बना सकता है जो स्वयं सदाचारी हो। दुराचारी अध्यापक का निषेध करते हुए स्वामी जी ने लिखा है- 'जो अध्यापक पुरुष या स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं।' (स०प्र०समु०३)

छात्र एवं अध्यापक का निकट सम्पर्क- आज की शिक्षा-प्रणाली में छात्र ४ या ५ घण्टे तक ही विद्यालय में शिक्षक की देखरेख में रह पाता है। फलस्वरूप उस पर अपने शिक्षक की शिक्षाओं एवं उसके चरित्र का प्रभाव बहुत कम और समाज के गन्दे वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसी कारण आज छात्र एवं लगभग समस्त युवापीढ़ी के अनुशासनहीन तथा पथभ्रष्ट होने की समस्या सामने आकर खड़ी हो गयी है जिसका समाधान आज के शिक्षाविद् एवं जननेता नहीं खोज पा रहे हैं। लेखक की यह दृढ़ धारणा है कि इस समस्या का समाधान उपर्युक्त गुरुकुल शिक्षा-पद्धति में ढूंढा जा सकता है, जिसमें २४ घण्टे छात्र विद्वान् एवं आचारवान् शिक्षकों के सान्निध्य में रहकर अपनी शैक्षिक एवं चारित्रिक उन्नति द्वारा देश का सभ्य नागरिक बन सकता है।

ब्रह्मचर्य- आज के युग में ब्रह्मचर्य का अर्थ व महत्त्व न जानने वाले इसका नाम सुनकर प्रायः हँस देते हैं। किन्तु इसे गम्भीरता से लेने की आवश्यकता है। ब्रह्म शब्द प्रमुख रूप से वेद, परमेश्वर, वीर्य तथा शक्ति आदि अर्थों में आता है और इन्हें प्राप्त करने की ओर निरन्तर गतिशील होना ही ब्रह्मचर्य है। यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो विद्यार्थी का भी लक्ष्य यही होता है। अतः ब्रह्मचारी ही सही अर्थों में विद्यार्थी कहलाने का अधिकारी है। शरीर में वीर्य का संचय एवं धारण करने से ही बल एवं बुद्धि का विकास होता है, जो कि शिक्षार्थी के लिए अनिवार्य है। इस विषय में यह कथन प्रमाण है- 'जो ब्रह्मचारी होता है, वही ज्ञान से प्रकाशित तप और दीक्षा को प्राप्त होके विद्या को प्राप्त होता है।' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-वर्णाश्रम विषय)।

सहशिक्षा नहीं- सहशिक्षा का निषेध स्वामीजी ने निम्न शब्दों में किया है-

'लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष या भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहे। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहें, तब तक स्त्री या पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।' (स०प्र०समु० ३)

शिक्षा में समानता- धनी, निर्धन, राजा एवं सामान्य प्रजा के बालकों के लिए पृथक्-पृथक् शिक्षणालयों एवं उनमें खान-पान, वस्त्र तथा निवास आदि की असमानताओं से आरम्भ से ही बच्चों के हृदय में ऊँच-नीच की भावनाएं एवं हीनग्रन्थियाँ (inferiority complexes) उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे सामाजिक विषमता जन्म लेती है और यह विषमता समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है। समाज को इस आपत्ति से बचाने के लिए ही स्वामी जी ने यह विधान किया- 'सबको तुल्य वस्त्र, खान, पान, आसन दिए जाएं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हों चाहे दरिद्र की सन्तान हों।' (स०प्र०समु०३) स्वामी जी के इसी विधान के अनुसार ही गुरुकुलों में सभी को समानता का स्तर दिया जाता है।

सभी वर्गों की शिक्षा- समाज का सर्वाङ्गीण विकास तभी सम्भव है जब उसमें सभी वर्ग सुशिक्षित हों। समाज के इस सर्वाङ्गीण विकास को ध्यान में रखकर ही स्वामीजी ने यह आदेश दिया- इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करें और विशेषकर राजा, इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्रजनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें, क्योंकि जो ब्राह्मण हैं यदि वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें, तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती।' (स०प्र०समु०३)। स्वामी दयानन्द सरस्वती पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पाखण्डियों, अन्धविश्वासियों एवं स्वार्थी ब्राह्मणों की-

'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्।'

इस मान्यता का खण्डन करके विद्या, ज्ञान एवं वेद के द्वार सबके लिए खोल दिए। सबको वेदाध्ययन के अधिकार का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं -

'जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित हैं' - (स०प्र०समु०३)

स्त्री-शिक्षा- स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने से न केवल भारतीय समाज का, अपितु विश्व के समाज का बड़ा अहित हुआ है। इसे जानते हुए ही स्वामी जी ने स्त्री-शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। स्त्री-शिक्षा का उल्लेख करते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं- "स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित व शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए। क्योंकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल व्यवहार, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति उनका पालन, वर्धन और सुशिक्षा करना आदि नहीं बन सकता।

अन्य देश की भाषाओं की भी शिक्षा- शिक्षा के मामले में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण जरा भी संकुचित नहीं था, अपितु वह इतना विस्तृत था कि वे देवनागरी व संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी सम्मान करते थे और यह अपेक्षित समझते थे कि अन्य भाषाओं का भी अध्ययन किया जाए, जिससे कि भारत के बाहर की दुनिया से भी सम्पर्क बना रहे।

स्वामी दयानन्द के सर्वाङ्गीण एवं सार्वभौम शिक्षा-दर्शन का इस लेख में समग्र वर्णन नहीं किया जा सकता। किन्तु उक्त पंक्तियों में किए गए विवेचन से यह अवश्य सिद्ध किया जा सकता है कि- "स्वामी जी एक ऐसी गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली के पक्षपाती थे, जिसके अन्तर्गत शिक्षित समाज पूर्णरूप से सभ्य, सशक्त, सर्वथा सम्पन्न एवं आनन्दित हो सके।"

***

पता- पूर्व प्राचार्य लाजपतराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
साहिबाबाद (गाजियाबाद)
१०/९८, सेक्टर- ३, राजेन्द्रनगर, साहिबाबाद

गोविन्द वल्लभ पन्त (मुख्यमंत्री-उत्तर प्रदेश के १३.४.१९५० को महाविद्यालय आगमन पर उनके विचार

मैंने आज गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को देखा। मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि यह गुरुकुल बयालिस वर्षों से लगातार सैकड़ों विद्यार्थियों को बिना किसी प्रकार के शुल्क के संस्कृत और हिन्दी की उच्चतम शिक्षा दे रहा है। इस संस्था से निकले हुए स्नातकों ने विशेष रूप से राष्ट्रीय सेवा और असहयोग आन्दोलनों में भाग लिया है, यह हर्ष की बात है। इस संस्था के अधिकारियों से मुझे विशेष रूप से कहना है कि वे इसको स्वावलम्बी संस्था बनावें। विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ ही शिल्प और उद्योग की भी पूरी शिक्षा दें। आर्थिक सहायता के सम्बन्ध में सरकार विचार करेगी। इस संस्था के पास जो भूमि कृषि के योग्य है, उसको कृषि के नवीन साधनों का उपयोग करके, अधिक से अधिक उपजाऊ बनाया जाय। मैं इस शिक्षा-संस्था की हृदय से उन्नति चाहता हूँ।

(गोविन्द वल्लभ पन्त)
१३.४.१९५०

खंड 6

गुरुकुल की आन्तरिक-व्यवस्था

* गुरुकुल के प्रधान, कुलपति, अधिष्ठाता, मंत्री आदि पदाधिकारी
* गुरुकुल की गत पाँच वर्षों की उपलब्धियाँ
* गुरुकुल के भवन-निर्माण का विवरण
* आय-व्यय एवं बजट

महाविद्यालय-सभा (ज्वालापुर) के प्रमुख पदाधिकारी

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के संचालन के लिए ३० जून १९०८ ई० में महाविद्यालय-सभा ज्वालापुर का गठन किया गया था। संस्था के स्थापनाकाल सन् ११०७ ई० से अब तक के प्रमुख पदाधिकारियों के कार्यकाल सहित विवरण निम्नवत् है-

संस्था प्रधान

नाम	कार्यकाल
१. श्री चौ० महाराज सिंह जी रईस (मानकपुर)	१९०७ से १९०९ तक
२. श्री सेठ सीताराम जी रईस (अहार)	१९१० से १९१६ तक
३. श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी वकील, (देहरादून)	१९१७ से १९१८ तक
४. श्री चौ० रघुराज सिंह जी रईस (पृथ्वीपुर, बिजनौर)	१९१९ से १९२६ तक
५. श्री रायसाहब मथुरादास जी रईस (रुड़की)	१९२७ से १९२८ तक
६. श्री चौ० रघुराज सिंह जी (बिजनौर)	१९२९ से १९३१ तक
७. श्री वैद्य शिवदत्त काव्यतीर्थ, भिषगाचार्य (अमृतसर)	१९३२ से १९४० तक
८. श्री हरिशंकर जी शास्त्री (मेरठ)	१९४१ से १९५२ तक
९. श्री डॉ० सूर्यकान्त जी शास्त्री	१९५३ से १९५८ तक
१०. वैद्य पं० हरिशंकर जी शास्त्री (मेरठ)	१९५९ से १९६१ तक
११. श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री	१९६२ से १९६५ तक
१२. श्री शिवकुमार जी शास्त्री	१९६६ से १९६७ तक
१३. श्री वासुदेव जी वैद्य (खुर्जा)	१९६८ से १९६९ तक
१४. श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	१९७० से १९७३ तक
१५. श्री वैद्य विष्णुदत्त जी	१९७४ से १९७६ तक
१६. श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'	१९७७
१७. श्री वासुदेव जी वैद्य (खुर्जा)	१९७८ से १९८० तक
१८. श्री डॉ० गौरीशंकर जी आचार्य	१९८० से १९९२ तक
१९. श्री धर्म सिंह ढिल्लों	१९९२ से १९९३ तक
२०. श्री कृष्णदत्त शर्मा	१९९३ से १९९७ तक
२१. श्री पं० हरिवंश सिंह वत्स	१९९७ से निरन्तर

***

मन्त्री सभा

नाम	कार्यकाल
१. श्री पं० तुलसीराम थापू (चित्रकार)	१९०७ में
२. श्री बाबू सीताराम जी (ज्वालापुर)	१९०८ में
३. श्री पं० भीमसेन शर्मा साहित्याचार्य	१९०९ में
४. श्री पं० परमानन्द शर्मा	१९१० में
५. श्री पं० पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य	१९११ में
६. श्री पं० भीमसेन शर्मा	१९१२ में
७. श्री मा० हरद्वारी लाल जी (रुड़की)	१९१३ में
८. श्री पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ	१९१४ से १९१५ तक
९. श्री पं० बलदेव सहाय व्यास (रुड़की)	१९१६ से १९१७ तक
१०. चौ० रघुराजसिंह जी रईस (पृथ्वीपुर, बिजनौर)	१९१८ में
११. श्री शंकरदत्त शर्मा (मुरादाबाद)	१९१९ से १९२१ तक
१२. श्री पं० कर्ताराम शर्मा (जगराँव, जालन्धर)	१९२२ में
१३. पं० विश्वनाथ शास्त्री, व्याकरणतीर्थ	१९२३ में
१४. पं० रविशंकर शर्मा	१९२४ से १९२५ तक
१५. श्री पं० हरिशंकर शास्त्री, काव्यतीर्थ (मेरठ)	१९२६ से १९२७ तक
१६. श्री शीतलप्रसाद विद्यार्थी (सहारनपुर)	१९२८ में
१७. श्री पं० शंकरदत्त शर्मा (मुरादाबाद)	१९२९ से १९३० तक
१८. श्री पं० हरिशंकर शास्त्री (मेरठ)	१९३१ से १९३२ तक
१९. श्री पं० शंकरदत्त शर्मा (मुरादाबाद)	१९३३ से १९४० तक
२०. डॉ० नरेन्द्रदेव शास्त्री (आगरा)	१९४१ से १९५२ तक
२१. श्री वैद्य विष्णुदत्त जी (कनखल)	१९५३ से १९५८ तक
२२. डॉ० नरेन्द्रदेव शास्त्री (आगरा)	१९५९ से १९६१ तक
२३. श्री वैद्य प्रकाशचन्द्र शास्त्री (दिल्ली)	१९६२ से १९६९ तक
२४. श्री राजेन्द्र जी शुक्ल (दिल्ली)	१९७० से १९७१ तक
२५. श्री प्रकाश चन्द्र शास्त्री वैद्य (दिल्ली)	१९७२ से १९७४ तक
२६. श्री वासुदेव जी वैद्य (खुर्जा)	१९७५ से १९७६ तक
२७. श्री रमेशचन्द्र शास्त्री (दिल्ली)	१९७६ से १९७७ तक
२८. श्री डॉ० गंगाशरण भारद्वाज (हापुड़)	१९७७ से १९८० तक

२९. श्री विक्रमसिंह जी	१९८१ में
३०. डॉ. श्रुतिकान्त जी	१९८० से १९८१ तक
३१. श्री चौ० विक्रमसिंह	१९८२ से १९८७ तक
३२. श्री डॉ० प्यारेलाल चौहान	१९८७ से मार्च २००२ तक
३३. श्री योगेन्द्रसिंह चौहान (एडवोकेट)	मार्च २००२ से निरन्तर

मुख्याधिष्ठाता

नाम	कार्यकाल
१. पं० भीमसेन जी शर्मा साहित्याचार्य	१९०७ से १९०८ तक
२. श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९०९ से १९१३ तक
३. श्री पं० आचार्य गंगादत्त जी शास्त्री	१९१४ से १९१५ तक
४. पं० तुलसीराम स्वामी	१९१६ के चार माह
५. श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी (देहरादून)	१९१६ के छः माह
६. श्री शिवदत्त काव्यतीर्थ भिषगाचार्य (अमृतसर)	१९१७ से १९१८ तक
७. श्री पं० रविशंकर शर्मा	१९१९ से १९२० तक
८. श्री विश्वनाथ शास्त्री, न्यायतीर्थ	१९२० से १९२२ तक
९. पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९२३ में
१०. बा० विश्वम्भर दयाल	१९२४ से १९२५ तक
११. डॉ० हरिद्वारी सिंह (रुड़की)	१९२६ से १९२७ तक
१२. स्वामी शुद्धबोध तीर्थ आचार्य	१९२७ में
१३. श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९२८ में
१४. श्री रविशंकर शर्मा (वानप्रस्थ)	१९२९ में
१५. श्री ब्र० आनन्दप्रकाश जी व्याख्यानभास्कर	१९३० में
१६. सरस्वतीभूषण पं० मानपाल जी	१९३१ से १९३२ तक
१७. चौ० रघुराजसिंह जी (पृथ्वीपुर, बिजनौर)	१९३२ में
१८. श्री पं मूलचन्द शास्त्री	१९३३ में
१९. श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री, न्याय-व्याकरणतीर्थ	१९३३ से १९३८ तक
२०. श्री पं० हरिशंकर शास्त्री, न्यायतीर्थ	१९३९ में
२१. श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री	१९४० से १९५२ तक
२२. श्री पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री	१९५३ से १९६३ तक
२३. डॉ० हरिदत्त जी शास्त्री	१९६३ से १९६५ तक

२४. श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री	१९६५ से १९६६ तक
२५. श्री पं० वाचस्पति जी शास्त्री	१९६६ से १९६७ तक
२६. श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री	१९६७ से १९६८ तक
२७. श्री पं० नन्दकिशोर जी शास्त्री	१९६८ से १९६९ तक
२८. चौ० श्री तेजसिंह जी आर्य (सहारनपुर)	१९६९ से १९७१ तक
२९. बाबू सुभाषचन्द्र जी (सहारनपुर)	१९७२ से १९७४ तक
३०. श्री रमेशचन्द्र शास्त्री (दिल्ली)	१९७४ से १९७६ तक
३१. श्री बाबू सीताराम जी	१९७६ से १९७९ तक
३२. श्री डॉ० चन्द्रभानु अकिंचन	१९७९ में जुलाई से सितम्बर तक
३३. श्री रघुवीर शर्मा	१९७९ में अक्टूबर से नवम्बर तक
३४. श्री बाबू सिंह पवार	दिसम्बर १९७९ से मार्च १९८१ तक
३५. श्री डॉ० श्रुतिकान्त शास्त्री	१९८१ से १९८२ तक
३६. श्री अशोक कुमार	१९८२ से १९८६ तक
३७. श्री महावीर सिंह	१९८७ से १९८८ तक
३८. श्री विजेन्द्र सिंह चौहान	१९८८ से १९८९ तक
३९. श्री डॉ० प्यारेलाल चौहान	१९८९ से १९९० तक
४०. श्री दिनेश चन्द शास्त्री	१९९० से १९९२ तक
४१. श्री डॉ० यशवन्त सिंह चौहान	१९९२ से १९९८ तक
४२. श्री देवराज सिंह चौहान	१९९८ से अग० २००१ तक
४३. श्री यशवन्त सिंह चौहान	मार्च २००२ से निरन्तर

कुलपति

१. स्वामी आनन्दबोध तीर्थ	१९३८ से १९४६ तक
२. श्री आनन्द प्रकाश जी तीर्थ	१९४७ से १९५२ तक
३. श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९५३ से १९६३ तक
४. श्री श्रीप्रकाश जी (भूतपूर्व राज्यपाल)	१९६४ से १९६५ तक
५. डॉ० हरिदत्त शास्त्री	१९६५ से मई १९८० तक
६. डॉ० गौरीशंकर आचार्य	१९८० से सितम्बर १९८१ तक
७. पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	१९८१ से १९९२ तक
८. डॉ० गौरीशंकर आचार्य	१९९२ से १९९७ तक
९. श्री प्रो० रामसिंह रावत (सांसद)	१९९२ से २००६ तक
१०. जस्टिस श्री शशिकान्त शर्मा	२००७ से निरन्तर

आचार्य

नाम	कार्यकाल
१. आचार्य श्री पं० गंगादत्त शास्त्री (आचार्य शुद्धबोध तीर्थ)	१९०८ से १९३० तक
२. श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री	१९३१ में
३. डॉ० हरिदत्त शास्त्री	१९३२ से १९३८ तक
४. श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९३९ से १९४० तक
५. श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री	१९४१ से १९४४ तक
६. श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ	१९४५ से १९४६ तक
७. श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री	१९४७ में
८. डॉ० हरिदत्त शास्त्री	१९४८ से १९५२ तक
९. श्री आचार्य उदयवीर शास्त्री	१९५३ से १९५५ तक
१०. श्री पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री	१९५६ से १९६२ तक
११. डॉ० गौरीशंकर आचार्य	१९६२ से १९६३ तक
१२. श्री पं० नन्दकिशोर शास्त्री	१९६३ से १९६४ तक
१३. श्री पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी	१९६५ से १९६६ तक
१४. श्री पं० हरिदत्त शास्त्री	१९६६ से १९६७ तक
१५. श्री पं० रामदत्त शास्त्री (बुलन्दशहर)	१९६७ से १९६८ तक
१६. श्री धर्मनाथ शास्त्री (कानपुर)	१९६८ से १९६९ तक
१७. श्री हरिसिंह जी साहित्याचार्य	१९६९ से १९७१ तक
१८. श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी	१९७१ से अप्रैल १९७२ तक
१९. श्री डॉ० सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'	१९७२ से २६ अगस्त १९७४ तक
२०. श्री डॉ० हरिगोपाल शास्त्री	१९७४ से अब तक

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का सम्मान्य संरक्षक मंडल

१. डॉ० अशोक चौहान, कुलाधिपति ई०– २७, ए.के.सी हाऊस डिफेन्स कालोनी, नई दिल्ली–२४
२. श्रीमती मीरा कुमार सांसद, नई दिल्ली
३. श्री ब्रह्मदत्त पूर्व केन्द्रीय मंत्री, देहरादून
४. श्री विमल चन्द ग्रोवर नागपुर
५. श्री माता पुष्पावती जी वैद्या, योगी फार्मेसी, कनखल, हरिद्वार (उत्तरांचल)

६. श्री हरवंश लाल जी शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालन्धर
७. श्री किशोर जी उपाध्याय 'औद्योगिक विकास राज्यमंत्री' उत्तरांचल सरकार, देहरादून
८. श्री डॉ० गौरी शंकर आचार्य, श्री गंगानगर, राजस्थान
९. श्री सुरेश चन्द जैन, हरिद्वार रोड, रुड़की (उत्तरांचल)

***

प्रबन्धकर्तृ सभा (अन्तरंग सभा) के वर्तमान पदाधिकारी

	नाम	पद		नाम	पद
१.	श्री पं० हरवंश सिंह वत्स	प्रधान सभा	१५.	श्री अश्विनी शर्मा	सदस्य
२.	श्री आर०एस० कौशिक	वरिष्ठ उपप्रधान	१६.	श्री महेश भारद्वाज	सदस्य
३.	श्री योगेन्द्र सिंह चौहान	मंत्री-सभा	१७.	श्री पृथ्वी सिंह गौड	सदस्य
४.	श्री विजेन्द्र सिंह चौहान	मंत्री उप-प्रधान	१८.	श्री ओमप्रकाश यादव	सदस्य
५.	श्री प्रदीप कुमार	उप-प्रधान	१९.	श्री चांदपाल	सदस्य
६.	श्री डॉ० पूरण सिंह	उप-मंत्री	२०.	श्री क्षेत्रपाल सिंह चौहान	सदस्य
७.	श्री शिव प्रसाद नौटियाल	कोषाध्यक्ष	२१.	श्री मा० राजेन्द्र सिंह	सदस्य
८.	श्री जस्टिस शशिकान्त शर्मा	कुलपति	२२.	श्री नरेन्द्र सिंह चौहान	सदस्य
९.	श्री डॉ० हरिगोपाल शास्त्री	आचार्य (पदेन)	२३.	श्री प्रेमचन्द जैन	सदस्य
१०.	डॉ० यशवन्त सिंह	मुख्याधिष्ठाता	२४.	श्री अजय कुमार	सदस्य
११.	डॉ० सच्चिदानन्द शास्त्री	सदस्य	२५.	श्री राणा नन्दलाल	सदस्य
१२.	प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री	सदस्य	२६.	श्री राजपाल सिंह	सदस्य
१३.	श्री ब्रजमोहन लाल गर्ग	सदस्य	२७.	श्री राकेश कुमार	सदस्य
१४.	श्री कृष्ण सेमवाल	सदस्य			

म०वि० के भवन-निर्माण का संक्षिप्त परिचय

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना आज से १०० वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती की विचारधाराओं से अनुप्राणित वीतराग तार्किक-शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा वैशाख, अक्षय तृतीया सं० १९६४ वि० (अप्रैल १९०७ ई०) में अन्य चार गुरुकुलों के साथ की थी।

श्री दानवीर स्व० बाबू सीतारामजी तत्कालीन दारोगा ज्वालापुर के सुरम्य उद्यान में संस्कृत शिक्षा, प्रचार एवं विलुप्त ब्रह्मचर्याश्रम प्रणाली के पुनरुद्धार के विशेष उद्देश्य को लेकर ३ बीघा भूमि में बारह आने के स्थिर कोष से इस संस्था की स्थापना हुई थी।

इस पवित्र उपवन के अन्दर व बाहर विद्यालय के निम्नलिखित भवनों का निर्माण हुआ-

१. ब्रह्मचर्याश्रम- इस आश्रम का निर्माण सन् १९३० तक चौ० जयकृष्णजी रईस अमृतसर के द्वारा ला० बंसीधर जी कपूर एवं भाई रामसिंह जी बुआ के पवित्र दान से पूर्ण हुआ। इस आश्रम में विद्यार्थियों की समस्याओं की पूर्ति हेतु एक कोने पर पुस्तकालय व अन्य तीन कोनों पर भी एक-एक कमरा निर्मित कराया गया।

२. यज्ञशाला- इसका निर्माण श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री की प्रेरणा से सन् १९६१ ई० में कराया गया। सर्वप्रथम संध्या व यज्ञ हेतु टीन की छत से बनी यज्ञशाला ही निर्मित करायी गयी थी।

३. पुस्तकालय भवन- गोपाल भवन के नाम से प्रसिद्ध पुस्तकालय भवन का निर्माण राय केदारनाथ जी रईस अमरोहा के सात्विक दान से सन् १९३० ई० में हुआ।

४. बड़े छोटे भण्डार व पाठशाला- इस भवन का निर्माण श्रीमती अशर्फी देवी अलीगढ़ निवासिनी एवं श्री नरदेव शास्त्री, श्रीमती धर्मपत्नी दयालसिंह व किशोरीलाल नत्थोमल निवासी सहारनपुर के संयुक्त दान से सन् १९४८ ई० में हुआ।

५. गौशाला निर्माण- इसका निर्माण चौ० जयकृष्णजी की माताजी एवं लाला उग्रसेन जी गढ़ी हसनपुर के द्वारा सन् १९४७ में पूर्ण कराया। २००५ में इस गौशाला का जीर्णोद्धार २,५०,०००/- की अपनी निजी आय से लगाकर पं० हरवंश सिंह वत्स, वर्तमान संस्था प्रधान, ने कराया।

६. आरोग्यशाला- यह आरोग्यशाला श्री चौ० अमीरसिंह जी गढमीरपुरा के दान से सन् १९१८ ई० में निर्मित हुई।

७. चिकित्सा कक्ष- इसका निर्माण श्री बाबू सीताराम जी भूमिदाता ने दान देकर सन् १९१४ ई० में पूर्ण कराया।

८. गणेश-कूप- स्व० लाला गणेशीलाल जी द्वारा सन् १९४६ ई० में कराया गया।

९. स्नानघर- सन् १९१४ ई० में श्री सीताराम जी प्रधान सभा द्वारा निर्मित कराया गया।

१०. धर्मशाला- इसका निर्माण लाला लक्ष्मण प्रसाद जी राय बाबू रामरतन जी शिमला निवासी के पवित्र दान से सन् १९३९ में हुआ। संस्था के अन्य भवन सन् १९३३ से १९६० ई० तक, शुद्धबोध आश्रम १९३५ से १९३८ तक दान एकत्रित करके कराये गए।

११. दर्शनानन्द घाट- इस घाट का निर्माण बम्बई निवासी सेठ जयनारायण जी द्वारा १९१८ में कराया गया व १९५८ में इसका पुनः निर्माण हुआ। २००५ में इस घाट का फिर पुनः निर्माण पं० हरवंश सिंह जी वत्स वर्तमान प्रधान सभा द्वारा कराया गया।

१२. दयानन्द द्वार– स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बम्बई निवासी भगवान देव आर्य एण्ड कं० द्वारा इसका निर्माण कराया गया, जिसका शिलान्यास पं० नरदेव शास्त्री द्वारा किया गया।

समस्त भवनों का निर्माण लगभग १९०१ से १९४० तक पूर्ण हो चुका था। इसके पश्चात् भारत सरकार के अनुदान से अनुसंधान भवन का निर्माण १९६१ में कराया गया। जिसकी स्थापना पंडित जवाहर लाल नेहरु तत्कालीन प्रधानमंत्री भारत सरकार द्वारा की गयी। अतिथिशाला (सूदभवन) का निर्माण श्री पं. वाचस्पति शास्त्री की सत्प्रेरणा से दिल्ली निवासी श्री रतनचन्द सूद एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सत्यवती सूद ने सन् १९६० ई० में कराया।

बड़े आवासीय श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री के प्रयास से भारत सरकार के अनुदान से अध्यापक निवास के नाम से निर्मित कराये गए व छोटे भवनों का निर्माण श्री डॉ० हरिगोपाल शास्त्री की प्रेरणा से श्री पं० ईश्वरचन्द जी तीर्थ अबोहर निवासी ने कराकर महाविद्यालय को समर्पित किये।

१३. प्रधान भवन– इसका निर्माण तत्कालीन संस्था के प्रधान श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा काव्यतीर्थ ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णादेवी की प्रेरणा से कराकर १९४८ ई० में समर्पित किया।

हरिभवन व डाकघर भवन का निर्माण संस्था के वर्तमान प्रधान श्री पं० हरवंशसिंह जी वत्स संचालका दिल्ली निवासी ने दो लाख पचास हजार रुपये देकर सन् १९९७ ई० में सभा को समर्पित किया। सन् २००० ई० में श्री हरवंश सिंह वत्स जी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती मिश्री देवी की पुण्य स्मृति में बृहद् मिश्री देवी भवन का निर्माण कराकर व उसे सुसज्जित कराकर महाविद्यालय सभा को समर्पित किया। तत्पश्चात् २००२ ई० में हरि यज्ञशाला का निर्माण भी उन्हीं के सात्विक दान से हुआ।

इनके अतिरिक्त और भी ऐसे सज्जन दानी महानुभाव हैं, जिनके द्वारा भवन-निर्माण में महाविद्यालय की भरपूर सहायता की गयी।

– प्राचार्य

***

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती, नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्, न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्॥

जो प्रतिदिन जल से स्नान-सन्ध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किए रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितों का अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता है और गुरु की सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोक से भ्रष्ट नहीं होता।

म०वि० की गत पाँच वर्षों की उपलब्धियाँ

(सन् २००२-२००६)

- डॉ० केशवप्रसाद उपाध्याय, एम०ए०, पी-एच०डी०, साहित्याचार्य

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी, तार्किक-शिरोमणि, महामनस्वी, दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ, स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती के मन में भगवती भागीरथी के पावन तट पर संस्कृत भाषा एवं भारतीय संस्कृति की शिक्षा निःशुल्क रूप में उच्चतर स्तर पर प्रदान करने हेतु विचार उद्भूत हुआ। पुण्यात्माओं के मन में उद्भूत विचारों का कार्यान्वयन स्वयं प्रभु को करना पड़ता है, बस उसी विचार का घट-रूप महाविद्यालय ज्वालापुर धर्मध्वजा फहराता हुआ 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' महर्षि दयानन्द के इस वैदिक विजय घोष की अक्षय तृतीया संवत् १९६४ विक्रमी (तदनुसार १९०७ ई०) से निरन्तर आवृत्ति करता चला आ रहा है और साथ ही किसी जाति या सम्प्रदाय की भावना से रहित, सर्वोदय की संकल्प शक्ति ले निर्धन एवं योग्य छात्रों को शिक्षित करना इस विश्रुत शिक्षण-संस्था का मूल उद्देश्य रहा, जिसे मूल रूप में आज तक यह निरन्तर पालती आ रही है। ईश्वर-विश्वास व आकाशवृत्ति इस संस्था को उत्तराधिकार रूप में मानो प्राप्त हुई है। स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती तपोनिष्ठ थे। वे लौकिक होते हुए भी अलौकिक थे।

शिक्षा-विभाग

(क) गुरुकुल विभाग- इस विभाग के अन्तर्गत वर्तमान समय में गुरुकुलीय उद्देश्यों के अनुरूप धनवान् एवं निर्धन छात्रों में जाति-सम्बन्धी किसी प्रकार के भेदभाव न रखते हुए वेद, वेदाङ्गों के सहित साहित्य, धर्म, दर्शन, व्याकरण आदि प्राचीन विषयों की प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था के साथ हिन्दी, अंग्रेजी आदि आधुनिक भाषाओं के अध्यापन का पूर्ण प्रबन्ध है, साथ ही गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, कम्प्यूटर आदि आधुनिक विषयों के अध्यापन की भी व्यवस्था है।

(ख) उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय (हरिद्वार) से सम्बद्ध संस्कृत विभाग- उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय हरिद्वार से सम्बद्ध इस विभाग को वेद, दर्शन, संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण विषयों में आचार्य पर्यन्त मान्यता है। वर्तमान में पूर्वमध्यमा से लेकर आचार्य पर्यन्त ३०० ब्रह्मचारी हैं, जिनकी नियमित अध्यापन व्यवस्था है। छात्रावास में निवास करने वाले छात्रों के अतिरिक्त उत्तर मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य पाठ्यक्रमों में दैनिक रूप में भी छात्र अध्ययन हेतु विद्यालय आ सकते हैं। इस विभाग को राज्य सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त है।

(ग) पी०जी० कालेज एवं योग-विभाग- हेमवतीनन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर से सम्बद्ध इस विभाग में संस्कृत विषय में एम०ए० पाठ्यक्रम तथा योग-विषय में 'पी०जी० डिप्लोमा इन यौगिक साइंस' पाठ्यक्रम के पठन-पाठन की व्यवस्था है।

(घ) बी०एड० विभाग- छात्रों की सुविधा एवं सुयोग्य अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए हेमवतीनन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय से सम्बद्धता लेकर बी०एड० पाठ्यक्रम की व्यवस्था निकट भविष्य में की जा रही है।

(ङ) अनुसन्धान विभाग- इस विभाग के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य, वेद, आयुर्वेद तथा योग पर अनुसंधान का कार्य होता है। इस विभाग के लिए अनुसंधान भवन की आधारशिला संस्था की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री पं० जवाहरलाल नेहरु के कर-कमलों में स्थापित की गई थी और इसके भव्य भवन का नामकरण प्रसिद्ध विद्वान्, भारतोदय के प्रथम सम्पादक श्री पं० पद्मसिंह शर्मा के नाम पर 'पद्मसिंह अनुसंधान भवन' रखा गया। इसमें भारतीय ज्ञान-विज्ञान पर आधुनिक युग के सन्दर्भ में अनुसंधान की व्यवस्था की है।

(ख) श्री प्रकाशवीर शास्त्री उपदेशक महाविद्यालय- गुरुकुल महाविद्यालय के सुयोग्य स्नातक एवं प्रसिद्ध वाग्मी पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री की स्मृति को चिरस्थायी रखने हेतु संस्था के पूर्व प्रधान एवं राजस्थान के पूर्व शिक्षा मंत्री डॉ० गौरीशंकर आचार्य के सत्प्रयासों से श्री प्रकाशवीर शास्त्री स्मारक भमिति कार्यरत है । इसी के अन्तर्गत एक उपदेशक विभाग है, जिसके प्रधानाचार्य के रूप में डॉ० नारायणमुनिश्चतुर्वेद: एवं श्री पं० हरिसिंह साहित्याचार्य कार्यरत रहे हैं । इस विभाग से अब तक १५० स्नातक उच्च शिक्षा से दीक्षित होकर 'सिद्धान्तशास्त्री' की उपाधि प्राप्त कर इतस्तत: आर्य-विचारों के प्रचार में लगे हैं ।

गुरुकुल की उपाधियाँ- वर्तमान में संस्था की विद्यासभा द्वारा संचालित निम्न उपाधियाँ हैं, जिनको विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त है-

१. विद्यावाचस्पति (डी०लिट्०), २. विद्यावारिधि (पी-एच०डी०), ३. विद्याभास्कर (स्नातक), ४. विद्यानिधि (इण्टरमीडिएट), ५. विद्यारत्न (हाईस्कूल), ६. विद्याभूषण (जूनियर हाईस्कूल)

उपदेशक विभाग में सिद्धान्तशास्त्री उपाधि दी जाती है ।

गुरुकुल की परीक्षाओं को भारत सरकार द्वारा मान्यता- भारत सरकार के कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेन्शन मंत्रालय (कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग) के पत्र संख्या १४०११/२/९० स्था० (घ) दिनांक ७.११.१९९० के द्वारा भारत सरकार ने केन्द्रीय सरकार में नियुक्ति के उद्देश्य से शिक्षा के सामान्य ढांचे में विभिन्न शैक्षणिक अर्हताओं के समकक्ष के रूप में गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) उत्तर प्रदेश (वर्तमान में उत्तरांचल) के निम्नलिखित पाठ्यक्रमों को निम्न प्रकार मान्यता प्रदान करने का निर्णय किया है-

परीक्षा	**परीक्षा के समकक्ष**	**वर्ष**
१. विद्याभूषण	कक्षा ८	१९८०
२. विद्यारत्न	१०वीं, हाईस्कूल परीक्षा	१९८२
३. विद्यानिधि	१२वीं, सीनियर सेकेण्डरी स्कूल परीक्षा	१९८४
४ विद्याभास्कर	बी०ए०	१९८६

गुरुकुल की परीक्षाओं को विश्वविद्यालयों तथा परीक्षा परिषदों से मान्यताएं

(क) विद्याभास्कर परीक्षा- नियमानुसार १४ वर्षों तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण कर परीक्षा उत्तीर्ण करने पर 'विद्याभास्कर' स्नातक उपाधि प्रदान की जाती है । वर्तमान में २००० से भी अधिक स्नातक देश के विभिन्न स्थानों में पहुँचकर अपना-अपना महत्त्वपूर्ण स्थान ही नहीं, गुरुकुल की कीर्ति पताका भी फहरा रहे हैं । विभिन्न विश्वविद्यालयों ने 'विद्याभास्कर' को संस्कृत एवं हिन्दी विषयों के एम०ए० पाठ्यक्रमों में प्रवेशार्थ मान्यता प्रदान की हुई है । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार) ने संस्कृत एवं हिन्दी विषयों के साथ-साथ वैदिक साहित्य एवं दर्शनशास्त्र विषयों में भी एम०ए० पाठ्यक्रमों में प्रवेशार्थ मान्यता दी हुई है । मान्यता प्रदान करने वाले विशिष्ट विश्वविद्यालय इस प्रकार हैं-

१. आगरा विश्वविद्यालय, आगरा (उ०प्र०), २. मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उ०प्र०), ३. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तरांचल), ४. पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, ५. महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा), ६. कानपुर विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०), ७. जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (जम्मू कश्मीर राज्य), ८. हेमवतीनंदन बहुगुणा, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तरांचल), ९. हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हि०प्र०), १०. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०)

अन्य विश्वविद्यालयों से भी मान्यता प्राप्ति हेतु प्रयत्न किए जा रहे हैं ।

(ख) विद्यानिधि परीक्षा- यह उपाधि गुरुकुल को कक्षा १२ की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर दी जाती है । विद्यानिधि परीक्षोत्तीर्ण छात्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय (हरिद्वार) की विद्याविनोद (१०+२) परीक्षा (कला वर्ग) के समकक्ष होने के कारण गुरुकुल कांगड़ी के कला संकाय के वेदालंकार एवं विद्यालंकार पाठ्यक्रमों में प्रवेश ले सकते हैं । राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान) ने विद्यानिधि परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को बी०ए० प्रथम वर्ष में प्रवेश हेतु मान्यता दी है ।

(ग) विद्यारत्न परीक्षा- गुरुकुल के वे ब्रह्मचारी जो कक्षा १० उत्तीर्ण करने के पश्चात् अन्यत्र जाना चाहते हैं, 'विद्यारत्न' उपाधि दी जाती है । 'विद्यारत्न' उत्तीर्ण छात्र हरियाणा एवं पंजाब सरकार की 'ओ०टी०' ट्रेनिंग कर सकता है तथा पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ की शास्त्री परीक्षा में प्रवेश पा सकता है । माध्यमिक शिक्षा परिषद्, इलाहाबाद (उ०प्र०) ने 'विद्यारत्न' को हाईस्कूल के समकक्ष स्वीकार कर लिया है । उत्तरांचल शिक्षा एवं परीक्षा परिषद् रामनगर (नैनीताल) ने विद्यारत्न परीक्षा को हाईस्कूल के समकक्ष मान्यता दी है । माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान (अजमेर) ने 'विद्यारत्न' परीक्षा को माध्यमिक परीक्षा (सेकेण्डरी परीक्षा) तथा प्रवेशिका परीक्षा के समकक्ष मान्य किया है । अत: विद्यारत्न परीक्षोत्तीर्ण छात्र राजस्थान प्रान्त की इण्टरमीडिएट परीक्षा में प्रवेश ले सकते हैं ।

इसी प्रकार बी०एन० चक्रवर्ती विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) ने विद्यारत्न परीक्षा को विशारद परीक्षा के समकक्ष, पंजाब स्कूल एजुकेशन बोर्ड, मोहाली (पंजाब) ने मैट्रिकुलेशन के समकक्ष, महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा मण्डल (महाराष्ट्र स्टेट बोर्ड आफ सेकेण्डरी एण्ड हायर सेकेण्डरी एजुकेशन) शिवाजी नगर, पुणे ने एस०एस०सी० परीक्षा के समकक्ष मान्य किया है ।

(घ) सिद्धान्त-शास्त्री परीक्षा- यह उपदेशक विभाग की उपाधि है, जिसे उत्तीर्ण करने पर आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभाओं के अन्तर्गत आर्यसमाजों में 'पुरोहित' अथवा 'व्याख्याता' के पद पर नियुक्ति हेतु मान्य है ।

छात्रों की सभाएं- गुरुकुल के प्रारम्भिक काल से ही गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों की वाक्‌कला सम्वर्धनार्थ उन्हें उच्च स्तरीय वक्ता बनाने के लिए उनकी दो सभाएं हैं-

(क) विद्वत्कला **परिषद्** - यह परिषद् कक्षा ११ से १५ तक के ब्रह्मचारियों की है, इसके माध्यम से ब्रह्मचारी संस्कृत भाषा में भाषण, वाद-विवाद एवं अन्य शैक्षणिक दक्षताओं का साप्ताहिक अभ्यास करते हैं ।

(ख) आर्यकिशोर परिषद् - यह परिषद् कक्षा ६ से १० तक के ब्रह्मचारियों की है । इसके द्वारा ब्रह्मचारी हिन्दी भाषा में वक्तृत्व कला का साप्ताहिक अभ्यास करते हैं । इस परिषद् के अध्यक्ष डॉ० केशवप्रसाद उपाध्याय तथा उपाध्यक्ष डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार सिंहदेव हैं । आर्यकिशोर परिषद् के मन्त्री ब्र० नीरज कुमार हैं ।

शिक्षा से सम्बद्ध अन्य विभाग- शिक्षा से सम्बद्ध अन्य विभाग भी अनेकानेक विभाग हैं जैसे- १. पुस्तकालय विभाग, २. आयुर्वेदिक चिकित्सालय विभाग, ३. गुरुकुल महाविद्यालय फार्मेसी ज्वालापुर, ४. ब्रह्मचर्याश्रम, ५. भारतोदय: (संस्कृत मासिक पत्र), ६. राष्ट्रीय सेवा योजना, ७. दर्शनानन्द स्काउट दल ।

ब्रह्मचर्याश्रम- प्राचीन आश्रम व्यवस्था के अनुसार सम्प्रति आश्रम-विभाग में ३२० ब्रह्मचारी दैनिक दिनचर्या का पूर्ण पालन करते हुए रहते हैं ।

भारतोदय: (संस्कृत मासिक पत्र)- यह गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर का मुखपत्र है । वर्तमान में यह संस्कृत भाषा में प्रकाशित होता है । इसके सम्पादकों में हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् श्री पं० पद्मसिंह शर्मा, तपोमूर्ति श्री

नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ, संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् पं० भीमसेन शर्मा (आगरा), पं० रामस्वरूप शास्त्री, कविरत्न हरिशंकर शर्मा, डॉ० हरिदत्त शर्मा आदि रहे हैं।

५ वर्षों की संस्था की उपलब्धियाँ

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती द्वारा संस्थापित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर ने सन् २००२ से सन् २००६ तक की अवधि में पर्याप्त उन्नति की है। इन उपलब्धियों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. गुरुकुल की शैक्षणिक उपलब्धियाँ, २. गुरुकुल की भौतिक उपलब्धियाँ।

१. गुरुकुल की शैक्षणिक उपलब्धियाँ- गुरुकुल के शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत शैक्षणिक उपलब्धियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

१. गुरुकुल विभाग की उपलब्धियाँ, २ संस्कृत विभाग की उपलब्धियाँ, ३. पी०जी०कालेज एवं योग विभाग, ४. प्रशिक्षण विभाग, ५. राष्ट्रीय सेवा योजना (एन०एस०एस०) की मान्यता, ६. दर्शनानन्द स्काउट दल की मान्यता।

१. गुरुकुल विभाग- गुरुकुल विभाग की निम्नलिखित कक्षाएं चल रही हैं-

१. विद्याभूषण, २. विद्यारत्न, ३. विद्यानिधि, ४. विद्याभास्कर।

गुरुकुल विभाग के अन्तर्गत वर्तमान में निम्नलिखित संस्थाएं भी सम्बद्ध हैं-

१. गुरुकुल महाविद्यालय कण्वाश्रम, कलालघाटी, पौड़ी गढ़वाल (उत्तरांचल), २. स्वामी श्रद्धानन्द विद्यालय, चांदगोठी तह० राजगढ़, जिला- चूरू (राजस्थान), ३. मरुधर मूक बधिर विद्यालय, पुलिस लाइन के पीछे, बीकानेर (राजस्थान), ४. इन्दिरा विद्या-मंदिर उच्चतर प्राथमिक विद्यालय, करौली, सवाई माधोपुर (राजस्थान), ५. जयपुर इण्टरनेशनल स्कूल, मिलापनगर, जयपुर (राजस्थान), ६. प्रकाशानन्द प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय, राम तलाई, भादरा (राजस्थान), ७. श्रीमद्दयानन्द गुरुकुल विद्यापीठ, गदपुरी, बल्लभगढ़, फरीदाबाद (हरियाणा), ८. वीर शिवाजी विद्यामंदिर, कुई दौसा (राजस्थान)

२. संस्कृत विभाग- गुरुकुल के संस्कृत विभाग के अन्तर्गत सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी द्वारा सम्बद्ध कक्षाएं (पूर्वमध्यमा, उत्तर मध्यमा, शास्त्री एवं आचार्य परीक्षा) संचालित की जा रही हैं। इस विभाग को सन् १९४० से साहित्य, व्याकरण, वेदान्त विषयों में आचार्य (स्नातकोत्तर) पाठ्यक्रमों की मान्यता है। व्याकरण दो भागों में विभक्त है- १. नव्य व्याकरण, २. प्राच्य व्याकरण। इसी प्रकार वेद (नैरुक्त प्रक्रिया) एवं सर्वदर्शन विषयों में शास्त्री (स्नातक) पाठ्यक्रमों की मान्यता है। उत्तरांचल राज्य निर्माण के अनन्तर पूर्वमध्यमा एवं उत्तर मध्यमा परीक्षाएं उत्तरांचल शिक्षा एवं परीक्षा परिषद् , रामनगर (नैनीताल) से सम्बद्ध हो गई हैं तथा शास्त्री (स्नातक) आचार्य (स्नातकोत्तर) पाठ्यक्रम हेमवतीनन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल) से सम्बद्ध हो गए। उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार की स्थापना के साथ हेमवतीनन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय से सम्बद्ध शास्त्री एवं आचार्य पाठ्यक्रमों की सम्बद्धता उत्तरांचल शासन द्वारा उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार से सम्बद्ध कर दी गई।

इस विभाग की मान्यता के आधार पर २८ जुलाई सन् २००३ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) को अशासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पंजीकृत करते हुए यू०जी०सी० एक्ट १९५६ की धारा २ एफ एवं १२ बी० के अन्तर्गत विकास अनुदान लेने हेतु मान्य किया है। इससे पहला अनुदान १९ लाख रुपये का स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा भी इन पाँच वर्षों में गुरुकुल के ७ संस्कृत अध्यापकों का वेतन एवं १०० छात्रों को संस्कृत छात्रवृत्ति प्रदान की जा रही है।

३. पी०जी० कालेज एवं योग विभाग- गुरुकुल के स्नातक परीक्षोत्तीर्ण छात्रों को आधुनिक प्रणाली से संस्कृत विषय में एम०ए० करने हेतु अन्यत्र जाना पड़ता था। छात्रों को इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए संस्था के प्राचार्य डॉ० हरिगोपाल शास्त्री के सुप्रयासों से संस्था की प्रबन्ध समिति ने हेमवतीनन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल) से सम्बद्धता प्राप्त कर शिक्षा सत्र २००५-२००६ से विधिवत् एम०ए० (संस्कृत) पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया। शिक्षा सत्र २००५-०६ में १२ छात्र पंजीकृत रहे। शिक्षा सत्र २००६-०७ में ७ छात्र पंजीकृत हैं।

इसी प्रकार 'पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन यौगिक साइंस' पाठ्यक्रम भी गढ़वाल विश्वविद्यालय से मान्यता लेकर प्रारम्भ किया गया। इस पाठ्यक्रम में भी शिक्षा-सत्र २००५-०६ में २० छात्र पंजीकृत रहे। शिक्षा सत्र २००६-०७ में ३२ छात्र पंजीकृत हैं।

४. प्रशिक्षण विभाग- गुरुकुल में प्रशिक्षण (बी०एड०) कालेज की स्थापना करने हेतु निरन्तर प्रयास हो रहा है।

५. राष्ट्रीय सेवा योजना- २१ नवम्बर २००१ में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०) द्वारा राष्ट्रीय सेवा योजना इकाई की स्थापना इस संस्था में हुई। कार्यक्रम अधिकारी पद पर डॉ० सुरेशचन्द्र त्यागी की आंशिक रूप से नियुक्ति की गयी। उत्तरांचल राज्य निर्माण के बाद यह इकाई गढ़वाल मण्डल, उपशिक्षा निदेशक के अन्तर्गत पंजीकृत हो गयी। वर्तमान में यह इकाई उत्तरांचल संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार से सम्बद्ध होकर कार्यरत है तथा ५० स्वयंसेवी इस योजना में पंजीकृत हैं। वर्तमान में कार्यक्रम अधिकारी पद पर डॉ० केशवप्रसाद शास्त्री कार्यरत हैं।

६. दर्शनानन्द स्काउट दल की मान्यता- सन् २००३ में भारत स्काउट एण्ड गाइड्स के अन्तर्गत उत्तरांचल राज्य भारत स्काउट एण्ड गाइड्स से सम्बन्धित 'दर्शनानन्द स्काउट दल' का शुभारम्भ किया गया। इसमें छात्र स्काउट की शिक्षा प्राप्त करते हैं तथा स्काउटिंग के क्रियात्मक पक्ष की शिक्षा से प्रेरित होकर इसके क्रिया-कलापों के माध्यम से छात्रों में सेवा, सौहार्द, सहयोग, स्वावलम्बन, स्वदेशानुराग और विश्व-बन्धुत्व की भावनाओं का विकास हो रहा है।

२. गुरुकुल की भौतिक उपलब्धियाँ- विगत ५ वर्षों में संस्था में भौतिक रूप से निम्नलिखित कार्य हुए हैं-

१. नारायण भवन का निर्माण (डॉ० हरिगोपाल शास्त्री जी के प्रयास से, व्यय ३१ हजार रुपये)

२. गौशाला का जीर्णोद्धार (प्रधान श्री हरवंशसिंह वत्स प्रधान द्वारा, व्यय ढाई लाख रुपये)

३. सुखदेव भवन का निर्माण (श्री पंकज शर्मा एडवोकेट, गाजियाबाद के परिवार द्वारा, व्यय १६५००० रुपये)

४. सत्य-सदन का निर्माण (श्री सत्यव्रत शास्त्री के परिवार द्वारा, व्यय ९० हजार रुपये)

५. दर्शनानन्द घाट का जीर्णोद्धार (प्रधान श्री पं० हरवंश सिंह जी द्वारा, व्यय १ लाख ५० हजार रुपये)

६. छात्रावास का जीर्णोद्धार (यू०जी०सी० द्वारा २ लाख के स्वीकृत अनुदान से)

७. श्री नन्दकिशोर गर्ग (दिल्ली) द्वारा ४० पंखों का दान

८. वृक्षारोपण के रूप में श्री संजय माहेश्वरी का दान (४० हजार रुपये का दान)

९. मुख्य कार्यालय के सामने पार्क का पुनर्निर्माण (श्री नवीन कम्बोज द्वारा, व्यय ७५ हजार रुपये)

***

पता- उपाचार्य- गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार

R. YADAV & CO.
CHARTERED ACCOUNTANTS

PHONE NO 253825 (O)
227834 (R)
Mobile No 9897604825
Kathera Bazar
JWALAPUR-249407

FORM No. 10
(See Rule 17B)

Audit Report under section 12A (b) of the Income Tax Act 1961 in the case of Charitable or religious trusts or institution.

We have examined the balance sheet of **SHREE GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR**.

As AT 31st March 2006 and the Income and Expenditure account for the year ended on that date which are in agreement with the books of account as maintained by the said trust or institution. The financial statements are the responsibility of the management. Our responsibility is to express an opinion on these financial statements based on our audit. We conducted our audit in accordance with the auditing standards generally accepted in India. Those Standards require that we plan and perform the audit to obtain resonable assurance about whether the financial statements are free of material misstatement. An audit includes examining on a test basis, evidence supporting the amounts and disclosures in the financial statement. An audit also includes assessing the accounting principles used and significant estimates made by management, as well as evaluating the overall financial statement presentation. We believe that our audit provides a reasonable basis for our opinion.

We have obtained all the information and explanation, which to the best of our knowledge and belief were necessary for the purposes of the audit. In our opinion proper books of account have been kept by the trust/institution, subject to the notes on account.

In our opinion and to the best of our information and according to information given to us, the said read with notes thereon give a true and fair view.

i) In the case of the Balance sheet of the the state of affairs of the above trust/institution on as at 31st March 2006, and.

ii) In the case of the Income and Expenditure account of the Surplus of its accounting year ending on 31st March 2006.

The prescribed particulars are annexed here to.

FOR M/S R. YADAV & CO.
CHARTERED ACCOUNTANTS

Dated . 10.10.2006
Place : Jwalapur (HARDWAR)

(RAJENDRA YADAV)
PROPRIETOR

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR

Balance Sheet as on 31.03.2006

LIABILITIES		Rs.
CAPITAL FUND:		
(As per Annexure - 1)		2,360,974.33
SECURITY FUND :		
balance As per Last Balance Sheet		183,665.50
ADVANCE:		
Last Balance :	14,651.00	
Add Received	224,181.00	
	238,832.00	
Less Paid :	210,790.00	28,042.00
PAYABLE		
(As per Annexure - 2)		192,696.00
ADVANCE PAYABLE:		
(As per Annexure - 3)		214,057.00
UNSECURED LOAN :		
Last Balance	150,000.00	
During the Year	110,100.00	260,100.00
LAONS & BORROWINGS:		
From Bank O/L :		100,497.00
FUNDS :		
Building Fund :		
Balance :	1,407,827.00	
Add : During the Year :	109,400.00	1,517,327.00
LIFE MEMBER SHIP:		
Balance :		25,700.00
TOTAL Rs.		4,883,058.83

ASSETS	Rs.
FIXED ASSETS :	
(As per Annexure - 4)	3,218,152.29
INVESTMENTS :	
18 Shares of Shri Prem Spining &	
Weaving Mills @ Rs. 66/& per shares	1,080.00
CURRENT ASSETS	
(Value certified by Management)	
Stock Bhandar	48,376.50
Security	5,000.00
Kulsachiv, H.N. Bahuguna Garhwal Uni	180,000.00
NCERT .	70,000.00
Dr. Ajoy Kaush .	40,000.00
T.D.S	2,013.00
Varanasi Vibhag	252,000.00
M.A. VIBHAG :	
Balance as per Last Balance sheet	5,606.00
SADHAN SEHKARI SAMITI	
Balance as per Last Balance sheet :	2,271.00
SUGARCANE SEHKARI SAMITI :	
Balance as per Last Balance sheet	980.00
PHARMACY VIBHAG	
Balance as per Last Balance sheet	2,284.00
CASH & BANK BALANCE :	
Cash in hand .	95,176.00
P.F. with Post office	4,018.25
With Roorkee Co-operative Bank	
A/C No. 14	480.38
With P.N.B. JWALAPUR	
in S.B. A/C No. 18658 .	109,148.00
in S.B. A/C No. 15207	18,583.00
in S.B. A/C No. 940	4,109.00
in S.B. A/C No. 4480 .	70.00
in S.B. A/C No. 22580	38,716.00
I.O.B. S.B. A/C No. 50342	3,990.70
F.D.R's with P.N.B. .	796,874.00
P.O. A/C No. 1483394	4,792.55
TOTAL Rs	4,883,058.83

As per our seperate report of even date

FOR M/S R. YADAV & CO.
CHARTERED ACCOUNTANTS

seal

Dated : 10.10.2006
Place : Jwalapur (HARDWAR)

(RAJENDRA YADAV)
PROPRIETOR

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR

CAPITAL FUND
ANNEXURE - 1

To	Balance b/d .	2,334,010.83	By Balance c/d .	2,360,974.33
	Surplus	27,063.50		
	TOTAL Rs	2,360,974.33	TOTAL Rs	2,360,974.33

PAYABLE
ANNEXURE - 2

1	Honoranum	33,059.00
2	Salary	32,453.00
3	E.P.F. :	6,084.00
4	Varansei Vibhag	90,000.00
5	Income from Land rent	21,100.00
6	Income from Baghbahar ·	10,000.00
	TOTAL Rs.	192,696.00

ADVANCE PAYABLE
ANNEXURE - 3

1	M/s New Ganda Lal Jain	163,357.00
2	R. Yadva & Co	10,900.00
3	Pharmacy Vibhag	39,800.00
	TOTAL Rs.	214,057.00

FIXED ASSETS
ANNEXURE - 4

S No	Particulars	Last Balance	Addition / deduction		Balance
1	Land .	370,500.00	-		370,500.00
2	Building	1,963,884.46		224,353.00	2,188,237.46
3	Dessebon House .	39,124.50	-		39,124.50
4	Typewriter:	6,926.45	-		6,926.45
5	Furniture & Fixture	34,416.00		10,500.00	44,916.00
6	Fan	11,035.03		6,020.00	17,055.03
7	Library	12,420.35	-		12,420.35
8	Gas Stove	14,179.50	-		14,179.50
9	Fire Extinguishers	250.00	-		250.00
10	Cycle ·	1,140.00	-		1,140.00
11	Gas Lamp :	925.00	-		925.00
12	Car	135,000.00	-		135,000.00
13	Nalkoop ·	52,074.00	-		52,074.00
14	Tractor Trolly Equipment	283,575.00		10,729.00	294,304.00
15	Thereshar Machine ·	20,600.00	-		20,600.00
16	Invertor .	-		6,500.00	6,500.00
17	Computer	14,000.00	-		14,000.00
	TOTAL Rs.	2,960,060.29		258,102.00	3,218,162.29

Note Depreciation have not been provided on the fixed Assets.

Annexed to the Balance Sheet.

FOR M/S R. YADAV & CO.
CHARTERED ACCOUNTANTS

seal

Dated . 10.10.2006
Place : Jwalapur (HARDWAR)

(RAJENDRA YADAV)
PROPRIETOR

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR

General Income & Expenditure Account for the year ending 31.03.2006

EXPENDITURE	ANNEXURE	Rs.		INCOME	ANNEXURE	Rs.
Office Vibhag .	3	230.237 00	By	Bhandar Vibhag	1	370,507.50
Aushdhalaya ·	5	34 353.00	"	Agriculture	2	83.871 00
Shiksha Vibhag ·	4	197,537 00	"	P G College	7	16 129.00
SURPLUS ·			"	Pharmacy	6	14,583 00
Being excess of Income						
over Expenditure .		22 963.50				
TOTAL Rs.		485,090 50		TOTAL Rs.		485,090.50

As per our seperate report of even date

FOR M/S R. YADAV & CO.
CHARTERED ACCOUNTANTS

seal

Dated 10.10 2006
Place · Jwalapur (HARDWAR)

(RAJENDRA YADAV)
PROPRIETOR

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR

Income & Expenditure Account for the year ending 31.03.2006

BHANDAR VIBHAG

ANNEXURE - 1

	EXPENDITURE	Rs.		INCOME	Rs.
To	Opening stock	36,067.00	By	Bhandar Vibhag	1,523,950.00
"	Honorarium	51,950.00	"	Other Receipts	28,510.00
"	Gas Expenses	183,136.00	"	Closing stock	48,376.50
"	Misc. expenses	14,514.00			
"	Bhandar expenses	695,195.00			
"	Vegetable expenses	154,007.00			
"	Repair & Maintenance	5,025.00			
"	Salary	78,749.00			
"	Wages	925.00			
"	Utensils	950.00			
"	SURPLUS :				
	Being Excess of Income over				
	Expenditure	370,507.00			
	TOTAL Rs.	1,600,836.50		TOTAL Rs.	1,600,836.50

Income & Expenditure Account for the year ending 31.03.2006

AGRICULTURE VIBHAG

ANNEXURE - 2

	EXPENDITURE	Rs.		INCOME	Rs.
To	Salaries	17,949.00	By	Sale of Milk	116,902.00
"	Honorarium	81,263.00	"	Sale of Seed & Live stock	3,390.00
"	Tractor expenses	39,449.00	"	Sale of tree	32,080.00
"	Repair & Maintenance	10,440.00	"	Sale of Wheat	80,600.00
"	Electricity & Water expenses	7,020.00	"	Sale of Rice	56,000.00
"	Seed & Live stock	79,155.00	"	Income from Land Rent	43,500.00
"	Khad, Seq etc	34,281.00	"	Income from BaghBahar	71,700.00
"	Misc. expenses	5,410.00	"	Income from Tractor	2,200.00
"	Medicine expenses	9,532.00	"	Misc. Income	11,970.00
"	Tree expenses	305.00			
"	Wages	47,042.00			
"	Rates & Taxes	578.00			
"	Insurance Expenses	1,292.00			
"	SURPLUS :				
	Being Excess of Income over				
	expenditure	83,871.00			
	TOTAL Rs.	418,342.00		TOTAL Rs.	418,342.00

Annexed

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR

Income & Expenditure Account for the year ending 31.03.2006

OFFICE VIBHAG

ANNEXURE - 3

	EXPENDITURE	Rs.		INCOME	Rs.
To	Salaries .	132,037.00	By.	Donation	532,219.00
"	Honorarium	124,346.00	"	Late Fee .	15,340.00
"	Parchar expenses .	151,158.00	"	Electricity & Water	62,805.00
"	Telephone expenses :	9,524.00	"	Rent .	91,937.00
"	Postage & Telegramme	532.00	"	Bank Interest :	7,082.00
"	Travelling expenses :	36,159.00	"	FDR Interest .	53,372.00
"	Utsav expenses .	51,306.00	"	Other Receipts	305.00
"	Printing & Stationary .	7,989.00	"	**DEFICIT :**	
"	Legal expenses/Court exp	95,521.00		Being excess of Expenditure	
"	Electricity expenses :	110,242.00		over Income	230,237.00
"	E.P.F. :	76,739.00			
"	Water expenses	89,987.00			
"	Professional Charges	13,250.00			
"	Bank Comm. & Charges	1,921.00			
"	Misc. expenses .	24,074.00			
"	Repair & Maintenance :	17,564.00			
"	Wages	14,205.00			
"	Electricity Goods	36,165.00			
"	Repair Furniture	26,081.00			
"	Interest on DML	497.00			
	TOTAL Rs.	993,257.00		TOTAL Rs.	993,287.00

SHIKSHA VIBHAG

ANNEXURE - 4

	EXPENDITURE	Rs.		INCOME	Rs.
To.	Salary	214,963.00	By	Admission fee .	298,900.00
"	Honorarium	191,665.00	"	Examination & Registration fee :	401,395.00
"	Examination expenses	143,521.00	"	Computer Vibhag .	157,142.00
"	Repair & Maintenance .	712.00	"	Certificate fee	16,098.00
"	Postage expenses	10,090.00	"	Income from Bhartodaya :	7,850.00
"	Ashram expenses	13,726.00	"	Income from Library	7,198.00
"	Misc. expenses	19,192.00	"	Other Income	1,481.00
"	Bhartodaya expenses .	9,600.00	"	Game Fee :	18,050.00
"	Electricity	4,769.00	"	Prospectus Receipts	12,730.00
"	Printing & Stationary	45,159.00	"	Donations	5,173.00
"	Telephone expenses	17,804.00	"	**DEFICIT :**	
"	Traveling expenses	38,457.00		Being excess of Expenditure	
"	Darshanand Jayanti	8,495.00		over Income	197,537.00
"	Computer expenses :	44,180.00			
"	Game Expenses	6,993.00			
"	Library Expenses	7,925.00			
"	Varansei Vibhag	287,500.00			
"	Wages	450.00			
"	Furniture Repair :	8,903.00			
"	Insurance Expenses	1,381.00			
"	News Paper	2,136.00			
"	Application Expenses	40,100.00			
	TOTAL Rs.	1,114,354.00		TOTAL Rs.	1,114,354.00

Annexed

GURUKUL MAHAVIDYALAYA JWALAPUR
Income & Expenditure Account for the year ending 31.03.2006
AUSHDHALYA VIBHAG
ANNEXURE - 5

	EXPENDITURE	Rs		INCOME	Rs.
To	Honorarium	6,000.00	By	Admission fee	15,700.00
"	Salary	21,321.00			
"	Medicine expenses .	22,592.00	"	**DEFICIT :**	
"	Misc. expenses	240.00		Being excess of Expenditure over Income	34,353.00
	TOTAL Rs.	**50,053.00**		**TOTAL Rs.**	**50,053.00**

PHARMACY VIBHAG
ANNEXURE - 6

	EXPENDITURE	Rs		INCOME	Rs.
To	Medicine from Pharmacy ·	2,387.00	By	Income from Rent	30,150.00
"	Repair & Maintenance	13,180.00			
"	**SURPLUS :** Being Excess of Income over expenditure .	14,583.00			
	TOTAL Rs.	**30,150.00**		**TOTAL Rs.**	**30,150.00**

P.G.COLLEGE
ANNEXURE - 7

	EXPENDITURE	Rs		INCOME	Rs.
To	Exam Expenses ·	59,753.00	By.	Admission fee ·	100,500.00
"	Honorarium ·	1,538.00			
"	Salary ·	19,633.00			
"	Printing & Stationery .	745.00			
"	Travelling Expenses	1,350.00			
"	Postage Expenses	1,357.00			
"	**SURPLUS :** Being Excess of Income over expenditure	16,'28.00			
	TOTAL Rs.	**100,500.00**		**TOTAL Rs.**	**100,500.00**

Annexed

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार

अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६ के अनुमोदन हेतु

क्र०सं०	नाम खाता	अनुमानित आय	अनुमानित व्यय	अनुमानित लाभ	अनुमानित हानि
१.	प्रशासनिक कार्यालय	४,३५,०००.००	७,९३,५००.००	--	३,५८,५००.००
२.	शिक्षा विभाग	६,१५,५२५.००	६,४९,६००.००	--	३४,०७५.००
३.	भण्डार विभाग	१३,५०,०००.००	११,३०,०००.००	२,२०,०००.००	--
४.	कृषि, गौशाला, वाटिका, बाग-बहार	३,९०,५००.००	३,१४,०००.००	७६,५००.००	--
५.	धर्मार्थ चिकित्सालय	११,०००.००	४०,६००.००	--	२९,६००.००
६.	वाराणसी विभाग	१८,१६,०००.००	२०,२०,०००.००	--	२,०४,०००.००
७.	फार्मेसी विभाग	१९,०००.००	५,०००.००	१४,०००.००	--
	योग-	४६,३७,०२५.००	४९,५२,७००.००	३,१०,५००.००	६,२६,१७५.००

अनुमानित व्यय - ४९,५२,७००.००

अनुमानित आय - ४६,३७,०२५.००

अनुमानित हानि- ३,१५,६७५.००

(प्रबंधकीय पूर्ति - रुपये-तीन लाख पन्द्रह हजार छह सौ पिचहत्तर मात्र)

नोट- वाराणसी विभाग में वास्तव में हानि नहीं होती है, प्रबन्धकीय अंशदान को दान में जमा करके भुगतान किया जाता है, जो प्रबंधकीय अंशदान को पूर्ण करता है।

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
प्रशासनिक कार्यालय

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
दान	३,५०,०००.००	प्रचार प्रसार	१,६०,०००.००
भवन-संरक्षण (नवीन छात्रों से प्राप्त)	६०,०००.००	भवन फर्नीचर मरम्मत	१,५०,०००.००
		विद्युत् व्यय	१,६०,०००.००
		मानदेय भुगतान	१,२०,०००.००
		वार्षिकोत्सव	७०,०००.००
फर्नीचर शुल्क (नवीन छात्रों से प्राप्त)	२४,०००.००	जल प्रबंधन	३०,०००.००
		वेतन भुगतान	७०,०००.००
		अभियोग	५०,०००.००
जल प्रबंध	१,०००.००	मिश्रित (आडिट बिल, अभिनन्दन समारोह जलपान आदि)	२५,०००.००
		मार्ग व्यय	१५,०००.००
		टेलीफोन व्यय	१२,०००.००
		डाक व्यय	११,०००.००
		स्टेशनरी प्रिंटिंग आदि	१०,०००.००
		दैनिक मजदूरी	१०,०००.००
योग-	४,३५,०००.००	योग-	७,९३,५००.००
(रुपये- चार लाख पैंतीस हजार मात्र)		(रुपये सात लाख तिरानबे हजार पांच सौ)	

अनुमानित व्यय - ७,९३,५००.००

अनुमानित आय - ४,३५,५००.००

अनुमानित हानि- ३,५८,५००.०० (रुपये-तीन लाख अट्ठावन हजार पाँच सौ मात्र)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
शिक्षा-विभाग

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
प्रवेश शुल्क	१,८०,०००.००	वेतन भुगतान	२,१०,०००.००
परीक्षा खाता	२,७०,५००.००	मानदेय भुगतान	१,७०,७००.००
कम्प्यूटर शुल्क (व्यवसायिक शिक्षा)	६५,१२५.००	परीक्षा खाता (प्रश्न पत्र छपाई, परीक्षा बिल आदि)	१,४०,०००.००
संस्कृत सामान्य शिक्षा	६०,०००.००	कम्प्यूटर शुल्क	३५,०००.००
टी०सी०, प्रमाण-पत्र, नियमावली आदि	१७,०००.००	टेलीफोन	२०,०००.००
क्रीड़ा शुल्क	११,५००.००	दर्शनानन्द जयन्ती	१५,०००.००
भारतोदय	५,६००.००	स्टेशनरी प्रिंटिंग आदि	३०,०००.००
पुस्तकालय	५,८००.००	आश्रम (घी, सामग्री, झाड़ू, खुरपा, फावड़ा)	१५,०००.००
		क्रीड़ा व्यय	१०,५००.००
		पुस्तकालय	५,०००.००
		डाक व्यय	१०,०००.००
		मार्ग व्यय	९,०००.००
		विविध (टाटपट्टी, चाक, जलपान आदि)	९,४००.००
		भारतोदय	१०,०००.००
योग-	६,१५,५२५.००	योग-	६,४९,६००.००
(रुपये- छः लाख पन्द्रह हजार पाँच सौ पच्चीस मात्र)		(रुपये छः लाख उन्चास हजार छः सौ)	

अनुमानित व्यय - ६,४९,६००.००

अनुमानित आय - ६,१५,५२५.००

अनुमानित हानि- ३४,०७५००.००

(रुपये-चौंतीस हजार पिछत्तर मात्र)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
भण्डार-विभाग

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
छात्रों से प्राप्त भोजन-व्यय	१३,५०,०००.००	गैस खरीद मरम्मत	२,२०,०००.००
		खाद्य सामग्री (दाल, तेल, गेहूँ, चावल आदि)	६,२०,०००.००
		सब्जी खरीद	१,६०,०००.००
		वेतन भुगतान	७०,०००.००
		मानदेय-भुगतान	५०,०००.००
		बर्तन खरीद एवं मरम्मत	१०,०००.००
		टाट-पट्टी, झाड़ू आदि (मिश्रित)	८,०००.००
		दैनिक मजदूरी	२,०००.००
योग-	१३,५०,०००.००	योग-	११,३०,०००.००
(रुपये- तेरह लाख पचास हजार मात्र)		(रुपये- ग्यारह लाख तीस हजार)	

अनुमानित आय - १३,५०,०००.००
अनुमानित व्यय - ११,३०,०००.००

अनुमानित लाभ- २,२०,०००.०० (रुपये-दो लाख बीस हजार मात्र)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
कृषि, गौशाला, वाटिका, बाग-बहार

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
कुल भूमि- २८० बीघा। आवासीय एवं विद्यालय परिसर आदि - १०० बीघा			
ठेका भूमि- ४५ बीघा (१३००/- प्रति)	५८,५००.००	मानदेय कृषि, गौशाला	७५,०००.००
		खली, चोकर, भूसा आदि	५५,०००.००
दूध बिक्री से प्राप्त	१,००,०००.००	डीजल-खरीद	४०,५००.००
खेती से प्राप्त (गेहूँ-धान)	७०,०००.००	मजदूरी (धान एवं गेहूँ कटाई आदि)	४०,०००.००
हरा चारा (चरी, बर्सीम आदि)	६०,५००.००	गोबर खाद	३०,०००.००
		यूरिया-खाद	१५,०००.००
गोबर खाद से प्राप्त	३०,०००.००	वेतन-भुगतान	२०,०००.००
बाग-बहार	७०,०००.००	बीज खरीद	१२,०००.००
ट्रैक्टर जुताई से प्राप्त	१,५००.००	यंत्र खरीद एवं मरम्मत	१०,०००.००
		औषधीय-व्यय (पशुओं के लिए)	६,०००.००
		पेड़ आम, लीची आदि	५,०००.००
		मिश्रित-(रस्सा, टोकरा, तसला आदि)	३,०००.००
		जल प्रबंध	२,५००.००
योग-	३,९०,५००.००	योग-	३,१४,०००.००
(रुपये- तीन लाख नब्बे हजार पाँच सौ मात्र)			(रुपये- तीन लाख चौदह हजार मात्र)

अनुमानित आय - ३,९०,५००.००

अनुमानित व्यय - ३,१४,०००.००

अनुमानित लाभ- ७६,५००.०० (रुपये- छिहत्तर हजार पाँच सौ मात्र)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
धर्मार्थ-चिकित्सालय

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
छात्रों से प्राप्त चिकित्सा-शुल्क	११,०००.००	वेतन भुगतान	१७,६००.००
		औषधि-व्यय	१५,०००.००
		मानदेय-भुगतान	६,०००.००
		अन्य	२,०००.००
योग-	११,०००.०० (रुपये- ग्यारह हजार मात्र)	योग-	४०,६००.०० (रुपये- चालीस हजार छः सौ मात्र)

अनुमानित व्यय - ४०,६००.००

अनुमानित आय - ११,०००.००

अनुमानित हानि- २९,६००.०० (रुपये-उन्तीस हजार छः सौ मात्र)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरिद्वार
अनुमानित आय-व्यय वर्ष २००५-२००६
वाराणसी - विभाग

नाम खाता	आय	नाम खाता	व्यय
वेतन	७,५८,०००.००	वेतन-भुगतान	७,५८,०००.००
छात्रवृत्ति अनुदान	२,७०,०००.००	छात्रवृत्ति भुगतान	३,६०,०००.००
संस्कृत अध्यापक वेतन	१,५२,०००.००	संस्कृत अध्यापक वेतन-भुगतान	३,३६,०००.००
यू०जी०सी० अनुदान	५,२५,०००.००	भुगतान	५,२५,०००.००
भारतोदय अनुदान	११,०००.००	भारतोदय-व्यय	४१,०००.००
योग-	१८,१६,०००.००	योग-	२०,२०,०००.००
(रुपये- अठारह लाख सोलह हजार मात्र)		(रुपये- बीस लाख बीस हजार मात्र)	

अनुमानित व्यय - २०,२०,०००.००

अनुमानित आय - १८,१६,०००.००

अनुमानित हानि- २,०४,०००.०० (रुपये-दो लाख चार हजार मात्र)

विशेष- छात्रवृत्ति एवं संस्कृत अध्यापकों के वेतन में प्रबंधकीय अंशदान की पूर्ति दान आदि की आय में जमाकर तथा अनुदान में व्यय दर्शाकर की जाती है, इस मध्ये संस्था पर कोई व्यय भार नहीं पड़ता है।

विद्यावाचस्पति (डी०लिट्०) उपाधि प्राप्त विशिष्ट व्यक्तियों की सूची

१.	श्री अलगूराम जी शास्त्री, लखनऊ	१९५९	२१.	श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी, गीताविज्ञान आश्रम, कनखल	१९८३
२.	श्री उदयवीरजी शास्त्री, गाजियाबाद	१९५९	२२.	श्री डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार, परिद्रष्टा, गुरुकुल कांगड़ी वि०वि०हरिद्वार	१९८४
३.	श्री मोरारजी देसाई, वित्तमंत्री भारत सरकार	१९६०	२३.	श्री पद्मश्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' दिल्ली	१९८४
४.	श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा, आगरा	१९६०	२४.	श्रीमती प्रसन्नी देवी, जनस्वास्थ्य मंत्री हरियाणा	१९८५
५.	श्री नगेन्द्र जी, हैदराबाद	१९६०	२५.	श्री वासुदेव सिंह, खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री उ०प्र०	१९८५
६.	श्री डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी, राष्ट्रपति भारत सरकार	१९६१	२६.	श्री सत्यव्रत शास्त्री, धामपुर, बिजनौर	१९८६
७.	श्री कालू लाल श्रीमाली, केन्द्रीय शिक्षा सचिव, दिल्ली	१९६२	२७.	श्री धर्मसिंह ढिल्लों, चण्डीगढ़	१९८६
८.	श्री जगजीवनराम जी, संचार मन्त्री भारत	१९६३	२८.	श्री डॉ० विजयकुमार शास्त्री, योगी फार्मेसी, कनखल	१९८६
९.	श्री जुगलकिशोर जी आचार्य, शिक्षामंत्री उ०प्र०	१९६३	२९.	श्री रामचन्द्र 'विकल', सांसद दिल्ली	१९८६
१०.	श्री माधव श्री हरि अणे, सदस्य, लोकसभा	१९६४	३०.	श्री प्रवीण कुमार शर्मा, शिक्षा राज्यमंत्री उच्चशिक्षा उ०प्र०	१९८७
११.	श्री बलवन्त राव यशवन्तराव चव्हाण, रक्षामंत्री, भारत सरकार	१९६४	३१.	श्री रामकृष्ण शर्मा नौटियाल, सहायक शिक्षा सलाहकार भारतसरकार	१९८७
१२.	श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'	१९६५	३२.	श्री बनवारीलाल यादव, न्यायाधीश, उच्च न्यायालय इलाहाबाद	१९८८
१३.	श्री प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास, प्रधान सार्वदेशिक सभा, दिल्ली	१९६९	३३.	श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, महामंत्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली	१९८८
१४.	श्री डॉ० वी०के०आर०वी० राव, केन्द्रीय शिक्षामंत्री भारत सरकार	१९६९	३४.	श्री महावीर सिंह राणा, विधायक, हरिद्वार	१९८८
१५.	श्री श्यामलाल यादव, उपसभापति राज्यसभा	१९८१	३५.	श्री सत्यनारायण टांटिया, अध्यक्ष काली कमली ट्रस्ट, ऋषिकेश	१९८८
१६.	श्री चौ० चरणसिंह, प्रधानमंत्री भारतसरकार	१९८२	३५.	श्री चन्द्रभानु शास्त्री, जयपुर	१९८८
१७.	श्री स्वामी नारायणमुनिश्चतुर्वेदः, गुरुकुल म०वि०ज्वालापुर	१९८२	३६.	श्री रामजी लाल शास्त्री, जयपुर	१९८८
१८.	श्री चौ० यशपाल सिंह, कृषिमंत्री, उ०प्र०	१९८३			
१९.	श्री महात्मा आर्यभिक्षु जी, आर्यवानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर	१९८३			
२०.	श्री रामलाल शर्मा, उपसचिव (शिक्षा) उ०प्र०	१९८३			

३७. श्री डॉ० सत्यनारायण रेड्डी, राज्यपाल, उ०प्र० १९९०
३८. श्री चन्द्रशेखर, प्रधानमंत्री, भारतसरकार १९९१
३९. श्री मुलायम सिंह यादव, मुख्यमंत्री, उ०प्र० १९९१
४०. श्री अशोक वाजपेयी, शिक्षामंत्री उ०प्र० १९९१
४१. श्री डॉ० हरिकृष्ण अवस्थी, १९९१
कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय
४२. श्री बसन्तीलाल छावड़ा १९९१
४३. श्री डॉ० गंगाप्रसाद विमल १९९१
४४. श्री डी०डी० नौटियाल १९९१
४५. श्री राजेश पायलट, सांसद, दिल्ली १९९५
४६. श्री प्रो० रासासिंह रावत, सांसद, दिल्ली १९९५
४७. श्री डॉ० वाचस्पति उपाध्याय, कुलपति
ला०ब०शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली १९९५
४८. श्री रामचन्द्र राव वन्दे मातरम् , प्रधान १९९५
सार्वदेशिक सभा, दिल्ली
४९. श्री श्रीकृष्ण सेमवाल, सचिव, १९९६
दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली
५०. श्रीमती अमिता चौहान, प्रबन्धक १९९६
एमिटी यूनिवर्सिटी, नईदिल्ली
५१. श्री आर्स्ट मार्टिन रिशेलबेकर, आस्ट्रिया १९९७
५२. श्री कमलाकान्त मिश्र, निदेशक १९९८
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
५३. श्री डॉ० के०पी०ए० मेनन, नई दिल्ली १९९८
५४. श्री रमेशचन्द्र पोखरियाल, वि०मं० उत्तरांचल १९९८
५५. श्री रमेशचन्द्र जी, दिल्ली १९९८
५६. श्री चन्द्रप्रकाश प्रभाकर, दिल्ली १९९८
५७. श्री शम्भू प्रसाद सिंह, १९९८
५८. श्री डॉ० सत्यव्रत शास्त्री, रूपनगर, नई दिल्ली १९९९
५९. श्री डॉ० आर०के० द्विवेदी, १९९९
रजिस्ट्रार, भा०चि०प० उ०प्र०
६०. श्री नित्यानन्द स्वामी, मुख्यमंत्री- उत्तरांचल २००१
६१. श्री किशोर उपाध्याय, राज्यमंत्री उत्तरांचल २००३
६२. श्री हीरासिंह बिष्ट, मंत्री, उत्तरांचल सरकार २००३
६३. श्री नन्दकिशोर गर्ग, दिल्ली २००६

विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त
व्यक्तियों की सूची

१. डॉ० आर०के० द्विवेदी, १९९५
रजिस्ट्रार भा०चि०प० उ०प्र०
२. श्री लक्ष्मीचन्द आर्य, दिल्ली १९९५
३. श्री योगानन्द शास्त्री, दिल्ली २००१
४. श्री मोहन सिंह रावत गांववासी, उत्तरांचल २००१
५. श्री रामचन्द्र गुप्ता, दिल्ली २००२
६. श्री पवन कुमार वत्स, दिल्ली २००५
७. श्री रामजीवन द्विवेदी, हरिद्वार २००५

***

चन्द्रशेखर (प्रधानमंत्री-भारत सरकार) के १३.४.१९९१ को महाविद्यालय आगमन पर उनके विचार

आज इस विद्यामन्दिर में आने का अवसर मिला। मैं अपने को धन्य मानता हूँ। इन संस्थाओं से एक प्रेरणा मिलती है। उदात्त भावनाएं, संकल्प शक्ति, निष्ठा और कर्मठता के सन्देश का उद्‌भव इन्हीं विद्यामन्दिरों से होता है, इसी कारण ये पूजनीय हैं, दर्शनीय हैं।

मेरी शुभकामना है कि यह विद्यालय भविष्य में निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहे।

(चन्द्रशेखर)
१३.४.१९९१

****

डॉ० मंडन मिश्र (निदेशक- संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली) के १३.४.१९६३ को महाविद्यालय आगमन पर उनके विचार

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को आज देखने का अवसर मिला। इस महाविद्यालय का अतीत अत्यन्त गौरवपूर्ण और भविष्य उज्ज्वल है। इसके स्नातकों पर यह देश गर्व कर सकता है। यहाँ के पुनीत वातावरण और शिक्षा दीक्षा-पद्धति ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

(डॉ० मंडन मिश्र)
१३.४.१९६३

खंड ७

विज्ञापन

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की शताब्दी के पवित्र अवसर पर

हार्दिक शुभकामनाएं

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर फार्मेसी

जिला- हरिद्वार (उत्तरांचल)

स्थापना- सन् 1917 ई०, दूरभाष- 255377, 254295

प्रमुख औषधियां-

गुरुकुल च्यवनप्राश अवलेह (अष्टवर्गयुक्त), लिव-17 सीरप, गाइनो-12 सीरप, डाइजोमिन-16 सीरप, कफोलिन-१७ सीरप, भास्कर रक्तिमा सीरप, एस०जी०पोन सीरप, जीपिरोन सीरप, टीन-15 कैप्सूल, मैनसिस-ऑन कैप्सूल, बॉडीलुक कैप्सूल, भास्कर पेन तेल।

व्यवसायाध्यक्ष- सचिन गर्ग, मोबाइल- 9837186799

WITH BEST COMPLIMENTS FROM-

HAMDARD NATIONAL FOUNDATION (INDIA)

Hamdard Building 2/A-3 Asaf Ali Road,

New Delhi-110002

Phone- 23239801, 23239802, 23239803, 23239804, FAX- 23239805

On the auspisious occassion of Centenary Year 2007 of

Gurukul Mahavidyalaya

JWALAPUR, HARDWAR (U.A.)

गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) की शताब्दी
के पवित्र अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएं

न्यू जनता मेडिकल स्टोर

(केन्द्रीय एवं राजकीय कर्मचारियों की मान्यता प्राप्त दुकान)

सिटी हास्पिटल, रामीपुर मोड़, हरिद्वार (उत्तरांचल)

✆ 220181 (दुकान), 396818 (निवास),

मो. 9412071756, 9319376794

शिक्षार्थ आइये! ओ३म् सेवार्थ जाइये!

राजकीय मान्यता प्राप्त

महर्षि कणाद विद्यापीठ

सिसौना (बिजनौर) उ०प्र०

✆ 01345-249201, 9412546235

स्थापना तिथि-माघ कृष्णा पंचमी, सं० २०५९ वि० (२३ जनवरी सन् २००३)

की ओर से गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के
शताब्दी-समारोह पर

हार्दिक अभिनन्दन

डॉ० संजय कुमार त्यागी	सुशील कुमार त्यागी 'अमित'	आचार्य हरिसिंह त्यागी
(प्रबंधक)	(कोषाध्यक्ष)	(संस्थापक एवं अध्यक्ष)

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पु
परिग्रहण क्रमांक 3583
दयानन्द ... महा

गुरुकुल
पायोकिल
पायोरिया की उत्तम औषधि
दाँतों में खून आने से रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे, मसूढ़ों के रोग एवं ढीले दांत ठीक करे
गुरुकुल
पंचामृत आसव
जिगर की कमज़ोरी, कब्ज़, वायु गोला, घबराहट, अनिद्रा, वात कफ प्रधान सन्निपात ज्वर, पाण्डुरोग तथा रक्तहीनता आदि रोगों में गुणकारी, उत्तम स्फूर्तिदायक पेय। शरीर को स्वस्थ एवं निरोग रखता है।
PANCHAMRIT AASAV
गुरुकुल
ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्द्धक व स्फूर्तिदायक रसायन
गुरुकुल
मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक
गुरुकुल
दर्द हर तैल
आमवात, गृध्रसी, स्नायु, संधिशूल, कटिशूल एवं हर प्रकार के मांसपेशी के दर्दों में लाभदायक।
स्त्रियों के सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए
गुरुकुल का वरदान
नारी शक्ति
सम्पूर्ण नारी टॉनिक
गुरुकुल
च्यवनप्राश स्पेशल
सम्पूर्ण परिवार के लिए उत्तम स्वादिष्ट एवं पौष्टिक रसायन श्वास कास व निर्बलता में लाभप्रद
रुचिकर व स्वास्थ्यवर्द्धक
गुरुकुल
चाय
मादकता रहित उत्तम पेय
खांसी, जुकाम, प्रतिशाय (इन्फ्लुएंजा) तथा थकान आदि में अत्यन्त उपयोगी
गुरुकुल
दन्त मंजन
दाँतों की कीटाणुओं से सुरक्षा
मसूढ़े मजबूत
दाँतों को मोती जैसे सफेद व चमकदार
मुख में दिन भर सुगन्ध जैसा अनुभव
हर सुबह नई ताजगी
प्रतिदिन गुरुकुल दन्त मंजन करना न भूलें।
गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी
पो.ऑ.-गुरुकुल कांगड़ी-249404, हरिद्वार (उत्तरांचल) भारत फोन : 01334-246073

On the auspisious occassion of
Centenary Year 2007 of

Gurukul Mahavidyalaya, Jwalapur

SINGHAL
PAULINS INDUSTRIES

Manufacturers & Wholesale Dealers of :

All Types of Croshia Laces
And Canvas Cloth

56/32, Site-IV, Industrial Area,
Sahibabad, Ghaziabad (U.P.)
Ph. : (O) 0120-2896065
Mobile : 09810445991

Pro. Harsh Singhal